सस्ती-ग्रन्थमाला का सातवाँ पुष्प

आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी विरचित

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

प्रकाशक :—

सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी,

नया मन्दिर, धर्मपुरा, देहली।

प्रथम बार ४०००
द्वि० बार १०००
तृ० बार २३००
चतुर्थ बार २२००

वीर नि० स० २४९१
वि० सं० २०२२

लागत मात्र मूल्य
~~तीन रुपया~~
पांच रुपया

प्रकाशक :—
सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी,
श्री दि० जैन नया मन्दिर,
धर्मपुरा, **देहली**—६.

पत्र व्यवहार करने का पता :—
मुन्शी सुमेरचन्द जैन
अराइज़ नवीस,
२५९६, छत्ता प्रतापसिंह,
दरीबा कलाँ, **देहली**-६ ।

७-८-१९६५

मुद्रक

पृष्ठ १ से १४४ तक
फमस प्रिन्टिंग प्रेस,
चार रहट, दिल्ली—६

पृष्ठ १४५ से ३५२ तक :
शिवजी प्रेस,
गली बर्फ वाली, दिल्ली—६

पृष्ठ ३५३ से ५२८ तक :
मॉडर्न आर्ट प्रिन्टर्स,
३९१०, गली जगत सिनेमा वाली
देहली—६

प्रस्तावना

ग्रन्थ और ग्रन्थकार

भारतीय वाङ्मयमें हिन्दी जैन साहित्य अपनी खास विशेषता खता है। इतना ही नहीं; किन्तु हिन्दी भाषाको जन्म देनेका श्रेय प्राय: जैन विद्वानोको प्राप्त है, क्योंकि हिन्दी भाषाका उद्गम भ्रंश भाषासे हुआ है जिसमें जैनियोंका सातवीं शताब्दीसे १७वी दी तकका विपुल साहित्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, चरित्र, पुराण, ा और स्तुति आदि विभिन्न विषयो पर लिखा गया है। यद्यपि का अधिकाश साहित्य अभी अप्रकाशित ही है तो भी हिन्दी षा में जै. साहित्य ाद्य और पद्य दोनो में देखा जाता है। हिन्दी गद्य साहित्य १७ वी शताब्दी से पूर्व का मेरे देखनेमें नही आया। सकता है कि यह इससे भी पूर्व लिखा गया हो परन्तु पद्य साहित्य ससे भी पूर्व का देखनेमें अवश्य आता है।

हिन्दी गद्य साहित्यमें स्वतन्त्र कृतियोंकी अपेक्षा टीका ग्रन्थोंकी धिकता पाई जाती है परन्तु स्वतन्त्र रूपमें लिखी गई कृतियोमें बसे महत्वपूर्ण कृति 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ही है। यद्यपि यह ग्रन्थ क्रमकी १९वी शताब्दी के प्रथम पादकी रचना है तथापि उससे र्वर्ती और पश्चात्यवर्ती लिखे गए ग्रन्थ इसकी प्रतिष्ठा एव हत्ताको नही पा सके। उसका खास कारण प० टोडरमलजीके क्षयोपशमकी विशेषता है। उस प्रकारके ग्रन्थ प्रणयनकी उनमें अपूर्व क्षमता थी, जो उन्हे स्वत: प्राप्त थी। उनकी विचारशक्ति आत्मानुभव और पदार्थ विवेचन की अनुपम क्षमता और उनकी आन्तरिक

भद्रता ही उसका प्रधान कारण जान पड़ता है। यद्यपि सागानेर (जयपुर) वासी प० दीपचन्दजी शाहने स० १७७९ में चिद्विलास नामके ग्रन्थ की और अनुभव प्रकाश की रचना की है और पद्य ग्रन्थ भी लिखे हैं जो मनन करने योग्य हैं परन्तु उनकी भाषा प० टोडरमल जीकी भाषा के समान परिमार्जित नही है और न मोक्षमार्ग-प्रकाशक जैसी सरल एव सरस गम्भोर पदार्थ विवेचनका रहस्य ही देखनेको मिलता है, फिर भी वे ग्रन्थ अपने विषयके अनूठे हैं।

ग्रन्थ का नाम और विवेचन पद्धति

प्रस्तुत ग्रन्थका नाम 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' है जिसे ग्रन्थ कर्त्ताने स्वय ही सूचित किया है। यद्यपि पिछले चार पाँच प्रकाशनोंमे ग्रन्थ का नाम 'मोक्षमार्ग-प्रकाश' ही सूचित किया गया है, मोक्षमार्ग-प्रकाशक नही परन्तु ग्रन्थकर्ताने अपने ग्रन्थका नाम स्वयं ही 'मोक्ष-मार्ग-प्रकाशक' सूचित किया है और उनकी स्वहस्त लिखित 'खरडा' प्रति मे प्रत्येक अधिकार की समाप्ति सूचक अन्तिम पुष्पिका में 'मोक्षमाग प्रकाशक' ही लिखा हुआ है और ग्रन्थ के प्रारम्भमें भी उन्होने 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक सूचित किया है। इस कारण ग्रन्थ का नाम मोक्षमार्ग प्रकाशक रक्खा गया है, मोक्षमाग प्रकाश नहीं। ग्रन्थ का यह नाम अपने अर्थ को स्वयमेव सूचित कर रहा है। उसमे मोक्षमार्ग के स्वरूप अथवा मोक्षोपयोगी जीवादि पदार्थोका विवेचन सरल एव सुबोध हिन्दी भाषा में किया गया है। साथ ही शका समाधानके साथ विषयका स्पष्टीकरण भी किया गया है जिससे पाठक पदार्थकी वस्तु-स्थितिको सहजहीमें समझ सकते हैं। ग्रन्थकी महत्ता परिचित पाठकोंसे छिपी हुई नही है। उसका अध्ययन स्वाध्याय प्रेमियोंके लिये ही आवश्यक नही किन्तु विद्वानोंके लिये भी अत्यावश्यक है। उससे विद्वानों को विविध प्रकारकी चर्चाओं का—

खासकर प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगोंका कथन, प्रयोजन, उनकी सापेक्ष विवेचन शैलीका— जो स्पष्टीकरण पाया जाता है, वह अन्यत्र नहीं है। और इसलिये यह ग्रन्थ सभी स्त्री-पुरुषोंके अध्ययन, मनन, एव चिन्तवन करनेकी वस्तु है। उसके अध्ययनसे अनुयोग पद्धतिमें विरुद्ध जचनेवाली कथनशैली-के विरोधका निरसन सहज ही हो जाता है और बुद्धि उनके विषय विवक्षा और दृष्टिभेदको शीघ्र ही ग्रहण कर लेती है। साथ ही जैन मिथ्यादृष्टिका विवेचन अपनी खास महत्ताका द्योतक है। उससे जहाँ निश्चय व्यवहार रूप नयोंकी कथनशैली, दृष्टि, सापेक्ष, निरपेक्ष रूप नय विवक्षाके विवेचनके रहस्यका पता चलता है, वहाँ सर्वथा एकान्त रूप मिथ्या अभिनिवेशका कदाग्रह भी दूर हो जाता है और शुद्ध स्वरूप का अध्ययन एव चितवन करने वाला जैन श्रावक उक्त प्रकरण का अध्ययन कर अपनी दृष्टिको सुधारनेमे समर्थ हो जाता है और अपनी आन्तरिक मिथ्यादृष्टिको छोड़कर यथार्थ वस्तु स्थितिके माग पर आजाता है और फिर वहाँ आत्म कल्याण करनेमे सर्व प्रकारसे समर्थ हो जाता है।

इस तरह ग्रन्थ गत सभी पकरणोंकी विवेचना बडी ही मार्मिक, सरल, सुगम और सहज सुबोधशैलीसे की गई है परन्तु अभाग्यवश ग्रन्थ अधूरा ही रह गया है। मल्लजी अपने संकेतोंके अनुसार इसे महाग्रन्थ का रूप देना चाहते थे और उसी दृष्टिसे उन्होने अधिकार विभाग के साथ विषयका प्रतिपादन किया है। काश ! यदि यह ग्रन्थ पूरा हो जाता तो वह अपनी शानी नहीं रखता। फिर भी जितना लिखा जा सका है वह अपनेआपमें परिपूर्ण और मौलिक कृतिके रूपमें जगतका कल्याण करनेमें सहायक होगा। इस ग्रन्थके अध्ययन

एवं अध्यापनसे कितनोंका क्या कुछ भला हुआ और कितनोंकी श्रद्धा जैनधर्म पर दृढ़ हुई, इसे बतलानेकी आवश्यकता नहीं। पाठक और स्वाध्याय प्रेमीजन इसकी महत्तासे स्वय परिचित हैं।

ग्रन्थकी भाषा

प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषा ढूंढारी है। चूंकि जयपुर स्टेट राजपूतानेमें है और जयपुर के आस-पासका देश ढूंढाहड़ देश कहलाता है, इसी से उक्त प्रदेशकी बोल चालकी भाषा ढूढारी कहलाती है। यद्यपि साहित्य सृजन में ढूढारी भाषाका स्वतन्त्र कोई स्थान नहीं है, उसे राजस्थानी और व्रजभाषाके प्रभावसे सर्वथा अछूता भी नहीं कहा जा सकता और यह सम्भव प्रतीत होता है कि उस पर व्रजभाषाकी तरह राजस्थानी भाषा का भी असर रहा हो। व्रजभाषाके प्रभावके बीज तो उसमें निहित ही हैं, क्योंकि उत्तर प्रदेश की भाषा व्रज थी और राजस्थानके समीपवर्ती स्थानोमें उसका प्रचार होना स्वाभाविक ही है। अतएव यह सम्भावना नही की जा सकती है कि ढूंढारी भाषा व्रजभाषाके प्रभावसे सर्वथा अछूती रही हो किन्तु उसमें व्रज-भाषाके शब्दोंका आदान प्रदान हुआ है। यही कारण है कि प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषा ढूंढारी होते हुए भी उसमें व्रजभाषाकी पुट अकित है।

ग्रन्थकी भाषा सरल, मृदु और सुबोध तो है ही और उसमें मधुरता भी कम नही पाई जाती है। पढ़ते समय चित्त में स्फुर्तिको उत्पन्न करती है और बडी ही रसीली और आकर्षक जान पडती है। साथ ही १६वीं शताब्दीके प्रारम्भिक जयपुरीय विद्वानोंमें जिस ढूढारी भाषा का प्रचार था, प० टोडरमलजीकी भाषा उससे कही अधिक परिमार्जित है। वह आजकलकी भाषाके बहुत निकटवर्ती है और आसानीसे समझमें आसकती है। ढूढारी भाषामें 'और' 'इसलिये' 'फिर' आदि शब्दोके स्थान पर 'बहुरि' शब्द का प्रयोग किया गया है

और 'क्योंकि' 'इसलिये' 'इस प्रकार' आदि शब्दोंके स्थान पर 'जातैं' 'तातैं' 'या भांति' जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है और षष्ठी विभक्तिमें जो रूप देखनेमें आते हैं उनमें बहुवचनमें 'सिद्धोंके' स्थान पर 'सिद्धनिका' जैसे शब्दोंका प्रयोग पाया जाता है। इसी तरह के और भी प्रयोग हैं पर उनके समझनेमें कोई खास कठिनाई उपस्थित नही होती। हाँ, ग्रन्थमें कतिपय ऐसे शब्दोंका प्रयोग भी हुआ है जो सहसा पाठकोंकी समझमें नही आता जैसे 'आखता' शब्द का प्रयोग जिसका अर्थ उतावला होता है और इसी तरह एक स्थान पर 'हापटा मारै है' जैसे वाक्यका प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ अत्याशक्तिसे पदार्थका ग्रहण करना होता है। पर आज-कलके समयमें जब कि हिन्दी भाषा बहुत कुछ विकास एवं प्रसार पा चुकी है और वह स्वतन्त्र भारतकी राष्ट्र भाषा बनने जा रही है ऐसी स्थितिमें उस भाषाको समझनेमें कोई खास कठिनाई उपस्थित नही होती।

विषय-परिचय

प्रस्तुत मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थ नौ अधिकारोंमें विभक्त है। उन में अन्तिम नवमा अधिकार अपूर्ण है और शेष आठ अधिकार अपने विषयमें परिपूर्ण हैं। इनमें से प्रथम अधिकारमे मंगलाचरण और उसका प्रयोजन प्रगट करनेके अनन्तर ग्रन्थकी प्रमाणिकताका दिग्दर्शन कराया गया है। पश्चात् बाचने सुनने योग्य शास्त्र, वक्ता श्रोताके स्वरूपका सप्रमाण विवेचन करते हुए मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थकी सार्थकता बतलाई गई हैं।

दूसरे अधिकारमें सांसारिक अवस्थाके स्वरूपका सामान्य दिग्दर्शन कराते हुए कर्म बन्धन निदान, नूतन बध विचार, कर्म और जीवका अनादि सम्बन्ध, अमूर्तिक आत्मासे मूर्तिक कर्मोंका सम्बन्ध, उन कर्मोंके घातिया अघातिया भेद, योग और कषायसे हनेवाले यथायोग्य कर्म बन्धनका निर्देश और जड़ पुद्गल परमाणुओं

का यथा योग्य प्रकृति रूप परिणमनका उल्लेख करते हुए भावोंसे कर्मोंका पूर्व बद्ध अवस्था में होने वाले परिवर्तनोंका निर्देश किया गया है। साथ ही कर्मों के फलदानमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध और भावकर्म द्रव्यकर्म का रूप भी बतलाया गया है।

तीसरे अधिकारमें भी ससार अवस्थाका स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए दुःखोंके मूलकारण मिथ्यात्वके प्रभावका कथन किया गया है और मोहोत्पन्न विषयोंकी अभिलाषाजनक दु ख तथा मोही जीवके दु ख निवृत्तिके उपायको निःस्सार बतलाते हुए दु ख निवृत्तिका सच्चा उपाय बतलाया गया है और दर्शनमोह तथा चारित्रमोहके उदय से होनेवाले दु ख और उनकी निवृत्तिका उल्लेख किया गया है। एकेन्द्रियादिक जीवोके दु खोका उल्लेख करते हुए नरकादि चारो गतियोके घोर कष्टों और उनको दूर करने वाले सामान्य विशेष उपायोका भी विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अधिकारमे ससार परिभ्रमणके कारण मिथ्यात्व, अज्ञान और असयमके स्वरूपका कथन करते हुए प्रयोजनभूत और अप्रयोजनभूत पदार्थो का वर्णन और उनमे होने वाली राग द्वेषकी प्रवृत्तिका स्वरूप बतलाया गया है।

पाचवे अधिकारमें आगम और युक्तिके आधारसे विविधमतोंकी समीक्षा करते हुए गृहीत मिथ्यात्वका बडा ही मार्मिक विवेचन किया गया है। साथ ही अन्य मत के प्राचीन ग्रन्थोंके उदाहरणों द्वारा जैन धर्म की प्राचीनता और महत्ताको पुष्ट किया गया है और श्वेताम्बर सम्प्रदाय सम्मत अनेक कल्पनाओं एव मान्यताओंकी समीक्षा की गई है और अछेरों (निन्हवों) का निराकरण करते हुए केवली के आहार नीहारका प्रतिषेध तथा मुनिके वस्त्र पात्रादि उपकरणोंके रखनेका निषेध किया है। साथ ही ढूंढकमतकी आलोचना करते हुए प्रतिमा-

धारी श्रावक न होनेकी मान्यता, मुहपत्तिका निषेध और मूर्तिपूजाके प्रतिषेध का निराकरण भी किया गया है।

छठे अधिकारमें गृहीत मिथ्यात्वके कारण कुगुरु, कुदेव और कुधर्म का स्वरूप और उनकी सेवाका प्रतिषेध किया गया है और अनेक युक्तियों द्वारा गृह, सूर्य, चन्द्रमा, गौ और सर्पादिककी पूजाका भी निराकरण किया गया है।

सातवे अधिकार में जैन मिथ्यादृष्टिका साङ्गोपांग विवेचन करते हुए एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास और सर्वथा एकान्त व्यवहारावलम्बी जैनाभास का युक्तिपूर्ण कथन किया गया है, जिसे पढ़ते ही जैन दृष्टि का वह सत्य स्वरूप सामने आ जाता है और उसकी वह विपरीत कल्पना जो वस्तु स्थितिको अथवा व्यवहार निश्चयनयोंकी दृष्टि को न समझने के कारण हुई थी दूर हो जाती है। इस महत्वपूर्ण प्रकरणमें मल्लजीने जैनियोके अभ्यन्तर मिथ्यात्वके निरसनका बडा रोचक और सैद्धान्तिक विवेचन किया है और उभयनयोंकी सापेक्ष दृष्टिको स्पष्ट करते हुए देव शास्त्र और गुरुभक्तिकी अन्यथा प्रवृत्तिका निराकरण किया है और सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टिका स्वरूप तथा क्षयोपशम, विशुद्ध, देशना, प्रायोग्य और करण इन पचलब्धियोंका निर्देश करते हुए उक्त अधिकार को पूरा किया गया है।

आठवें अधिकारमें प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगोंका प्रयोजन, स्वरूप, विवेचन शैली और उनमे होने वाली दोष कल्पनाओंका प्रतिषेध करते हुए अनुयोगोंकी सापेक्ष कथनशैली का समुल्लेख किया गया है। साथ ही आगमाभ्यास की प्रेरणा भी की गई है।

नवमें अधिकारमें मोक्षमार्गके स्वरूप का निर्देश करते हुए मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र इन तीनों में से मोक्षमार्ग के प्रथम कारण स्वरूप सम्यग्दर्शनका भी पूरा विवेचन नहीं

लिखा जा सका है। खेद है कि ग्रन्थ कर्ताकी अकाल मृत्यु हो जानेके कारण वे इस अधिकार एव ग्रन्थको पूरा करनेमें समर्थ नही हो सके हैं, यह हमारा दुर्भाग्य है। परन्तु इस अधिकार में जो भी कथन दिया हुआ है, वह बडा ही सरल और सुगम है। उसे हृदयगम करने पर सम्यग्दर्शनके विभिन्न लक्षणोंका सहज ही समन्वय हो जाता है और उसके भेदोंके स्वरूप का भी सामान्य परिचय मिल जाता है। इस तरह इस ग्रन्थमें चर्चित सभी विषय अथवा प्रमेय ग्रन्थकर्ताके विशाल अध्ययन, अनुपम प्रतिभा और सैद्धान्तिक अनुभवनका सफल परिणाम है और वह ग्रन्थ कर्ताकी आन्तरिक भद्रताकी महत्ताके सद्योतक हैं।

इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गम्भीर एवं दुरुह चर्चा को सरलसे सरल शब्दोंमें अनेक दृष्टान्त और युक्तियोंके द्वारा समझानेका प्रयत्न किया गया है और स्वयं ही प्रश्न उठाकर उनका मार्मिक उत्तर भी दिया गया है, जिसस अध्येताको फिर किसी सन्देहका भाजन नही बनना पडता।

जीवन परिचय

हिन्दी साहित्यके दिगम्बर जैन विद्वानोमें पडित टोडरमल-जीका नाम खासतौरसे उल्लेखनीय है। आप हिन्दीके गद्य लेखक विद्वानोमें प्रथमकोटिके विद्वान् हैं। विद्वत्ताके अनुरूप आपका स्वभाव भी विनम्र और दयालु था और स्वाभाविक कोमलता सदाचारिता आपके जीवन सहचर थे। अहकार तो आपको छूकर भी नही गया था। आन्तरिक भद्रता और वात्सल्यका परिचय आपकी सौम्य आकृतिको देखकर सहजही हो जाता था। आपका रहन-सहन बहुतही सादा था। आध्यात्मिकताका तो आपके जीवनके साथ घनिष्ट सम्बन्ध था। श्री कुन्दकुन्दादि महान् आचार्योंके आध्यात्मिक ग्रन्थोंके अध्ययन,

मनन एवं परिशीलनसे आपके जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा हुआ था। अध्यात्मकी चर्चा करते हुए आप आनन्द विभोर हो उठते थे और श्रोता-जन भी आपकी वाणीको सुनकर गदगद हो जाते थे। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंके आप अपने समयके अद्वितीय एवं सुयोग्य विद्वान् थे। आपका क्षयोपशम आश्चर्यकारी था और वस्तु तत्वके विश्लेषणमें आप बहुत दक्ष थे। आपका आचार एव व्यवहार विवेक युक्त और मृदु था।

यद्यपि पंडितजीने अपना और अपने माता पिता एवं कुटुम्बी-जनों का कोई परिचय नहीं दिया और न अपने लौकिक जीवन पर ही प्रकाश डाला है। फिर भी लब्धिसार ग्रन्थकी टीका-प्रशस्ति आदि सामग्री परसे उनके लौकिक और अध्यात्मिक जीवनका बहुत कुछ पता चल जाता है। प्रशस्तिके वे पद्य इस प्रकार हैं :—

"मैं हूं जीव-द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरचो, लग्यो है अनादितै कलक कर्ममलको। ताहीको निमित्त पाय रागादिक भाव भये, भयो है शरीरको मिलाप जैसे खलको। रागादिक भावनिको पायकैं निमित्त पुनि होत कर्मबन्ध ऐसो है बनाव कलको। ऐसें ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग बनैं तो बनैं यहाँ उपाव निज थलको ॥३६॥

दोहा—रम्भापति स्तुत गुन जनक, जाको जोगीदास।
सोई मेरो प्रान है, धारै प्रगट प्रकाश ॥३७॥
मैं आतम अरु पुद्गल खंध, मिलकैं भयो परस्पर बंध।
सो असमान जाति पर्याय, उपज्यो मानुष नाम कहाय ॥३८॥
मात गर्भमें सो पर्याय, करकै पूरण अंग सुभाय।
बाहर निकसि प्रगट जब भयो, तब कुटुम्बको भेलो भयो ॥३९॥
नाम धरचो तिन हर्षित होय, टोडरमल्ल कहैं सब कोय।
ऐसो यहु मानुष पर्याय, बधत भयो निज काल गमाय ॥४०॥
देश ढुंढाहड माँहि महान्, नगर सवाई जयपुर थान।

तामें ताको रहनो घनो, थोरो रहनो ओठें बनो ।।४१।।
तिस पर्याय विषै जो कोय, देखन जाननहारो सोय ।
मैं हूं जीव द्रव्य गुन भूप, एक अनादि अनन्त अरूप ।।४२।।
कर्म उदयको कारण पाय, रागादिक हो हैं दुखदाय ।
ते मेरे औपाधिकभाव, इनिकों विनशैं मैं शिवराय ।।४३।।
वचनादिक लिखनादिक क्रिया, वर्णादिक अरु इन्द्रिय हिया ।
ये सब हैं पुद्गल का खेल, इनिमें नांहि हमारो मेल ।।४४।।

इन पद्योंं परसे जहाँ पंडितजीके अध्यात्मिक जीवनकी झांकीका दिग्दर्शन होता है वहाँ यह भी ज्ञात होता है कि उनके लौकिक जीवनका नाम टोडरमल था। पिताका नाम जोगीदास था और माताका नाम रम्भा देवी था। दूसरे स्रोतोंसे यह भी स्पष्ट है कि आप खण्डेलवाल जातिके भूषण थे और आपका गोत्र 'गोदीका' था, जो भोंसा और बडजात्या नामक गोत्रका ही नामान्तर जान पड़ता है। तथा आपके वशज साहूकार कहलाते थे—साहूकारी ही आपके जीवन यापनका एक मात्र साधन था—और घर भी सम्पन्न था। इसीसे कोई आर्थिक कठिनाई नहीं थी।

आपके गुरुका नाम बन्शीधर[1] था, इन्हीसे पं० जी ने प्रारम्भिक

---

1 यह प० बन्शीधर वही जान पडते है जिनका उल्लेख ब्रह्मचारी राय-मल्लजीने अपनी जीवन परिचय पत्रिकामे तीस वर्षकी अवस्थाके लगभग किया है जब वे उदयपुरमे प० दौलतरामजीके पाससे जयपुर प० टोडरमलजी से मिलने आए थे और वे वहाँ नही मिले थे, प० बन्शीधर जी मिले थे यथा—

"पीछे केताइक दिन रहि प० टोडरमल्ल जयपुरके साहूकारका पुत्र ताकै विशेष ज्ञान जानि वासूं मिलनेके अर्थि जयपुर नगरी आये। सो एक बन्शीधर किंचित् संयमका धारक विशेष व्याकरणादि जैनमतके शास्त्रोंका पाठी, सो पचास लडका पुरुष बाया जासैं व्याकरण, छन्द, अलंकार, काव्य चरचा पढैं, तासूं मिले।" वीरवाणी वर्ष अंक २।

शिक्षा प्राप्त की थी। आप अपनी क्षयोपशमकी विशेषताके कारण पदार्थ और उसके अर्थका शीघ्र ही अवधारण कर लेते थे। फलतः कुशाग्र बुद्धि होनेसे थोडेही समयमें जैन सिद्धान्तके सिवाय व्याकरण, काव्य, छन्द, अलकार, कोष आदि विविध विषयोंमें दक्षता प्राप्त कर ली थी।

यहाँ यह बात भी ध्यान मे रखने लायक है कि पंडितजीके पूर्वज बीसपथ आम्नायके माननेवाले थे परन्तु पंडितजीने वस्तु स्वरूप और भट्टारकीय प्रवृत्तियोंका अवलोकन कर तेरह पन्थ का अनुसरण किया और उनकी शिथिलताको दूर करने का भी प्रयत्न किया। परन्तु जब उनमें सुधार होता न देखा किन्तु उलटा विकृत परिणमन एव कषाय की तीव्रता देखी, तब अपने परिणामोको समकरि तेरा पन्थ की शुद्ध प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन देते हुए जनता में सच्ची धार्मिक भावना एव स्वाध्यायके प्रचारको बढाया जिससे जनता जैनधर्मके मर्मको समझने में समर्थ हुई और फलतः अनेक सज्जन और स्त्रियां अध्यात्मिक चर्चा के साथ गोम्मटसारादि ग्रन्थों के जानकार बन गये। यह सब उनके और रायमलर्जाके प्रयत्नका ही फल था।

आप विवाहित थे और आपके दो पुत्र थे, जिनमें एकका नाम हरिचन्द और दूसरेका नाम गुमानीराम था। हरिचन्दकी अपेक्षा गुमानीरामका क्षयोपशम विशेष था और वह प्राय अपने पिताके समान ही प्रतिभा सम्पन्न था और इसलिये पिताके अध्ययन तथा तत्व चर्चादि कार्योमें यथायोग्य सहयोग भी देने लगा था।

गुमानीराम स्पष्ट वक्ता* थे और श्रोताजन उनसे खूब सन्तुष्ट

---

* "तथा तिनके पीछे टोडरमलजीके बड़े पुत्र हरिश्चन्द्रजी तिनतें छोटे गुमानीरामजी महाबुद्धिवान् वक्ताके लक्षणकू धारैं तिनके पास कितनेक रहस्य सुनिकर कुछ जानपना भया।"—सिद्धान्तसार टीका प्रशस्ति।

रहते थे। इन्होंने अपने पिताके स्वर्गगमनके दश बारह वर्ष बाद लगभग स० १८३७ में 'गुमान पन्थ' की स्थापना की थी[1]। गुमान-पन्थकी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य उस समयकी धार्मिक शिथिलता एव प्रमादको दूर करते हुए धार्मिक स्थानोंमें पवित्रता पूर्वक ८४ आसादनाओं को बचाते हुए धर्मसाधनकी प्रवृत्तिको सुलभ बनाना था। उस समय चूंकि भट्टारकोंका साम्राज्य था और जनता भोली-भाली थी, इसीसे उनमे जो अधिक शिथिलता आगई थी उसे दूर कर शुद्ध मार्ग की प्रवृत्तिके लिये उन्हें 'गुमान पन्थ' की स्थापनाका कार्य करना आवश्यक था और जिसका प्रचार शुद्धाम्नायके रूपमे आजभी मौजूद है और उससे उस शैथिल्यादिको दूर करनेमें बहुत कुछ सहायता मिली है। **जयपुरमें दीवान बधीचन्दके मन्दिरमें गुमान पन्थकी स्थापना** का कार्य सम्पन्न हुआ था। उसीमे उनको स्वहस्त लिखित ग्रन्थोंकी कुछ प्रतियाँ मोक्षमार्ग-प्रकाशक और गोम्मटसारादिकी मिली हैं। अस्तु —

क्षयोपशमकी विशेषता और काव्य-शक्ति

पडित टोडरमलजीके क्षयोपशमकी निर्मलताके सम्बन्धमे ब्रह्मचारी रायमलजीने स० १८२१ की चिट्ठीमे जो पक्तियाँ लिखी हैं वे खासतौरसे ध्यान देने योग्य हैं और वे इस प्रकार हैं.—

"मारां ही विषै भाईजी टोडरमलजीके ज्ञानका क्षयोपशम अलौकिक है जो गोम्मटसारादि ग्रन्थोंकी सम्पूर्ण लाख श्लोक टीका बनाई

---

1. श्वेताम्बरी मुनि शान्तिविजयजी अपनी मानव धर्म सहिता (शान्त सुधानिधि) नामक पुस्तक के पृष्ठ १९७ में लिखते हैं कि—"बीस पन्थ में से फूटकर सम्वत् १७२९ में ये अलग हुए। जयपुरके तेरापन्थियोमें से पं० टोडरमलके पुत्र गुमानीरामजीने सम्वत् १८३७ में गुमान पन्थ निकाला।"

श्रौर पाच सात ग्रन्थोंकी टीका बनायवेका उपाय है। सो श्रायु की अधिकता हुए बनेगी। अर धवल महाधवलादि ग्रन्थोंके खोलवाका उपाय किया वा उहाँ दक्षिण देससूं पाँच सात और ग्रन्थ ताडपत्रांविषै कर्णाटी लिपि में लिख्या इहाँ पधारे हैं। याकू मल्लजी बांचे हैं, वाका यथार्थ व्याख्यान करे हैं वा कर्णाटी लिपि मे लिखि ले हैं। इत्यादि न्याय व्याकरण गणित छन्द अलकारका याकै ज्ञान पाइए है। ऐसे पुरुष महत बुद्धिका धारक ई कालविषै होना दुर्लभ है तातै वासू मिले सर्व सन्देह दूरि होइ हैं।"

इससे पडित जी की प्रतिभा और विद्वत्ताका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। कर्नाटकी लिपिमें लिखना, अर्थ करना उस भाषा के परिज्ञानके बिना नही हो सकता।

आप केवल हिन्दी गद्य भाषाके ही लेखक नहीं थे, किन्तु आपमें पद्य रचना करनेकी क्षमता थी और हिन्दी भाषाके साथ सस्कृत भाषामें भी पद्य रचना अच्छी तरहसे कर सकते थे। गोम्मटसार ग्रन्थकी पूजा उन्होंने संस्कृतके पद्योंमें ही लिखी है जो मुद्रित हो चुकी है और देहलीके धर्मपुराके नये मन्दिरके शास्त्रभडारमें मौजूद है। इसके सिवाय सदृष्टि अधिकारका आदि अन्त मगल भी सस्कृत श्लोकोंमें दिया हुआ है और वह इस प्रकार है—

संदृष्टेर्लब्धिसारस्य क्षपणासारमीयुषः।
प्रकाशिनः पदं स्तौमि नेमिन्दोर्माधवप्रभोः।।

यह पद्य द्वयर्थक है। प्रथम अर्थमें क्षपणासारके साथ लब्धिसार की सदृष्टिको प्रकाश करने वाले माधवचन्द्रके गुरु आचार्य नेमिचन्द्र सैद्धान्तिकके चरणोंकी स्तुतिकी गई है और दूसरे अर्थमें करण लब्धि के परिणामरूप कर्मोंकी क्षपणाको प्राप्त और समीचीन दृष्टिके प्रकाशक नारायणके गुरु नेमिनाथ भगवान्के चरणोंकी स्तुतिका उपक्रम किया

गया है।

इसी तरह अन्तिम पद्य भी तीन अर्थोको लिए हुये है और उसमें शुद्धात्मा (अरहन्त), अनेकान्तवाणी और उत्तम साधुओंको सदृष्टिकी निर्विघ्न रचना के लिये नमस्कार किया गया है—वह पद्य इस प्रकार है —

शुद्धात्मनमनेकान्तं सानुमुत्तममंगलम् ।
वंदे संदृष्टिसिद्धयर्थ संदृष्टयर्थप्रकाशकम् ।।

हिन्दी भाषाके पद्योमे भी आपकी कवित्वशक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। पाठकोंकी जानकारीके लिये गोम्मटसारके मंगलाचरण का एक पद नीचे दिया जाता है जो चित्रालंकारके रहस्यको अच्छी तरहसे व्यक्त करता है। उस पद्यके प्रत्येक पदपर विशेष ध्यान देनेसे चित्रालंकारके साथ यमक, अनुप्रास और रूपक आदि अवकारोंके निदश भी निहित प्रतीत होते हैं। वह पद्य इस प्रकार है —

मैं नमों नगन जैन जन ज्ञान ध्यान धन लीन ।
मैनमान विन दानघन, एनहीन तन छीन ।।

इस पद्यमें बतलाया गया है कि मैं ज्ञान और ध्यानरूपी धनमे लीन रहनेवाले, काम और मान (घमड) से रहित मेघके समान धर्मोपदेशकी वृष्टि करनेवाले, पापरहित और क्षीण शरीर वाले उन नग्न जैन साधुओ को नमस्कार करता हूँ। यह पद्य गोमूत्रिका बधका उदाहरण है। इसमे ऊपरसे नीचेकी ओर क्रमश एक-एक अक्षर छोडनेसे पद्यकी ऊपरकी लाइन बन जाती है और इसी तरह नीचेसे ऊपरकी ओर एक-एक अक्षर छोड़नेसे नीचेकी लाइन भी बन जाती है। इस तरहसे चित्रबंध कविता दुरूह होनेके कारण पाठकोंकी उसमें शीघ्र गति नहीं होती किन्तु खूब सोचने विचारनेके बाद उन्हें कविताके रहस्यका पता चल पाता है।

ग्रन्थाभ्यास और शास्त्र प्रवचन

आपने अपने ग्रन्थाभ्यासके सम्बन्धमें 'मोक्षमार्गप्रकाशक' पृष्ठ १६-१७ में जो कुछ लिखा है वह इस प्रकार है :—

"बहुरि हम इस कालविषै यहाँ अब मनुष्य पर्याय पाया सो इस विषै हमारै पूर्व संस्कारतै वा भला होनहारतै जैनशास्त्रनिविषै अभ्यास करनेका उद्यम होता भया। तातै व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रन्थनिका किंचित् अभ्यास करि टीका सहित समयसार, पचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोम्मटसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्वार्थ सूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनि का आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुष्ठु कथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं तिनविषै हमारै बुद्धि अनुसारि अभ्यास वर्तै है।"

ऊपरके इस उल्लेख और मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थमें उद्धृत अनेक ग्रन्थोंके उदाहरणोंसे पंडितजीके विशाल अध्ययनका पद-पद पर अनुभव होता है।

पंडितजी गृहस्थ थे—घर में रहते थे परन्तु वे सांसारिक विषय-भोगोंमें आसक्त न होकर कमल-पत्रके समान अलिप्त थे और संवेग निर्वेद आदि गुणोंसे अलंकृत थे। अध्यात्म-ग्रन्थोंसे आत्मानुभवरूप सुधारसका पान करते हुए तृप्त नहीं होते थे। उनकी मधुर वाणी श्रोताजनोंको आकृष्ट करती थी और वे उनकी सरल वाणीको सुन परम सन्तोषका अनुभव करते थे। पंडित टोडरमलजीके घर पर विद्याभिलाषियोंका खासा जमघट सा लगा रहता था। विद्याभ्यास के लिये घर पर जो भी व्यक्ति आता था उसे आप बड़े प्रेमके साथ विद्याभ्यास कराते थे। इसके सिवाय तत्वचर्चाका तो वह केन्द्र ही

बन रहा था। वहाँ तत्वचर्चाके रसिक मुमुक्षुजन बराबर आते रहते थे और उन्हें आपके साथ विविध विषयों पर तत्वचर्चा करके तथा अपनी शंकाओंका समाधान सुनकर बड़ा ही सन्तोष होता था और इस तरह वे पंडितजीके प्रेममय विनम्र व्यवहार से प्रभावित हुए बिना नही रहते थे। आपके शास्त्र प्रवचनमे जयपुरके सभी प्रतिष्ठित चतुर और विशिष्ट श्रोताजन आते थे। उनमें दीवान रतनचन्दजी [1]

1. दीवान रतनचन्दजी और बालचन्दजी उस समय जयपुरके साधर्मियोमे प्रमुख थे। वे बडे ही धर्मात्मा और उदार सज्जन थे। रतनचन्दजीके लघुभ्राता वधीचन्दजी दीवान थे। दीवान रतनचन्दजी वि० स० १८२१ से पहले ही राजा माधवसिहजीके समयमे दीवान पद पर आसीन हुए थे और वि० स० १८२६ मे जयपुरके राजा पृथ्वीसिहके समयमे थे और उसके बाद भी कुछ समय रहे है। प० दौलतरामजी ने दीवान रतनचन्दजीकी प्रेरणासे वि० स० १८२७ मे प० टोडरमलजीकी पुरुषार्थसिद्धयुपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया था जैसा कि प्रशस्तिके निम्नवाक्योसे प्रगट है .—

साधर्मिनमें मुख्य है रतनचन्द दीवान।
पृथ्वीसिह नरेशको श्रद्धावान सुजान ॥६॥
तिनके अति रुचि धर्मसो साधर्मिनसो प्रीत।
देव-शास्त्र-गुरुकी सदा उरमे महा प्रतीत ॥७॥
आनन्द सुत तिनको सखा नाम जु दौलतराम।
भृत्य भूपको कुल वणिक जाके बसवे धाम ॥८॥
कछु इक गुरु-प्रतापते कीनो ग्रन्थ अभ्यास।
लगन लगी जिन धर्मसो जिन दासनकोदास ॥९॥
तासू रतन दीवानने कही प्रीति धर येह।
करिये टीका पूरण उर धर धर्म-सनेह ॥१०॥
तब टीका पूरी करी भाषारूप निधान।
कुशल होय चहुँ सगको लहै जीव निज ज्ञान ॥११॥

अजबरायजी, त्रिलोकचन्दजी पाटणी, महारामजी [1], त्रिलोकचन्दजी सोगानी, श्रीचन्दजी सोगानी और नेमचन्दजी पाटणीके नाम खास तौरसे उल्लेखनीय हैं। बसवा निवासी श्री प० देवीदासजी गोधाको भी आपके पास कुछ समय तक तत्व चर्चा सुननेका अवसर प्राप्त हुआ था [2]। उनका प्रवचन बडा ही मार्मिक और सरल होता था और उसमें श्रोताओंकी अच्छी उपस्थिति रहती थी।

समकालीन धार्मिक स्थिति और विद्वद्गोष्ठी

जयपुर राजस्थानमें प्रसिद्ध शहर है। उसे आमेरके राजा सवाई जयसिंहने स० १७८४ में बसाया था। टाड साहबने लिखा है कि उसके बसानेमें विद्याधर नामके एक जैन विद्वानने पूरा सहयोग दिया था। उस समय जयपुरकी जो स्थिति थी उसका उल्लेख बाल ब्रह्मचारी रायमलजीने सम्वत् १८२१ की चिट्ठीमें दिया है। उससे स्पष्ट है कि उस समय जयपुरकी ख्याति जैनपुरी के रूपमें हो रही थी, वहाँ जैनियोके सात आठ हजार घर थे; जैनियोंकी इतनी अधिक गृहसंख्या उस समय सम्भवतः अन्यत्र कहीं भी नहीं थी। इसीसे ब्रह्मचारी रायमलजीने उसे धर्मपुरी बतलाया है। वहाँ के अधिकांश जैन राज्यके उच्च पदोंपर आसीन थे और वे राज्यमें सर्वत्र शांति एवं व्यवस्थामें अपना पूरा-पूरा सहयोग देते थे। दीवान रतनचन्दजी

अट्ठारहमैं ऊपरै सवत सत्ताबीस।
मगशिर दिन शनिवार है सुदि दोयज रजनीस ॥ १२ ॥

1 महारामजी ओसवालजातिके उदासीन श्रावक थे। बडे ही बुद्धिमान थे और पं० टोडरमलजीके साथ चर्चा करनेमे विशेष रस लेते थे।

2. "सो दिल्ली सूँ पढकर बसुवा आय पीछें जयपुरमें थोड़े दिन टोडरमलजी महाबुद्धिमानके पास सुननेका निमित्त मिल्या, फिर बसुवा गये।"
—सिद्धान्तसारटीका प्रशस्ति

बालचन्दजी उनमें प्रमुख थे। उस समय माधवसिंहजी प्रथमका राज्य चल रहा था। वे बड़े प्रजावत्सल थे। राज्यमे सर्वत्र जीवहिंसाकी मनाई थी और वहाँ कलाल, कसाई और वेश्याएँ नही थी। जनता प्राय सप्तव्यसनसे रहित थी। जैनियोमें उस समय अपने धर्मके प्रति विशेष प्रेम और आकर्षण था और प्रत्येक साधर्मी भाईके प्रति वात्सल्य तथा उदारताका व्यवहार किया जाता था। जिन पूजन, शास्त्र स्वाध्याय, तत्वचर्चा, सामायिक और शास्त्रप्रवचनादि क्रियाओं में श्रद्धा-भक्ति और विनयका अपूर्व दृश्य देखनेमें आता था। कितने ही स्त्री-पुरुष गम्मटसारादि सिद्धातग्रन्थोकी तत्वचर्चासे परिचित हो गये थे। महिलाएँ भी धार्मिक क्रियाओके सद् अनुष्ठानमें यथेष्ट भाग लेने लगी थी। प० टोडरमलजीके शास्त्र प्रवचनमें श्रोताओंकी अच्छी उपस्थिति रहती थी और उनकी सख्या सातसौ आठसौसे अधिक हो जाया करती थी। उस समय जयपुरमे कई विद्वान थे और पठन-पाठनकी सब व्यवस्था सुयोग्य रीतिसे चल रही थी। आज भी जयपुरमें जैनियोकी सख्या कई सहस्र है और उनमें कितने ही राज्यके पदों पर प्रतिष्ठित हैं।

साम्प्रदायिक उपद्रव

जयपुर जैसे प्रसिद्ध नगरमें जैनियोके बढ़ते हुए प्रभुत्व एव वैभव को सम्प्रदाय-व्यामोहीजन असहिष्णुताकी दृष्टिसे देखते थे, उमसे ईर्षा तथा द्वेष रखते थे और उसे नीचा दिखाने अथवा प्रभुत्वको कम करनेकी चिन्तामें सलग्न रहते थे और उसके लिये तरह तरहके उपाय काममें लानेकी गुप्त योजनाए भी बनाई जाती थी। उनकी इस असहिष्णुताका कारण यह जान पडता है कि जैनियोके प्रसिद्ध विद्वान् पंडित टोडरमलजीसे शास्त्रार्थमें विजय पाना सम्भव नही था, क्योकि उनकी मार्मिक सरल एव युक्तिपूर्ण विवेचन शैलीका सब पर ही प्रभाव पडे बिना नही रहता था और जैनी उस समय धन, वैभव,

प्रतिष्ठा आदि सत्कार्योंमें सबसे आगे बढ़े हुए थे, राज्यमें भी उनका कम गौरव नहीं था और राज्य कार्यमें उनकी बहुमूल्य सेवाओंका मूल्य बराबर आँका जाता था। इन्ही सब बातोसे उनकी असहिष्णुता अपनी सीमाका उल्लघन कर चुकी थी।

सम्वत् १८१७ में श्याम नामका एक तिवारी ब्राह्मण तत्कालीन राजा माधवसिंहजी प्रथम पर अपना प्रभाव प्रदर्शित कर किसी तरह राजगुरुके पदपर आसीन हो गया और उसने अपनी वाचालतासे राजाको अपने वशमें कर लिया तथा अवसर देख सहसा ऐसी अंधेरगर्दी मचाई कि जिसकी स्वप्नमें भी कभी कल्पना नही की जा सकती थी। राज्यमें पाये जानेवाले लाखो रुपयेकी लागतके विशाल अनेक जिन मन्दिरोको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और उनमें शिवकी मूर्ति रखदी गई और जिनमूर्तियोंको खंडितकर यत्र-तत्र फिकवा दिया गया। यह सब उपद्रव रायमलजीके लिखे अनुसार डेढ़ वर्ष तक रहा। राजाको जब श्याम तिवारीकी अधेरगर्दीका पता चला तव उन्होने उसका गुरुपद खोसि (छीन) लिया और उसे देश निकाला दे दिया। उसने अपने अधम कृत्यका फल कुछ समय बाद ही पा लिया [1]।

---

1. सम्वत् अट्ठारहसे जब गए, ऊपर जबै अट्ठारह भये।
तब इक भयो तिवारी श्याम, डिभी अति पाखडको धाम॥
तुच्छ अधिक द्विज सबतै घाटि, दौरत हो साहनकी हाटि।
करि प्रयोग राजा बसि कियो, माधवेश नृप गुरु-पद दियो॥
दिन किलेक बीते है जबै, महा उपद्रव कीन्हो तबै।
हुक्म भूपको लेके वाह, निसि गिराय देवल दिय डाह॥
अमल राजाको जैती जहाँ, नाव न ले जिनमतको तहाँ।
कोऊ आधो कोऊ सारो, बच्यो जहाँ छत्री रखवारो॥
काहू में शिव-मूरति धरदी, ऐसै मची 'श्याम' की गरदी।

चुनांचे सम्वत् १८१९ में मंगसिर बदी दोयज के दिन जयपुर राज्यके ३३ परगनोंके नाम एक श्राम हुक्म जारी किया गया जिसमें जन-धर्मको प्राचीन और ज्योंका त्यों स्थापित करनेकी आज्ञा दी गई और तेरापन्थ बीसपन्थके मन्दिर बनवाने, उनकी पूजामें किसी प्रकार की रोकटोक न करनेका आदेश दिया गया और उनकी जायदाद वगैरह जो लूट पाटकर लेली गई थी उसे पुनः वापिस दिलानेकी भी आज्ञा दी गई। उस हुक्म नामेका जो सारा अश 'वीरवाणी' के टोडरमल अकमें प्रकाशित हुआ था, नीचे दिया जाता है :—

"सनद करार मिती मगसिर बदी २ स० १८१९ अप्रच हद सरकारीमें सरावगी वगैरह जैनधर्म साधवा वाला सूं धर्ममे चालवा को तकरार छो सो याको प्राचीन जान ज्यों को त्यों स्थापन करवो फरमायो छै सो माफिक हुक्म श्रीहजूरकै लिखा छै—बीस पन्थ तेरा पन्थ परगनामें देहरा बनाओ व देवगुरुशास्त्र आगे पूजै छा जी भांति पूजो—धर्ममें कोई तरह की अटकाव न राखो अर माल मालियत वगैरह देवराको जो ले गया होय सो ताकीद कर दिवाय दीज्यो—केसर वगैरहको आगे जहांसे पावे छा तिठा सूं भी दिवावो कीज्यो। मिति सदर"—वीर वाणी वर्ष १, अक १९ से २१।

उसके बाद जयपुर आदि स्थानोमें पुनः उत्साहसहित जिनमन्दिर और मूर्तियोंका निर्माण किया गया और अनेक प्रतिष्ठादि महोत्सव भी किये गये। इस तरह वहां पुनः जिनधर्मका उद्योत हुआ।

अकस्मात् कोप्यो नृप भारो, दियो दुपहरा देश निकारो।
दुपटा धोति धरे द्विज निकस्यो, तिय जुत पायन लखि जग विगस्यो।
सोरठा—किये पापके काम, खोसिलियो गुरु पद नृपति।
यथा नाम गुण श्याम, जीवत ही पाई कुगति॥
—बुद्धिविलास, आरा प्रति

इन्द्रध्वज पूजा महोत्सव

सम्वत् १८२१ में जयपुरमें बड़ी धूमधामसे इन्द्रध्वज पूजाका महान् उत्सव हुआ था। उस समयकी बाल ब्रह्मचारी रायमलजीकी लिखी हुई पत्रिकासे [1] ज्ञात होता है कि उसमें चौसठ गजका लम्बा चौड़ा एक चबूतरा बनाया गया था और उसपर एक डेरा लगाया गया था जिसके चार दरवाजे चारों तरफ बनाये गये। उसकी रचनामें बीस तीस मन कागजकी रद्दी, भोडल आदि पदार्थोंका उपयोग किया था। सब रचना त्रिलोकसारके अनुसार बनाई गई थी और इन्द्रध्वज पूजाका विधान संस्कृत भाषा पाठके अनुसार किया गया है और यह उस चिट्ठीमें अनेक ऐतिहासिक बातोका उल्लेख किया गया था। उस चिट्ठी में अनेक ऐतिहासिक बातों का उल्लेख किया गया है और यह चिट्ठी दिल्ली, आगरा, भिंड, कोरडा जहानाबाद, सिरोज, वासौदा, इन्दौर, औरंगाबाद, उदयपुर, नागौर, बीकानेर, जैसलमेर, मुलतान आदि भारतके विभिन्न स्थानोंको भेजी गई थी। इससे उसकी महत्ता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। राज्य की ओरसे सब प्रकारकी सुविधा प्राप्त थी। दरबारसे यह हुक्म आया था कि "पूजा जी के अर्थ जो वस्तु चाहिए सो ही दरबारसे ले जावो।" इस तरह की सुविधा वि० की १५वी १६वी शताब्दीमें ग्वालियरमें राजा डूंगरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंहके राज्य-कालमें जैनियोंको प्राप्त थी और उनके राज्यमें होनेवाले प्रतिष्ठा-महोत्सवोंमें राज्यकी ओरसे सब व्यवस्था की जाती थी।

रचनाएं और रचनाकाल

पं० टोडरमलजीकी कुल दश रचनाए हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ रहस्यपूर्ण चिट्ठी, २ गोम्मटसार जीवकांड टीका, ३ गोम्मटसार कर्मकाण्ड टीका, ४ लब्धिसार क्षपणासार टीका, ५ त्रिलोक-

1. देखो वीरवाणी वर्ष १ अंक ३

सार टीका, ६ आत्मानुशासन टीका, ७ पुरुषार्थसिद्धयुपायटीका, ८ अर्थसंदृष्टि अधिकार, ९ मोक्षमार्ग प्रकाशक और १० गोम्मटसारपूजा।

इनमें आपकी सबसे पुरानी रचना रहस्यपूर्ण चिट्ठी है जो कि विक्रम सम्वत् १८११ की फाल्गुणवदि पचमीको मुलतानके अध्यात्म-रसके रोचक खानचन्दजी, गगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथजी आदि अन्य साधर्मी भाइयोंको उनके प्रश्नोंके उत्तररूपमें लिखी गई थी। यह चिट्ठी अध्यात्मरसके अनुभवके ओत-प्रोत है। इसमें अध्यात्मिक प्रश्नो का उत्तर कितने सरल एव स्पष्ट शब्दोंमें विनयके साथ दिया गया है। चिट्ठीगत शिष्टाचार-सूचक निम्न वाक्य तो पडितजीकी आन्तरिक भद्रता तथा वात्सल्यताका खासतौरसे द्योतक है –

"तुम्हारे चिदानन्दघनके अनुभवसे सहजानन्दकी वृद्धि च हिये"

गोम्मटसारादिकी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका

गोम्मटसार जीवकाड, कर्मकांड, लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार इन मूल ग्रन्थोके रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धाँतचक्र वर्ती हैं, जो वीरनन्दि इन्द्रनन्दिके वत्स तथा अभयनन्दिके शिष्य थे और जिनका समय विक्रमकी ११ वी शताब्दी है।

गोम्मटसार ग्रन्थपर अनेक टीकाए रची गई है किन्तु वर्तमानमे उपलब्ध टीकाओंमे मदप्रबाधिका सबसे प्राचोन टीका है जिसके कर्ता अभयचन्द सैद्धान्तिक[1] हैं। इस टीकाके आधारसे ही केशववर्णीने, जो अभयसूरिके शिष्य थे, कर्नाटक भाषामे 'जीवतत्व-

1. अभयचन्द्रकी यह टीका अपूर्ण है और जीवकाण्डकी ३८३ गाथा तक ही पाई जाती है। इसमें ८३ न० गाथाकी टीका करते हुए एक 'गोम्मटसार पंजिका' टीकाका उल्लेख निम्न शब्दोमे किया गया है। "अथवा सम्मूर्छनगर्भोपपाताश्रित्य जन्म भवतीति गोम्मटसारपंजिकाकारादीनामभिप्रायः।"

प्रबोधिका' नामकी टीका भट्टारक धर्मभूषणके आदेशसे शक सं० १२८१ वि० सं० १४१६ में बनाई है। यह टीका कोल्हापुरके शास्त्रभंडारमें सुरक्षित है और अभी तक अप्रकाशित है। मन्दप्रबोधिका और केशववर्णीकी उक्त कनडी टीकाका आश्रय लेकर भट्टारक नेमिचन्द्रने अपनी संस्कृत टीका बनाई और उसका नाम भी कनड़ी टीकाकी तरह 'जीवतत्वप्रबोधिका' रक्खा गया है। यह टीकाकार नेमिचन्द्र मूल संघ शारदागच्छ बलात्कारगणके विद्वान् थे। भट्टारक ज्ञानभूषण का समय विक्रमकी १६वी शताब्दी है; क्योकि इन्होंने वि० स० १५६० मे 'तत्वज्ञानतरङ्गिणी' नामक ग्रन्थको रचना की है। अत: टीकाकार नेमिचन्द्रका भी समय वि० की १६वी शताब्दी है। इनकी 'जीव तत्वप्रबोधिका' टीका मल्लिभूपाल अथवा सालुवमल्लिराय नामक राजाके समयमे लिखी गई है और जिनका समय डा० ए० एन० उपाध्येने ईसाकी १६वी शताब्दीका प्रथम चरण निश्चय किया है[1]। इससे भी इस टीका और टीकाकारका उक्त समय अर्थात् ईसाकी १६वी शताब्दीका प्रथम चरण व विक्रमकी १६वी शताब्दीका उत्तरार्ध सिद्ध है।

आचार्य नेमिचन्द्रको इस संस्कृत टीकाके आधारसे ही प० टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञान बनाई चन्द्रिका है। उन्होंने इस संस्कृत टीकाको केशववर्णीकी टीका समझ लिया है जैसा कि जीवकाण्डटीका प्रशस्ति के निम्न पद्यसे प्रगट है —

केशववर्णी भव्य विचार, कर्णाटक टीका अनुसार।
संस्कृतटीका कीनी एहु, जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु ॥

पंडितजीकी इस भाषाटीकाका नाम 'सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका' है जो उक्त संस्कृत टीकाका अनुवाद होते हुए भी उसके प्रमेयका विशद

1. देखो अनेकान्त वर्ष ४ किरण १

विवेचन करती है। पंडित टोडरमलजीने गोम्मटसार—जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड, लब्धिसार—क्षपणासार, त्रिलोकसार इन चारों ग्रन्थोंकी टीकाएं यद्यपि भिन्न-भिन्न रूपसे की हैं किन्तु उनमें परस्पर सम्बन्ध देखकर उक्त चारों ग्रन्थोंकी टीकाओंको एक करके उसका नाम 'सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका' रक्खा है जैसा कि पंडितजीकी लब्धिसार भाषा टीका प्रशस्तिके निम्नपद्यसे स्पष्ट है —

"या विधि गोम्मटसार लब्धिसार ग्रन्थनि की,
भिन्न भिन्न भाषाटीका कीनी अर्थ गायकें।
इनिकैं परस्पर सहायकपनौ देख्यौ।
तातें एक करि दई हम तिनिको मिलायकें ॥

सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका धरयो है याका नाम।
सो ही होत है सफल ज्ञानानन्द उपजायकें।
कलिकाल रजनीमें अर्थको प्रकाश करे।
यातें निज काज कीनें इष्ट भावभायकें ॥३०॥

इस टीकामें उन्होंने आगमानुसार ही अर्थ प्रतिपादन किया है और अपनी ओरसे कषायवश कुछ भी नहीं लिखा, यथा —

आज्ञा अनुसारी भये अर्थ लिखे या माँहि।
धरि कषाय करि कल्पना हम कछु कीनों नाँहि ॥३३॥

टीकाप्रेरक श्रीराममलजी और उनकी पत्रिका :—

इस टीकाकी रचना अपने समकालीन रायमल नामके एक साधर्मी श्रावकोत्तमकी प्रेरणासे की गई है जो विवेकपूर्वक धर्मका साधन करते थे[1]। रायमलजीने अपना कुछ जीवन परिचय एक पत्रिकामें स्वय लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि उन्होंने २२ वर्षकी अवस्थामें

1. रायमल्ल साधर्मी एक, धर्मसधैया सहित विवेक।
सो नाना विध प्रेरक भयो, तब यह उत्तम कारज थयो।

साहिपुराके नीलापति साहूकारके सहयोग से जो देव-शास्त्र-गुरुका श्रद्धालु और अध्यात्म ग्रन्थोंका पाठी था, षट् द्रव्य, नव पदार्थ, गुणस्थान, मार्गणा, बंध, उदय और सत्ता आदिकी तत्वचर्चाका मर्मज्ञ था, जिसके तीन पुत्र थे जो जैनधर्मके श्रद्धालु थे; उससे वस्तुके स्वरूपको जानकर उन्होंने तीन चीजोंका त्याग जीवन पर्यन्तके लिये कर दिया—सर्वहरितकायका, रात्रीभोजनका और जीवन पर्यन्तके लिये विवाह करनेका। इसके बाद विशेष जिज्ञासु बनकर वस्तु तत्व का समीक्षण बराबर करते रहे। रायमलजी बाल ब्रह्मचारी थे और एक देश संयमके धारक थे। जैन धर्मके महान श्रद्धानी थे और उसके प्रचारमें सलग्न रहते थ, साथ ही बडे ही उदार और सरल थे। उनके आचारमें विवेक और विनयकी पुट थी। वे अध्यात्म शास्त्रोंके विशेष प्रमी थे और विद्वानोंसे तत्वचर्चा करनेमें वड़ा रस लेते थे। पं० टोडरमलजीकी तत्व-चर्चासे बहुतही प्रभावित थे। इनकी इस समय दो कृतियाँ उपलब्ध हैं—एक कृति ज्ञानानन्द निर्भर निजरस श्रावकाचार दूसरी कृति चर्चासग्रह है जो महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक चर्चाओंको लिए हुए है। इनके सिवाय दो पत्रिकायें भी प्राप्त हुई हैं जो 'वीर वाणी' में प्रकाशित हो चुकी हैं[1]। उनमेंसे प्रथम पत्रिकामें अपने जीवनकी प्रारम्भिक घटनाओंका समुल्लेख करते हुए पंडित टोडरमलजीसे गोम्मटसारकी टीका बनानेकी प्रेरणा की गई है और वह सिघाणा नगरमें कब और कैसे बनी इसका पूरा विवरण दिया गया है। पत्रिकाका वह अश इस प्रकार है :—

"पीछे सेखावटी विषै सिंघाणा नग्र तहाँ टोडरमलजी एक दिलो (दिल्ली) का बड़ा साहूकार साधर्मी ताके समीप कर्म (कार्य) के अर्थि वहाँ रहै, तहाँ हम गए और टोडरमलजी मिले, नाना प्रकारके प्रश्न किये ताका उत्तर एक गोम्मटसार नाम ग्रन्थकी साखिसूं देते गए।

1. देखो वीरवाणी वर्ष १ अंक २, ३।

सो ग्रन्थकी महिमा हम पूर्वं सुनी थी तासूं विशेष देखी अर टोडरमल जीका (के) ज्ञानकी महिमा अद्‌भुत दखी, पीछे उनसू हम कही— तुम्हारे या ग्रन्थका परिचै (परिचय) निर्मल भया है, तुमकरि याकी भाषा टीका होय तो घणा जीवोंका कल्याण होय अर जिनधर्मका उद्योत होइ। अब हो (इस) कालके दोषकरि जीवोंकी बुद्धि तुच्छ रही है तो आगे यातैं भी अल्प रहेगी। तातैं ऐसा महान् ग्रन्थ प्राकृत ताकी मूलगाथा पन्द्रहसै १५००[1] ताकी मस्कृत टीका अठारह हजार १८००० ताविषैं अलौकिक चर्चाका समूह सदृष्टि वा गणित शास्त्रोंकी आम्नाय सयुक्त लिख्या है ताका भाव भासना महा कठिन है। अर याके ज्ञानकी प्रवर्ती पूर्वे दीर्घकाल पर्यन्त लगाय अब ताई नाही तो आगे भी याकी प्रवर्ती कैसे रहेगी ? तातैं तुम या ग्रन्थकी टीका करनेका उपाय शीघ्र करो, आयुका भरोसा है नाही। पीछे ऐसे हमारे प्रेरकपणाको निमित्त करि इनके टीका करनेका अनुराग भया। पूर्वे भी याकी टीका करने का इनका मनोरथ था ही, पीछें हमारे कहनेकरि विशेष मनोरथ भया, तब शुभ दिन मुहूर्तविषै टीका करनेका प्रारम्भ सिघाणा नग्रविषैं भया। सो वे तो टीका बनावते गए हम बाचते गए। बरस तीनमें गोम्मटसारग्रन्थकी अडतीस हजार ३८०००, लब्धिसार—क्षपणासार ग्रन्थकी तेरहहजार १३००० त्रिलोकसार ग्रन्थकी चौदहहजार १४००० सब मिलि च्यारि ग्रन्थोंकी पैंसठ हजार टीका भई। पीछें सवाई जयपुर आये तहाँ गोम्मटसारादि च्यारो ग्रन्थोकूं सोधि याकी बहुत प्रति उतरवाईं। जहाँ शैली थी तहाँ सुधाइ-सुधाइ पधराई। ऐसे इन ग्रन्थोका अवतार भया।"

इस पत्रिकागत विवरण परसे यह स्पष्ट है कि उक्त सम्यग्ज्ञान

[1] रायमलजी गोम्मटसार की मूल गाथा सख्या पन्द्रहसौ १५०० बतलाई है जब कि उसकी संख्या सत्तरहसौ पाँच १७०५ है, गोम्मटसार कर्म काण्डकी ९७२ और जीवकाण्डकी ७३३ गाथासंख्या मुद्रित प्रतियो मे पाई जाती है।

चन्द्रिकाटीका तीन वर्षमे बनकर समाप्त हुई थी जिसकी श्लोक संख्या पेंसठ हजार के करीब है और सशोधनादि तथा अन्य प्रतियोके उतरवानेमें प्रायः उतना ही समय लगा होगा। इसीसे यह टीका स० १८१८ में समाप्त हुई है। इस टोकाके पूर्ण होने पर पण्डितजी बहुत आल्हादित हुए और उन्होने अपनेको कृतकृत्य समझा। साथ साथ ही अन्तिम मङ्गलके रूपमें पचपरमेष्ठीकी स्तुति की और उन जैसी अपनी दशाके होनेकी अभिलाषा भी व्यक्त की। यथा :—

आरम्भो पूरण भयो शास्त्र सुखद प्रासाद।
अब भये हम कृतकृत्य उर पायो अति आह्लाद॥
अरहन्त सिद्ध सूर उपाध्याय साधु सर्व,
अर्थके प्रकाशी मांगलीक उपकारी हैं।
तिनको स्वरूप जानि रागतै भई जो भक्ति,
कायकों नमाय स्तुतिकों उचारी है॥
धन्य धन्य तुमही से काज सब आज भयो,
कर जोरि बारम्बार बन्दना हमारी है।
मंगल कल्याण सुख ऐसो हम चाहत हैं,
होहु मेरी ऐसी दशा जैसी तुम धारी है॥

यही भाव लब्धिसारटीका प्रशस्तिमें गद्यरूप में प्रगट किया है [1]।

लब्धिसार की यह टीका वि० स० १८१८ माघशुक्ला पचमी के दिन पूर्ण हुई है, जैसा कि उसके प्रशस्ति पद्यसे स्पष्ट है :—

संवत्सर अष्टादशयुक्त, अष्टादशशत लौकिकयुक्त।
माघशुक्लापचमिदिन होत, भयो ग्रन्थ पूरन उद्योत॥

---

1. "प्रारब्ध कार्यकी सिद्धि होने करि हम आपको कृतकृत्य मानि इस कार्य करनेकी आकुलता रहित होइ सुखी भये। याके प्रसादते सर्व आकुलता दूरि होइ हमारै शीघ्र ही स्वात्मज सिद्धि-जनित परमानन्दकी प्राप्ति होउ।"

—लब्धिसारटीका प्रशस्ति

लब्धिसार—क्षपणासारकी इस टीकाके अन्तमें अर्थसंदृष्टि नामका एक अधिकार भी साथमें दिया हुआ है, जिसमें उक्त ग्रन्थमें आनेवाली अकसंदृष्टियो और उनकी सञ्ज्ञाओ तथा अलौकिक गणितके करणसूत्रों का विवेचन किया गया है। यह सदृष्टि अधिकार से भिन्न है। जिसमें गोम्मटसार—जीवकाण्ड, कर्मकाण्डकी संस्कृतटीकागत अलौकिक गणितके उदाहरणों, करणसूत्रो, सख्यात असख्यात और अनन्तकी सञ्ज्ञाओं और अकसदृष्टियोंका विवेचन स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें किया गया है और जो 'अर्थसदृष्टि' के सार्थक नामसे प्रसिद्ध है। यद्यपि टीका ग्रन्थोंके आदिमें पाई जाने वाली पीठिकामें ग्रन्थगत संज्ञाओं एवं विशेषताका दिग्दर्शन करा दिया है जिससे पाठक जन उस ग्रन्थ के विषयसे परिचित हो सकें। फिर भी उनका स्पष्टिकरण करनेके लिये उक्त अधिकारोंकी रचनाकी गई है। इसका पर्यालोचन करनेसे सदृष्टि-विषयक सभी बातोंका बोध हो जाता है। हिन्दी भाषाके अभ्यासी स्वाध्याय प्रेमी सज्जन भी इनसे बराबर लाभ उठाते रहे हैं। आपकी इन टीकाओसे ही दिगम्बर समाजमें कर्मसिद्धान्तके पठन पाठनका प्रचार बढा है और इनके स्वाध्यायी सज्जन कर्मसिद्धान्तसे अच्छे परिचित देखे जाते हैं। इस सबका श्रेय प० टोडरमलजीको ही प्राप्त है।

त्रिलोकसार टीका----

त्रिलोकसार टीका यद्यपि स० १८२१ से पूर्व बन चुकी थी परन्तु उसका संशोधनादि कार्य बादको हुआ है और पीठबन्ध वगैरह बादको लिखे गये हैं। मल्लजीने इस टीकाका दूसरा कोई नाम नही दिया। इससे यह मालूम होता है कि उसे भी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीकाके अन्तर्गत समझा जाय।

मोक्षमार्ग प्रकाशक----

इस ग्रन्थका परिचय पहले दिया जा चुका है और इसकी रचना

का प्रारम्भ समय भी सम्वत् १८२१ के पूर्वका है। भले ही बाद में उसका संशोधन परिवर्धन हुआ हो।

पुरुषार्थसिद्धयुपाय टीका----

यह उनकी अंतिम कृति जान पडती है। यही कारण है कि यह अपूर्ण रह गई है। यदि आयुवश वे जीवित रहते तो वे उसे अवश्य पूरी करते। बादकी यह टीका श्री रतनचन्दजी दीवानकी प्रेरणासे पडित दौलतरामजीने सं० १८२७ में पूरी की है परन्तु उनसे उसका वैसा निर्वाह नहीं हो सका है। फिर भी उसका अधूरापन तो दूर हो ही गया है।

उक्त कृतियोंका रचनाकाल स० १८११ से १८१८ तक तो निश्चित ही है। फिर इसके बाद और कितने समय तक चला, यद्यपि यह अनिश्चित है, परन्तु फिर भी स० १८२४ के पूर्व तक उसकी सीमा जरूर है। प० टोडरमलजीकी ये सब रचनाए जयपुर नरेश माधवसिंहजी प्रथमके राज्यकालमें रची गई हैं। जयपुर नरेश माधवसिंहजी प्रथमका राज्य वि० स० १८११ से १८२४ तक निश्चित माना जाता है[1]। प० दौलतरामजीने जब स० १८२७ में पुरुषार्थसिद्धयुपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया तब जयपुरमें राजा पृथ्वीसिंहका राज्य था। अतएव सवत् १८२७ से पहले ही माधवसिंहका राज्य करना सुनिश्चित है।

गोम्मटसार पूजा--

यह सस्कृत भाषामें पद्यबद्ध रची हुई छोटी सी पूजाकी पुस्तक है। जिसमें गोम्मटसारके गुणोंकी महत्ता व्यक्त करते हुए उसके प्रति अपनी भक्ति एव श्रद्धा व्यक्त की गई है।

1. देखो 'भारतके प्राचीन राजवश' भाग ३ पृ० २३६, २४०।

मृत्युकी दुखद घटना--

पंडितजीकी मृत्यु कब और कैसे हुई ? यह विषय अर्सेसे एक पहेली सा बना हुआ है। जैन समाजमे इस सम्बन्धमे कई प्रकारकी किवदन्तियाँ प्रचलित हैं, परन्तु उनमें हाथीके पैर तले दबवाकर मरवानेकी घटना का बहुत प्रचार है। यह घटनाः कोरी कल्पना ही नही है, किन्तु उसमें उनकी मृत्युका रहस्य निहित है। पहले मेरी यह धारणा थी कि इस प्रकार अकल्पित घटना प० टोडरमलजी जैसे महान् विद्वानके साथ नहीं घट सकती। परन्तु बहुत कुछ अन्वेषण तथा उसपर काफी विचार करनेके बाद मेरी धारणा अब दृढ़ हो गई है कि उपरोक्त किवदन्ती असत्य नहीं है किन्तु वह किसी तथ्यको लिए हुए अवश्य है। जब हम उसपर गहरा विचार करते हैं और पंडितजीके व्यक्तित्व तथा उनकी सीधी सादी भद्र परिणतिकी ओर ध्यान देते हैं; जो कभी स्वप्नमें भी पीड़ा देनेका भाव नही रखते थे, तब उनके प्रति विद्वेषवश अथवा उनके प्रभाव तथा व्यक्तित्व के साथ घोर ईर्षा रखने वाले जैनेतर व्यक्तिके द्वारा साम्प्रदायिक व्यामोहवश सुझाये गये अकल्पित एवं अशक्य अपराधके द्वारा अन्ध श्रद्धावश विना किसी निर्णयके यदि राजाका कोप सहसा उमड पड़ा हो और राजाने पडितजीके लिये बिना किसी अपराधके भी उक्त प्रकारसे मृत्युदण्ड का फतवा दे दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नही; क्योंकि जब हम उस समय की भारतीय रियासती परिस्थितियों पर ध्यान देते हैं तो उस समयके भारतीय नरेशों द्वारा अन्धश्रद्धावश किये गये अन्याय-अत्याचारोका अवलोकन होता है तब उससे हमें आश्चर्यको कोई स्थान नही रहता। यही कारण है कि उस समय के विद्वानोंने राज्यके भयसे उनकी मृत्यु आदिके सम्बन्धमें स्पष्ट कुछ भी नही लिखा और उस समय जो कुछ लिखा हुआ प्राप्त हो सका उसे नीचे दिया जाता है। क्योंकि उस समय सर्वत्र रियासतो

में खासतौरसे मृत्युभय और धनादिके अपहरणकी सहस्रों घटनाएँ घटती रहती थीं और उनसे प्रजामें घोर आतंक बना रहता था। हाँ आज परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं और अब प्रायः इस प्रकारकी घटनाएँ कहीं सुनने में नही आती।

पडित टोडरमलजीकी मृत्युके सम्बन्धमें एक दुखद घटनाका उल्लेख प० बखतराम शाहके 'बुद्धि विलास' में पाया जाता है और वह इस प्रकार है :—

> "तब ब्राह्मणनु मतो यह कियो, शिव उठानको टौना दियो।
> तामै सबै श्रावगी कैद, करिके दड किये नृप फैद॥
> गुरु तेरह-पंथिनुको भ्रमी, टोडरमल्ल नाम साहिमी।
> ताहि भूप मारयो पल मांहि, गाड्यो मद्धि गंदगी ताहि॥
>
> —आरा भवन प्रति

इसमें स्पष्ट रूपसे यह बतलाया गया है कि स० १८१८ के बाद जब जयपुरमें जैनधर्मका पुन विशेष उद्योत होने लगा, तब यह सब कार्य सम्प्रदाय विद्वेषी ब्राह्मणोंको सह्य नही हुआ और उन्होंने मिल कर एक गुप्त 'षडयत्र' रचा—जिसमें ऐसी कोई असह्य घटना घटा कर जैनियोंपर उसका आरोप किया जा सके और इच्छित कार्यकी पूर्ति हो सके। तब सबने एक स्वरसे शिवपिडीको उखड़वानेकी बात स्वीकार की और उसका अपराध जैनियो पर बिना किसी जाँचके लगाये जानेका निश्चय किया गया। अनन्तर तदनुसार घटना घटवा और राजाको जैनियोकी ओर से विद्वेषकी तरह तरहकी बातें सुनाकर राजाको भड़काया और क्रोध उपजाया गया। इधर जैनियोंने किसी धर्मके सम्बन्धमें कभी ऐसे विद्वेषकी घटनाको जन्म नही दिया और न उसमें भाग ही लिया, हाँ अपने पर घटाई जानेवाली असह्य घटनाओं को विषके घूंटसमान चुपचाप सहा। इतिहास इसका साक्षी है। चुनांचे राजाने घटना सुनते ही बिना किसी जांच पडतालके क्रोधवश

सब जैनियोंको रात्रिमें ही कैद करने और उनके प्रसिद्ध विद्वान पंडित टोडरमलजीको पकड़कर मरवा डालनेका हुक्म दे दिया। हुक्म होते ही उन्हें हाथीके पग तले दाब कर मरवा दिया और उनके शव को शहर की गन्दगीमें गडवाया गया।

सुना जाता है कि जब पंडितजीको हाथीके पग तले डाला गया और हाथी को अकुश ताडनाके साथ उनके शरीरपर चढने के लिये प्रेरित किया गया तब हाथी एकदम चिघाडके साथ उन्हें देखकर सहम गया और अंकुशके दो वार भी सह चुका पर अपने प्रहारको करनेमें अक्षम रहा और तीसरा अकुश पडना ही चाहता था कि पडित जीने हाथीकी दशा देखकर कहा कि हे गजेन्द्र! तेरा कोई अपराध नही; जब प्रजाके रक्षकने ही अपराधी निरपराधीकी जाँच नही की और मरवानेका हुक्म दे दिया तब तू क्यों व्यर्थ अंकुशका वार सह रहा है, संकोच छोड और अपना कार्य कर। इन वाक्योंको सुनकर हाथीने अपना कार्य किया।

ऐसे असह्य घटनाके आरोपका सकेत केशरीसिह पाटणी सागाकौंके एक पुराने गुटकेमें भी पाया जाता है—

"मिति कार्तिक सुदी ५ ने (को) महादेवकी पिडि सहैरमाही कछु अमारगी उपाडि नाखि तीह परि राजा दोष करि सुरावग धरम्या परि दड नाख्यौ।"—वीर वाणी वर्ष १ पृष्ठ २८५।

इन सब उल्लेखोसे सम्प्रदाय व्यामोही जनोकी विद्वेषपूर्ण परिस्थितिका अवलोकन करते हुए उक्त घटनाको किसी भी तरह असम्भव नही कहा जा सकता। इस घटनासे जैनियोके हृदयमे जो पीडा हुई उसका दिग्दर्शन कराकर मैं पाठकोको दुःखी नही करना चाहता पर यह निसकोच रूपसे कहा जा सकता है कि मल्लजीके इस विद्वेषवश होने वाले बलिदानको कोई भी जैन अपने जीवनमें नही भुला सकता। अस्तु—

राजा माधवसिंहजी प्रथमको जब इस षडयंत्रके रहस्यका ठीक पता चला तब वे बहुत दुःखी हुए और अपने कृत्यपर बहुत पछताये। पर 'अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत' इसी नीतिके अनुसार अकल्पित कार्य होनेपर फिर केवल पछतावा ही रह जाता है। बादमे जैनियोंके साथ वही पूर्ववत् व्यवहार हो गया।

अब प्रश्न केवल समयका रह जाता है कि उक्त घटना कब घटी ? यद्यपि इस सम्बन्धमें इतना ही कहा जा सकता है कि सं० १८२१ और १८२४ के मध्यमें माधवसिंहजी प्रथमके राज्य कालमें किसी समय घटी है परन्तु उसकी अधिकांश सम्भावना स० १८२४ मे जान पड़ती है। चूं कि प० देवीदासजी जयपुरसे बसवा गए और उससे वापिस लौटने पर पुनः प० टोडरमलजी नही मिले, तब उन्होंने उनके लघुपुत्र पडित गुमानीरामजीके पास ही तत्वचर्चा सुनकर कुछ ज्ञान प्राप्त किया। यह उल्लेख स० १८२४ के बादका है और उसके अनन्तर देवीदास जी जयपुरमें स० १८३८ तक रहे हैं।

परमानन्द जैन शास्त्री

विषय-सूची

प्रथम अधिकार

दूसरा अधिकार

तीसरा अधिकार

चौथा अधिकार

पांचवाँ अधिकार

छठा अधिकार

सातवाँ अधिकार

आठवाँ अधिकार

नवमा अधिकार

मोक्षमार्ग-प्रकाशकमें उद्धृत पद्यानुक्रम

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	मंगलाचरण के ऊपर	—	अथ मोक्ष मार्ग प्रकाशक नामा शास्त्र लिख्यते :-
४	१७	रह्या ही	ही रह्या
६	१२	विशेषता करि	विशेषता होने करि
६	१३	भाव	—
८	८	तथा	तथापि
८	१६	अनुसरि	अनुसारि
९	१९	लिये	लिये ही
९	१९	भाव	— —
१०	८	सिद्धी	सिद्धी ऐसै
१०	२२	किख्रू	किछु
११	२	किछ	किछु
११	१८	समाप्ति	समाप्तता
१२	७	कहै	कहै है
१२	१७	होने	—
१२	१७	तैसै ही	तैसै
१२	२२	ही	ही का
१४	१	सो	सो मैं
१५	१६	गए	भए
१८	६	पाइए है,	पाइए है, और किछु प्रयोजन ही नाही। बहुरि श्रद्धानी गृहस्थ भी कोई ग्रंथ बनावै है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	८	जीवादिक	जीव अजीवादिक
२०	१४	हवयणं	पवयण
२३	४	परन्तु	पर
२५	४	तातै	तातै तू
२५	८	महा	महान
२७	८	कार्य	विशेष कार्य
२७	८	वृत्ति	प्रवृत्ति
२७	६	सहज	पद्धति बुद्धि करि वा सहज
२६	५	पूर्व ग्रन्थ	ग्रन्थ पूर्व
३६	१५	णया	पाया
३६	१८	सहकारण	सहकार
३७	५	तब	तो
३७	१५	बुद्धितै	बुद्धितै जोरावरी करी जुदे किए नाही, दिवस विषै काहूने करुणा बुद्धितै
४०	१	शुभोपयोग	शुभयोग
४०	२०	घना	घना वा
४१	६	बहुरि	बहुरि जो
४१	६	है ता विषै	है अर ता विषै
४६	५	सुखी	जीव सुखी,
४६	७	रूा	रूप
४७	१६	श्रुत ज्ञान	श्रुत ज्ञान अर कदचित् अवधिज्ञान पाइये है

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध
५०	१४	भया	—
५२	३	भी	—
५३	७	ही	—
५४	२	ऐसैं	ऐसैं होते
५४	१२	आये	आडे आये
५५	६	ही	हो
५५	१७	अपने	ही अपने
५६	५	होना	—
५६	२१	कार्य	नीचा कार्य
५७	४	अवस्था अनेक प्रकार	अनेक अवस्था
५७	१४	कषाय	कषाय का
६०	११	ही	—
६१	२०	ही	हो
६२	८	पर्याय पर्याय मात्र	पाया पर्याय मात्र ही
६४	२	आदि	—
६४	२	होय	क्रिया होय
६४	८	निमित्तत तिनकरि	उदय करि
६५	१०	संसार	—
६६	१८	मिथ्यात्व का प्रभाव (हैडिंग)	—
६७	७	मानि, तातें	मानिता तें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६७	६	मोह जनित विषयाभिलाषा (हैडिंग)	—
६७	११	विषै इन	विषयनि
६८	२२	कहा करै	करै कहा
६९	८	दुःख निवृत्ति	ज्ञान दर्शनावरण के उदय से भया
		का उपाय	दुःख और उस की निवृत्ति के उपाय का झूठापणा
७०	१	बहुत बहुत	बहुत
७१	१०	वाका सग्रह	वाका ग्रहण
७२	७	जो	याका अर्थ —जो
७२	१०	दुःख निवृत्ति का साचा उपाय (हैडिंग)	—
७३	३	निवृत्ति	निवृत्ति के उपाय का झूठापणा
७३	७	एक	—वस्त्र को एक
७३	१२	वह	यह
७३	१३	सो	वह
७३	१५	जानै	मानै
७३	२२	अवस्था रू	अवस्था रूप
७४	८	प्रकार	प्रकार करि
७५	२	भया	भया था
७५	६	कषाय	कषाय होय
७६	१	मोह से	मोह के उदय से

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६	१	निवृत्ति	निवृत्ति के उपाय का झूठापना
७८	१६	ही है	है ही
७९	१३	पीड़ा	पीड़ा सो
७९	१६	अर	अर इनि
८०	४	बनै	बनै ही
८०	२१	इनके	इसके
८१	४	आपका	अपना
८१	७	भया	हुआ
८२	१	ही	—
८२	६	तिस	तो तिस
८३	८	झूठा उपाय	उपाय झूठा
८३	६	उपाय बिना	बिना उपाय
८३	१०	खेद	द्वेष
८३	२२	उल्लास	उस्वास
८५	१८	भी	ही
८६	१५	वह दु:खी हो है	वह तो दु:खी है
८७	२	परिणामनि	परिणमन
८७	१६	तातैं	ताकरि
८९	८	करैं	करैं है
८९	१२	नीच ऊँच	ऊँचा नीचा
८९	२२	कहा है	यहु ही
९२	५	ज्ञान	ज्ञान तो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९२	७	चाह्या	बहुत चाह्या
९२	२१	आयु कर्म	आयु
९३	२१	दुःख	दुःखी
९६	९	होय	होय ही
१००	५	तेतीस सागर है। अर ३१ सागर से	इकत्तीस सागर है। यातैं
१०१	११	प्रकार	प्रकार ही
१०१	१२	ही	हो
१०१	१३	करने	होने
१०२	१	साधनन	साधन न
१०३	६	जीव ससारी	संसारी जीव
१०३	२१	मोह	सो मोह
१०३	२२	होते	होवे
१०५	७	जान्या	जाने
१०५	२१	काहे को	काहे का
११२	१३	आपा परका	तातै आपा परका
११२	२२	होइ	कैसे न होइ
११३	१	सो	सो ए
११३	८	अभाव	अभाव करना
११४	१२	विशेषनि	विशेषननि
१२१	५	हो	—
१२२	१८	परोक्ष	प्रत्यक्ष परोक्ष
१२४	११	मनि ज्ञान	मति
१२४	१३	तो	तो ए

।। श्री सर्वजिनवाणी नमस्तस्यै ।।

शास्त्र–स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐनमःसिद्धेभ्यः, ॐजय जय जय,

नमोस्तु! नमोस्तु!! नमोस्तु!!!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरीयाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोय सव्वसाहूणं।

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमोनमः ।।१।।

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ।।२।।

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।३।।

श्री परमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरवेनमः।

सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धक भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक नामधेयं, तस्य मूलग्रंथ कर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रंथ-कर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोनुसार-मासाद्य श्री पंडित टोडरमलजी विरचितं।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलम् ।।

श्रीमान् पं० प्रवर टोडरमलजी

प० टोडरमलजी के स्वहस्त लिखित मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थका अन्तिम पत्र

ॐ नमः सिद्धेभ्य. ।

आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी कृत

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

पहला अधिकार

मंगलाचरण

दोहा

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग विज्ञान ।
नमौं ताहि जातैं भये, अरहंतादि महान् ॥१॥
करि मंगल करिहौं महा, ग्रंथकरन को काज ।
जातैं मिलै समाज सब, पावै निजपदराज ॥२॥

अथ मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रका उदय हो है । तहां मंगल करिये है—

णमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

यहु प्राकृतभाषामय नमस्कारमन्त्र है, सो महामंगलस्वरूप है । बहुरि याका संस्कृत ऐसा हो है ।

नमोऽर्हद्भ्यः । नमः सिद्धेभ्यः । नमः आचार्येभ्यः । नमःउपाध्यायेभ्यः । नमो लोके सर्वसाधुभ्यः । बहुरि याका अर्थ ऐसा है—नमस्कार अरहंतनिके अर्थि, नमस्कार सिद्धनिके अर्थि,

नमस्कार आचार्यनिके अर्थि, नमस्कार उपाध्यायनिके अर्थि, नमस्कार लोकविषै सर्वसाधुनिके अर्थ, ऐसें या विषै नमस्कार किया, तातैं याका नाम नमस्कारमत्र है । अब इहाँ जिनकूं नमस्कार किया तिनिका स्वरूप चिंतवन कीजिये है । (जातैं स्वरूप जाने बिना यहु जान्या नाही जाय जो मैं कौनकों नमस्कार करूँ । तब उत्तमफल की प्राप्ति कैस होय । ✽)

अरहंतोंका स्वरूप

तहाँ प्रथम अरहतनिका स्वरूपविचारिये है—जे गृहस्थपनों त्यागि मुनिधर्म अंगीकार करि निजस्वभावसाधनतें च्यारि घातिया कर्मनिकों खिपाय अनंत चतुष्टय विराजमान भये । तहाँ अनंतज्ञानकरि तो अपने अपने अनंत गुणपर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यनिकों युगपत् विशेषपने करि प्रत्यक्ष जानैं हैं । अनंतदर्शनकरि तिनकों सामान्यपने अवलोकैं हैं । अनंतवीर्यकरि ऐसी (उपर्युक्त) सामर्थ्यकों धारै है । अनंतसुखकरि निराकुल परमानंदकों अनुभवै है । बहुरि जे सर्वथ सर्व रागद्वेषादि विकारभावनिकरि रहित होय शांतरस रूप परिणए हैं । बहुरि क्षुधा-तृषाआदि समस्तदोषनितै मुक्त होय देवाधिदेवपनाकों प्राप्त भये हैं । बहुरि आयुध अबरादिक वा अंगविकारादिक जे काम-क्रोधादिक निंद्यभावनिके चिन्ह तिनकरि रहित जिनका परम औदारिक शरीर भया है । बहुरि जिनके वचननितें लोक विषैं धर्मतीर्थ प्रवर्तै है, ताकरि जीवनिका कल्याण हो है । बहुरि जिनके लौकिक

✽ यह पंक्ति खरडा प्रति में नही है, संशोधित लिखित प्रतियों मे है इसीसे उसे मूल मे दिया गया है ।

जीवनिकूं प्रभुत्व माननेके कारण अनेक अतिशय अर नाना प्रकार विभव तिनका संयुक्तपना पाइये है । बहुरि जिनकों अपना हितके अर्थि गणधर इन्द्रादिक उत्तम जीव सेवे हैं । ऐसे सर्वप्रकार पूजने योग्य श्रीअरहंतदेव हैं, तिनकों हमारा नमस्कार होहु ।

सिद्धों का स्वरूप

अब सिद्धनिका स्वरूप ध्याइये है–जे गृहस्थअवस्था त्यागि मुनि धर्मसाधनतें च्यारि घातिकर्मनिका नाश भये अनन्तचतुष्टय भाव प्रगट करि केतेक काल पीछे च्यारि अघातिकर्मनिका भी भस्म होतें परम औदारिक शरीरकों भी छोरि ऊर्ध्वगमन स्वभावतें लोकका अग्रभागविषै जाय विराजमान भये । तहां जिनकै समस्तपरद्रव्यनिका सम्बन्ध छूटनेतें मुक्त अवस्थाकी सिद्धि भई,बहुरि जिनकै चरमशरीरतें किंचित् ऊन पुरुषाकारवत् आत्मप्रदेशनिका आकार अवस्थित भया, बहुरि जिनकै प्रतिपक्षी कर्मनिका नाश भया तातें समस्त सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शनादिक आत्मीक गुण सम्पूर्ण अपने स्वभावकों प्राप्त भये है, बहुरि जिनकै नोकर्मका सम्बन्ध दूर भया तातें समस्त अमूर्त्तत्वादिक आत्मीकधर्म प्रकट भये है । बहुरि जिनकै भावकर्मका अभाव भया तातें निराकुल आनन्दमय शुद्धस्वभावरूप परिणमन हो है । बहुरि जिनके ध्यानकरि भव्यजीवनिकै स्वद्रव्य परद्रव्यका अर औपाधिक भाव स्वभावभावनिका विज्ञान हो है, ताकरि तिन सिद्धनिके समान आप होनेका साधन हो है । तातें साधनेयोग्य जो अपना शुद्धस्वरूप ताके दिखावनेकों प्रतिबिंब समान हैं। बहुरि जे कृतकृत्य भये हैं तातें ऐसे ही अनत कालपर्यंत रहै हैं, ऐसे निष्पन्न भये सिद्ध भगवान् तिनकों

हमारा नमस्कार होहु ।

अब आचार्य उपाध्याय साधुनिका स्वरूप अवलोकिये हैं—

जे विरागी होइ समस्त परिग्रहकों त्यागि शुद्धोपयोगकरि मुनिधर्म अंगीकार करि अंतरगविषें तौ तिस शुद्धोपयोगकरि आपकों आप अनुभवै हैं, परद्रव्यविषै अहंबुद्धि नाहीं धारै हैं। बहुरि अपने ज्ञानादिक स्वभावनिहीकों अपने मानै हैं। परभावनिविषें ममत्व न करै हैं। बहुरि जे परद्रव्य वा तिनके स्वभाव ज्ञानविषै प्रतिभासें हैं तिनकों जानै तो है परन्तु इष्ट अनिष्ट मानि तिनविषै रागद्वेष नाहीं करै हैं। शरीरकी अनेक अवस्था हो हैं, बाह्य नाना निमित्त बनें हैं परन्तु तहां किछू भी सुखदु.ख मानते नाही। बहुरि अपने योग्य बाह्यक्रिया जैसे बनै है तैसे बने है, खेंचकरि तिनकों करते नाही। बहुरि अपने उपयोगकों बहुत नाही भ्रमावै हैं। उदासीन होय निश्चल वृत्ति कों धारै हैं। बहुरि कदाचित् मदरागके उदयतै शुभोपयोग भी हो है तिसकरि जे शुद्धोपयोग के बाह्य साधन हैं तिनविषै अनुराग करै हैं परन्तु तिस रागभावकों हेय जानकरि दूरि किया चाहैं हैं। बहुरि तीव्र कषाय के उदयका अभावतै हिंसादिरूप अशुभोपयोग परिणतिका तौ अस्तित्व रह्या ही नाहीं। बहुरि ऐसी अंतरग अवस्था होतै बाह्य दिगम्बर सौम्यमुद्राके धारी भये हैं। शरीरका संवारना आदि विक्रियानिकरि रहित भये हैं। वनखडादिविषें बसें हैं। अठाईस मूलगुणनिकों अखंडित पाले है। बाईस परीसहनिकों सहैं हैं। बारह प्रकार तपनिकों आदरै हैं। कदाचित् ध्यानमुद्राधारि प्रतिमावत् निश्चल हो हैं। कदाचित् अध्ययनादि बाह्य धर्मक्रियानिविषें प्रवर्तै हैं। कदाचित् मुनिधर्म

का सहकारी शरीरकी स्थितिके अर्थि योग्य आहार विहारादिक्रिया-निविषें सावधान हो हैं। ऐसे जैन मुनि हैं तिन सबनिकी ऐसी ही अवस्था हो है।

आचार्यका स्वरूप

तिनिविषै जे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी अधिकता करि प्रधानपदको पाय संघविषें नायक भये हैं। बहुरि जे मुख्यपने तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण विषै ही मग्न हैं अर जो कदाचित् धर्मके लोभी अन्य जीवादिक तिनिकों देखि रागअंशके उदयतै करुणाबुद्धि होय तो तिनिको धर्मोपदेश देते है। जे दीक्षाग्राहक है तिनकों दोक्षा देते हैं, जे अपने दोष प्रगट करै है तिनको प्रायश्चित्त विधिकरि शुद्ध करे हैं। ऐसे आचरन अचरावनवाले आचार्य तिनको हमारा नमस्कार होहु।

उपाध्यायका स्वरूप

बहुरि जे बहुत जैन शास्त्रनिके ज्ञाता होय संघविषै पठन-पाठनके अधिकारी भये हैं, बहुरि जे समस्त शास्त्रनिका प्रयोजनभूत अर्थ जानि एकाग्र होय अपने स्वरूपकों ध्यावै है। अर जो कदाचित् कषाय अंश उदयतै तहाँ उपयोग नाहीं थभै है तौ तिन शास्त्रनिकों आप पढ़ैं हैं वा अन्य धर्मबुद्धीनिको पढावें है। ऐसें समीपवर्ती भव्यनिको अध्ययन करावनहारे उपाध्याय तिनिकों हमारा नमस्कार होहु।

साधुका स्वरूप

बहुरि इन दोय पदवीधारक बिना अन्य समस्त जे मुनिपद के धारक है बहुरि जे आतमस्वभावको साधै हैं। जैसे अपना उपयोग परद्रव्यनिविषें इष्ट अनिष्टपनो मानि फँसै नाही वा भागै नाही तैसें

उपयोगको सधावै हैं। बहुरि बाह्यतपकी साधनभूत तपश्चरण आदि क्रियानिविषै प्रवर्तै हैं या कदाचित् भक्ति वन्दनादि कार्यनिविषैं प्रवर्तै हैं। ऐसें आत्मस्वभावके साधकसाधु हैं तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

पूज्यत्वका कारण

ऐसे इन अरहतादिकनिका स्वरूप है सो वीतराग विज्ञानमय तिसही करि अरहंतादिक स्तुति योग्य महान् भये हैं;जातैं जीवतत्वकरि तौ सर्व ही जीव समान हैं परन्तु रागादिकविकारनिकरि वा ज्ञानकी हीनताकरि तौ जीव निन्दा योग्य हो हैं। बहुरि रागादिककी हीनता-करि वा ज्ञानकी विशेषताकरि स्तुति योग्य हो हैं। सो अरहत सिद्धनिकैं तौ सम्पूर्ण रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषता होने करि सम्पूर्ण वीतरागविज्ञान भाव संभवै है। अर आचार्य उपाध्याय साधुनिकैं एकोदेश रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषताकरि एकोदेश वीतरागविज्ञान भाव संभवै है। तातें ते अरहतादिक स्तुति योग्य महान जानने।

बहुरि ए अरहतादि पद है तिन विषै ऐसा जानना जो मुख्यपने तौ तीर्थंकरका अर गौणपने सर्वकेवलीका ग्रहण है, यहु पदका प्राकृत भाषाविषै अरहत अर सस्कृतविषै अर्हत् ऐसा नाम जानना। बहुरि चौदवां गुणस्थानके अनतर समयतें लगाय सिद्धनाम जानना। बहुरि जिनकों आचार्यपद भया होय ते सघविषैं रहो वा एकाकी आत्मध्यान करो वा एकाविहारी होहु वा आचार्यनिविषै भी प्रधानताको पाय गणधरपदवीके धारक होहु, तिन सबनिका नाम आचार्य कहिये है। बहुरि पठन-पाठन तो अन्यमुनि भी करै हैं परन्तु जिनकैं आचार्यनिकरि

दिया उपाध्याय पद भया होय ते आरमध्यानादिक कार्य करतें भी उपाध्याय ही नाम पावै हैं। बहुरि जे पदवोधारक नाहीं ते सर्वमुनि साधुसंज्ञाके धारक जानने। इहां ऐसा नियम नाहीं है जो पचाचारनि करि आचार्य पद हो है, पठनपाठनकरि उपाध्यायपद हो है, मूलगुण साधनकरि साधुपद हो है। जातें ए तो क्रिया सर्वमुनिनकै साधारण हैं परन्तु शब्द नयकरि तिनका अक्षरार्थ तैसे करिये है। समभिरूढनय करि पदवीकी अपेक्षा ही आचार्यादिक नाम जानने। जैसें शब्द नय-करि गमन करै सो गऊ कहिये सो गमन तौ मनुष्यादिक भी करै हैं परन्तु समभिरूढ नयकरि पर्याय अपेक्षा नाम है, तैसें ही यहाँ समझना।

इहां सिद्धनिके पहिले अरहन्तनिकों नमस्कार किया सो कौन कारण ? ऐसा सन्देह उपजै है। ताका समाधान –

नमस्कार करिये है सो अपने प्रयोजन साधनेकी अपेक्षा करिये है, सो अरहंतनितें उपदेशादिकका प्रयोजन विशेष सिद्ध हो है तातें पहिले नमस्कार किया है। या प्रकार अरहन्तादिकनिका स्वरूप चिंतवन किया। जातें स्वरूप चिंतवन किये विशेष कार्य सिद्ध हो है। बहुरि इन अरहंतादिकनिको पंचपरमेष्ठी कहियेहै। जातै जो सर्वोत्कृष्ट इष्ट होय ताका नाम परमेष्ट है। पच जे परमेष्ट तिनिका समाहार समुदाय ताका नाम पंचपरमेष्टो जानना। बहुरि रिषभ, अजित, सभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चद्रप्रभ, पुष्पदत, शीतल, श्रेयान, वासुपूज्य, विमल, अनत, धर्म, शाति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व, वर्द्धमान नामधारक चौबोस तीर्थंकर इस भरतक्षेत्रविषें वर्त्तमान धर्मतीर्थके नायक भये, गर्भ जन्म तप

ज्ञान निर्वाण कल्याणकनिविषैं इन्द्रादिकनिकरि विशेष पूज्य होइ अब सिद्धालयविषै विराजै है तिनको हमारा नमस्कार होहु। बहुरि सीमंधर, युगमधर, बाहु, सुबाहु, सजातक, स्वयप्रभ, वृषभानन, अनंत वीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, चन्द्रबाहु, भुजगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयश, अजितवीर्य नामधारक बीसतीर्थंकर पचमेरु सम्बन्धी विदेहक्षेत्रनिविषैं अबार केवलज्ञानसहित विराजमान है तिनको हमारा नमस्कार होहु। यद्यपि परमेष्ठी पद-विषै इनका गर्भितपना है तथा विद्यमान कालविषैं इनकों विशेष जानि जुदा नमस्कार किया है।

बहुरि त्रिलोकविषै जे अकृत्रिम जिनबिम्ब विराजै है, मध्यलोक-विषै विधिपूर्वक कृत्रिम जिनबिब विराजैं हैं, जिनके दर्शनादिकतै स्व-परभेद विज्ञान होय है,कषाय मद होय शान्तभाव हो है वा एक धर्मो-पदेश बिना अन्य अपने हितकी सिद्धि जैसे तीर्थंकर केवलीके दर्शना-दिकतै होय तैसे ही हो है, तिन जिनबिबनिकों हमारा नमस्कार होहु। बहुरि केवलीकी दिव्यध्वनिकरि दिया उपदेश ताके अनुसार गणधर-करि रचित अंगप्रकीर्णक तिनके अनुसरि अन्य आचार्यादिकनिकरि रचे ग्रन्थादिक है, ऐसे ये सर्व जिनवचन है,स्याद्वादचिन्हकरि पहचानने योग्य है, न्यायमार्गतै अविरुद्ध है तातै प्रमाणीक है, जीवनिकों तत्त्व-ज्ञान के कारण है तातै उपकारी हैं, तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

बहुरि चैत्यालय, आर्यका, उत्कृष्ट श्रावक आदि द्रव्य अर तीर्थक्षेत्रादि क्षेत्र अर कल्याणककाल आदि काल, रत्नत्रय आदि भाव, जे मुझकरि नमस्कार करने योग्य हैं तिनकों नमस्कार करूं

हैं अर जे किंचित् विनय करने योग्य हैं तिनका यथा योग्य विनय करूं हूं। ऐसें अपने इष्टनिका सन्मानकरि मंगल किया है। अब ए अरहतादिक इष्ट कैसें हैं सो विचार करिए है—

जाकरि सुख उपजै वा दुःखविनशै तिस कार्य का नाम प्रयोजन है। बहुरि तिस प्रयोजनकी जाकरि सिद्धि होय सो ही अपना इष्ट है। सो हमारै इस अवसरविषै वीतरागविशेष ज्ञानका होना सो ही प्रयोजन है, जातै याकरि निराकुल साचे सुख की प्राप्ति हो है अर सर्व आकुलतारूप दुःखका नाश हो है। बहुरि इस प्रयोजनकी सिद्धि अरहतादिकनिकरि हो है। कैसे सो विचारिए है—

अरहन्तादिकोंसे प्रयोजनसिद्धि

आत्माके परिणाम तीन प्रकारके हैं—सक्लेश, विशुद्ध, शुद्ध. तहाँ तीव्र कषायरूप सक्लेश है, मदकषायरूप विशुद्ध है, कषाय रहित शुद्ध है। तहां वीतरागविशेष ज्ञानरूप अपने स्वभाव के घातक जो हैं ज्ञानावरणादि घातियाकर्म, तिनिका सक्लेश परिणाम करि तौ तीव्रबन्ध हो है अर विशुद्ध परिणामकरि मंदबध हो है वा विशुद्ध परिणाम प्रबल होय तौ पूर्वै जो तीव्रबध भया था ताको भी मंद करै है अर शुद्ध परिणामकरि बन्ध न हो है, केवल तिनकी निर्जरा ही हो है। सो अरहतादिविषै स्तवनादि रूप भाव हो है सो कषायनिकी मन्दता लिये हो है तातै विशुद्ध परिणाम है। बहुरि समस्त कषायभाव मिटावनेका साधन है, तातै शुद्ध परिणाम का कारण है सो ऐसे परिणाम करि अपना घातक घातिकर्मका हीनपनाके होनेतै सहज ही वीतराग विशेषज्ञान प्रगट हो है। जितने अंशनिकरि वह हीन होय

तितने अंशनिकरि यह प्रगट होइ है। ऐसें अरहंतादिक करि अपना प्रयोजन सिद्ध हो है। अथवा अरहंतादिकका आकार अवलोकना वा स्वरूप विचार करना वा बचन सुनना वा निकटवर्ती होना व तिनके अनुसार प्रवर्तना इत्यादि कार्य तत्काल ही निमित्तभूत होय रागादिकनिको हीन करै है। जीव अजीवादिकका विशेषज्ञानको उपजावै है तातै ऐसे भी अरहंतादिक करि वीतराग विशेषज्ञानरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो हैं।

इहाँ कोऊ कहै कि इनकरि ऐसें प्रयोजनकी तौ सिद्धी हो है परन्तु जाकरि इन्द्रियजनित सुख उपजै, दुःख विनशै ऐसे भी प्रयोजन की सिद्धि इनि करि हो है कि नाही। ताका समाधान—

जो अरहतादि विषै स्तवनादिरूप विशुद्ध परिणाम हो है ताकरि अघातिया कर्मनिकी साता आदि पुण्यप्रकृतिनिका बध हो है। बहुरि जो वह परिणाम तीव्र होय तो पूर्वे असातामादि पापप्रकृति बधी थी तिनकों भी मंद करै है अथवा नष्टकरि पुण्यप्रकृतिरूप परिणमावै है। बहुरि तिस पुण्यका उदय होते स्वयमेव इन्द्रियसुखकों कारणभूत सामग्री मिलै है अर पापका उदय दूर होतें स्वयमेव दुःख कों कारणभूत सामग्री दूर हो है। ऐसें इस प्रयोजनकी भी सिद्धि तिनकरि हो है। अथवा जिनशासन के भक्त देवादिक है ते तिस भक्त पुरुषकै अनेक इन्द्रियसुखको कारणभूत सामग्रीनिका सयोग करावै है, दुःखकों कारणभूत सामग्रीनिकों दूरि करै है। ऐसैं भी इस प्रयोजनकी सिद्धि तिन अरहतादिकनि करि हो है। परन्तु इस प्रयोजनतें किछू अपना भी हित होता नाहीं तातै यहु आत्मा

कषायभावनितैं बाह्य सामग्रीविषैं इष्ट-अनिष्टपनो मानि आप ही सुखदुःखकी कल्पना करै है। बिना कषाय बाह्य सामग्री किछु सुख-दुःखकी दाता नाहीं। बहुरि कषाय है सो सब आकुलतामय है तातैं इन्द्रियजनितसुखकी इच्छा करनी दुःखतै डरना सो यह भ्रम है। बहुरि इस प्रयोजनके अर्थि अरहंतादिककी भक्ति किएं भी तीव्रकषाय होनेकरि पापबन्ध ही हो है तातैं आपको इस प्रयोजनका अर्थि होना योग्य नाहीं। जातैं अरहंतादिककी भक्ति करतैं ऐसे प्रयोजन तौ स्वयमेव ही सधै हैं।

ऐसे अरहंतादिक परम इष्ट मानने योग्य हैं। बहुरि ए अरहंतादिक ही परममंगल हैं। इन विषै भक्तिभाव भये परममंगल हो है। जातैं 'मग' कहिये सुख ताहि 'लाति' कहिये देवै अथवा 'मं' कहिये पाप ताहि 'गालयति' कहिये गालै ताका नाम मंगल है सो तिनकरि पूर्वोक्त प्रकार दोऊ कार्यनिकी सिद्धी हो है। तातै तिनके परममंगल-पना सम्भवै है।

मंगलाचरण करने का कारण

इहां कोऊ पूछै कि प्रथम ग्रन्थकी आदि विषै ही मगल किया सो कौन कारण ? ताका उत्तर--

जो सुखस्यौ ग्रन्थकी समाप्ति होइ, पापकरि कोऊ विघ्न न होय, या कारणतै यहां प्रथम मगल किया है।

इहा तर्क--जो अन्यमती ऐसे मगल नाही करै है तिनके भी ग्रन्थकी समाप्तता अर विघ्नका नाश होता देखिये है तहाँ कहा हेतु है ? ताका समाधान--

जो अन्यमती ग्रन्थ करै हैं तिसविषै मोहके तीव्र उदयकरि मिथ्यात्व

कषाय भावनिको पोषते विपरीत अर्थनिकों धरै है तातै ताकी निर्विघ्न समाप्तता तौ ऐसे मंगल किये बिना ही होइ । जो ऐसे मंगलनिकरि मोह मद हो जाय तौ वैसा विपरीत कार्य कैसे बनै ? बहुरि हम यह ग्रन्थ करैं है तिस विषै मोहकी मंदता करि वीतराग तत्वज्ञानकों पोषते अर्थनिको धरेंगे ताकी निर्विघ्न समाप्तता ऐसे मंगल किये ही होय। जो ऐसे मगल न करै तौ मोहका तीव्रपना रहै, तब ऐसा उत्तम कार्य कैसे बनै ? बहुरि वह कहै जो ऐसे तौ मानेंगे परन्तु कोऊ ऐसा मगल न करै ताकै भी सुख देखिए है, पापका उदय न देखिये है अर कोऊ ऐसा मंगल करै है ताकै भी सुख न देखिये है, पापका उदय देखिये है तातैं पूर्वोक्त मंगलपना कैसे बनै ? ताकौ कहिये है––

जो जीवनिकै सक्लेश विशुद्ध परिणाम अनेक जातिके है तिनकरि अनेक कालनिविषै पूर्वे बधे कर्म एक कालविषै उदय आवै है। तातैं जाकै पूर्वे बहुत धनका सचय होय ताकै बिना कुमाए भी धन देखिए है अर देणा न देखिये है। अर जाकै पूर्वे ऋण बहुत होय ताकै धन कुमावते भी देणा देखिये है अर धन न देखिए है। परन्तु विचार किए, तैं कुमावना धन होनेहीका कारण है,ऋणका कारण नाही। तैसे ही जाकै पूर्वे बहुत पुण्य बध्या होइ ताकै इहाँ ऐसा मगल विना किए भी सुख देखिए है, पापका उदय न देखिए है। बहुरि जाकै पूर्वे बहुत पाप बंध्या होय ताकै इहा ऐसा मगल किये भी सुख न देखिए है, पापका उदय देखिए है। परन्तु विचार किएतै ऐसा मंगल तौ सुखका ही कारण है, पाप उदयका कारण नाही। ऐसें पूर्वोक्त मगलका मंगल

पना बनै है।

बहुरि वह कहै है कि यह भी मानी परन्तु जिनशासनके भक्त देवादिक हैं तिनिनें तिस मंगल करनेवालेकी सहायता न करी अर मंगल न करनेवालेको दंड न दिया सो कौन कारण ? ताका समाधान—

जो जीवनिकै सुख दुख होनेका प्रबल कारण अपना कर्मका उदय है ताहीके अनुसारि बाह्य निमित्त बनै है, तातै जाकै पापका उदय होइ ताकै सहायताका निमित्त न बनै है अर जाकै पुण्यका उदय होइ ताकै दंडका निमित्त न बनै है। यह निमित्त कैसे न बनै है सो कहिये है—

जे देवादिक है ते क्षयोपशम ज्ञानतैं सर्वको युगपत् जानि सकते नाहीं, तातैं मंगल करनेवाले वा न करनेवालेका जानपना किसी देवादिककै काहू कालविषै हो है। तातैं जो तिनिका जानपना न होइ तो कैसे सहाय करै वा दंड दे। अर जानपना होय तब आपकै जो अति मंदकषाय होइ तो सहाय करनेकै वा दंड देनेके परिणाम ही न होंइ। अर तीव्रकषाय होइ तो धर्मानुराग होइ सकै नाहीं। बहुरि मध्यम कषायरूप तिस कार्य करनेके परिणाम भये अर अपनी शक्ति नाहीं तो कहा करै। ऐसें सहाय करने वा दंड देनेका निमित्त नाहीं बनै है। जो अपनी शक्ति होय अर आपके धर्मानुरागरूप मध्यमकषायका उदयतैं तैसे ही परिणाम होइ अर तिस समय अन्य जीवका धर्म अधर्मरूप कर्तव्य जानै, तब कोई देवादिक किसी धर्मात्माकी सहाय करै वा किसी अधर्मीको दंड दे है। ऐसें कार्य होनेका किछू नियम तौ है नाहीं,

ऐसें समाधान किया। इहां इतना जानना कि सुख होनेकी, दुख न होने को, सहाय करानेका, दुख ल्यावनेकी जो इच्छा है सो कषायमय है, तत्काल विषे वा आगामी काल विषें दुखदायक है। तातें ऐसो इच्छा कू छोरि हम तो एक वीतराग विशेष ज्ञान होनेके अर्थी होइ अरहंतादिककों नमस्कारादिरूप मगल किया है। ऐसें मंगलाचरण करि अब सार्थक मोक्षमार्ग प्रकाशकनाम ग्रन्थका उद्योत करें हैं। तहां यहु ग्रन्थ प्रमाण है ऐसी प्रतीति ग्रावनेके अर्थि पूर्व अनुसारका स्वरूप निरूपिए है—

ग्रन्थकी प्रमाणिकता और आगम-परम्परा

अकारादि अक्षर है ते अनादिनिधन हैं,काहूके किए नाहो, इनिका आकार लिखना तो अपनो इच्छाके अनुसार अनेक प्रकार है परन्तु बोलनेमें ग्रावें है ते अक्षर तो सर्वत्र सर्वदा ऐसेंही प्रवर्ते है सोई कह्या है— **'सिद्धो वर्णसमाम्नायः'**। याका अर्थ यहु—जो अक्षरनिका सम्प्रदाय है सो स्वयसिद्ध है। बहुरि तिन अक्षरनिकरि निपजे सत्यार्थ के प्रकाशक पद तिनके समूहका नाम श्रुत है सो भी अनादि निधन है। जैसें 'जीव' ऐसा अनादिनिधन पद है सो जीवका जनावनहारा है। ऐसें अपने अपने सत्य अर्थके प्रकाशक अनेक पद तिनका जो समुदाय सो श्रुत जानना। बहुरि जैसैं मोती तो स्वयंसिद्ध है तिन विषै कोऊ थोरे मोतीनिकों, कोऊ घने मोतीनिको, कोऊ किसी प्रकार कोऊ किसी प्रकार गूंथिकरि गहना बनावै है तैसें पद तो स्वयंसिद्ध है तिन विषै कोऊ थोरे पदनिकों, कोऊ घने पदनिकों,कोऊ किसो प्रकार कोऊ किसो प्रकार गूंथि ग्रन्थ बनावै हैं। यहां मैंभो तिन सत्यार्थ पद-

निकों मेरो बुद्धि अनुसारि गूंथि* ग्रन्थ बनाऊं हूँ सो मेरी मति करि कल्पित झूठे अर्थके सूचक पद या विषै नाहीं गूंथूं हूं। तातें यह ग्रन्थ प्रमाण जानना।

इहां प्रश्न—जो तिन पदनिकी परम्परा इस ग्रन्थ पर्यंत कैसें प्रवर्ते है ? ताका समाधान—

अनादितें तीर्थंकर केवली होते आये हैं तिनिके सर्वका ज्ञान हो है तातें तिन पदनिका वा तिनके अर्थनिका भी ज्ञान हो है। बहुरि तिन तीर्थंकर केवलीनिका जाकरि अन्य जीवनिकै पदनिके अर्थनिका ज्ञान होय ऐसा दिव्यध्वनि करि उपदेश हो है। ताके अनुसारि गण-धरदेव अंग प्रकीर्णकरूप ग्रन्थ गूंथे है। बहुरि तिनके अनुसारि अन्य अन्य आचार्यादिक नाना प्रकार ग्रन्थादिककी रचना करे है। तिनिकों केई अभ्यासें हैं केई कहैं हैं केई सुनें है, ऐसे परम्परातें मार्ग चल्या आवै है।

सो अब इस भरतक्षेत्र विषैं वर्तमान अवसर्पिणी काल है, तिस-विषै चौबीस तीर्थंकर भए, तिनि विषें श्रीवर्द्धमान नामा अन्तिम तीर्थं-कर देव भये। सो केवलज्ञान विराजमान होइ जीवनिकों दिव्यध्वनि करि उपदेश देते भये। ताके सुननेका निमित्त पाय गौतम नामा गणधर अगम्य अर्थनिकों भी जानि धर्मानुरागके वशतें अगप्रकीर्णकनि की रचना करते भये। बहुरि वर्द्धमान स्वामी तौ मुक्त गए, तहाँ पीछैं इस पंचम कालविषैं तीन केवली भए, गौतम १, सुधर्माचार्य २, जम्बू-स्वामी ३, तहां पीछे कालदोषतें केवलज्ञानी होनेका तो अभाव भया।

* जोडकर या लिखकरि।

बहुरि केतेक काल तांई द्वादशांग के पाठी श्रुतकेवली रहे, पीछें तिनका भी अभाव भया। बहुरि केतेक कालतांई थोरे अंगनिके पाठी रहे (तिनने यह जानकर जो भविष्य कालमें हम सारिखे भी ज्ञानी न रहेंगे, तातै ग्रन्थ रचना आरम्भ करी और द्वादशांगनुकूल प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगके ग्रन्थ रचे।*) पीछें तिनका भी अभाव भया। तब आचार्यादिकनिकरि तिनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ वा अनुसारी ग्रन्थनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ तिनहीकी प्रवृत्ति रही। तिनविषै भी काल दोषतै दुष्टनिकरि किलेक ग्रन्थनिकी व्युच्छिति भई वा महान् ग्रन्थनिका अभ्यासादि न होनेतें व्युच्छिति भई। बहुरि केतेक महान् ग्रन्थ पाइए हैं तिनिका बुद्धिकी मदतातें अभ्यास होता नाहीं। जैसे दक्षिणमें गोमट्टस्वामीके निकट मूलबद्री नगरविषै धवल महाधवल जयधवल पाइए हैं परन्तु दर्शन-मात्र ही हैं। बहुरि कितेक ग्रन्थ अपनी बुद्धिकरि अभ्यास करने योग्य पाइए हैं। तिन विषै भी कितेक ग्रन्थनिका ही अभ्यास बनै है। ऐसे इस निकृष्ट काल विषै उत्कृष्ट जैनमतका घटना तो भया परन्तु इस परम्पराकरि अब भी जैन शास्त्रविषै सत्य अर्थके प्रकाशनहारे पदनिका सद्भाव प्रवर्तै है।

ग्रन्थकारका आगमाभ्यास और ग्रन्थ रचना

बहुरि हम इस काल विषैं यहा अब मनुष्यपर्याय पाया सो इस विषैं हमारे पूर्व संस्कारतै वा भला होनहारतैं जैनशास्त्रनिविषैं

* यह पंक्तियां खरडा प्रति में नहीं हैं, अन्य सब प्रतियों मे हैं। इसीसे आवश्यक जानि दे दी गई हैं।

अभ्यास करनेका उद्यम होता भया। तातैं व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रथनिका किंचित् अभ्यास करि टीकासहित समयसार, पचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोमट्टसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनिका आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुष्ठुकथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं तिन विषै हमारै बुद्धि अनुसार अभ्यास वर्त है। तिस करि हमारै हू किंचित् सत्यार्थ पदनिका ज्ञान भया है। बहुरि इस निकृष्ट समय विषै हम सारिखे मद बुद्धीनिते भी हीन बुद्धिके धनी घने जन अवलोकिए है। तिनिकौं तिन पदनिका अर्थज्ञान होनेके अर्थि धर्मानुरागके वशतैं देशभाषामय ग्रन्थ करनेकी हमारै इच्छा भई। ताकरि हम यहु ग्रन्थ बनावै है सो इस विषै भी अर्थसहित तिनही पदनिका प्रकाशन हो है। इतना तो विशेष है जैसे प्राकृत संस्कृत शास्त्रनिविषैं प्राकृत संस्कृत पद लिखिए है तैसे इहां अपभ्रंश लिए वा यथार्थपनाकों लिए देशभाषारूप पद लिखिए हैं परन्तु अर्थविषै व्यभिचार किछू नाहीं है। ऐसै इस ग्रथपर्यन्त तिन सत्यार्थ पदनिकी परम्परा प्रवर्ते है।

इहां कोऊ पूछै कि परम्परा तो हम ऐसे जानी परन्तु इस परम्पराविषैं सत्यार्थ पदनिहीकी रचना होती आई, असत्यार्थ पद न मिले ऐसी प्रतीति हमकौं कैसे होय। ताका समाधान—

असत्यपद रचना का प्रतिषेध

असत्यार्थ पदनिकी रचना अति तीव्र कषाय भए बिना बने नाहीं,

तातें जिस असत्य रचनाकरि परम्परा अनेक जीवनिका महा बुरा होय, आपको ऐसी महा हिंसाका फलकरि नर्क निगोदविषै गमन करना होय सो ऐसा महाविपरीत कार्य तो क्रोध मान माया लोभ अत्यन्त तीव्र भए ही होय। सो जैनधर्मविषैं तौ ऐसा कषायवान् होता नाही। प्रथम मूल उपदेशदाता तो तीर्थंकर भये सो तो सर्वथा मोहके नाशतै सर्व कषायनि करि रहित ही हैं। बहुरि ग्रन्थकर्त्ता गणधर वा आचार्य ते मोहका मन्द उदयकरि सर्व बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहको त्यागि महा मदकषायी भए हैं, तिनिके तिस मदकषायकरि किंचित् शुभोपयोगहीकी प्रवृत्ति पाइए है सो भी तीव्रकषायी नाहीं हैं, जो वाकै तीव्रकषाय होय तो सर्वकषायनिका जिस तिस प्रकार नाश करणहारा जो जिनधर्म तिस विषै रुचि कैसे होइ अथवा जो मोहके उदयतें अन्य कार्यनिकरि कषाय पोषै है तो पोषो परन्तु जिनआज्ञा भगकरि अपनी कषाय पोषै तो जैनीपना रहता नाही, ऐसै जिनधर्म्मविषै ऐसा तीव्रकषायी कोऊ होता नाही जो असत्य पदनिकी रचनाकरि परका अर अपना पर्याय पर्यायविषै बुरा करै।

इहा प्रश्न—जो कोऊ जैनाभास तीव्रकषायी होय असत्यार्थ पदनिका जैन शास्त्रनिविषै मिलावै, पीछे ताकी परम्परा चलि जाय तो कहा करिये ?

ताका समाधान – जैसे कोऊ साचे मोतिनिके गहनेविषै झूठे मोती मिलावै परन्तु झलक मिलै नाही तातै परीक्षाकरि पारखी ठिगावते भी नाहीं, कोई भोला होय सो ही मोती नामकरि ठिगावै है। बहुरि ताको परम्परा भी चालै नाही, शीघ्र ही कोऊ झूठे मोतिनिका निषेध

कर है। तैसे काऊ सत्यार्थ पदनिके समूहरूप जैनशास्त्रनिविषै असत्यार्थ पद मिलावै परन्तु जैनशास्त्रके पदनिविषै तो कषाय मिटावनेका वा लौकिक कार्य घटावनेका प्रयोजन है अर उस पापीने जे असत्यार्थ पद मिलाए हैं तिन विषै कषाय पोषनेका वा लौकिक कार्य साधनेका प्रयोजन है, ऐसे प्रयोजन मिलता नाही, तातें परीक्षाकरि ज्ञानी ठिगावते भी नाही, कोई मूर्ख होय सो ही जैनशास्त्र नामकरि ठिगावै है। बहुरि वाको परम्परा भी चालै नाही,शीघ्र ही कोऊ तिन असत्यार्थ पदनि का निषेध करै है। बहुरि ऐसे तीव्रकषायी जैनाभास इहाँ इस निकृष्ट कालविषै हो है, उत्कृष्ट क्षेत्रकाल बहुत हैं,तिस विषै तो ऐसे होते नाही। तातैं जैन शास्त्रनि विषै असत्यार्थ पदनिकी परम्परा चालै नाही, ऐसा निश्चय करना।

बहुरि वह कहै कि कषायनिकरि तो असत्यार्थ पद न मिलावै परन्तु ग्रंथ करनेवालेकै क्षयोपशमज्ञान है तातै कोई अन्यथा अर्थ भासै ताकरि असत्यार्थ पद मिलावै ताकी तो परम्परा चलै।?
ताका समाधान—

मूल ग्रंथकर्त्ता तौ गणधरदेव हैं ते आप च्यार ज्ञानके धारक हैं अर साक्षात् केवलीका दिव्यध्वनि उपदेश सुनै हैं ताका अतिशयकरि सत्यार्थ ही भासै है। अर ताहीके अनुसार ग्रन्थ बनावै हैं। सो उन ग्रन्थनिविषै तो असत्यार्थ पद कैसै गूंथे जांय अर अन्य आचार्यादिक ग्रन्थ बनावै हैं ते भी यथायोग्य सम्यग्ज्ञानके धारक है। बहुरि ते तिन मूलग्रन्थनिकी परंपराकरि ग्रंथ बनावै हैं। बहुरि जिन पदनिका आपकों ज्ञान न होइ तिनकी तो आप रचना करै नाही अर जिन पद-

निका ज्ञान होइ तिनकों सम्यग्ज्ञान प्रमाणतें ठीक करि गूंथै है सो प्रथम तो ऐसी सावधानी विषै असत्यार्थ पद गूंथे जाय नाही अर कदाचित् आपको पूर्व ग्रन्थनिके पदनिका अर्थ अन्यथा ही भासै अर अपनी प्रमाणतामें भी तैसें हो आजाय तो याका किछू सारा* नाही। परन्तु ऐसैं कोईकों भासै सबहीको तौ न भासै। तातैं जिनकों सत्यार्थ भास्या होय ते ताका निषेधकरि परंपरा चलने देते नाही। बहुरि इतना जानना-जिनकों अन्यथा जाने जीवका बुरा होय ऐसा देव गुरु धर्मादिक वा जीवादिक तत्त्वनिको तो श्रद्धानी जैनी अन्यथा जानैं ही नाही, इनिका तो जैनशास्त्रनिविषै प्रसिद्ध कथन है अर जिनकों भ्रमकरि अन्यथा जाने भी जिन आज्ञा माननेतैं जीवका बुरा न होइ, ऐसें कोई सूक्ष्म अर्थ है तिन विषै किसीकों कोई अर्थ अन्यथा प्रमाणतामें ल्यावै तो भी ताका विशेष दोष नाही सो गोमट्टसारविषै कह्या है—

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं हवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥१॥

याका अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश्या सत्यवचनकों श्रद्धान करै है अर अजाणमाण गुरुके नियोग तैं असत्यको भी श्रद्धान करै है, ऐसा कह्या है। बहुरि हमारै भी विशेष ज्ञान नाही है अर जिनआज्ञा भंग करनेका बहुत भय है परन्तु इस ही विचारके बलतैं ग्रंथ करनेका साहस करै हैं सो इस ग्रंथ विषैं जैसें पूर्व ग्रन्थनिमें वर्णन है तैसें ही वर्णन करेंगे। [अथवा कहीं पूर्व ग्रन्थनिविषैं सामान्य गूढ़

* बश नाहीं।

वर्णन था ताका विशेष प्रगट करि इहाँ वर्णन करया । सो ऐसैं वर्णन करनेविषै मैं तौ बहुत सावधानी राखूंगा अर सावधानी करते भी कही सूक्ष्म अर्थका अन्यथा वर्णन होय जाय तौ विशेष बुद्धिमान होइ सो सवारकरि शुद्ध करियो यह मेरा प्रार्थना है। ऐसे शास्त्र करनेका निश्चय किया है । अब इहाँ कैसे शास्त्र वांचने सुनने योग्य है अर तिन शास्त्रनिके वक्ता श्रोता कैसे चाहिए सो वर्णन करिए है ।

वांचने सुनने योग्य शास्त्र

जे शास्त्र मोक्षमार्गका प्रकाश करै है तेई शास्त्र वाचने सुनने योग्य है। जातैं जीव संसारविषै नाना दुःखनिकरि पीड़ित है, सो शास्त्ररूपी दीपककरि मोक्षमार्गको पावै तो उस मार्गविषैं आप गमनकरि उन दुःखनितैं मुक्त होय। सो मोक्षमार्ग एक वीतराग भाव है, तातैं जिन शास्त्रनिविषै काहूप्रकार राग-द्वेष-मोह भावनिका निषेध करि वीतराग भावका प्रयोजन प्रकट किया होय तिनिही शास्त्रनिका वाचना सुनना उचित है। बहुरि जिनशास्त्रनिविषै शृङ्गार भोग कौतूहलादिक पोषि रागभावका अर हिंसा-युद्धादिक पोषि द्वेषभावका अर अतत्व श्रद्धान पोषि मोहभावका प्रयोजन प्रगट किया होय ते शास्त्र नाही शस्त्र है। जातैं जिन राग-द्वेष-मोह भावनिकरि जीव अनादितैं दुःखी भया तिनकी वासना जीवकै बिना सिखाई ही थी। बहुरि इन शास्त्रनिकरि तिनहीका पोषण किया, भले होनेकी कहा शिक्षा दीनी। जीवका स्वभाव घात ही किया तातैं ऐसे शास्त्रनिका वांचना सुनना उचित नाही है । इहाँ वाचना सुनना जैसैं कह्या तैसैं ही जोड़ना सीखना सिखावना लिखना लिखावना आदि कार्य भी उपलक्षणकरि जान

लेनें । ऐसे साक्षात् वा परम्पराकरि वीतरागभावकौं पोषै ऐसे शास्त्रहीका अभ्यास करना योग्य है ।

वक्ता का स्वरूप

अब इनके वक्ताका स्वरूप कहिये है । प्रथम तौ वक्ता कैसा होना चाहिए, जो जैन श्रद्धानविषै दृढ होय, जातै जो आप अश्रद्धानी होय तौ औरकौं श्रद्धानी कैसै करै ? श्रोता तौ आपहीतै हीनबुद्धिके धारक है तिनकौं कोऊ युक्तिकरि श्रद्धानी कैसे करै ? अर श्रद्धान ही सर्व धर्मका मूल है । बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै विद्याभ्यास करनेतै शास्त्र वांचनेयोग्य बुद्धि प्रगट भई होय, जातै ऐसी शक्ति बिना वक्तापनेका अधिकारी कैसे होय । बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जो सम्यग्ज्ञानकरि सर्व प्रकारके व्यवहार निश्चयादिरूप व्याख्यानका अभिप्राय पहचानता होय, जातै जो ऐसा न होय तौ कहीं अन्य प्रयोजन लिए व्याख्यान होय ताका अन्य प्रयोजन प्रगटकरि विपरीत प्रवृत्ति करावै । बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै जिनआज्ञा भग करनेका बहुत भय होय, जातै जो ऐसा न होय तौ कोई अभिप्राय विचारि सूत्र-विरुद्ध उपदेश देय जीवनिका बुरा करै । सो ही कह्या है—

बहु गुणविज्जाणिलयो असुत्तभासी तहावि मुत्तव्वो ।
जह वरमणिजुत्तो वि हु विग्घयरो विसहरो लोए ॥१॥

याका अर्थ—जो बहुत क्षमादिक गुण अर व्याकरण आदि विद्याका स्थान है तथापि उत्सूत्रभाषी है तो छोडने योग्य ही है । जैसे उत्कृष्टमणिसयुक्त है तो भी सर्प है सो लोकविषै विघ्नका ही करणहारा है । बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै शास्त्र वांचि आजीविका

आदि लौकिक कार्य साधनेकी इच्छा न होय, जातें जो आशावान् होइ तो यथार्थ उपदेश देइ सकै नाहीं, वाकै तौ किछू श्रोतानिका अभिप्रायके अनुसार व्याख्यानकर अपने प्रयोजन साधनेका ही साधन रहै अर श्रोतानितैं वक्ता का पद ऊचा है परन्तु यदि वक्ता लोभी होय तो वक्ता आप ही हीन हो जाय, श्रोता ऊँचा होय। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै तीव्र क्रोध मान न होय, जातें तीव्र क्रोधी मानी की निंदा होय, श्रोता तिसतैं डरते रहैं, तिसतैं अपना हित कैसे करें। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जो आप ही नाना प्रश्न उठाय आप ही उत्तर करै अथवा अन्य जीव अनेक प्रकारकरि बहुत बार प्रश्न करें तो मिष्टवचननिकरि जैसें उनका सन्देह दूरि होय तैसें समाधान करै। जो आपक उत्तर देनेकी सामर्थ्य न होय तो या कहै, याका मोको ज्ञान नाहीं, किसी विशेष ज्ञानीसे पूछकर तिहारे ताईं उत्तर दूगा अथवा कोई समय पाय विशेष ज्ञानी तुमसे मिलै तो पूछ कर अपना सन्देह दूर करना और मोकूं बताय देना। जातें ऐसा न होय तो अभिमानके वशतैं अपनी पण्डिताई जनावनेकों प्रकरण विरुद्ध अर्थ उपदेशैं, तातैं श्रोतानका विरुद्ध श्रद्धान करनेतें बुरा होय, जैनधर्मकी निंदा होय। जातै जो ऐसा न होइ तो श्रोताओंका सदेह दूर न होई तब कल्याण कैसें होइ अर जिनमतकी प्रभावना होय सकै नाहीं। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै अनीतिरूप लोकनिंद्य कार्यनिको प्रवृत्ति न होय, जातें लोकनिंद्य कार्यनिकरि हास्यका स्थान होय जाय तब ताका वचन कौन प्रमाण कर, जिनधमको लजाव। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाका कुल हीन न होय, अंगहीन न होय, स्वर भङ्ग न होय, मिष्टवचन

होय, प्रभुत्व होय तातै लोकविषै मान्य होय जातै जो ऐसा न होय तो ताकौं वक्तापनाकी महतता शोभै नाहीं। ऐसा वक्ता होय। वक्ताविषै ये गुण तो अवश्य चाहिए सो ही आत्मानुशासनविषै कह्या है।

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः।
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः ॥
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया।
ब्र्याद्धर्म्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः ॥१॥

याका अर्थ—बुद्धिमान होइ, जानै समस्त शास्त्रनिका रहस्य पाया होय, लोकमर्यादा जाकै प्रगट भई होय, आशा जाकै अस्त भई होय कांतिमान् होय, उपशमी होय, प्रश्न किये पहले ही जानै उत्तर देख्या होय, बाहुल्यपने प्रश्ननिका सहनहारा होय, प्रभु होय, परकी वा परकरि आपकी निन्दा करि रहितपना होय, परके मनका हरनहारा होय, गुणनिधान होय, स्पष्ट मिष्ट जाके वचन होंय, ऐसा सभा का नायक धर्मकथा कहै। बहुरि वक्ताका विशेष लक्षण ऐसा है जो याकै व्याकरण न्यायादिक वा बडे-बडे जैनशास्त्रनिका विशेष ज्ञान होय तो विशेषपने ताकौं वक्तापनो शोभै। बहुरि ऐसा भी होय अर अध्यात्मरसकरि यथार्थ अपने स्वरूपका अनुभव जाकै न भया होय सो जिनधर्मका मर्म जानै नाहीं, पद्धतिही करि वक्ता होय है। अध्यात्मरसमय साँचा जिनधर्मका स्वरूप वाकरि कैसे प्रगट किया जाय, तातैं आत्मज्ञानी होई तो साचा वक्तापनों होई, जातै प्रवचनसार विषै ऐसा कहा है। आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान, संयमभाव ये तीनों आत्मज्ञानकरि शून्य कार्यकारी नाहीं। बहुरि दोहापाहुडविषैं ऐसा कह्या है—

पंडिय पंडिय पंडिय कण छोडि वितुस कंडिया।
पय-अत्थं तुट्ठोसि परमत्थ ण जाणइ मूढोसि ॥ १ ॥

याका अर्थ—हे पांडे ! हे पांडे ! हे पांडे ! तू कण छोडि तुसही कूटै है, तू अर्थ अर शब्द विषै सन्तुष्ट है, परमार्थ न जानै है, तातैं मूर्ख ही है—ऐसा कह्या है अर चौदह विद्यानिविषै भी पहलैं अध्यात्मविद्या प्रधान कही है। तातैं अध्यात्मरसका रसिया वक्ता है सो जिनधर्मके रहस्यका वक्ता जानना। बहुरि जे बुद्धिऋद्धि के धारक हैं वा अवधि-मनःपर्यय केवलज्ञानके धनी वक्ता हैं ते महावक्ता जानने। ऐसें वक्तानिके विशेष गुण जानने। सो इन विशेष गुणनिका धारी वक्ता-का संयोग मिलै तौ बहुत भला है ही अर न मिलै तौ श्रद्धानादिक गुणनिके धारी वक्तानिहीके मुखतैं शास्त्र सुनना। या प्रकार गुणके धारी मुनि वा श्रावक तिनके मुखतैं तो शास्त्र सुनना योग्य है अर पद्धति बुद्धि करि वा शास्त्र सुननेके लोभकरि श्रद्धानादि गुण रहित पापी पुरुषनिके मुखतैं शास्त्र सुनना उचित नाही। उक्तं च—

तं जिण आणपरेण य धम्मो सोयव्व सुगुरुपासम्मि।
अह उचिओ सद्धाओ तस्सुवएसस्सकहगाओ ॥१॥

याका अर्थ—जो जिन आज्ञा मानने विषै सावधान है ता करि निर्ग्रन्थ सुगुरु हीके निकटि धर्म सुनना योग्य है अथवा तिस सुगुरुहीके उपदेशका कहनहारा उचित श्रद्धानी श्रावकके मुखतैं धर्म सुनना योग्य है। ऐसा जो वक्ता धर्मबुद्धिकरि उपदेश दाता होय सो ही अपना अर अन्य जीवनिका भला करै है अर जो कषायबुद्धि करि उपदेश दे है सो अपना अर अन्य जीवनिका बुरा करै है, ऐसा जानना। ऐसैं वक्ता-

का स्वरूप कह्या, अब श्रोताका स्वरूप कहैं हैं --

श्रोताका स्वरूप

भला होनहार है तातै जिस जीवकै ऐसा विचार आवै है कि मैं कौन हूँ? मेरा कहा स्वरूप है ? (अर कहांतै आकर यहां जन्म धारया है और मरकर कहाँ जाऊँगा ?)* यह चरित्र कैसै बनि रह्या है ? ए मेरे भाव हो हैं तिनका कहा फल लागेगा,जीव दुःखी होय रह्या है सो दुःख दूरि होनेका कहा उपाय है, मुझको इतनी बातनिका ठीककरि किछू मेरा हित होय सो करना, ऐसा विचारतै उद्यमवंत भया है । बहुरि इस कार्यकी सिद्धि शास्त्र सुननतै होती जानि अति प्रीतिकरि शास्त्र सुनै है, किछू पूछना होय सो पूछै है बहुरि गुरुनिकरि कह्या अर्थकों अपने अंतरगविषै बारम्बार विचारै है बहुरि अपने विचारतै सत्य अर्थनिका निश्चयकरि जो कर्तव्य होय ताका उद्यमी होय है, ऐसा तो नवीन श्रोताका स्वरूप जानना । बहुरि जे जैनधर्मके गाढे श्रद्धानी है अर नाना शास्त्र सुननेकरि जिनकी बुद्धि निर्मल भई है । बहुरि व्यवहार निश्चयादिकका स्वरूप नीके जानि जिस अर्थको सुनै हैं ताकों यथावत् निश्चय जानि अवधारै है । बहुरि जब प्रश्न उपजै है तब अति विनयवान होय प्रश्न करै है अथवा परस्पर अनेक प्रश्नोत्तरकरि वस्तुका निर्णय करै है, शास्त्राभ्यास विषै अति आसक्त हैं, धर्मबुद्धिकरि निंद्य कार्यनिके त्यागी भए है ऐसे शास्त्रनिके श्रोता चाहिए । बहुरि श्रोतानिके विशेष लक्षण ऐसे है । जाकै किछू व्याकरण न्यायादिकका वा बड़े जैनशास्त्रनिका ज्ञान होय तो श्रोतापनों विशेष शोभै है । बहुरि

* यह पंक्तियां खरडा प्रति में नहीं हैं, अन्य सब प्रतियों में हैं । इसीसे आवश्यक जानि यहां दे दी गई हैं ।

ऐसा भी श्रोता है अर वाक आत्मज्ञान न भया होय तो उपदेशका मरम समझि सकै नाहीं तातैं आत्मज्ञानकरि जो स्वरूपका आस्वादी भया है सो जिनधर्म्म के रहस्यका श्रोता है। बहुरि जो अतिशयवंत बुद्धिकरि वा अवधिमनः पर्ययकरि संयुक्त होय तो वह महान श्रोता जानना। ऐसे श्रोतानिके विशेष गुण हैं। ऐसे जिनशास्त्रनिके श्रोता चाहिएँ। बहुरि शास्त्र सुननेतैं हमारा भला होगा, ऐसो बुद्धिकरि जो शास्त्र सुनै हैं परन्तु ज्ञानकी मन्दताकरि विशेष समझै नाहीं, तिनिके पुण्यबन्ध हो है, कार्य सिद्ध होता नाहीं। बहुरि जे कुलवृत्तिकरि वा सहज योग बनने करि शास्त्र सुनै हैं वा सुनै तो है परन्तु किछू अवधारण करते नाहीं, तिनकै परिणाम अनुसार कदाचित पुण्यबन्ध हो है कदाचित पापबंध हो है। बहुरि जे मद मत्सर भावकरि शास्त्र सुनै हैं वा तर्क करनेहीका जिनका अभिप्राय है, बहुरि जे महतताके अर्थि वा किसी लोभादिकका प्रयोजनके अर्थि शास्त्र सुनै हैं, बहुरि जो शास्त्र तो सुनै है परन्तु सुहावता नाहीं, ऐसे श्रोतानिके केवल पापबन्ध ही हो है। ऐसा श्रोतानिका स्वरूप जानना। ऐसै ही यथासम्भव सीखना सिखावना आदि जिनके पाइए तिनका भी स्वरूप जानना। या प्रकार शास्त्रका अर वक्ता श्रोताका स्वरूप कह्या सो उचित शास्त्र कों उचित वक्ता होय वांचना, उचित श्रोता होय सुनना योग्य है। अब यहु मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्र रचिए है ताका सार्थकपना दिखाइए है—

मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथकी सार्थकता

इस संसार अटवी विषै समस्त जीव है ते कर्म्मनिमित्त तैं निपजे

जे नाना प्रकार दुःख तिनकरि पीड़ित हो रहे हैं। बहुरि तहाँ मिथ्या अन्धकार व्याप्त होय रहा है। ताकरि तहाँतै मुक्त होनेका मार्ग पावते नाहीं, तडफि तड़फि तहा ही दु.खको सहै हैं। बहुरि ऐसे जीवनिका भला होनेकों कारण तीर्थंकर केवली भगवान सो ही भए सूर्य, ताका भया उदय, ताको दिव्यध्वनिरूपी किरणनिकरि तहाँतै मुक्त होनेका मार्ग प्रकाशित किया। जैसे सूर्यके ऐसी इच्छा नाहीं जो मैं मार्ग प्रकाशूं परन्तु सहज ही वाकी किरण फैलै है ताकरि मार्गका प्रकाशन हो है तैसे ही केवली वीतराग है तातै ताकै ऐसी इच्छा नाही जो हम मोक्षमार्ग प्रगट करें परन्तु सहज ही अघातिकर्मनिका उदयकरि तिनका शरीररूप पुद्गल दिव्यध्वनिरूप परिणमै है ताकरि मोक्षमार्गका प्रकाशन हो है। बहुरि गणधरदेवनिकै यहु विचार आया कि जहाँ केवली सूर्यका अस्तपना होइ तहाँ जीव मोक्षमार्गको कैसे पावै अर मोक्षमार्ग पाए बिना जीव दुःख सहेंगे, ऐसी करुणाबुद्धि करि अंग प्रकीर्णकादिरूप ग्रन्थ तेई भए महान् दीपक तिनका उद्योत किया। बहुरि जैसे दीपक करि दीपक जोवनेतै दीपकनिकी परम्परा प्रवर्तै तैसे आचार्यादिकनिनै तिन ग्रन्थनितै अन्य ग्रन्थ बनाए । बहुरि तिनहूतै किनहूने अन्य ग्रंथ बनाए। ऐसे ग्रंथनितैं ग्रंथ होनेतै ग्रंथनिकी परम्परा वर्तै है। मैं भी पूर्वग्रन्थनितै इस ग्रन्थकों बनाऊं हूं । बहुरि जैसे सूर्य वा सर्व दीपक है ते मार्गकों एकरूपही प्रकाशै है तैसे दिव्यध्वनि वा सर्व ग्रन्थ है ते मोक्षमार्गकों एकरूप ही प्रकाशै हैं। सो यह भी ग्रन्थ मोक्षमार्गको प्रकाशै है। बहुरि जैसे प्रकाशे भी नेत्ररहित वा नेत्रविकार सहित पुरुष है तिनकूं मार्ग सूझता नाही तो दीपककै तो

मार्ग प्रकाशकपनेका अभाव भया नाहीं, तैसे प्रगट किये भी जे मनुष्य ज्ञान रहित हैं वा मिथ्यात्वादि विकार सहित है तिनकू मोक्षमार्ग सूझता नाही तो ग्रन्थकै तो मोक्षमार्ग प्रकाशकपनेका अभाव भया नाहीं। ऐसे इस ग्रन्थका मोक्षमार्ग प्रकाशक ऐसा नाम सार्थक जानना॥

इहां प्रश्न– जो मोक्षमार्ग के प्रकाशक पूर्व ग्रन्थ तो थे ही, तुम नवीन ग्रन्थ काहे कों बनावो हो ?

ताका समाधान— जैसे बड़े दीपकनिका तो उद्योत बहुत तेलादिकका साधनतैं रहै है, जिनकै बहुत तेलादिककी शक्ति न होइ तिनको स्तोक दीपक जोड़ दीजिये तो वे उसका साधन राखि ताके उद्योततैं अपना कार्य करै तैसे बड़े ग्रन्थनिका तो प्रकाश बहुत ज्ञानादिकका साधनतैं रहै है, जिनके बहुत ज्ञानादिककी शक्ति नाही तिनकूं स्तोक ग्रन्थ बनाय दीजिये तो वे वाका साधन राखि ताके प्रकाशतैं अपना कार्य करै। तातै यह स्तोक सुगम ग्रन्थ बनाइए है। बहुरि इहां जो मैं यहु ग्रन्थ बनाऊँ हूँ सो कषायनितैं अपना मान बधावनेकों वा लोभ साधनेकों वा यश होनेकों वा अपनी पद्धति राखनेको नाही बनाऊँ हूँ। जिनकै व्याकरण न्यायादिकका वा नयप्रमाणादिका वा विशेष अर्थनिका ज्ञान नाही तातै तिनकै बड़े ग्रन्थनिका अभ्यास तौ बनि सकै नाही। बहुरि कोई छोटे ग्रन्थनिका अभ्यास बनै तो भी यथार्थ अर्थ भासै नाही। ऐसें इस समयविषै मंदज्ञानवान् जीव बहुत देखिये हैं तिनिका भला होनेके अर्थि धर्मबुद्धितै यह भाषा मय ग्रन्थ बनाऊँ हूँ। बहुरि जैसे बड़े दरिद्रीकों अवलोकनमात्र चिन्तामणिकी प्राप्ति होय अर वह न अवलोकै बहुरि जैसें कोढीकूं अमृत पान करावै

अर वह न करै तैसे संसारपीड़ित जीवकों सुगम मोक्षमार्गके उपदेश का निमित्त बनै अर वह अभ्यास न करै तो वाके अभाग्यकी महिमा का वर्णन हमतैं तो होइ सकै नाही । वाका होनहारहीकों विचारे अपने समता आवै । उक्तं च—

साहीणे गुरुजोगे जे ण सुणंतीह धम्मवयणाइं ।
ते धिट्ठदुट्ठचित्ता अह सुहडा भव भयविहूणा ॥१॥

स्वाधीन उपदेशदाता गुरुका योग जुड़ें भी जे जाव धर्म्म वचननिकों नाहीं सुनै हैं ते धीठ हैं अर उनका दुष्टचित्त है अथवा जिस संसार भयतै तीर्थकरादिक डरे तिस संसार भयकरि रहित हैं, ते बड़े सुभट हैं । बहुरि प्रवचनसारविषैभी मोक्षमार्गका अधिकार किया है तहां प्रथम आगमज्ञान ही उपादेय कह्या, सो इस जीवका तो मुख्य कर्त्तव्य आगमज्ञान है, याकों होतैं तत्वनिका श्रद्धान हो है, तत्वनिका श्रद्धान भए संयमभाव हो है अर तिस आगमतैं आत्मज्ञानकी भी प्राप्ति हो है तब सहज ही मोक्षकी प्राप्ति हो है । बहुरि धर्म्मके अनेक अंग हैं तिनविषै एक ध्यान बिना यातैं ऊँचा और धर्म्मका अंग नाही है तातैं जिस तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है । बहुरि इस ग्रंथका तो वांचना सुनना विचारना घना सुगम है, कोऊ व्याकरणादिकका भी साधन न चाहिए, तातैं अवश्य याका अभ्यासविषैं प्रवर्तो, तुम्हारा कल्याण होगा ।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषैं पीठबन्ध-प्ररूपक प्रथम अधिकार समाप्त भया ॥१॥

दूसरा अधिकार

संसार अवस्थाका स्वरूप

दोहा

मिथ्याभाव अभावतें, जो प्रगटै निजभाव ।
सो जयवंत रहो सदा, यह ही मोक्ष उपाय ।।१।।

अब इस शास्त्रविषैं मोक्षमार्गका प्रकाश करिए है। तहां बन्धनतैं छूटनेका नाम मोक्ष है । सो इस आत्माकै कर्मका बन्धन है बहुरि तिस बन्धनकरि आत्मा दुःखी होय रह्या है। बहुरि याकै दुःख दूरि करनेहीका निरन्तर उपाय भी रहै है परन्तु साचा उपाय पाए बिना दुःख दूरि होता नाहीं अर दुःख सह्या भी जाता नाहीं तातैं यहु जीव व्याकुल होय रह्या है। ऐसे जीवको समस्त दुःखका मूल कारण कर्म बन्धन है ताका अभावरूप मोक्ष है सोही परम हित है। बहुरि याका सांचा उपाय करना सोही कर्तव्य है तातैं इसहीका याको उपदेश दीजिए है। तहां जैसे वैद्य है सो रोगसहित मनुष्यको प्रथम तो रोगका निदान बतावै, ऐसें यह रोग भया है बहुरि उस रोगके निमित्ततैं याकै जो जो अवस्था होती होय सो बतावै, ताकरि वाकै निश्चयहोय जो मेरे ऐसें ही रोग है । बहुरि तिस रोगके दूरि करनेका उपाय अनेक प्रकार बतावै अर तिस उपायकी ताको प्रतीति अनावै, इतना तो वैद्यका बतावना है। बहुरि जो वह रोगी ताका साधन करै तो रोग तैं मुक्त होई अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु रोगीका कर्तव्य है। तैसें ही इहां कर्मबन्धनयुक्त जीवको प्रथम तो कर्मबन्धनका निदान बताइए है, ऐसैं यहु कर्मबन्धन भया है बहुरि उस कर्मबन्धनके निमित्ततैं याकै जो जो अवस्था होती होय सो बतावै, ताकरि जीवकै

निश्चय होय जो मेरे ऐसैं ही कर्मबन्धन है। बहुरि तिस कर्मबन्धनके दूरि होनेका उपाय अनेक प्रकार बताइए है अर तिस उपायकी याको प्रतीति अनाइये है, इतना तौ शास्त्रका उपदेश है। बहुरि यहु जीव ताका साधन करै तो कर्मबन्धनतै मुक्त होय अपना स्वभावरूप प्रवर्ते सो यहु जीवका कर्तव्य है। सो इहां प्रथम ही कर्मबन्धनका निदान बताइये है।

कर्मबन्धनका निदान

बहुरि कर्म्मबन्धन होतैं नाना उपाधिक भावनिविषै परिभ्रमण-पनों पाइए है, एक रूप रहनो न हो है तातैं कर्मबन्धनसहित अवस्थाका नाम संसार अवस्था है। सो इस संसार अवस्थाविषै अनन्तानन्त जीव द्रव्य है ते अनादिहीतैं कर्मबन्धन सहित है। ऐसा नाहीं है जो पहलैं जीव न्यारा था अर कर्म न्यारा था, पीछे इनिका संयोग भया। तो कैसैं है—जैसैं मेरुगिरि आदि अकृत्रिम स्कन्धनिविषै अनंते पुद्गल-परमाणु अनादितैं एक बन्धनरूप है, पीछें तिनमें केई परमाणु भिन्न हो हैं केई नए मिलैं है। ऐसैं मिलना बिछुरना हुवा करै है। तैसैं इस संसार विषै एक जीव द्रव्य अर अनते कर्मरूप पुद्गल परमाणु तिनि-का अनादितैं एक बन्धनरूप है, पीछैं तिनमें केई कर्म परमाणु भिन्न हो है केई नये मिलै है। ऐसैं मिलना बिछुरना हुवा करै है।

बहुरि इहां प्रश्न—जो पुद्गलपरमाणु तो रागादिकके निमित्ततैं कर्मरूप हो हैं, अनादि कर्मरूप कैसे है ?

ताका समाधान—निमित्त तो नवीन कार्य होय तिस विषैं ही सम्भवै है। अनादि अवस्थाविषै निमित्तका किछू प्रयोजन नाहीं। जैसें नवीन पुद्गल-परमाणुनिका बधान तौ स्निग्ध रूक्ष गुणके अशन ही

करि हो है अर मेरुगिरि आदि स्कन्धनि विषैं अनादि पुद्‌गलपरमाणुनिका बन्धान है तहां निमित्तका कहा प्रयोजन है ? तैसें नवीन परमाणुनिका कर्म्मरूप होना तो रागादिकनि ही करि हो है अर अनादि पुद्‌गलपरमाणुनिकी कर्म्मरूप ही अवस्था है। तहाँ निमित्तका कहा प्रयोजन है ? बहुरि जो अनादिविषैंभी निमित्त मानिए तो अनादिपना रहै नाहीं। तातें कर्मका बन्ध अनादि मानना। सो तत्वप्रदीपिका प्रवचनसार शास्त्रकी व्याख्या विषैं जो सामान्यज्ञेयाधिकार है तहां कह्या है। रागादिकका कारण तो द्रव्यकर्म है अर द्रव्यकर्म्मका कारण रागादिक है। तब वहाँ तर्क करी जो ऐसें इतरेतराश्रयदोष लागै, वह वाके आश्रय, वह वाके आश्रय, कहीं थभाव नाहीं है, तब उत्तर ऐसा दिया है—

नैवं अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्म्मसम्बन्धस्य तत्र हेतुत्वेनोपादानात्।

याका अर्थ—ऐसें इतरेतराश्रय दोष नाहीं है। जातैं अनादिका स्वयंसिद्ध द्रव्यकर्म्मका सबध है ताका तहां कारणपनाकरि ग्रहण किया है। ऐसें आगममें कह्या है। बहुरि युक्तिलें भी ऐसें ही सभवं है, जो कर्म्मनिमित्त विना पहले जीवके रागादिक कहिए तो रागादिक जीवका निज स्वभाव हो जाय, जातैं परनिमित्त विना होइ ताहीका नाम स्वभाव है। तातै कर्म्मका सम्बन्ध अनादि ही मानना।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो न्यारे न्यारे द्रव्य अर अनादितै तिनका सम्बन्ध, ऐसें कैसै सम्भवै ?

❀ नहि अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्माभिसबद्धस्यात्मनः प्राक्तनद्रव्यकमणस्तत्र हेतुत्वेनोपादानात्। प्रवचनसार टीका, २।२६

ताका समाधान—जैसें ठेठिहीसूं जल दूधका वा सोना किट्टिकका वा तुष कणका वा तेल तिलका सम्बन्ध देखिए है, नवीन इनका मिलाप भया नाहीं तैसें अनादिहीतैं जीव कर्म्मका सम्बन्ध जानना, नवीन इनिका मिलाप नाहीं भया। बहुरि तुम कही कैसे संभवै ? अनादितैं जैसें केई जुदे द्रव्य हैं तैसें केई मिले द्रव्य हैं, इस संभवनेविषै किछू विरोध तौ भासता नाहीं।

बहुरि प्रश्न – जो संबंध वा संयोग कहना तो तब संभवै जब पहले जुदे होइ पीछे मिलें। इहाँ अनादि मिले जीव कर्म्मनिका सम्बंध कैसें कह्या है।

ताका समाधान—अनादितैं तो मिले थे परन्तु पीछैं जुदे भए तब जान्या जुदे थे तो जुदे भए। तातैं पहले भी भिन्न ही थे। ऐसें अनुमान करि वा केवलज्ञानकरि प्रत्यक्ष भिन्न भासैं हैं। तिसकरि तिनका बन्धान होतैं भिन्नपना पाइए है। बहुरि तिस भिन्नताकी अपेक्षा तिनका सम्बन्ध वा संयोग कह्या है,जातैं नए मिलो वा मिले ही होहु, भिन्न द्रव्यनिका मिलापविषै ऐसें ही कहना संभवै है। ऐसें इन जीवनिका अर कर्म्मका अनादि सम्बन्ध है।

तहाँ जीवद्रव्य तो देखने जाननेरूप चैतन्यगुणका धारक है अर इन्द्रियगम्य न होने योग्य अमूर्त्तीक है, संकोचविस्तारशक्तिकों लिए असंख्यातप्रदेशी एकद्रव्य है। बहुरि कर्म्म है सो चेतनागुणरहित जड़ है अर मूर्त्तीक है, अनंत पुद्गल परमाणुनिका पिंड है तातैं एक द्रव्य नाहीं है। ऐसें ए जीव अर कर्म्म हैं सो इनका अनादि सम्बन्ध है तो भी जीवका कोई प्रदेश कर्म्मरूप न हो है अर कर्म्मका कोई परमाणु

जीवरूप न हो है। अपने अपने लक्षणको धरे जुदे जुदेही रहै हैं। जैसें सोना रूपाका एक स्कन्ध होइ तथापि पीतादि गुणनिको धरे सोना जुदा रहै है, स्वेतादि गुणनिकों धरे रूपा जुदा रहै है,तैसें जुदे जानने।

इहां प्रश्न—जो मूर्त्तीक मूर्त्तीकका तो बन्धान होना बन, अमूर्त्तीक मूर्त्तीकका बन्धान कैसें बनै ?

ताका समाधान—जैसे अव्यक्त इन्द्रियगम्य नाहीं ऐसे सूक्ष्म पुद्गल अर व्यक्त इन्द्रियगम्य हैं ऐसे स्थूल पुद्गल तिनका बन्धान होना मानिए है तैसे इन्द्रियगम्य होने योग्य नाही ऐसा अमूर्त्तीक आत्मा अर इन्द्रियगम्य होने योग्य मूर्त्तीककर्म्म इनका भी बन्धान होना मानना। बहुरि इस बन्धानविषै कोऊ किसीकों करै तो है नाहीं। यावत् बन्धान रहै तावत् साथ रहै, बिछुरै नाही अर कारणकार्यपना तिनकै बन्या रहै, इतना ही यहाँ बधान जानना। सो मूर्त्तीक अमूर्त्तीककै ऐसें बंधान होनै विषै किछू विरोध है नाहीं। या प्रकार जैसें एक जीवकै अनादि कर्म्मसम्बन्ध कह्या तैसें ही जुदा जुदा अनंत जीवनिकै जानना।

बहुरि सो कर्म्म ज्ञानावरणादि भेदनिकरि आठ प्रकार है। तहाँ च्यारि घातियाकर्म्मनिके निमित्ततै तो जीवके स्वभावका घात हो है। तहाँ ज्ञानावरण दर्शनावर्णकरि तो जीवके स्वभाव ज्ञान दर्शन तिनको व्यक्तता नाहीं हो है, तिन कर्म्मनिका क्षयोपशमके अनुसार किंचित् ज्ञान दर्शनकी व्यक्तता रहै है। बहुरि मोहनीयकरिजीवके स्वभाव नाही ऐसे मिथ्याश्रद्धान वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय तिन की व्यक्तता हो है। बहुरि अंतरायकरि जीवका स्वभाव दीक्षा लेनेकी समर्थतारूप वीर्य ताको व्यक्तता न हो है, ताका क्षयोपशमके अनुसार

किंचित् शक्ति हो है। ऐसे घातिकर्म्मनिके निमित्तत जीवके स्वभावका घात अनादिहीतें भया है। ऐसें नाही जो पहलें तो स्वभावरूप शुद्ध आत्मा था पीछें कर्म्मनिमित्ततें स्वभावघात होनेकरि अशुद्ध भया।

इहां तर्क–जो घात नाम तो अभावका है सो जाका पहले सद्भाव होय ताका अभाव कहना बनें। इहां स्वभावका तो सद्भाव है ही नाहीं, घात किसका किया ?

ताका समाधान—जीवविषै अनादिहीतें ऐसी शक्ति पाइए है, जो कर्म्मका निमित्त न होइ तो केवलज्ञानादि अपने स्वभावरूप प्रवर्त्त परन्तु अनादिहीतें कर्मका सम्बन्ध पाइए है। तातें तिस शक्तिका व्यक्तपना न भया सो शक्ति अपेक्षा स्वभाव है ताका व्यक्त न होनेदेनेकी अपेक्षा घात किया कहिए है।

बहुरि च्यार अघातिया कर्म्म हैं तिनके निमित्ततै इस आत्माकै बाह्यसामग्रीका सम्बन्ध बनैहै तहां वेदनीयकरि तो शरीरविषै वा शरीरतैं बाह्य नानाप्रकार सुख दुःखको कारण परद्रव्यनिका सयोग जुरै है अर आयुकरि अपनी स्थितिपर्यंत पाया शरीरका सम्बन्ध नाही छूट सकै है अर नामकरि गति जाति शरीरादिक निपजै हैं अर गोत्रकरि ऊंचा नीचा कुलकी प्राप्ति हो है,ऐसै अघातिकर्म्मनिकरि बाह्य सामग्री भेली होय है ताकरि मोहकेउदयका सहकारण होते जीव सुखी दुःखी हो है। अर शरीरादिकनिके सम्बन्धतै जीवके अमूर्त्तत्वादि स्वभाव अपनें स्वार्थको नाही करैहैं। जैसै कोऊ शरीरको पकरै तो आत्मा भी पकरचा जाय। बहुरि यावत् कर्मका उदय रहै तावत् बाह्य सामग्री तैसै ही बनी रहै अन्यथा न होय सकै, ऐसा इन अघातिकर्मनिका निमित्त जानना।

इहां कोऊ प्रश्न करै कि कर्म्म तो जड़ है, किछु बलवान नाहीं, तिनकरि जीवके स्वभावका घात होना वा बाह्य सामग्रीका मिलना कैसे सम्भवै ?

ताका समाधान—जो कर्म आप कर्त्ता होय उद्यमकरि जीवके स्वभावको घातै, बाह्य सामग्रीको मिलावै तब कर्म्मकै चेतनपनों भी चाहिए अर बलवानपनों भी चाहिए सा तो है नाहीं, सहजही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जब उन कर्मनिका उदयकाल होय तिस कालविषै आपही आत्मा स्वभावरूप न परिणमैं, विभावरूप परिणमै वा अन्य द्रव्य है ते तैसैं ही सम्बन्धरूप होय परिणमैं। जैसे काहू पुरुषकै सिर परि मोहनधूलि परा है तिसकरि सो पुरुष बावला भया तहाँ उस मोहनधूलिकै ज्ञान भी न था अर बावलापना भी न था अर बावलापना तिस मोहनधूलिही करि भया देखिए है। मोहनधूलिका तो निमित्त है अर पुरुष आपही बावला हुआ परिणमै है,ऐसाही निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है। बहुरि जैसें सूर्यका उदयका कालविषै चकवा चकवीनिका संयोग होय तहां रात्रिविषै किसीने द्वेषबुद्धितै ल्यायकरि मिलाए नाही,सूर्य उदयका निमित्तपाय आपही मिलै है अर सूर्यास्तका निमित्त पाय आपही बिछुरैं हैं। ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है। तैसैं ही कर्मका भी निमित्त नैमित्तिक भाव जानना। ऐसै कर्मका उदय करि अवस्था होय है बहुरि तहां नवीन बन्ध कैसें हो है सो कहिए है—

नूतन बंध विचार

जैसैं सूर्यका प्रकाश है सो मेघपटलतैं जितना व्यक्त नाहीं तितनेका तो तिस कालविषै अभाव है बहुरि तिस मेघपटलका मन्दपनातैं जेता

प्रकाश प्रगटै है सो तिस सूर्यके स्वभावका अंश है, मेघपटल जनित नाहीं है। तैसें जीवका ज्ञान दर्शन वीर्य स्वभाव है सो ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायके निमित्ततैं जितने व्यक्त नाहीं तितनेका तो तिसकालविषै अभाव है। बहुरि तिन कर्म्मनिका क्षयोपशमतें जेता ज्ञान दर्शन वीर्य प्रगटै है सो तिस जीवके स्वभावका अंश ही है,कर्म्म-जनित उपाधिक भाव नाही है। सो ऐसा स्वभावके अंशका अनादितैं लगाय कबहूँ अभाव न हो है। याहीकरि जीवका जीवत्वपना निश्चय कीजिए है। जो यह देखनहार जाननहार शक्तिकों धरे वस्तु है सो ही आत्मा है। बहुरि इस स्वभावकरि नवीन कर्मका बंध नाही है जातै निज स्वभाव ही बन्धका कारण होय तो बन्धका छूटना कैसें होय। बहुरि तिन कर्म्मनिके उदयतै जेता ज्ञान दर्शन वीर्य अभावरूप है तावरि भी बन्ध नाही है जातै आपही का अभाव होतै अन्यकों कारण कैसे होय। तातै ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तरायके निमित्ततै निपजे भाव नवीनकर्म्मबन्धके कारण नाही।

बहुरि मोहनीय कर्म्मकरि जीवकै अयथार्थश्रद्धानरूप तो मिथ्यात्व-भाव हो है वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय हो हैं। ते यद्यपि जीवके अस्तित्वमय है,जीवतै जुदे नाही, जीव ही इनका कर्ता है, जीव के परिणमनरूप ही ये कार्य हैं तथापि इनका होना मोहकर्म्मके निमित्ततैं ही है, कर्म्मनिमित्त दूरि भए इनका अभाव हो है तातैं ए जीवकैं निजस्वभाव नाहीं. उपाधिकभाव हैं। बहुरि इन भावनिकरि नवीन बन्ध हो है तातै मोहके उदयतै निपजेभाव बन्धके कारण हैं। बहुरि अघातिकर्म्मनिके उदयतें बाह्य सामग्री मिलै है,तिन विषै शरीरादिक

तो जीवके प्रदेशनिसों एक क्षेत्रावगाही होय एक बन्धानरूप हो हैं अर धन कुटुम्बादिक आत्मातैं भिन्नरूप हैं सो ए सर्व बन्धके कारण नाहीं हैं, जातै परद्रव्य बंधका कारण न होय। इनविषै आत्माके ममत्वादिरूप मिथ्यात्वादि भाव हो हैं सोई बंधका कारण जानना।

योग और उससे होनेवाले प्रकृति बन्ध प्रदेश बन्ध

बहुरि इतना जानना जो नामकर्म्मके उदयतैं शरीर वा वचन वा मन निपजै है तिनिकी चेष्टाके निमित्ततै आत्माके प्रदेशनिका चंचलपना हो है। ताकरि आत्माके पुद्गलवर्गणामों एक बन्धान होनेकी शक्ति हो है ताका नाम योग है। ताके निमित्ततै समय समय प्रति कर्म्मरूप होने योग्य अनंत परमाणूनिका ग्रहण हो है। तहाँ अल्पयोग होय तो थोरे परमाणुनिका ग्रहण होय, बहुत योग होयतो घने परमाणुनिका ग्रहण होय। बहुरि एक समय विषै जे पुद्गलपरमाणु ग्रहे तिनि विषै ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति वा तिनकी उत्तर प्रकृतिनिका जैसें सिद्धांतविषैं कह्या है तैसे बटवारा हो है। तिस बटवारा माफिक परमाणु तिन प्रकृतिनिरूप आपही परिणमै हैं। विशेष इतना कि योग दोय प्रकार है-शुभयोग,अशुभयोग। तहा धर्मके अंगनिविषै मनवचनकायकी प्रवृत्ति भए तो शुभयोग हो है अर अधर्मके अंगनिविषैं तिनकी प्रवृत्ति भए अशुभयोग हो है। सो शुभ योग होहु वा अशुभयोग होहु सम्यक्त्व पाए बिना घातियाकर्मनिका तो सर्वप्रकृतिनिका निरन्तर बंध हुआ ही करै है। कोई समय किसी भी प्रकृतिका बन्ध हुआ बिना रहता नाहीं। इतना विशेष है जो मोहनीयका हास्य शोक युगलविषैं, रति अरति युगलविषै,तीनों वेदनिविषै एकै काल एक एक ही प्रकृतिनिका

बन्ध हो है। बहुरि अघातियानिकी प्रकृतिनिविषै शुभोपयोग होतें साता वेदनीय आदि पुण्यप्रकृतिनिका बन्ध हो है। अशुभ योग होतें असातावेदनीय आदि पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। मिश्रयोग होतें केई पुण्यप्रकृतिनिका केई पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। ऐसा योगके निमित्त तें कर्मका आगमन हो है। तातें योग है सो आस्रव है। बहुरि याकरि ग्रहे कर्मपरमाणूनिका नाम प्रदेश है तिनिका बंध भया अर तिन विषै मूल उत्तरप्रकृतिनिका विभाग भया तातैं योगनिकरि प्रदेशबन्ध वा प्रकृतिबन्धका होना जानना।

कषाय से स्थिति और अनुभाग

बहुरि मोहके उदयतें मिथ्यात्व क्रोधादिक भाव हो हैं, तिन सबनिका नाम सामान्यपनै कषाय है। ताकरि तिनकर्मप्रकृतिनिको स्थिति बन्धै है सो जितनी स्थिति बंधै तिसविषै अबाधाकाल छोड़ तहाँ पीछै यावत् बँधी स्थितिपूर्ण होय तावत् समय समय तिम प्रकृतिका उदय आया ही करै। सो देव मनुष्य तिर्यचायु बिना अन्य सर्व घातिया अघातिया प्रकृतिनिका अल्पकषाय होत थोरा स्थिति बन्ध होय, बहुत कषाय होते घना स्थितिबन्ध होय। इन तीन आयूनि का अल्पकषायतैं बहुत अर बहुत कषायतैं अल्प स्थितिबन्ध जानना। बहुरि तिस कषायहीकरि तिन कर्मप्रकृतिनिविषै अनुभागशक्ति का विशेष हो है सो जैसा अनुभाग बधै तैसा ही उदयकालविषै तिन प्रकृतिनिका घना थोरा फल निपजै है। तहाँ घातिकर्मनिकी सब प्रकृतिनिविषै वा अघातिकर्मनिकी पाप प्रकृतिनिविषै तो अल्पकषाय होते थोरा अनुभाग बंधै है, बहुत कषाय होतें घना अनुभाग बधै

है। बहुरि पुण्यप्रकृतिनिविषै अल्पकषाय होतें घना अनुभाग बंधै है, बहुत कषाय होतें थोरा अनुभाग बंधै है। ऐसै कषायनिकरि कर्मप्रकृतिनिके स्थिति अनुभागका विशेष भया तातै कषायनिकरि स्थितिबंध अनुभागबंधका होना जानना। इहाँ जैसें बहुत भी मदिरा है अर ताविषै थोरे कालपर्यंत थोरी उन्मत्तता उपजावनेको शक्ति है तो वह मदिरा हीनपनाकों प्राप्त है। बहुरि थोरी भी मदिरा है ताविषै बहुत कालपर्यंत घनो उन्मत्तता उपजावनेकी शक्ति है तो वह मदिरा अधिकपनाकों प्राप्त है। तैसे घने भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु है अर तिनविषै थोरे कालपर्यंत थोरा फल देने की शक्ति है तो ते कर्मप्रकृति हीनताकों प्राप्त हैं। बहुरि थोरे भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु हैं अर तिनविषै बहुत कालपर्यंत बहुत फल देनेकी शक्ति है तो वे कर्मप्रकृति अधिकपनाको प्राप्त है। तातै योगनिकरि भया प्रकृतिबन्ध प्रदेशबंध बलवान नाही, कषायनिकरि किया स्थितिबंध अनुभागबंध ही बलवान है। तातै मुख्यपने कषाय ही बंध का कारण जानना। जिनको बंध न करना होय ते कषाय मति करो।

जड़ पुद्गल परमाणुओं का यथायोग्य प्रकृतिरूप परिणमन

बहुरि इहां कोऊ प्रश्न करै कि पुद्गलपरमाणु तो जड है, उनकै किछू ज्ञान नही, कैसें यथायोग्य प्रकृतिरूप होय परिणमै है?

ताका समाधान – जैसें भूख होतें मुखद्वारकरि ग्रह्याहुवा भोजनरूप पुद्गलपिंड सो मांस शुक्र शोणित आदि धातुरूप परिणमै है। बहुरि तिस भोजनके परमाणुनिविषै यथायोग्य कोई धातुरूप थोरे कोई धातुरूप घने परमाणु हो हैं। बहुरि तिनविषें केई परमाणुनिका

सम्बन्ध घने काल रहै, केईनिका थोरे काल रहै, बहुरि तिन परमाणु-निविषें केई तो अपने कार्य निपजावनेकी बहुत शक्तिकों धरै हैं, केई स्तोकशक्तिकों धरै हैं। सो ऐसैं होने विषै कोऊ भोजनरूप पुद्गलपिंड-के ज्ञान तो नाहीं है जो मैं ऐसैं परिणमूं अर और भी कोऊ परिणमा-वनहारा नाहीं है, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक भाव बनि रह्या है, ताकरि तैसैं ही परिणमन पाइए है। तैसैं ही कषाय होतें योग द्वार-करि ग्रह्या हुवा कर्मवर्गणारूप पुद्गलपिंड सो ज्ञानावरणादि प्रकृति-रूप परिणमै है। बहुरि तिन कर्म परमाणुनिविषै यथायोग्य कोई प्रकृतिरूप थोरे कोई प्रकृतिरूप घने परमाणु हो हैं। बहुरि तिन विषैं केई परमाणुनिका सम्बन्ध घने काल रहै, केईनिका थोरे काल रहै। बहुरि तिन परमाणुनिविषै कोऊ तो अपने कार्य निपजावनेकी बहुत शक्ति धरै है, कोऊ थोरी शक्ति धरै है सो ऐसैं होनेविषै कोऊ कर्म-वर्गणारूप पुद्गलपिंडकै ज्ञान तो नाही है जो मैं ऐसैं परिणमूं अर और भी कोई परिणमावनहारा है नाही, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक-भाव बनि रह्या है ताकरि तैसे ही परिणमन पाइये है। सो ऐसैं तो लोकविषैं निमित्त नैमित्तिक घने ही बनि रहे हैं। जैसें मंत्रनिमित्त-करि जलादिकविषै रोगादिक दूरि करनेकी शक्ति हो है वा कांकरी आदिविषै सर्पादि रोकनेकी शक्ति हो है तैसे ही जीव भावके निमित्त-करि पुद्गल परमाणुनिविषै ज्ञानावरणादिरूप शक्ति हो है। इहाँ विचारकरि अपने उद्यमतें कार्य करै तो ज्ञान चाहिए अर तैसा निमित्त बने स्वयमेव तैसैं परिणमन होय तो तहाँ ज्ञानका किछू प्रयोजन नाही, या प्रकार नवीनबंध होने का विधान जानना।

भावोंसे कर्मोंकी पूर्व बद्ध अवस्थाका परिवर्तन

अब जे परमाणु कर्मरूप परिणमैं तिनका यावत् उदयकाल न आवै तावत् जीवके प्रदेशनिसों एक क्षेत्रावगाहरूप बधान रहै है। तहां जीवभावके निमित्तकरि केई प्रकृतिनिकी अवस्थाका पलटना भी होय जाय है। तहाँ केई अन्य प्रकृतिनिके परमाणु थे ते संक्रमणरूप होय अन्य प्रकृतिके परमाणु होय जांय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग बहुत था सो अपकर्षण होयकरि थोरा होय जाय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग थोरा था सो उत्कर्षण होयकरि बहुत हो जाय। सो ऐसें पूर्वे बंधे परमाणुनिकी भी जीव-भावनिका निमित्त पाय अवस्था पलटै है अर निमित्त न बनै तो न पलटै, जैसेके तैसे रहैं। ऐसै सत्तारूप कर्म रहै हैं।

कर्मोंके फलदानमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध

बहुरि जब कर्मप्रकृतिनिका उदयकाल आवै तब स्वयमेव तिन प्रकृतिनिका अनुभागके अनुसार कार्य बनै। कर्म्म तिनके कार्यनिकों निपजावता नाहीं। याका उदयकाल आए वह कार्य स्वयं बनै है। इतना ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध जानना। बहुरि जिस समयफल निपज्या तिसका अनन्तर समयविषै तिन कर्मरूप पुद्गलनिकै अनुभाग शक्तिके अभाव होनेतै कर्मत्वपनाका अभाव हो है। ते पुद्गल अन्य-पर्यायरूप परिणमैं हैं। याका नाम सविपाक निर्जरा है। ऐसें समय समय प्रति उदय होय कर्म खिरैं हैं। कर्मत्वपना नास्ति भए पीछैं ते परमाणु तिस ही स्कंधविषै रहो वा जुदे होय जाहु, किछू प्रयोजन रह्या नाहीं।

इहां इतना जानना—इस जीवके समय समय प्रति अनन्त परमाणु बंधै हैं तहां एक समयविषें बंधे परमाणु ते आबाधाकाल छोड़ अपनी स्थितिके जेते समय हाहिं तिन विषै क्रमतें उदय आवै हैं। बहुरि बहुत समयनिविषें बंध परमाणु जे एक समय विषै उदय आवने योग्य हैं ते इकट्ठे होय उदय आवै हैं। तिन सब परमाणुनिका अनुभाग मिले जेता अनुभाग होय तितना फल तिस काल विषै निपजै है। बहुरि अनेक समयनिविषै बंधे परमाणु बंधसमयतें लगाय उदयसमय पर्यंत कर्मरूप अस्तित्वको धरे जीवसों सम्बन्धरूप रहैं हैं। ऐसैं कर्मनिकी बंधउदय सत्तारूप अवस्था जाननी। तहा समयसमय प्रति एक समयप्रबद्ध मात्र परमाणु बंधै हैं, एक समय प्रबद्ध मात्र निर्जरै हैं। ड्योढगुणहानिकरि गुणित समय प्रबद्ध मात्र सदा काल सत्ता रहै है। सो इन सबनिका विशेष आगे कर्मअधिकारविषै लिखेंगे तहा जानना।

द्रव्यकर्म और भावकर्मका स्वरूप

बहुरि ऐसै यह कर्म है सो परमाणुरूप अनन्त पुद्गलद्रव्यनिकरि निपजाया कार्य है तातै याका नाम द्रव्यकर्म है। बहुरि मोहके निमित्ततें मिथ्यात्वक्रोधादिरूप जीवका परिणाम है सो अशुद्ध भावकरि निपजाया कार्य है तातैं याका नाम भावकर्म है। सो द्रव्यकर्मके निमित्ततें भावकर्म होय अर भावकर्मके निमित्ततें द्रव्यकर्म का बंध होय। बहुरि द्रव्यकर्मतें भावकर्म, भावकर्मतें द्रव्यकर्म, ऐसै ही परस्पर कारणकार्यभावकरि संसारचक्रविषै परिभ्रमण हो है। इतना विशेष जानना—तीव्र मन्द बन्ध होनेतें वा संक्रमणादि होनेतें वा एक

कालविषै बन्ध्या अनेककालविषै वा अनेककालविषैं बधे एककालविषै उदय आवनेतै काहू कालविषै तीव्रउदय आवै तब तीव्रकषाय होय तब तीव्र ही नवीनबन्ध होय। अर काहूकालविषै मंद उदय आवै तब मंद कषाय होय तब मंद ही नवीनबन्ध होय। बहुरि तिन तीव्रमंदकषायनिहीके अनुसारि पूर्वबन्धे कर्मनिका भी संक्रमणादिक होय तो होय। या प्रकार अनादितै लगाय धाराप्रवाहरूप द्रव्यकर्म वा भावकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

बहुरि नामकर्मके उदयतै शरीर हो है सो द्रव्यकर्मवत् किंचित् सुख दुःखको कारण है। तातैं शरारको नोकर्म कहिए है। इहा नो शब्द ईषत् कषायवाचक जानना। सो शरीर पुद्गलपरमाणुनिका पिंड है अर द्रव्यइन्द्रिय, द्रव्यमन, श्वासोश्वास अर वचन ए भी शरीरके अग हैं सो ए भी पुद्गलपरमाणुनिके पिड जानने। सो ऐसें शरीरके अर द्रव्यकर्मसम्बन्धसहित जीवके एक क्षेत्रावगाहरूप बंधान होहै सो शरीरका जन्म समयतै लगाय जेती आयुकी स्थिति होय तितने काल पर्यन्त शरीरका सम्बन्ध रहै है। बहुरि आयु पूर्ण भए मरण हो है। तब तिस शरीरका सम्बन्ध छूटै है। शरीर आत्मा जुदे जुदे होय जाय हैं। बहुरि ताके अनन्तर समयविषै वा दूसरे तोसरे चौथे समय जीव कर्मउदयके निमित्ततै नवीन शरीर धरै है तहा भी अपने आयुपर्यन्त तैसें ही सम्बन्ध रहै है, बहुरि मरण हो है तब तिससो सम्बन्ध छूटै है। ऐसें ही पूर्व शरीरका छोड़ना नवीन शरीरका ग्रहण करना अनुक्रमतैं (क्रिया) करै है। बहुरि यह आत्मा यद्यपि असंख्यातप्रदेशी है तथापि संकोचविस्तारशक्तितै शरीरप्रमाण ही रहै है। विशेष इतना—समुद्घात

होतें शरीरतें बाह्य भी आत्माके प्रदेश फैलै हैं। बहुरि अंतराल समयविषै पूर्व शरीर छोड्या था तिस प्रमाण रहै है। बहुरि इस शरीरके अंग भूत द्रव्यइन्द्रिय अर मन तिनके सहायतें जीवकैं जानपना की प्रवृत्ति हो है। बहुरि शरीरकी अवस्थाके अनुसार मोहके उदयतें सुखी दुःखी हो है। बहुरि कबहूँ तो जीवकी इच्छाके अनुसार शरीर प्रवर्तै है, कबहू शरीरकी अवस्थाके अनुसार जीव प्रवर्तै है। कबहूँ जीव अन्यथा इच्छारूप प्रवर्तै है, पुद्गल अन्यथा अवस्थारूप प्रवर्तै है। ऐसैं इस नोकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

नित्य निगोद और इतर निगोद

तहां अनादितैं लगाय प्रथम तो इस जीवके नित्यनिगोदरूप शरीर का सम्बन्ध पाइये है। तहां नित्यनिगोद शरीरकों धरि आयु पूर्ण भए मरि बहुरि नित्यनिगोदशरीरकों धारै है बहुरि आयु पूर्ण भए मरि नित्यनिगोदशरीरहीकों धारै है। याही प्रकार अनंतानंत प्रमाण लिए जीवराशि है सो अनादितैं तहां ही जन्ममरण किया करै है। बहुरि तहांतें छै महीना अर आठ समयविषं छैस्यै आठ जीव निकसैं हैं ते निकसि अन्य पर्यायनिकों धारैं हैं। सो पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, प्रत्येक-बनस्पतीरूप एकेन्द्रिय पर्यायनिविषें वा बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रियरूप पर्यायनिविषै वा नारक तियँच मनुष्य देवरूप पंचेन्द्रिय पर्यायनिविषै भ्रमण करै हैं, बहुरि तहाँ कितेककाल भ्रमणकरि फिर निगोदपर्यायको पावै सो वाका नाम इतरनिगोद है। बहुरि तहां कितेककाल रहै तहां तें निकसि अन्य पर्यायनिविषै भ्रमण करै है। तहां परिभ्रमण करने का उत्कृष्ट काल पृथ्वी आदि स्थावरनिविषै असंख्यात कल्पमात्र है

अर द्वीन्द्रियादि पंचेन्द्रियपर्यंत त्रसनिविषैं साधिक दोय हजार सागर है अर इतरनिगोदविषै अढाई पुद्गलपरिवर्तनमात्र है सो यहु अनंतकाल है। बहुरि इतरनिगोदतैं निकसि कोई स्थावर पर्याय पाय बहुरि निगोद जाय ऐसैं एकेंद्रियपर्यायनिविषै उत्कृष्ट परिभ्रमणकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र है। बहुरि जघन्य सर्वत्र एक अंतर्मुहूर्त काल है। ऐसैं घना तौ एकेन्द्रिय पर्यायनिका ही धरना है। अन्य पर्याय पावना तो काकतालीय न्यायवत् जानना। या प्रकार इस जीवकै अनादिहीतैं कर्मबन्धनरूप रोग भया है।

इति कर्म्मबन्धननिदान वर्णनम्।

अब इस कर्मबन्धनरूप रोगके निमित्ततैं जीवकी कैसी अवस्था होय रही है सो कहिए है। प्रथम तो इस जीवका स्वभाव चैतन्य है सो सबनिका सामान्यविशेष स्वरूपका प्रकाशनहारा है। जो उनका स्वरूप होय सो आपकों प्रतिभासै है तिसहीका नाम चैतन्य है। तहाँ सामान्यरूप प्रतिभासनेका नाम दर्शन है, विशेषरूप प्रतिभासनेका नाम ज्ञान है। सो ऐसे स्वभावकरि त्रिकालवर्ती सर्वगुणपर्यायसहित सर्व पदार्थनिकों प्रत्यक्ष युगपत् बिना सहाय देखै जानै ऐसी आत्माविषैं शक्ति सदा काल है। परन्तु अनादिहीतैं ज्ञानावरण दर्शनावरणका सम्बन्ध है ताके निमित्ततैं इस शक्तिका व्यक्तपना होता नाहीं। तिन कर्मनिका क्षयोपशमतैं किंचित् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वा अचक्षुदर्शनपाइए है अर कदाचित् चक्षुदर्शन वा अवधिदर्शन भी पाइए है। सो इनिकी भी प्रवृत्ति कैसें है सो दिखाइए है।

सो प्रथम तो मतिज्ञान है सो शरीरके अगभूत जे जीभ, नासिका,

नयन, कान, स्पर्शन ए द्रव्यइन्द्रिय अर हृदयस्थान विषें आठ पाखड़ीका फूल्या कमलके आकार द्रव्यमन तिनके सहायहीतें जानै है । जैसें जाकी दृष्टि मन्द होय सो अपने नेत्रकरि ही देखै है परन्तु चश्मा दीए ही देखै. बिना चश्मेके देख सकै नाहीं । तैसें आत्माका ज्ञान मन्द है सो अपने ज्ञानहीकरि जानै है परन्तु द्रव्यइन्द्रिय वा मनका सम्बन्ध भए ही जानै,तिन बिना जान सकै नाहीं । बहुरि जैसें नेत्र तो जैसाका तैसा है अर चश्मा विषें किछू दोष भया होय तो देखि सकै नाहीं अथवा थोरा दीसै अथवा औरका और दीसै, तैसें अपना क्षयोपशम तो जैसाका तैसा है अर द्रव्य इन्द्रिय वा मनके परमाणु अन्यथा परिणमें होंय तो जान सकै नाहीं, अथवा थोरा जानें अथवा औरका और जानै । जातें द्रव्यइन्द्रिय वा मनरूप परमाणुनिका परिणमनकै अर मतिज्ञानकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है सो उनका परिणमनके अनुसार ज्ञानका परिणमन होय है । ताका उदाहरण-जैसे मनुष्यादिककै बाल वृद्ध अवस्थाविषै द्रव्यइन्द्रिय वा मन शिथिल होय तब जानपना भी शिथिल होय । बहुरि जमैं शीतवायु आदिके निमित्ततें स्पर्शनादि इन्द्रियनिके वा मनके परमाणु अन्यथा होय तब जानना न होय वा थोरा जानना होय वा अन्यथा जानना होय । बहुरि इस ज्ञानकै अर बाह्य द्रव्यनिकै भी निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पाइए है । ताका उदाहरण-जैसें नेत्रइन्द्रियके अन्धकारके परमाणु वा फूला आदिकके परमाणु वा पाषाणादिके परमाणु आदि आड़े आ जाएँ तो देखि न सकै । बहुरि लाल कांच आड़ा आवै तो सब लाल ही दीसै,हरित कांच आड़ा आवै तो हरितही दीसै ऐसें अन्यथा जानना होय। बहुरि दुरबीन

चश्मा इत्यादि आड़ा आवै ता बहुत दीसने लग जाय। प्रकाश जल हिलव्वी कांच इत्यादिकके परमाणु आड़े आवे तो भी जैसाका तैसा दीखै। ऐसें अन्य इन्द्रिय वा मनकै भी यथासम्भव निमित्तनैमित्तिकपना जानना। बहुरि मंत्रादिक प्रयोगतै वा मदिरा पानादिकतै वा घृतादिकके निमित्ततै न जानना वा थोरा जानना वा अन्यथा जानना हो है। ऐसे यहु ज्ञान बाह्य द्रव्यके भी आधीन जानना। बहुरि इस ज्ञानकरि जो जानना हो है सो अस्पष्ट जानना हो है। दूरतै कैसा ही जानै, समीपतै कैसा ही जानै, तत्काल कैसा ही जानै, जानते बहुत बार होय जाय तब कैसा ही जानै। काहूकों संशय लिए जानै काहूको अन्यथा जानै, काहूको किंचित् जानै, इत्यादि रूपका निर्मल जानना होय सकै नाहीं। ऐसें यहु मतिज्ञान पराधीनता लिए इन्द्रिय मन द्वारकरि प्रवर्तै है। तहाँ इन्द्रियनिकरि तो जितने क्षेत्रका विषय होय तितने क्षेत्र विषै जे वर्तमान स्थूल अपने जानने योग्य पुद्गलस्कंध होय तिनहीको जानै। तिन वषै भी जुदे जुदे इन्द्रियनिकरि जुदे जुदे कालविषै कोई स्कंधके स्पर्शादिकका जानना हो है। बहुरि मनकरि अपने जानने योग्य किंचिन्मात्र त्रिकाल सम्बन्धी दूर क्षेत्रवर्ती वा समीप क्षेत्रवर्ती रूपी अरूपी द्रव्य वा पर्याय तिनकों अत्यन्त अस्पष्टपने जानै है सो भी इन्द्रियनिकरि जाका ज्ञान भया होय वा अनुमानादिक जाका किया होय तिसहीको जान सकै है। बहुरि कदाचित् अपनी कल्पनाहा करि असत्को जानै है। जैसें सुपने विषै वा जागते भी जे कदाचित् कहीं न पाइए ऐसे आकारादिक चिंतवै वा जैसे नाहीं तैसे मानै। ऐसें मन करि जानना होय है सो यहु

इन्द्रिय वा मन द्वारकरि जो ज्ञान हो है ताका नाम मतिज्ञान है। तहां पृथ्वी जल अगिन पवन वनस्पतीरूप एकेंन्द्रियके स्पर्शहीका ज्ञान है। लट शंख आदि बेइन्द्रिय जोवनिकै स्पर्श रसका ज्ञान है। कीड़ा मकोड़ा आदि तेइन्द्रिय जीवनिकं स्पर्श रस गधका ज्ञान है। भ्रमर मक्षिका पतंगादिक चौइन्द्रिय जीवनिकं स्पर्श रस गंध वर्णका ज्ञान है। मच्छ गऊ कबूतर इत्यादिक तिर्यंच अर मनुष्य देव नारकी ए पंचेन्द्रिय हैं तिनकै स्पर्श रस गध वर्ण शब्दनिका ज्ञान है। बहुरि तिर्यंचनिविषै केई सज्ञी हैं केई असज्ञी है। तहा सज्ञीनिकै मनजनित ज्ञान है, असज्ञीनिकं नाहीं है। बहुरि मनुष्य देव नारकी सज्ञी ही हैं, तिन सबनिकै मनजनित ज्ञान पाइए है, ऐसे मतिज्ञानकी प्रवृत्ति जाननी।

बहुरि मतिज्ञानकरि जिस अर्थको जान्या होय ताके सम्बन्धतें अन्य अर्थको जाकरि जानिये सो श्रुतज्ञान है। सो दोय प्रकार है। अक्षरात्मक १, अनक्षरात्मक २। तहां जैसे 'घट' ए दोय अक्षर सुने वा देखे सो तो मतिज्ञान भया तिनके सम्बन्धते घट पदार्थका जानना भया सो श्रुतज्ञान भया, ऐसै अन्य भी जानना। सो यहु तो अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान है। बहुरि जैसे स्पर्शकरि शीतका जानना भया सो तो मतिज्ञान है ताके सम्बन्धतें यह हितकारी नाही यातें भाग जाना इत्यादिरूप ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है, ऐसे अन्य भी जानना। यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। तहाँ एकेन्द्रियादिक असंज्ञी जीवनिकै तो अनक्षरात्मक ही श्रुतज्ञान है अर शेष सज्ञो पचेन्द्रियकै दोऊ हैं। सो यहु श्रुतज्ञान है सो अनेक प्रकार पराधीन जो मतिज्ञान ताके भी आधीन है वा अन्य अनेक कारणनिके आधीन है, तातें महापराधीन जानना।

बहुरि अपनी मर्यादाके अनुसार क्षेत्रकालका प्रमाण लिए रूपी पदार्थनिको स्पष्टपने जाकरि जानिये सो अवधिज्ञान है सो यह देव नारकीनिकै तो सर्वकै पाइए है अर संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अर मनुष्यनिकै भी कोईकै पाइए है। असंज्ञीपर्यन्त जीवनिकै यह होता ही नाहीं। सो यह भी शरीरादिक पुद्गलनिके आधीन है। बहुरि अवधि के तीन भेद है। देशावधि १, परमावधि २, सर्वावधि ३। सो इनविषै थोरा क्षेत्रकालकी मर्यादा लिए किंचिन्मात्र रूपी पदार्थको जाननहारा देशावधि है सो ही काई जीवकै होय है। बहुरि परमावधि, सर्वावधि अर मनःपर्यय ए ज्ञान मोक्षमार्गविषै प्रगटै हैं। केवलज्ञान मोक्षमार्ग-स्वरूप है। तातै इस अनादि संसार अवस्था विषै इनका सद्भाव ही नाही है. ऐसैं तो ज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि इन्द्रिय वा मनकै स्पर्शादिक विषय तिनका सम्बन्ध होतै प्रथम कालविषैं मतिज्ञानके पहले जो सत्तामात्र अवलोकनरूप प्रतिभास हो है ताका नाम चक्षु-दर्शन वा अचक्षुदर्शन है। तहां नेत्र इन्द्रियकरि दर्शन होय ताका नाम तो चक्षुदर्शन है सो तो चोइन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवनिहीकै हो है। बहुरि स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र इन च्यार इन्द्रिय अर मन करि दर्शन होय ताका नाम अचक्षुदर्शन है सो यथायोग्य एकेन्द्रियादि जीवनिकै हो है।

बहुरि अवधिके विषयनिका सम्बन्ध होतैं अवधिज्ञानके पहले जो सत्तामात्र अवलोकनरूप प्रतिभास होय ताका नाम अवधिदर्शन है सो जिनकै अवधिज्ञान सम्भवै तिनहीकै यह हो है। जो यह चक्षु अचक्षु अवधिदर्शन है सो मतिज्ञान वा अवधिज्ञानवत् पराधीन जानना। बहुरि केवलदर्शन मोक्षस्वरूप है ताका यहां सद्भाव ही नाहीं। ऐसैं

दर्शनका सद्भाव पाइए है। या प्रकार ज्ञान दर्शनका सद्भाव ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमके अनुसार हो है। जब क्षयोपशम थोरा हो है तब ज्ञानदर्शनकी शक्ति भी थोरी हो है। जब बहुत हो है तब बहुत हो है। बहुरि क्षयोपशमतै शक्ति तो ऐसी बनी रहै अर परिणमनकरि एक जीवकै एक कालविषै एक विषयहीका देखना वा जानना है। इस परिणमनहीका नाम उपयोग है। तहाँ एक जीवकै एक कालविषै कै तो ज्ञानोपयोग हो है कै दर्शनोपयोग हो है। बहुरि एक उपयोगका भी एक ही भेदकी प्रवृत्ति हो है। जैसै मतिज्ञान होय तब अन्य ज्ञान न होय। बहुरि एक भेदविषै भी एक विषयविषै ही प्रवृत्ति हो है। जैसे स्पर्शको जानै तब रसादिकको न जानै। बहुरि एक विषय विषै भी ताके कोऊ एक अंग ही विषै प्रवृत्ति हो है। जैसे उष्णस्पर्शकों जानै तब रूक्षादिकको न जानै। ऐसै एक जीवकै एक कालविषै एक ज्ञेय वा दृश्यविषै ज्ञान वा दर्शनका परिणमन जानना। सो ऐसै ही देखिए है। जब सुनने विषै उपयोग लग्या होय तब नेत्रनिके समीप तिष्टता भी पदार्थ न दीसै, ऐसैं ही अन्य प्रवृत्ति देखिए है। बहुरि परिणमनविषै शीघ्रता बहुत है ताकरि काहू कालविषै ऐसा मानिए है कि अनेक विषयनिका युगपत् जानना वा देखना हो है सो युगपत् होता नाही, क्रम ही करि हो है, संस्कारबलतै तिनका साधन रहै है। जैसैं कागलेके नेत्र के दोय गोलक है, पूतरी एक है सो फिरै शीघ्र है ताकरि दोऊ गोलकनिका साधन करै है तैसैं ही इस जीवके द्वार तो अनेक हैं अर उपयोग एक सो फिरै शीघ्र है ताकरि सर्व द्वारनिका साधन रहै है।

इहां प्रश्न—जो एक कालविषं एक विषयका जानना वा देखना हो है ता इतना ही क्षयोपशम भया कहो, बहुत काहेकूं कहो ? बहुरि तुम कहो हो, क्षयोपशमतें शक्ति हो है तो शक्ति तो आत्माविषै केवलज्ञान-दर्शनकी भी पाइए है।

ताका समाधान—जैसें काहू पुरुषकै बहुत ग्रामनिविषै गमन करने की शक्ति है। बहुरि ताकौं काहूने रोक्या अर यहु कह्या, पांच ग्रामनिविषै जावो परन्तु एक दिनविषै एक ही ग्रामको जावो। तहाँ उस पुरुष के बहुत ग्राम जानेकी शक्ति तो द्रव्य अपेक्षा पाइए है, अन्य काल विषे सामर्थ्य होय, वर्तमान सामर्थ्यरूप नाहीं है परन्तु वर्तमान पांच ग्रामनितैं अधिक ग्रामनिविषै गमन करि सकै नाहीं। बहुरि पांच ग्रामनि विषै जानेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्यरूप शक्ति है जातैं इनविषं गमन करि सकै है। बहुरि व्यक्तता एक दिनविषं एक ग्रामका गमन करनेहीकी पाइए है। तैसें इस जीवकै सर्वका देखनेका जानने-की शक्ति है। बहुरि याकौ कर्मने रोक्या अर इतना क्षयोपशम भया कि स्पर्शादिक विषयनिको जानो वा देखो परन्तु एक काल विषै एक-हीको जानो वा देखो। तहां इस जीवके सबके देखने जाननेकी शक्ति तो द्रव्यअपेक्षा पाइए है. अन्य-कालविषै सामर्थ्य होय परन्तु वर्तमान सामर्थ्यरूप नाहीं, जातैं अपने योग्य विषयनितै अधिक विषयनिको देखि जानि सकै नाहीं। बहुरि अपने योग्य विषयनिकू देखने जाननेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्य रूप शक्ति है जातै इनिकों देखि जानि सकै है; बहुरि व्यक्तता एक कालविषै एकहीको देखने वा जाननेकी पाइए।

बहुरि इहां प्रश्न—जो ऐसें तो जान्या परन्तु क्षयोपशम तो पाइए

अर बाह्य इन्द्रियादिकका अन्यथा निमित्त भये देखना जानना न होय वा थोरा होय वा अन्यथा होय सो ऐसे कर्महीका निमित्त तो न रह्या?

ताका समाधान—जैसें रोकनहाराने यहु कह्या जो पांच ग्रामनिविषै एक ग्रामको एक दिनविषैं जावो परन्तु इन किकरनिको साथ लेके जावो तहां वे किंकर अन्यथा परिणमैं तो जाना न होय वा थोरा जाना होय वा अन्यथा जाना होय। तैसे कर्मका ऐसा ही क्षयोपशम भया है जो इतने विषयनिविषै एक विषयको एक कालविषै देखो वा जानो परन्तु इतने बाह्य द्रव्यनिका निमित्त भये देखो वा जानो। तहां वे बाह्य द्रव्य अन्यथा परिणमैं तो देखना जानना न होय वा अन्यथा होय। ऐसे यहु कर्मके क्षयोपशमहीका विशेष है तातै कर्महीका निमित्त जानना। जैसे काहूक अंधकारके परमाणु आड़ आएँ देखना न होय, घूघू मार्जारादिकनिकै तिनको आये भी देखना होय। सो ऐसा यहु क्षयोपशमहीका विशेष है। जैसे जसे क्षयोपशम होय तैसे तैसेही देखना जानना होय। ऐसें इस जीवकै क्षयोपशमज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि मोक्षमार्गविषै अवधि मनःपर्यय हो हैं ते भी क्षयोपशमज्ञान ही हैं, तिनिकी भी ऐसे ही एक कालविषै एककों प्रतिभासना वा परद्रव्यका आधीनपना जानना। बहुरि विशेष है सो विशेष जानना। या प्रकार ज्ञानावरण दर्शनावरणका उदयके निमित्ततैं बहुत ज्ञानदर्शनके अंशनि का तो अभाव है अर तिनके क्षयोपशमतैं थोरे अंशनिका सद्भाव पाइए है।

बहुरि इस जीवकै मोहके उदयतै मिथ्यात्व वा कषायभाव हो हैं। तहां दर्शनमोहके उदयतैं तो मिथ्यात्वभाव हो हैं ताकरि यह जीव

अन्यथा प्रतीतरूप अतत्त्वश्रद्धान करै है । जैसे है तैसे ता न मानै है अर जैसें नाहीं है तैसें मानै है । अमूर्त्तीक प्रदेशनिका पुंज प्रसिद्ध ज्ञानादिगुणनिका धारी अनादि निधनवस्तु आप है अर मूर्त्तीक पुद्गल द्रव्यनिकापिंड प्रसिद्ध ज्ञानादिकनिकरि रहित जिनका नवीन संयोग भया, ऐसे शरीरादिक पुद्गल पर हैं। इनका संयोगरूप नाना प्रकार मनुष्य तिर्यंचादि पर्याय ही हैं, तिस पर्यायनिविषैं अहंबुद्धि धारै है, स्व-परका भेद नाहीं करि सकै है । जो पर्याय पावै तिसहीको आपा मानै। बहुरि तिस पर्यायविषै ज्ञानादिक हैं ते तो आपके गुण हैं अर रागादिक हैं ते आपके कर्मनिमित्ततें उपाधिक भाव भए हैं अर वर्णादिक हैं ते आपके गुण नाहीं हैं, शरीरादिक पुद्गलके गुण है अर शरीरादिकविषै वर्णादिकनिकी वा परमाणुनिको नाना प्रकार पलटनि हो है सो पुद्गल की अवस्था है सो इन सबनिहीको अपनो स्वरूप जानै है, स्वभाव परभावका विवेक नाहीं होय सकै है। बहुरि मनुष्यादिक पर्यायनिविषै कुटम्ब धनादिकका सम्बन्ध हो है, ते प्रत्यक्ष आपतें भिन्न हैं अर ते अपने आधीन होय नाहीं परिणमैं हैं तथापि तिन विषै ममकार करै है । ए मेरे हैं वे काहू प्रकार भी अपने होते नाहीं, यह ही अपनी मानि तें अपने मानै है । बहुरि मनुष्यादि पर्यायनिविषै कदाचित् देवादिकका वा तत्त्वनिका अन्यथा स्वरूप जो कल्पित किया ताकी तो प्रतीत करै है अर यथार्थस्वरूप जैसे है तैसें प्रतीति न करै है। ऐसें दर्शनमोहके उदय करि जीवकै अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्वभाव हो है। जहां तीव्र उदय होय है तहाँ सत्यश्रद्धानतें घना विपरीत श्रद्धान होय है । जब मंद

उदय होय है तब सत्यश्रद्धानतें थोरा विपरीत श्रद्धान हो है।

बहुरि चारित्रमोहके उदयतें इस जीवकै कषायभाव हो हैं तब वह देखता जानता संता परपदार्थनिविषै इष्ट अनिष्टपनो मानि क्रोधादिक करै है तहां क्रोधका उदय होतें पदार्थनिविषै अनिष्टपनो वा ताका बुरा होना चाहै। कोउ मंदिरादि अचेतन पदार्थ बुरा लागै तब फोरना तोरना इत्यादि रूपकरि वाका बुरा चाहै। बहुरि शत्रु आदि सचेतन पदार्थ बुरा लागै तब वाकों बध बन्धादिकरि वा मारनेकरि दुःख उपजाय ताका बुरा चाहै। बहुरि आप वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थ कोई प्रकार परिणए, आपको सो परिणमन बुरा लागै तब अन्यथा परिणमावनैकरि तिस परिणमनका बुरा चाहै। या प्रकार क्रोधकरि बुरा चाहनेकी इच्छा तो होय, बुरा होना भवितव्य आधीन है

बहुरि मानका उदय होतें पदार्थविषै अनिष्टपनो मानि ताकों नीचा किया चाहै, आप ऊँचा भया चाहै, मन धूलि आदि अचेतन पदार्थनिविषै घृणा वा निरादरादिककरि तिनकी हीनता, आपकी उच्चता चाहै। बहुरि पुरुषादिक सचेतन पदार्थनिकों नमावना, अपने आधीन करना इत्यादि रूपकरि तिनकी हीनता, आपकी उच्चता चाहै। बहुरि आप लोकविषै जैसें ऊचा दीसै तैसें शृंगारादि करना वा धन खरचना इत्यादि रूपकरि औरनिकों हीन दिखाय आप ऊंचा हुआ चाहै। बहुरि अन्य कोई आपतें ऊँचा कार्य करै ताको कोई उपाय करि नीचा दिखावें और आप कार्य करै ताकू ऊचा दिखावै; या प्रकार मानकरि अपनी महतताकी इच्छा तो होय, महतता होनी भवितव्य

बहुरि मायाका उदय होतें कोई पदार्थकों इष्ट मानि नाना प्रकार छलनिकरि ताको सिद्ध किया चाहै । रत्न सुवर्णादिक अचेतन पदार्थनिकी वा स्त्री दासी दासादि सचेतन पदार्थनिकी सिद्धिके अर्थि अनेक छल करै। परको ठगनेके अर्थि अपनी अवस्था अनेक प्रकार करै वा अन्य अचतन सचेतन पदार्थनिको अवस्था पलटावै इत्यादिरूप छलकरि अपनाअभिप्राय सिद्ध किया चाहै । या प्रकार मायाकरि इष्टसिद्धिके अर्थि छल तो करै अर इष्टसिद्धि होना भवितव्य आधीन है।

बहुरि लोभका उदय होते पदार्थनिकों इष्ट मानि तिनकी प्राप्ति चाहै। वस्त्राभरण धनधान्यादि अचेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय.बहुरि स्त्री पुत्रादिक चेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय । बहुरि आपकै वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थकै कोई परिणमन होना इष्ट मानि तिनकों तिस परिणमनरूप परिणमाया चाहै । या प्रकार लोभकरि इष्टप्राप्ति की इच्छा तो होय अर इष्ट प्राप्ति होनी भवितव्य आधीन है। ऐसें क्रोधादिका उदयकरि आत्मा परिणमै है । तहां एक एक कषाय चार चार प्रकार है । अनतानुबन्धी १, अप्रत्याख्यानावरण २, प्रत्याख्यानावरण ३, सज्वलन ४ । तहाँ जिनका उदयतैं आत्माकै सम्यक्त्व न होय, स्वरूपाचरण चारित्र न होय सकै ते अनंतानुबंधीकषाय है। (*) जिनका उदय होते देशचारित्र न होय तातै किंचित् त्याग भी न होय सकै, ते अप्रत्याख्यानावरण कषाय है। बहुरि जिनका उदय होतें सकलचारित्र न होय तातै सर्वका त्याग न होय सकै, ते प्रत्याख्याना-

(*) यह पंक्ति खरडा प्रति मे नही है।

वरण कषाय हैं । बहुरि जिनका उदय होतें सकलचारित्रकों दोष उपज्या करै तातें यथाख्यातचारित्र न होय सकै,ते संज्वलन कषाय हैं। सो अनादि संसार अवस्थाविषै इन चारयों ही कषायनिका निरतर उदय पाइए है । परमकृष्णलेश्यारूप तीव्रकषाय होय तहां भी अर शुक्ललेश्यारूप मंदकषाय होय तहां भी निरन्तर च्यारयोंहीका उदय रहै है । जातें तीव्रमन्दको अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद नाही हैं, सम्यक्त्वादि घातनेकी अपेक्षा ए भेद हैं। इनही प्रकृतिनिका तीव्र अनुभाग उदय होत तीव्र क्रोधादिक हो हैं, मन्द अनुभाग उदय होते मन्द उदय हो हैं । बहुरि मोक्षमार्ग भए इन च्यारों विषै तीन, दोय, एकका उदय हो है, पीछे च्यारयोंका अभाव हो है । बहुरि क्रोधादिक च्यारयों कषायनिविषै एककाल एकहीका उदय हो है। इन कषायनिकै परस्पर कारणकार्यपनो है। क्रोधकरि मानादिक होय जाय, मानकरि क्रोधादिक होय जाय, तातै काहूकाल भिन्नता भासै काहूकाल न भासै है। ऐसे कषायरूप परिणमन जानना । बहुरि चारित्रमोहहीके उदयतै नोकषाय होयहैं तहां हास्यका उदयकरि कही इष्टपना मानि प्रफुल्लित हो है,हर्ष मानै है। बहुरि रतिका उदयकरि काहूकों इष्ट मान प्रीति करै है तहां आसक्त हो है । बहुरि अरतिका उदयकरि काहूकों अनिष्ट मान अप्रीति करै है तहाँ उद्वेगरूप हो है । बहुरि शोक का उदयकरि कहीं अनिष्टपनों मान दिलगीर हो है, विषाद मानै है । बहुरि भयका उदयकरि किसीकों अनिष्ट मान तिसतें डरै है, वाका संयोग न चाहै है । बहुरि जुगुप्साका उदयकरि काहूपदार्थकों अनिष्ट मान ताकी घृणा करै है, वाका वियोग चाहै है । ऐसें ए हास्यादिक

छह जाननै। बहुरि वेदनिके उदयतें याकै काम परिणाम हो है तहाँ स्त्रीवेदके उदयकरि पुरुषसों रमनेकी इच्छा हो है अर पुरुषवेदके उदयकरि स्त्रीसों रमनेकी इच्छा हो है अर नपुन्सकवेदके उदयकरि युगपत् दोऊनिसो रमनेकी इच्छा हो है, ऐसें ए नव तो नोकषाय हैं। क्रोधादि सारिखे ए बलवान नाही ताते इनको ईषत्कषाय कहैं है। यहाँ नोशब्द ईषत् वाचक जानना। इनका उदय तिन क्रोधादिकनिकी साथ यथासम्भव हो है। ऐसें मोहके उदयते मिथ्यात्व वा कषायभाव हो हैं सो ए संसारके मूल कारण ही हैं। इनही करि वर्तमान काल विषें जीव दुःखी हैं अर आगामी कर्मबन्धनके भी कारण ए ही हैं। बहुरि इनहीका नाम राग द्वेष मोह है। तहाँ मिथ्यात्वका नाम मोह है जातें तहाँ सावधानीका अभाव है। बहुरि माया लोभ कषाय अर हास्य रति तीन वेदनिका नाम राग है जातें तहाँ इष्टबुद्धि करि अनुराग पाइए है। बहुरि क्रोध मान कषाय अर अरति शोक भय जुगुप्सानिका नाम द्वेष है जाते तहां अनिष्ट बुद्धि करि द्वेष पाइए है। बहुरि सामान्यपने सबही का नाम मोह है। ताते इन विषें सर्वत्र असावधानी पाइए है। बहुरि अतरायके उदयतें जीव चाहै सो न होय। दान दिया चाहै देय न सकै। वस्तुकी प्राप्ति चाहै सो न होय। भोग किया चाहै सो न होय। उपभोग किया चाहै सो न होय। अपनी ज्ञानादि शक्तिको प्रगट किया चाहै सो न प्रगट होय सकै। ऐसें अंतरायके उदयतें चाह्या चाहै सो होय नाही। बहुरि तिसहीका क्षयोपशमतें किंचिन्मात्र चाह्या भी हो है। चाहिए तो बहुत है परन्तु किंचिन्मात्र चाह्या हुआ होय है। बहुत दान देना चाहै है परन्तु

थोड़ा होश्च) दान देय सकै है। बहुत लाभ चाहै है परन्तु थोड़ाही लाभ हो है । ज्ञानादिक शक्ति प्रगट हो है तहाँ भी अनेक बाह्य कारण चाहिए। या प्रकार घातिकर्मनिके उदयतें जीवकै अवस्था हो है । बहुरि अघातिकर्मनिविषें वेदनोयके उदयकरि शरीर विषे बाह्य सुख दु:खका कारण निपजै है। शरीरविषे आरोग्यपनो रोगीपनो शक्तिवानपनो दुर्बलपनो इत्यादि अर क्षुधा तृषा रोग खेद पीडा इत्यादि सुख दुःखनिके कारण हो है । बहुरि बाह्यविषें सुहावना ऋतु पवनादिक वा इष्ट स्त्री पुत्रादिक वा मित्र धनादिक,असुहावना ऋतु पवनादिक वा अनिष्ट स्त्री पुत्रादिक वा शत्रु दरिद्र वध बंधनादिक सुख दु:खको कारण हो है। ए बाह्य कारण कहे तिन विषै केई कारण तो ऐसे हैं जिनके निमित्तस्यों शरीरको अवस्था ही सुख दु:खको कारण हो है अर वे ही सुख दु खको कारण न हो हैं। बहुरि केई कारण ऐसे है जे आप ही सुख दु.खको कारण हो है। ऐसे कारणका मिलना वेदनीयके उदयते हो है। तहा साता वेदनीयतें सुखके कारण मिलै अर असातावेदनीयतै दु:खके कारण मिलै । सो इहां ऐसा जानना, ए कारणही तो सुखदु:खको उपजावै नाही, आत्मा मोहकर्म का उदयतै आप सुखदु ख मानै है । तहा वेदनीयकर्मका उदयकै अर मोहकर्मका उदयकै ऐसाही सम्बन्ध है। जब सातावेदनीयका निपजाया बाह्य कारण मिलै तब तो सुख माननेरूप मोहकर्मका उदय होय अर जब असातावेदनीयका निपजाया बाह्यकारण मिलै तब दु ख मानने-

*यह पंक्ति खरडा प्रति मे नही है किन्तु अन्य सब प्रतियो मे है, इस कारण आवश्यक जान यहा दे दी गई है।

रूप मोहकर्मका उदय होय। बहुरि एक ही कारण काहूकों सुखका, काहूकों दुःखका कारण हो है। जैसे काहूकै सातावेदनीयका उदय होतें मिल्या जैसा वस्त्र सुखका कारण हो है तैसा ही वस्त्र काहूकों असाता वेदनीयका उदय होते मिल्या दुःखका कारण हो है। तातै बाह्य वस्तु सुखदुःखका निमित्त मात्र हो है। सुख दुःख हो है सो मोहके निमित्ततै हो है। निर्मोही मुनिनकै अनेक ऋद्धि आदि परीसह आदि कारण मिलै तो भी सुख दुःख न उपजै। मोही जीवकै कारण मिले वा बिना कारण मिले भी अपने संकल्प हीते सुख दुःख हुआ ही करै है। तहाँ भी तीव्रमोहीकै जिस कारणको मिले तीव्र सुख दुःख होय तिसही कारणको मिले मंदमोहीकै मंद सुखदुःख होय। तातै सुख दुःखका मूल बलवान कारण मोहका उदय है। अन्य वस्तु है सो बलवान कारण नाहीं। परन्तु अन्य वस्तुकै अर मोही जीवके परिणामनिकै निमित्तनैमित्तिककी मुख्यता पाइए है। ताकरि मोहीजोव अन्य वस्तुहीकों सुखदुःखका कारण मानै है। ऐसे वेदनीयकरि सुखदुःखका कारण निपजै है। बहुरि आयुकर्मके उदयकरि मनुष्यादि पर्यायनिकी स्थिति रहै है। यावत् आयुका उदय रहै तावत् अनेक रोगादिक कारण मिलो, शरीरस्यो सम्बन्ध न छूटै। बहुरि जब आयुका उदय न होय तब अनेक उपाय किए भी शरीरस्यों सम्बन्ध रहै नाहीं, तिसही काल आत्मा अर शरीर जुदा होय। इस संसारविषै जन्म, जीवन, मरणका कारण आयुकर्म ही है। जब नवीन आयुका उदय होय तब नवीन-पर्यायविषै जन्म हो है। बहुरि यावत् आयुका उदय रहै तावत् तिस पर्यायरूप प्राणनिके धारणतै जीवना हो है। बहुरि आयुका क्षय होय

तब तिस पर्यायरूप प्राण छूटनेतें मरण हो है। सहज ही ऐसा आयु-कर्मका निमित्त है। और कोई उपजावनहारा,क्षपावनहारा,रक्षाकरनहारा है नाही,ऐसा निश्चय करना। बहुरि जैसे नवीन वस्त्र पहरे कितेक काल पहरे रहै, पीछे ताकूं छाड़ि अन्य वस्त्र पहरै तैसें जोव नवीन शरीर धरे कितेक काल धरे रहै, पीछे ताकूं छोड़ि अन्य शरीर धरै है। तातैं शरीरसम्बन्धअपेक्षा जन्मादिक हैं। जीव जन्मादिरहित नित्य ही है तथापि मोही जीवकै अतीत अनागतका विचार नाहीं। तातैं पर्याय-पर्याय मात्र अपना अस्तित्व मानि पर्याय सम्बन्धी कार्यनिविषै ही तत्पर होय रह्या है। ऐसें आयुकरि पर्यायकी स्थिति जाननी। बहुरि नामकर्मकरि यह जीव मनुष्यादिगतिनिविषै प्राप्त हो है, तिस पर्यायरूप अपनी अवस्था हो है। बहुरि तहां त्रसस्थावरादि विशेष निपजै हैं। बहुरि तहाँ एकेंद्रियादि जातिकों धारै है। इस जाति कर्मका उदयके अर मतिज्ञानावरणका क्षयोपशमके निमित्तनैमित्तिकपना जानना। जैसा क्षयोपशम होय तैसा जाति पावै। बहुरि शरीरनिका सम्बन्ध हो है तहाँ शरीरके परमाणु अर आत्माके प्रदेशोंका एक बन्धन हो है अर संकोच विस्ताररूप होय शरीरप्रमाण आत्मा रहै है। बहुरि नोकर्मरूप शरीरविषै अंगोपांगादिकका योग्यस्थान प्रमाण लिए हो है। इसहीकरि स्पर्शन रसना आदि द्रव्यइन्द्रिय निपजै हैं वा हृदय स्थान विषै आठ पांखड़ीका फूल्या कमलके आकार द्रव्य मन हो है। बहुरि तिस शरीरहीविषै आकारादिकका विशेष होना अर वर्णादिकका विशेष होना अर स्थूलसूक्ष्मत्वादिकका होना इत्यादि कार्य निपजै हैं सो ए शरीररूप परणिए परमाणु ऐसें परिणमै हैं। बहुरि श्वासो-

श्वास वा स्वर निपजै हैं सो ए भी पुद्गलके पिंडहैं अर शरीरस्यों एक बंधानरूप हैं। इनविषें भी आत्माके प्रदेश व्याप्त हैं। तहां श्वासोच्छ्वास तो पवनहै सो जैसे आहारकों ग्रहै नीहारकों निकासै तबही जीवनो होय तैसे बाह्यपवनको ग्रहै अर अभ्यतर पवनको निकासै तब ही जीवितव्य रहै। तातैं श्वासोच्छ्वास जीवितव्यका कारण है। इस शरीरविषं जैसें हाड़ मांसादिक हैं तैसें ही पवन जानना। बहुरि जैसें हस्तादिकसों कार्य करिए तैसें ही पवनतें कार्य करिए है। मुखमें ग्रास धरचा ताकों पवनतें निगलिए है, मलादिक पवनतें ही बाहर काढिए है, तैसें ही अन्य जानना। बहुरि नाड़ी वा वायुरोग वा वायगोला इत्यादि ए पवनरूप शरीरके अंग जानने। बहुरि स्वर है सो शब्द है। सो जैसें वीणाको तांतकों हलाए भाषारूप होने योग्य पुद्गलस्कंधहैं, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमैं हैं; तैसें तालवा होठ इत्यादि अंगनिकों हलाएं भाषापर्याप्तिविषें ग्रहे पुद्गलस्कंध हैं, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमैं हैं। बहुरि शुभ अशुभ गमनादिक हो है। इहां ऐसा जानना, जैसे दोयपुरुषनिकै इकदड़ी बेड़ी है तहां एक पुरुष गमनादिक किया चाहै अर दूसरा भी गमनादिक करै तो गमनादिक होय सकै, दोऊनिविषैं एक बैठि रहै तो गमनादि होय सकै नाहीं अर दोऊनिविषै एक बलवान होय तो दूसरेको भी घसीट ले जाय तैसें आत्माकै अर शरीरादिकरूप पुद्गलकै एकक्षेत्रावगाहरूप बंधान है तहां आत्मा हलनचलनादि किया चाहै अर पुद्गल तिस शक्तिकरि रहित हुआ हलन चलन न करै वा पुद्गलविषं शक्ति पाइए है अर आत्माकी इच्छा न होय तो हलनचलनादि न होय सकै। बहुरि इन

विषै पुद्गल बलवान होय हालै चालै तो ताकी साथ बिना इच्छा भी आत्मा आदि हालै चालै। ऐसे हलन चलनादि होय है। बहुरि याका अपजस आदि बाह्य निमित्त बनै है। ऐसै ए कार्य निपजै हैं, तिनकरि मोहके अनुसार आत्मा सुखी दुःखी भी हो है। नामकर्मके उदयतें स्वयमेव ऐसे नानाप्रकार रचना हो है, और कोई करनहारा नाहीं है। बहुरि तीर्थंकरादि प्रकृति यहाँ हैं ही नाही। बहुरि गोत्रकरि ऊँचा नीचाकुलविषै उपजना हो है तहाँ अपना अधिकहीनपना प्राप्त हो है। मोहके निमित्ततै तिनकरि आत्मा सुखी दुःखी भी हो है। ऐसै अघाति कर्मनिका निमित्ततै अवस्था हो है। या प्रकार इस अनादि संसारविषै घाति अघाति कर्मनिका उदयके अनुसार आत्माकै अवस्था हो है। सो हे भव्य! अपने अन्तरगविषै विचारकरि देख, ऐसै ही है कि नाही। सो ऐसा विचार किए ऐसै ही प्रतिभासै। बहुरि जो ऐसे है तो तू यह मान कि 'मेरै अनादि संसार रोग पाइए है, ताके नाशका मोकों उपाय करना', इस विचारतै तेरा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसारअवस्थाका निरूपक द्वितीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥२॥

तीसरा अधिकार

संसार अवस्थाका स्वरूप-निर्देश

दोहा

सो निजभाव सदा सुखद, अपनो करो प्रकाश ।
जो बहुविधि भवदुःखनिको, करि है सत्तानाश ।।१।।

अब इस संसार अवस्थाविषै नाना प्रकार दुःख हैं तिनका वर्णन करिए है – जातैं जो संसारविषें भी सुख होय तो ससारतें मुक्त होने का उपाय काहेको करिए ! इस संसारविषें अनेक दुःख हैं, तिसहीतें संसारतें मुक्त होनेका उपाय कीजिए है । बहुरि जैसे वैद्य है सो रोग का निदान अर ताकी अवस्थाका वर्णनकरि रोगीको ससार रोगका निश्चय कराय पीछे तिसका इलाज करनेकी रुचि करावै है तसे यहाँ संसारका निदान वा ताकी अवस्थाका वर्णनकरि संसारीको संसार रोगका निश्चय कराय अब तिनका उपाय करनेकी रुचि कराईए है । जैसे रोगी रोगतैं दुःखी होय रह्या है परन्तु ताका मूल कारण जानै नाहीं, साँचा उपाय जानै नाही अर दुःख भी सह्या जाय नाही । तब आपकों भास सो ही उपाय करै तातै दुःख दूरि होय नाही । तब तड़फि तड़फि परवश हुवा तिन दुःखनिकों सहै है परन्तु ताका मूल कारण जानै नाहीं । याकों वैद्य दुःखका मूलकारण बतावै, दुःखका स्वरूप बतावै, या के किये उपायनिकूं भूठ दिखावै तब सांचे उपाय करनेकी रुचि होय । तैसेंही यह संसारी ससारतें दुःखी होय रह्या है

परन्तु ताका मूल कारण जानै नाहीं अर साँचा उपाय जानै नाहीं अर दुःख भी सह्या जाय नाहीं। तब आपको भासै सो ही उपाय करै तातैं दुःख दूर होय नाहीं। तब तड़फि-तड़फि परवश हुवा तिन दुःखनिको सहै है।

दुःखोंका मूल कारण

याकों यहाँ दुःखका मूलकारण बताइए है, दुःखका स्वरूप बताइए है अर तिन उपायनिकूं भूंठे दिखाइए तो साँचे उपाय करनेकी रुचि होय तातें यह वर्णन इहाँ करिये है। तहाँ सब दुःखनिका मूलकारन मिथ्यादर्शन, अज्ञान अर असंयम है। जो दर्शनमोहके उदयतें भया अतत्वश्रद्धान मिथ्यादर्शन है ताकरि वस्तुस्वरूपको यथार्थ प्रतीति न होय सकै है, अन्यथा प्रतीति हो है। बहुरि तिस मिथ्यादर्शनहीके निमित्ततें क्षयोपशमरूपज्ञान है सो अज्ञान होय रह्या है। ताकरि यथार्थ वस्तुस्वरूपका जानना न हो है, अन्यथा जानना हो है। बहुरि चारित्रमोहके उदयतें भया कषायभाव ताका नाम असंयम है ताकरि जैसें वस्तुका स्वरूप है तैसा नाहीं प्रवर्त्तै है, अन्यथा प्रवृत्ति हो है। ऐसे ये मिथ्यादर्शनादिक है तेई सब दुःखनिके मूल कारन हैं। कैसें ? सो दिखाइये है:—

मिथ्यात्वका प्रभाव

मिथ्यादर्शनादिककरि जीवकै स्व-पर-विवेक नाहीं होइ सकै है, एक आप आत्मा अर अनंत पुद्गलपरमाणुमय शरीर इनका संयोगरूप मनुष्यादिपर्याय निपजै है तिस पर्यायहीको आपो मानै है। बहुरि

आत्माका ज्ञानदर्शनादि स्वभाव है ताकरि किंचित् जानना।दिक हो है। अर कर्मउपाधितें भए क्रोधादिकभाव तिनरूप परिणाम पाइए है। बहुरि शरीरका स्पर्श रस गंध वर्ण स्वभाव है सो प्रगटै है अर स्थूल कृषादिक होना वा स्पर्शादिकका पलटना इत्यादि अनेक अवस्था हो है। इन सबनिको अपना स्वरूप जानै है। तहाँ ज्ञानदर्शनकी प्रवृत्ति इन्द्रिय मनके द्वारे हो है तातें यहु मानै है कि ए त्वचा जीभ नासिका नेत्र कान मन ये मेरे अंग हैं। इनकरि मैं देखूं जानूं हूँ, ऐसी मानि तातें इन्द्रियनिविषैं प्रीति पाइए है।

मोहजनित विषयाभिलाषा

बहुरि मोहके आवेशतें तिन इन्द्रियनिके द्वारा विषय ग्रहण करने की इच्छा हो है। बहुरि तिनविषै इनका ग्रहण भए तिस इच्छा के मिटनेतें निराकुल हो है तब आनन्द मानै है। जैसें कूकरा हाड चाबै ताकरि अपना लोही निकसै ताका स्वाद लेय ऐसें मानै, यहु हाड़निका स्वाद है। तैसें यहु जीव विषयनिको जानै ताकरि अपना ज्ञान प्रवर्त्ते, ताका स्वाद लेय ऐसें मानै, यहु विषयका स्वाद है सो विषयमें तो स्वाद है नाहीं। आप ही इच्छा करी थी ताको आप ही जानि आप ही आनन्द मान्या परन्तु मैं अनादि अनंतज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ ऐसा निःकेवलज्ञानका तो अनुभव है नाहीं। बहुरि मैं नृत्य देख्या, राग सुन्या, फूल सूंघ्या, पदार्थ स्पर्शा, स्वाद जान्या तथा मोकों यहु जानना, इस प्रकार ज्ञेयमिश्रित ज्ञानका अनुभव है ताकरि विषय-निकरि ही प्रधानता भासै है। ऐसें इस जीवके मोहके निमित्त तें विषयनिकी इच्छा पाइए है।

सो इच्छा तो त्रिकालवर्ती सर्वविषयनिके ग्रहण करनेकी है। मैं सर्वको स्पर्शूं, सर्वकूं स्वादूं, सर्व को सूंघूं, सर्वको देखूं, सर्वका सुनूं सर्वको जानूं,सो इच्छा तो इतनी है अर शक्ति इतनी ही है जो इन्द्रियनिके सन्मुख भया वर्तमान स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द तिनविषै काहूको किंचिन्मात्र ग्रहै वा स्मरणादिकतै मनकरि किछू जानै सो भी बाह्य अनेक कारन मिले सिद्धि होय। तातै इच्छा कबहूं पूर्ण होय नाहीं। ऐसी इच्छा तो केवलज्ञान भए सम्पूर्ण होय। क्षयोपशमरूप इन्द्रियकरि तो इच्छा पूर्ण होय नाहीं तातैं मोहके निमित्ततै इन्द्रियनिकै अपने अपने विषय ग्रहणकी निरन्तर इच्छा रहिवो ही करै ताकरि आकुलित हुवा दुःखी हो रह्या है। ऐसा दुःखी हो रह्या है जो एक कोई विषयका ग्रहणके अर्थि अपना मरनको भी नाहीं गिनै है। जैसे हाथीकै कपटकी हथनीका शरीर स्पर्शनेकी अर मच्छकै बडसीकै लाग्या मांस स्वादनेकी अर भ्रमरकै कमलसुगन्ध सूंघनेकी अर पतंग कै दीपकका वर्ण देखनेकी अर हिरणकै राग सुननेकी इच्छा ऐसी हो है जो तत्काल मरन भासै तो भी मरनको गिनै नाहीं. विषयनिका ग्रहण करै, जातै मरण होनेतै इन्द्रियनिकरि विषयसेवन की पीड़ा अधिक भासै है। इन इन्द्रियनिकी पीडाकरि सर्व जीव पीडितरूप निर्विचार होय जैसे कोऊ दुःखी पर्वततै गिर पड़ै तैसे विषयनिविषै झपापात ले है। नाना कष्टकरि धनको उपजावै ताको विषयके अर्थि खोवै। बहुरि विषयनिके अर्थि जहां मरन होता जानै तहां भी जाय, नरकादिको कारन जे हिंसादिक कार्य तिनको करै वा क्रोधादि कषायनिकों उपजावै, कहा करै, इन्द्रियनिकी पीड़ा सही न जाय तातै अन्य विचार

किछू आवता नाहीं। इस पीड़ाहीकरि पीड़ित भए इन्द्रादिक हैं ते भी विषयनिविषैं अति आसक्त हो रहे हैं। जैसें खाज रोगकरि पीड़ित हुवा पुरुष आसक्त होय खुजावै है, पीडा न होय तो काहेकों खुजावै; तैसे इन्द्रिय रोगकरि पीड़ित भए इन्द्रादिक आसक्त होय विषय सेवन करे हैं, पीड़ा न होय तो काहेकों विषय सेवन करें? ऐसें ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमतै भया इन्द्रियादिजनित ज्ञान है सो मिथ्यादर्शनादिके निमित्ततै इच्छासहित होय दुःखका कारण भया है।

दुःख निवृत्तिका उपाय

अब इस दुःख दूर होनेका उपाय यह जीव कहा करै है सो कहिए है – इन्द्रियनिकरि विषयनिका ग्रहण भए मेरी इच्छा पूरन होय ऐसा जानि प्रथम तो नाना प्रकार भोजनादिकनिकरि इन्द्रियनिको प्रबल करै है अर ऐसें ही जानै है जो इन्द्रिय प्रबल रहे मेरे विषय ग्रहणकी शक्ति विशेष हो है। बहुरि तहां अनेक बाह्यकारण चाहिए हैं तिनका निमित्त मिलावै है। बहुरि इन्द्रिय हैं ते विषयको सन्मुख भए ग्रहैं तातै अनेक बाह्य उपाय करि विषयनिका अर इन्द्रियनिका संयोग मिलावै है। नाना प्रकार वस्त्रादिकका वा भोजनादिकका वा पुष्पादिकका वा मन्दिर आभूषणादिकका वा गायक वादित्रादिकका संयोग मिलावनेके अर्थि बहुत खेदखिन्न हो है। बहुरि इन इन्द्रियनिके सन्मुख विषय रहै तावत् तिस विषयका किंचित् स्पष्ट जानपना रहै। पीछे मन द्वारे स्मरणमात्र रह जाय। काल व्यतीत होते स्मरण भी मन्द होता जाय तातैं तिन विषयनिकों अपने आधीन राखनेका उपाय करै अर शीघ्र शीघ्र तिनका ग्रहण किया करै। बहुरि इन्द्रियनिकै

तो एक कालविषै एक विषयहीका ग्रहण होय अर यह बहुत बहुत ग्रहण किया चाहै तातैं आखता* होय शीघ्र शीघ्र एक विषयको छोड़ि औरको ग्रहै। बहुरि वाको छोडि औरको ग्रहै, ऐसें हापटा मारै है। बहुरि जो उपाय याको भासै है सो करै है सो यह उपाय झूठा है। जातै प्रथम तो इन सबनिका ऐसैं ही होना अपने आधीन नाहीं, महा-कठिन है। बहुरि कदाचित् उदय अनुसार ऐसे ही विधि मिलै तो इन्द्रियनिको प्रबल किए किछू विषय ग्रहणकी शक्ति बधै नाहीं। यह शक्ति तो ज्ञानदर्शन बधे× बधै+। सो यह कर्मका क्षयोपशमके आधीन है। किसीका शरीर पुष्ट है ताके ऐसी शक्ति घाटि देखिए है। काहूका शरीर दुर्बल है ताके अधिक देखिए है। तातै भोजनादिककरि इन्द्रिय-पुष्ट किए किछू सिद्धि है नाही। कषायादि घटनेतै कर्मका क्षयोपशम भए ज्ञानदर्श। बधै तब विषय ग्रहणकी शक्ति बधै है। बहुरि विषयनि-का संयोग मिलावै सो बहुतकालताई रहता नाही अथवा सर्व विषयनि का संयोग मिलता ही नाही। तातै यह आकुलता रहिवो ही करै। बहुरि तिन विषयनिको अपने आधीन राखि शीघ्र शीघ्र ग्रहण करै सो वे आधीन रहते नाहीं। वे तौ जुदे द्रव्य अपने आधीन परिणमैं हैं वा कर्मोदयके आधीन है । सो ऐसा कर्मका बन्ध यथायोग्य शुभ भाव भए होय। फिर पीछे उदय आवै सो प्रत्यक्ष देखिए है। अनेक उपाय करते भी कर्मका निमित्त विना सामग्री मिलै नाही। बहुरि एक विषय को छोड़ि अन्यका ग्रहणकों ऐसें हापटा मारै है सो कहा सिद्धि हो है। जैसें मणकी भूख वालेको कण मिल्या तो भूख कहा मिटै? तैसे सर्व

* उतावला, × बढ़ने पर, + बढ़ै।

का ग्रहणकी जाकै इच्छा ताकै एक विषयका ग्रहण भए इच्छा कैसें मिटै? इच्छा मिटे बिना सुख होता नाहीं। तातें यह उपाय झूठा है।

कोऊ पूछै कि इस उपायतें केई जीव सुखी होते देखिए हैं, सर्वथा झूठ कैसें कहो हो?

ताका समाधान– सुखी तो न हो है, भ्रमतें सुख मानै है। जो सुखी भया तो अन्य विषयनिकी इच्छा कैसें रहेगी। जैसें रोग मिटे अन्य औषध काहेको चाहै तैसे दुःख मिटे अन्य विषयको काहेको चाहै। तातें विषयका ग्रहणकरि इच्छा थंभि जाय तो हम सुख मानें। सो तो यावत् जो विषय ग्रहण न होय तावत् काल तो तिसकी इच्छा रहै अर जिस समय ताका संग्रह भया तिसही समय अन्य विषय ग्रहणकी इच्छा होती देखिए है तो यह सुख मानना कैसे है। जसें कोऊ महा क्षुधावान् रक ताको एक अन्नका कण मिल्या ताका भक्षण करि चैन मानै, तैसें यह महातृष्णावान् याकों एक विषयका निमित्त मिल्या ताका ग्रहणकरि सुख मानै है। परमार्थतें सुख है नाहीं।

कोऊ कहै जैसें कण कणकरि अपनी भूख मेटै तैसे एक एक विषयका ग्रहणकरि अपनी इच्छा पूरण करै तो दोष कहा?

ताका समाधान- जो कण भेले होंय तो ऐसै ही मानै। परन्तु जब दूसरा कण मिलै तब तिस कण का निर्गमन हो जाय तो कैसें भूख मिटै? तैसे ही जानने विषैं विषयनिका ग्रहण भेले होता जाय तो इच्छा पूरन होय जाय परन्तु जब दूसरा विषय ग्रहण करै तब पूर्व विषय ग्रहण किया था ताका जानना रहै नाही तो कैसें इच्छा पूरण होय? इच्छा पूरन भये बिना आकुलता मिटै नाहीं। आकुलता मिटे

बिना सुख कैसे कह्या जाय। बहुरि एक विषयका ग्रहण भी मिथ्या-दर्शनादिकका सद्भावपूर्वक करै है तातें आगामी अनेक दु:खका कारन कर्म बंध है। जातें यह वर्त्तमानविषैं सुख नाहीं,आगामी सुखका कारन नाहीं, तातें दु:ख ही है। सोई प्रवचनसार विषै कह्या है

"सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव बद्धाधा* ॥१॥

जो इन्द्रियनिकरि पाया सुख सो पराधीन है, बाधासहित है, विनाशीक है,बंधका कारण है,विषम है सो ऐसा सुख तैसा दु:खही है, ऐसैं इस संसारीकरि किया उपाय झूठा जानना। तो सांचा उपाय कहा

दु:ख निवृत्तिका सांचा उपाय

जब इच्छा तो दूरि होय अर सर्व विषयनिका युगपत् ग्रहण रह्या करै तब यह दु:ख मिटै। सो इच्छा तो मोह गए मिटै और सबका युगपत् ग्रहण केवलज्ञान भएहोय। सो इनका उपाय सम्यग्दर्शनादिक है, सोई साँचा उपाय जानना। ऐसै तो मोहके निमित तें ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम भी दु:खदायक है, ताका वर्णन किया।

इहां कोऊ कहै—ज्ञानावरण दर्शनावरण का उदयतैं जानना न भया ताकूं दु:खका कारण कह्यो, क्षयोपशमको काहेको कहो ?

ताका समाधान—जो जानना न होना दु:खका कारण होय तो पुद्गलकै भी दु:ख ठहरै। तातैं दु:खका मूलकारण तो इच्छा है सो इच्छा क्षयोपशमहीतै हो है,तातैं क्षयोपशमको दु:ख का कारण कह्या है,परमार्थतैं क्षयोपशम भी दु:खका कारण नाहीं। जो मोहतैं विषय-

* प्रवचनसार १-७६ में 'तहा' पाठ दिया है।

ग्रहणकी इच्छा है सोई दुःखका कारण जानना। बहुरि मोहका उदय है सो दुःखरूप ही है। कैसें सो कहिए है–

दर्शनमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति

प्रथम तो दर्शनमोहके उदयतै मिथ्यादर्शन हो है ताकरि जैसें याक श्रद्धान है तैसें तो पदार्थ है नाहीं, जैसें पदार्थ है तैसे यह मानै नाहीं, तातें याकै आकुलता ही रहै। जैसें बाउलाको काहूने वस्त्र पहराया वह बाउला तिस वस्त्रकों अपना अंग जानि आपकूं अर शरीरको एक मानै। वह वस्त्र पहरावनेवालेके आधीन है सो वह कबहू फारै, कबहू जोरै, कबहू खोसै, कबहू नवा पहरावै इत्यादि चारित्र करै। वह बाउला तिसको अपने आधीन मान, वाकी पराधीन क्रिया होय तात महाखेदखिन्न होय। तैसें इस जीवको कर्मोदयने शरीर सम्बन्ध कराया, वह जीव तिस शरीरको अपना अंग जानि आपको अर शरीरको एक मानै सो शरीर कर्मके आधीन कबहू कृष होय, कबहू स्थूल होय,कबहू नष्ट होय,कबहू नवीन निपजै इत्यादि चरित्र होय। यह जीव तिसको आपके आधीन जानै, वाकी पराधीन क्रिया होय तातें महाखेदखिन्न हो है। बहुरि जैसे जहां बाउला तिष्ठै था तहाँ मनुष्य घोटक धनादिक कहींतें आन उतरे, वह बाउला तिनकों अपने जानै, वे तो उनहीके आधीन, कोऊ आवै, कोऊ जावै,कोऊ अनेक अवस्थारूप परिणमै। यह बाउला तिनको अपने आधीन मानै, उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय। तैसें यह जीव जहाँ पर्याय धरै तहाँ स्वयमेव पुत्र घोटक धनादिक कहींतें आन प्राप्त भए, यह जीव तिनकों अपने जानै सो वे तो उनहीके आधीन, कोऊ आवै कोऊ जावै,कोऊ अनेक अवस्थारू

परिणमै। यह जीव तिनको अपने आधीन मानै,उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय।

इहां कोऊ कहै, काहूकाल विषै शरीरकी वा पुत्रादिककी इस जीव के आधीन भी तो क्रिया होती देखिए है तब तो सुखी हो है।

ताका समाधान— शरीरादिककी,भवितव्यकी अर जीवकी इच्छा की विधि मिले कोई एक प्रकार जैसें वह चाहै तैसें परिणमै तातें काहू कालविषै वाहीका विचार होतें सुखकी सी आभासा होय परन्तु सर्व ही तो सर्व प्रकार यह चाहै तैसें न परिणमैं। तातें अभिप्रायविषै तो अनेक आकुलता सदाकाल रहवो ही करै। बहुरि कोई कालविषै कोई प्रकार इच्छा अनुसार परिणमता देखिकरि यह जीव शरीर पुत्रादिक विषै अहंकार ममकार करै है। सो इस बुद्धिकरि तिनके उपजावनेकी वा बधावनेकी वा रक्षा करनेकी चिंताकरि निरंतर व्याकुल रहै है। नाना प्रकार कष्ट सहकरि भी तिनका भला चाहै है। बहुरि जो विषयनिकी इच्छा हो है, कषाय हो है, बाह्य सामग्रीविषै इष्ट अनिष्टपनों मानै है, उपाय अन्यथा करै है सांचा उपायको न श्रद्धहै है, अन्यथा कल्पना करै है सो इन सबनिका मूलकारण एक मिथ्यादर्शन है। याका नाश भए सबनिका नाश होइ जाय तातें सब दुःखनिका मूल यह मिथ्यादर्शन है। बहुरि इस मिथ्यादर्शनके नाशका उपाय भी नाहीं करै है। अन्यथा श्रद्धानकों सत्य श्रद्धान मानै, उपाय काहेको करै। बहुरि संज्ञी पचेन्द्रिय कदाचित् तत्व निश्चय करनेका उपाय विचारै तहां अभाग्यतें कुदेव कुगुरु कुशास्त्रका निमित्त बनै तो अतत्व श्रद्धान पुष्ट होइ जाय; यह तो जानै कि इनतें मेरा भला होगा,वे ऐसा उपाय

करें आकरि यह अचेत होय जाय । वस्तु स्वरूपका विचार करनेका उद्यमी भया सो विपरीत विचारविषै दृढ़ होय जाय । तब विषयकषाय की वासना बधनेतें अधिक दुःखी होइ । बहुरि कदाचित् सुदेव सुगुरु सुशास्त्रका भी निमित्त बनि जाय तो तहां तिनका निश्चय उपदेशको तो श्रद्धै नाहीं, व्यवहार श्रद्धानकरि अतत्वश्रद्धानी ही रहै । तहां मंद कषाय वा विषय इच्छा घटै तो थोरा दुःखो होय, पीछे बहुरि जैसाका तैसा होइ जाय । तातें यह संसारी उपाय करै सो भी झूठा ही होय । बहुरि इस संसारीकै एक यह उपाय है जो आपके जैसा श्रद्धान है तैसें पदार्थनिको परिणमाया चाहै सो वे परिणमें तो याका सांचा श्रद्धान होय जाय परन्तु अनादि निधन वस्तु जुदी जुदी अपनी मर्यादा लिये परिणमै है. कोऊ कोऊके आधीन नाही । कोऊ किसीका परिणमाया परिणमै नाहीं । तिनको परिणमाया चाहै सो उपाय नाहीं । यह तो मिथ्यादर्शन ही है । तो सांचा उपाय कहा है ? जैसे पदार्थनिका स्वरूप है तैसें श्रद्धान होइ तो सर्व दुःख दूरि हो जाय । जैसे कोऊ मोहित होय मुरदाको जीवता मानै वा जिवाया चाहै सो आप ही दुःखी हो है । बहुरि वाकों मुरदा मानना अर यह जिवाया जीवेगा नाहीं ऐसा मानना सो ही तिस दुःख दूर होनेका उपाय है । तैसें मिथ्यादृष्टी होइ पदार्थनिको अन्यथा मानै, अन्यथा परिणमाया चाहै तो आप ही दुःखी हो है । बहुरि उनको यथार्थ मानना अर ए परिणमाए अन्यथा परिणमेंगे नाहीं ऐसा मानना सोही तिस दुःखके दूर होनेका उपाय है । भ्रमजनित दुःखका उपाय भ्रम दूर करना ही है । सो भ्रम दूर होनेतें सम्यक्श्रद्धान होय सो ही सत्य उपाय जानना ।

चारित्रमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति

बहुरि चारित्रमोहके उदयतें क्रोधादि कषायरूप वा हास्यादि नो-कषायरूप जीवके भाव हो हैं। तब यहु जीव क्लेशवान होय दुःखी होता संता विह्वल होय नाना कुकार्यनिविषै प्रवर्तै है। सोई दिखाइए है—जब याकै क्रोध कषाय उपजै तब अन्यका बुरा करने की इच्छा होई। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै। मरमच्छेद गालीप्रदानादिरूप वचन बोलै। अपने अंगनि करि वा शस्त्रपाषाणादिकरि घात करै। अनेक कष्ट सहनेकरि वा धनादि खर्चनेकरि वा मरणादिकरि अपना भी बुरा कर अन्यका बुरा करनेका उद्यम करै। अथवा औरनिकरि बुरा होता जानै तो औरनिकरि बुरा करावै। वाका स्वयमेव बुरा होय तो अनुमोदना करै। वाका बुरा भए अपना किछू भी प्रयोजन सिद्ध न होय तो भी वाका बुरा करै। बहुरि क्रोध होते कोई पूज्य वा इष्ट भी बीचि आवै तो उनको भी बुरा कहै। मारने लगि जाय, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि अन्यका बुरा न होई तो अपने अंतरंग विषै आप ही बहुत सन्तापवान होइ वा अपने ही अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था क्रोध होते होहै। बहुरि जब याकै मानकषाय उपजै तब औरनिको नीचा वा आपको ऊंचा दिखावनेकी इच्छा होइ। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, अन्यकी निंदा करै, आपकी प्रशंसा करै वा अनेक प्रकारकरि औरनिकी महिमा मिटावै, आपकी महिमा करै। महाकष्टकरि धनादिकका संग्रह किया ताको विवाहादि कार्यनिविषै खरचै वा देना करि भी खर्चै। मूए पीछे हमारा जस रहेगा ऐसा विचारि अपना मरन करिकैं भी

अपनी महिमा बधावं। जो अपना सन्मानादि न करै ताकों भय आदिक दिखाय दुःख उपजाय अपना सम्मान करावै। बहुरि मान होतें कोई पूज्य बड़े होहिं तिनका भी सम्मान न करं, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि अन्य नीचा, आप ऊँचा न दीस तो अपने अतरंग विषै आप बहुत सन्तापवान् होय वा अपने अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था मान होते होय है। बहुरि जब याकै माया-कषाय उपजै तब छलकरि कार्य सिद्ध करनेकी इच्छा होय। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, नाना प्रकार कपटके वचन कहै, कपटरूप शरीर की अवस्था करै, बाह्य वस्तुनिको अन्यथा दिखावै। बहुरि जिन विषै अपना मरन जानै ऐसे भी छल करै; बहुरि कपट प्रगट भए अपना बहुत बुरा होई, मरनादिक होई तिनको भी न गिनै। बहुरि माया होतें कोई पूज्य वा इष्टका भी सम्बन्ध बनै तो उनस्यों भी छल करै, किछू विचार रहता नाही। बहुरि छलकरि कार्यसिद्ध न होइ तो आप बहुत संतापवान होय, अपने अंगनिका घात करै वा विषादि-करि मरि जाय। ऐसी अवस्था माया होते हो है। बहुरि जब वाकै लोभ कषाय उपजै तब इष्ट पदार्थका लाभ की इच्छा होय, ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै। याके साधनरूप वचन बोलै, शरीरकी अनेक चेष्टा करै, बहुत कष्ट सहै, सेवा करै, विदेशगमन करै, जाकरि मरन होता जान सो भी कार्य करै। घना दुःख जिनविषै उपजै ऐसा कार्य प्रारम्भ करै। बहुरि लोभ होते पूज्य वा इष्टका भी कार्य होय तहां भी अपना प्रयोजन साधै, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि जिस इष्ट वस्तुकी प्राप्ति भई है ताकी अनेक प्रकार रक्षा करैहै; बहुरि इष्टवस्तुकी

प्राप्ति न होय वा इष्टका वियाग हाइ तो आप बहुत सन्तापवान होय अपने अगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय,ऐसी अवस्था लोभ होते हो है;ऐसें कषायनिकरि पीड़ित हुवा इन अवस्थानिविषै प्रवर्तै है।

बहुरि इन कषायनिकी साथ नोकषाय हो हैं । जहाँ जब हास्य कषाय होइ तब आप विकसित होइ प्रफुल्लित होइ सो यह ऐसा जानना जैसा वायवालेका हंसना, नाना रोगकरि आप पीड़ित है, कोई कल्पनाकरि हसने लग जाय है। ऐसें ही यह जीव अनेक पीड़ा-सहित है, कोई झूठी कल्पनाकरि आपका सुहावता कार्य मानि हर्ष मानै है। परमार्थतै दुःखी ही है। सुखो ता कषायरोग मिटे होगा। बहुरि जब रति उपजै है, तब इष्ट वस्तुविषै अति आसक्त हो है। जैसे बिल्ली मूंसाकों पकरि आसक्त हो है, कोऊ मारै तो भी न छोरै। सो इहाँ इष्टपना है। बहुरि वियोग हानेका अभिप्राय लिये आसक्तता हो है तातै दुखही है। बहुरि जब अरति उपजै तब अनिष्ट वस्तुका सयोग पाय महा व्याकुल हो है । अनिष्टका संयोग भया सो आपकूं सुहावता नाही। सो यह पीड़ा सही न जाय तातैं ताका वियोग करनेकों तड़फड़ै है सो यह दुःख हो है । बहुरि जब शोक उपजै है तब इष्टका वियोग वा अनिष्टका संयाग होतें अतिव्याकुल होइ सन्ताप उपजावै, रोवै, पुकारै, असावधान होइ जाय,अपना अग-घात करि मरि जाय, किछू सिद्धि नाहीं तो भी आपही महादुःखी हो है। बहुरि जब भय उपजै है तब काहूको इष्टवियोग, अनिष्टसंयोगका कारण जानि डरै, अति विह्वल होइ, भागै वा छिपै वा शिथिल होइ जाय, कष्ट होनेके ठिकाने प्राप्त होय वा मरि जाय सो यह दुःख रूपही

है। बहुरि जुगुप्सा उपजै है तब अनिष्ट वस्तुसों घृणा करै। ताका तो संयोग भया, आप घृणाकरि भाग्या चाहै, खेदखिन्न होई कैं वाकूं दूर किया चाहै, महादुःखका पावै है। बहुरि तीनूं वेदनिकरि जब काम उपजै है तब पुरुषवेदकरि स्त्रीसहित रमनेकी अर स्त्रीवेदकरि पुरुष सहित रमनेकी अर नपुंसकवेदकरि दोऊनिस्यों रमनेकी इच्छा हो है। तिसकरि अति व्याकुल हो है, आताप उपजै है, निर्लज्ज हो है, धन खर्चै है। अपजसको न गिनै है। परम्परा दुःख होइ वा दंडादिक होय ताकों न गिनै है। काम पीड़ातैं बाउला हो है, मरि जाय है। सो रसग्रंथनिविषैं कामकी दश दशा कही हैं। तहां बाउला होना मरण होना लिख्या है। वैद्यक शास्त्रनिमें ज्वरके भेदनिविषै कामज्वर मरणका कारण लिख्या है। प्रत्यक्ष कामकरि मरणपर्यन्त होते देखिए है। कामांधकै किछू विचार रहता नाहीं। पिता पुत्री वा मनुष्य तिर्यंचणी इत्यादितै रमने लगि जाय है। ऐसी कामकी पीड़ा महा-दुःखरूप है। या प्रकार कषाय वा नोकषायनिकरि अवस्था हो है। इहां ऐसा विचार आवै है जो इन अवस्थानिविषै न प्रवर्त्तै तो क्रोधा-दिक पीड़ैं अर अवस्थानिविषैं प्रवर्त्तै तो मरण पर्यंत कष्ट होइ। तहां मरण पर्यंत कष्ट तो कबूल करिए है अर क्रोधादिककी पीड़ा सहनी कबूल न करिए है। तातैं यह निश्चय भया जो मरणादिकतैं भी कषायनिकी पीड़ा अधिक है। बहुरि जब याकै कषायका उदय होइ तब कषाय किए बिना रह्या जाता नाहीं। बाह्य कषायनिके कारण आय मिलैं तो उनके आश्रय कषाय करै, न मिलै तो आप कारण बनावै। जैसें व्यापारादि कषायनिका कारण न होइ तो जूआ खेलना वा अन्य

क्रोधादिकके कारण अनेक ख्याल खेलना वा दुष्ट कथा कहनी सुननी इत्यादिक कारण बनाव है। बहुरि काम क्रोधादि पीड़े शरीरविषै तिनरूप कार्य करनेकी शक्ति न होइ ता औषधि बनावै, अन्य अनेक उपाय करै। बहुरि कोई कारण बनै नाहीं तो अपने उपयोग विषै कषायनिको कारणभूत पदार्थनिका चिंतवनकरि आप ही कषायरूप परिणमै। ऐसे यह जीव कषायभावनिकरि पीड़ित हुवा महान् दुःखीहो है। बहुरि जिस प्रयोजनको लिए कषायभाव भया है तिस प्रयोजनकी सिद्धि होय तो यह मेरा दुःख दूरि होय अर मोक्षूं सुख होय, ऐसैं विचारि तिस प्रयोजनकी सिद्धि होनेके अर्थि अनेक उपाय करना सो तिस दुःख दूर होनेका उपाय मानै है। सो इहाँ कषायभावनितै जो दुःख हो है सो तो साचा हो है, प्रत्यक्ष आप हो दुःखी हो है। बहुरि यह उपाय करै है सो झूठा है। काहेतै सो कहिए है—क्रोध विषै तो अन्यका बुरा करना, मानविषै औरनिकूं नीचा करि आप ऊचा होना. मायाविषै छलकरि कार्य सिद्धि करना, लोभविषै इष्टका पावना, हास्यविषै विकसित होनेका कारण बन्या रहना, रतिविषै इष्टसयोगका बन्या रहना, अरतिविषै अनिष्टका दूर होना, शोकविषै शोकका कारण मिटना, भयविषै भयका मिटना, जुगुप्साविषै जुगुप्साका कारण दूर होना, पुरुषवेदविषै स्त्रीस्यों रमना, स्त्रीवेदविषै पुरुषस्यों रमना, नपुंसकवेदविषै दोऊनिस्यो रमना, ऐसै प्रयोजन पाइए है। सो इनकी सिद्धि होय तो कषाय उपशमनेतै दु.ख दूरि होय जाय, सुखी होय परन्तु इनकी सिद्धि इनके किए उपायनिके आधीन नाहीं, भवितव्यके आधीन है। जातै अनेक उपाय करते देखिये है अर सिद्धि न

हो है । बहुरि उपाय बनना भी अपने आधीन नाहीं, भवितव्यके आधीन है । जातें अनेक उपाय करना विचारै और एक भी उपाय न होता देखिए है । बहुरि काकतालीय न्यायकरि भवितव्य ऐसा ही होय, जैसा आपका प्रयोजन होय तैसा ही उपाय होय अर तातै कार्य की सिद्धि भी होय जाय तो तिस कार्य सम्बन्धी कोई कषायका उपशम होय परन्तु तहाँ थम्भाव होता नाहीं । यावत् कार्य सिद्ध न भया तावत् तो तिस कार्यसम्बन्धी कषाय थी, जिस समय कार्य सिद्ध भया तिस ही समय अन्य कार्यसम्बन्धी कषाय होइ जाय । एक समय मात्रभी निराकुल रहै नाही । जैसें कोऊ क्रोधकरि काहूका बुरा विचारै था, वाका बुरा होय चुक्या तब अन्य सों क्रोधकरि वाका बुरा चाहने लाग्या अथवा थोरी शक्ति थी तब छोटेनिका बुरा चाहै था, घनी शक्ति भई तब बड़ेनिका बुरा चाहने लाग्या । ऐसे ही मानमाया लोभादिक करि जो कार्य विचारै था सो सिद्ध होय चुक्या तब अन्य विषैं मानादिक उपजाय तिस की सिद्धि किया चाहै । थोरी शक्ति थी तब छोटे कार्यकी सिद्धि किया चाहै था,घनी शक्ति भई तब बड़े कार्य की सिद्धि करनेका अभिलाषी भया । कषायनिविषें कार्यका प्रमाण होइ तो तिस कार्यकी सिद्धि भए सुखी होइ जाय सो प्रमाण है नाहीं, इच्छा बधती ही जाय । सोई आत्मानुशासनविषें कह्या है—

"आशागर्तः प्रतिप्राणी यस्मिन्विश्वमणूपमम् ।
कस्यं किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता ।।३६।।"

याका अर्थ—आशारूपी खाडा प्राणी प्राणी प्रति पाइए है । अनंता-

नंत जीव हैं तिन सबनिकै ही आशा पाइए है। बहुरि वह आशा-रूपी खाड़ा कैसा है, जिस एक ही खाड़ेविषै समस्त लोक अणुसमान है। अर लोक एक ही सो अब इहाँ कौन कौनके कितना कितना बट-वारे*आवै। तुम्हारे यह विषयनिकी इच्छा है सो वृथा ही है। इच्छा पूर्ण तो होती ही नाहीं। तातै कोई कार्य सिद्ध भए भी दुःख दूर न होय अथवा कोई कषाय मिटै तिस ही समय अन्य कषाय होइ जाय। जैसैं काहूकों मारनेवाले बहुत होंय, जब कोई वाकूं न मारै तब अन्य मारने लगि जांय। तैसैं जीवकों दुःख द्यावनेवाले अनेक कषाय हैं, जब क्रोध न होय तब मानादिक होइ जाय, जब मान न होइ तब क्रोधादिक होइ जाँय। ऐसैं कषायका सद्भाव रह्या ही करै। कोईएक समय भी कषाय रहित होय नाही। तातैं कोई कषायका कोई कार्य सिद्ध भए भी दुःख दूर कैसे होइ? बहुरि याकै अभिप्राय तो सर्व-कषायनिका सर्वप्रयोजन सिद्ध करनेका है सो होइ तो सुखी होइ। सो तो कदाचित् होइ सकै नाहीं। तातै अभिप्राय विषै शाश्वता दुःखी ही रहै है। तातै कषायनिका प्रयोजनकों साधि दुःख दूरिकरि सुखी भया चाहै है, सो यह उपाय झूंठा ही है तो साँचा उपाय कहा है? सम्यग्-दर्शनज्ञानतै यथावत् श्रद्धान वा जानना होइ तब इष्ट अनिष्ट बुद्धि मिटै। बहुरि तिनहीके बलकरि चारित्रमोहका अनुभाग हीन होय। ऐसै होते कषायनिका अभाव होइ तब तिनकी पीड़ा दूर होय। तब प्रयोजन भी किछू रहै नाहीं, निराकुल होनेतैं महासुखी होइ। तातैं सम्यग्दर्शनादिक ही इस दुःख मेटनेका सांचा उपाय है। बहुरि अन्त-

* बांटमें—हिस्सेमें।

रायका उदयतें जीवके मोहकरि दान लाभ भोग उपभोग वीर्य शक्ति का उत्साह उपजै परन्तु होइ सकै नाहीं। तब परम आकुलता होइ सो यह दुःखरूप है ही, याका उपाय यह करैहै कि जो विघ्नके बाह्य कारण सूझै तिनके दूर करनेका उद्यम करै सो यह झूठा उपाय है। उपाय किये भी अन्तरायका उदय होतें विघ्न होता देखिए है। अन्तरायका क्षयोपशम भए उपाय बिना भी कार्य विषें विघ्न न हो है। तातें विघ्न का मूलकारण अंतराय है। बहुरि जैसें कूकराकै पुरुषकरि बाही हुई लाठी लागी, वह कूकरा लाठीस्यों वृथा ही द्वेष करै है। तैसें जीवके अन्तरायकरि निमित्तभूत किया बाह्य चेतन अचेतन द्रव्यकरि विघ्न भया, यह जीव तिन बाह्य द्रव्यनिसों वृथा खेदकरै है। अन्यद्रव्य याकै विघ्न किया चाहै अर याकै न होइ। बहुरि अन्य द्रव्य विघ्न किया न चाहै अर याकै होइ। तातै जानिए है, अन्य द्रव्यका किछु वश नाहीं, जिनका वश नाही तिनिसों काहेको लरिये। तातें यह उपाय झूठा है। सो सांचा उपाय कहा है? मिथ्यादर्शनादिकतें इच्छाकरि उत्साह उपजै था सो सम्यग्दर्शनादिककरि दूर होय अर सम्यग्दर्शनादिक ही करि अंतरायका अनुभाग घटै तब इच्छा तो मिट जाय, शक्ति बधि जाय तब वह दुःख दूर होइ। निराकुल सुख उपजै। तातैं सम्यग्दर्शनादिकही सांचा उपाय है। बहुरि वेदनीयके उदयतें दुःख सुखके कारण का संयोग हो है। तहाँ केइ तो शरीर विषै ही अवस्था हो हैं। केई शरीरकी अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य संयोग हो हैं। केइ बाह्य ही वस्तुनिका संयोग हो है। तहाँ असाताके उदयकरि शरीर विषै तो क्षुधा, तृषा, उल्लास, पीड़ा, रोग इत्यादि हो हैं। बहुरि शरीरकी अनिष्ट

अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य अति शीत उष्ण पवन बंधनादिकका संयोग हो है। बहुरि बाह्य शत्रु कुपुत्रादिक वा कुवर्णादिक सहित स्कंधनिका सयोग हो है। सो मोहकरि इन विषै अनिष्ट बुद्धि हो है। जब इनका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आव जाकरि परिणामनिमें महाव्याकुल होइ इनको दूर किया चाहै। यावत् ए दूर न होंय तावत् दुःखी हो है सो इनको होतें तो सर्व ही दुःख मानै हैं;बहुरि साताके उदयकरि शरीरविषै आरोग्यवानपनो बलवानपनो इत्यादि हो हैं। बहुरि शरीरकी इष्ट अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य खानपानादिक वा सुहावना पवनादिकका सयोग हो है। बहुरि बाह्य मित्र सुपुत्र स्त्री किंकर हस्ती घोटक धन धान्य मन्दिर वस्त्रादिकका सयोग हो है सो मोहकरि इनवषै इष्टबुद्धि हो है। जब इनका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आव जाकरि परिणामनिमे चैन मानै। इनकी रक्षा चाहै, यावत् रहे तावत सुख मानै। सो यह सुख मानना ऐसा है जैसें कोऊ घने रोगनिकरि बहुत पीड़ित होय रह्या था ताकै कोई उपचारकरि कोई एक रोगकी कितेक काल किछू उपशांतता भई तब वह पूर्व अवस्थाको अपेक्षा आपको सुखी कहै, परमार्थतै सुख है नाहीं। तसं यहु जीव घने दुःखनिकरि बहुत पीड़ित होइ रह्या था ताके कोई प्रकार करि कोऊ एक दुःखकी कितेक काल किछु उपशातता भई। तब यहु पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा आपको सुखी कहै है,परमार्थतैं सुख है नाही। बहुरि याकों असाताका उदय होते जो होय ताकरि तो दुःख भासै है तातैं ताके दूर करनेका उपाय करै है अर साताका उदय होतें जो होय ताकरि सुख भासै है तातैं ताको होनेका उपाय करै है।

सो यहु उपाय झूठा है। प्रथम तो याका उपाय याके आधीन नाहीं, वेदनीयकर्मका उदयके आधीन है। असाताके मेटनेके अर्थि साताकी प्राप्तिके अर्थितो सर्वहीकै यत्न रहैहै परन्तु काहूकै थोरा यत्न किए भी वा न किए भी सिद्धि होइ जाय, काहूके बहुत यत्न किए भी सिद्धि न होय, तातैं जानिए है याका उपाय याके आधीन नाही; बहुरि कदाचित् उपाय भी करै अर तैसा ही उदय आवै तो थोरे काल किंचित् काहू प्रकारकी असाताका कारण मिटै अर साताका कारण होय, तहाँ भी मोहके सद्भावतैं तिनको भोगनेकी इच्छाकरि आकुलित होय। एक भोग्यवस्तुकी भोगनेकी इच्छा होय,वह यावत् न मिलै तावत् तो वाकी इच्छाकरि आकुलित होय अर वह मिल्या अर उसही समय अन्यको भोगनेकी इच्छा होइ जाय, तब ताकरि आकुलित होइ। जैसे काहूको स्वाद लेनकी इच्छा भई थी, वाका आस्वाद जिस समय भया तिसही समय अन्य वस्तुका स्वाद लेनेकी वा स्पर्शनादि करनेकी इच्छा उपजै है। अथवा एक ही वस्तुको पहिले अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होइ, वह यावत् न मिलै तावत् वाकी आकुलता रहै अर वह भोग भया अर उसही समय अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होय। जैसें स्त्रीको देख्या चाहै था, जिस समय अवलोकन भया उस ही समय रमनेकी इच्छा हो है। बहुरि ऐसें भोग भोगतें भी तिनके अन्य उपाय करनेकी आकुलता हो है सो तिनको छोरि अन्य उपाय करनेको लागै है। तहाँ अनेक प्रकार आकुलता हो है। देखो एक धनका उपाय करनेमें व्यापारादिक करते बहुरि वाकी रक्षा करनेमें सावधानी करते केती आकुलता हो है। बहुरि क्षुधा तृषा शीत उष्ण मल श्लेष्मादि असाताका

उदय आया ही करै, ताका निराकरणकरि सुख मानै सो काहेका सुख है, यह तो रोगका प्रतिकार है। यावत् क्षुधादिक रहैं तावत् तिनकों मिटावनेकी इच्छाकरि आकुलता होय, वह मिटै तब कोई अन्य इच्छा उपजै ताकी अकुलता होय,बहुरि क्षुधादिक होय तब उनकी आकुलता होइ आवै। ऐसें याके उपाय करते कदाचित् असाता मिटि साता होइ तहाँ भी आकुलता रह्या ही करै,तातै दुःख ही रहै है। बहुरि ऐसें भी रहना तो होता नाहीं, आपको उपाय करते करते ही कोई असाताका उदय ऐसा आवै ताका किछु उपाय बनि सकै नाहीं अर ताकी पीड़ा बहुत होय,सही जाय नाहीं;तब ताकी आकुलताकरि विह्वल होइ जाय तहाँ महादुःखी होय। सो इस संसारमें साताका उदय तो कोई पुण्यका उदयकरि काहूकै कदाचित् हो पाईए है, घने जीवनिकै बहुत काल असाताहीका उदय रहै है। तातै उपाय करै सो झूठा है। अथवा बाह्य सामग्रीतें सुख दुःख मानिए है सो ही भ्रम है। सुख दुःख तो साता असाताका उदय होतें मोहका निमित्ततें हो है सो प्रत्यक्ष देखिये है। लक्ष धनका धनीकै सहस्र धनका व्यय भया तब वह दुःखी हो है अर शत धनका धनीकै सहस्रधन भया तब वह सुख मानै है,बाह्यसामग्री तो वाकै यातै निन्याणवै गुणी है। अथवा लक्ष धनका धनीकै अधिक धनकी इच्छा है तो वह दुःखी है अर शत धनका धनीकै सन्तोष है तो यह सुखी है। बहुरि समान वस्तु मिले कोऊ सुख मानै है, कोऊ दुःख मानै है। जैसें काहूको मोटा वस्त्रका मिलना दुःखकारी होइ, काहूको सुखकारी होइ; बहुरि शरीर विषै क्षुधा आदि पीड़ा वा बाह्य इष्टका वियोग अनिष्टका संयोग भए काहूकै बहुत दुःख होइ,काहूकै थोरा होइ.

काहूके न होय। तातैं सामग्रीके आधीन सुख दुःख नाहीं। साताअसाता का उदय होतें मोहपरिणमनिके निमित्ततैं ही सुख दुःख मानिए है।

इहां प्रश्न—जो बाह्य सामग्रीकी,तो तुम कहो हो तैसैं ही है परन्तु शरीरविषें तो पीड़ा भए दुःखी होय ही होय अर पीड़ा न भए सुखी होय सो यह तो शरीरअवस्था हीके आधीन सुख दुःख भासै है।

ताका समाधान—आत्माका तो ज्ञान इन्द्रियाधीन है अर इन्द्रिय शरीरका अंग है। सो यामें जो अवस्था बीतै ताका जाननेरूप ज्ञान परिणमै ताकी साथ ही मोहभाव होइ ताकरि शरीर अवस्थाकरि सुख दुःख विशेष जानिए है। बहुरि पुत्र धनादिकस्यों अधिक मोह होय तो अपना शरीरका कष्ट सहै ताका थोरा दुःख मानै,उनकों दुःख भए वा संयोग मिटे बहुत दुःख मानै। अर मुनि हैं सो शरीरको पीड़ा होतेभी किछु दुःख मानते नाहीं। तातैं सुख दुःख मानना तो मोहहीके आधीन है। मोहके अर वेदनीयके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है, तातै साता असाताका उदयतैं सुख दुःखका होना भासै है। बहुरि मुख्यपनै केतीक सामग्री साताके उदयतैं हो है, केतीक असाताके उदयतैं हो है तातैं सामग्रीनिकरि सुख दुःख भासै है। परन्तु निर्द्धार किए मोहहीतैं सुख दुःख का मानना हो है, औरनिकरि सुख दुःख होने का नियम नाहीं। केवलीकै साता असाताका उदयभी है अर सुख दुःखको कारण सामग्रीका संयोग भी है परन्तु मोहका अभावतै किंचिन्मात्र भी सुख दुःख होता नाहीं, तातै सुख दुःख मोहजनित ही मानना। तातैं तू सामग्रीके दूरकरनेका वा होनेका उपायकरि दुःखमेट्या चाहै, सखी भया चाहै सो यह उपाय झूठा है, तो साँचा उपाय कहा है ?

सम्यग्दर्शनादिकतें भ्रम दूर होई तब सामग्रीतें सुख दुःख भासै नाहीं,अपने परिणामहीतें भासै; बहुरि यथार्थ विचारका अभ्यासकरि अपने परिणाम जैसें सामग्रीके निमित्ततें सुखी दुःखी न होय तैसें साधन करै । सम्यग्दर्शनादि भावनाहीतें मोह मंद होइ जाय तब ऐसी दशा होइ जाय जो अनेक कारण मिले आपकों सुख दुःख होइ नाहीं। जबएक शांतदशारूप निराकुल होइ सांचासुखको अनुभवै तब सर्वदुःख मिटे सुखी होय, यहु सांचा उपाय है। बहुरि आयुकर्मके निमित्ततें पर्याय का धारना सो जीवितव्य है, पर्याय छूटना सो मरन है। बहुरि यह जीव मिथ्यादर्शनादिकते पर्यायहीको आपो अनुभवै है, तातैं जीवितव्य रहे अपना अस्तित्व मानै है, मरन भए अपना अभाव होना मानै है। इसही कारणतें सदा काल याके मरनका भय रहै है, तिस भयकरि सदा आकुलता रहै है । जिनको मरनका कारण जानै तिनसों बहुत डरै। कदाचित् उनका संयोग बनै तो महाविह्वल होइ जाय। ऐसै महा दुःखी रहै है। ताका उपाय यहु करै है जो मरनेके कारणनिकों दूर राखै है वा उनसों आप भागै है । बहुरि औषधादिकका साधन करै है, गढ़ कोट आदिक बनावै है इत्यादि उपाय करै है। सो यहु उपाय झूठा है, जातें आयु पूर्ण भए तो अनेक उपाय करै है, अनेक सहाई होइ तो भी मरन होइ ही होइ, एक समय मात्र भी न जीवै । अर यावत् आयु पूरी न होइ तावत् अनेक कारण मिलो, सर्वथा मरन न होइ। तातें उपाय किए मरन मिटता नाहीं । बहुरि आयुकी स्थिति पूर्ण होइ ही होइ तातें मरन भी होइ ही होइ, याका उपाय करना झूठा ही है तो सांचा उपाय कहा है ?

सम्यग्दर्शनादिकतें पर्यायविषैं अहंबुद्धि छूटै, अनादिनिधन आप चैतन्यद्रव्य है तिसविषै अहंबुद्धि आवै। पर्यायको स्वांग समान जानै तब मरणका भय रहै नाहीं। बहुरि सम्यग्दर्शनादिकहीतें सिद्धपद पावै तब मरणका अभाव ही होय। तातें सम्यग्दर्शनादिकही सांचा उपाय है।

बहुरि नामकर्मके उदयतें गति जाति शरीरादिक निपजै हैं तिनविषै पुण्यके उदयतें जे हो हैं ते तो सुखके कारण हो हैं। पापके उदयतें हो है ते दुःखके कारण हो है। सो इहां सुख मानना भ्रम है;बहुरि यहु दुःखके कारण मिटावनेका, सुखके कारण होनेका उपाय करै सो झूठा है। सांचा उपाय सम्यग्दर्शनादिक है। सो जैसें वेदनीयका कथन करते निरूपण किया तैसें इहाँ भी जानना। वेदनीय अर नामके सुख दुःखका कारणपनाकी समानतातें निरूपणकी समानता जाननी। बहुरि गोत्र कर्मके उदयतें नीच ऊँच कुलविषै उपजै है। तहाँ ऊँचा कुलविषै उपजे आपको ऊँचा मानै है अर नीचा कुलविषै उपजे आपको नीचा मानै है; सो कुल पलटनेका उपाय तो याको भासै नाहीं तातें जैसा कुल पाया तिसही कुल विषै आपो मानै है। सो कुल अपेक्षा आपको ऊँचा नीचा मानना भ्रम है। ऊँचा कुलका कोई निंद्य कार्य करै तो वह नीचा होइ जाय अर नीचा कुलविषै कोई श्लाघ्य कार्य करै तो वह ऊँचा होइ जाय। लोभादिकतें नीच कुलवालेकी उच्चकुलवाला सेवा करने लगि जाय। बहुरि कुल कितेक काल रहै? पर्याय छूटे कुलको पलटन होइ जाय। तातें ऊँचा नीचा कुलकरि आपकूं ऊँचा नीचा मानै। ऊँचाकुल वालेको नीचा होनेके भयका अर नीचाकुलवालेको पाए हुए नीचापने का दुःख ही है तो याका सांचा उपाय कहा है? सो कहिए है। सम्यग्द-

र्शनादिकतैं ऊंचा नीचा कुलविषै हर्षविषाद न मानै। बहुरि जिनहीतैं जाकी बहुरि पलटन न होइ ऐसा सर्वतै ऊंचा सिद्धपद पावै, तब सब दुःखमिटै, सुखी होय (तातैं सम्यग्दर्शनादिक दुःख मेटने अरु सुख करने का सांचा उपाय है *) । या प्रकार कर्मका उदयकी अपेक्षा मिथ्यादर्शनादिजके निमित्ततै संसारविषै दुःख ही दुःख पाइए है ताका वर्णन किया। अब इसही दुःखकों पर्याय अपेक्षाकरि वर्णन करिए है।

एकेन्द्रिय जीवोंके दुःख

इस ससारविषै बहुत काल तो एकेन्द्रिय पर्यायही विषै बीत है। तातै अनादिहीतै तो नित्यनिगोद विषै रहना, बहुरि तहाँतै निकसना ऐसें जैसें भारभूनते चणाका उछटि जानासो तहांतै निकसि अन्य पर्याय धरै तो त्रसविषै तो बहुत थोरेही काल रहै, एकेंद्रीही विषै बहुत काल व्यतीत करै है। तहाँ इतरनिगोदविषै बहुत रहना होइ। अर कितेक काल पृथिवी अप तेज वायु प्रत्येक वनस्पतीविषै रहना होइ। नित्य निगोदतैं निकसे पीछै त्रसविषै तो रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक दो हजार सागर ही है अर एकेन्द्रियविषै उत्कृष्ट रहनेका काल असख्यात पुद्गल परावर्तन मात्र है अरु पुद्गल परावर्तनका काल ऐसा है जाका अनतवाँ भागविषैभी अनते सागर हो हैं। तातै इस ससारीके मुख्यपने एकेन्द्रिय पर्यायविषैही काल व्यतीत हो है। तहाँ एकेन्द्रियकै ज्ञानदर्शन की शक्ति तो किंचिन्मात्र ही रहै है। एक स्पर्शन इन्द्रियके निमित्ततैं भया मतिज्ञान अर ताके निमित्ततैं भया श्रुतज्ञान अर स्पर्शनइन्द्रियजनित अचक्षुदर्शन जिनकर शीत उष्णादिकको किंचित् जानै देखै है,

* यह पंक्ति खरडा प्रति में नहीं है।

ज्ञानावरण दर्शनावरणके तीव्र उदयकरि ;यातैं अधिक ज्ञानदर्शन न पाइए है अर विषयनिकी इच्छा पाइए है तातैं महादुःखी है । बहुरि दर्शनमोहके उदयतैं मिथ्यादर्शन हो है ताकरि पर्यायहीको आपो श्रद्है है, अन्यविचार करनेकी शक्ति ही नाहीं । बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं तीव्र क्रोधादि कषायरूप परिणमैं है जातैं उनके केवली भगवानने कृष्ण नील कापोत ए तीन अशुभ लेश्याही कही हैं। सो ए तीव्र कषाय होते ही हो हैं सो कषाय तो बहुत अर शक्ति सर्व प्रकारकरि महाहीन तातैं बहुत दुःखी होय रहे हैं, किछू उपाय कर सकते नाही ।

इहाँ कोऊ कहै—ज्ञान तो किंचिन्मात्रही रह्या है,वे कहा कषाय करें?

ताका समाधान--जो ऐसा तो नियम है नाहीं जेता ज्ञान होय तेता ही कषाय होय । ज्ञान तो क्षयोपशम जेता होय तेता हो है । सो जैसें कोऊ आँधा बहरा पुरुषकै ज्ञान थोरा होते भी बहुत कषाय होते देखिए है तैसे एकेन्द्रियके ज्ञान थोरा होते भी बहुत कषायका होना मानना है। बहुरि बाह्य कषाय प्रगट तब हो है जब कषायके अनुसार किछु उपाय करैं। सो वे शक्तिहीन हैं तातै उपाय करि सकते नाहीं । तातैं उनकी कषाया प्रगट नाही हो है । जैसें कोऊ पुरुष शक्तिहीन है ताके कोई कारणतै तीव्र कषाय होय परन्तु किछु करि सकते नाहीं । तातैं वाका कषाय बाह्य प्रगट नाहीं हो है,यूं ही अति दुःखी हो है। तैसें एकेन्द्रिय जीव शक्तिहीन हैं, तिनकै कोई कारणतैं कषाय हो है परन्तु किछु कर सकै नाहीं, तातैं उनकी कषाय बाह्य प्रगट नाही हो है; वे आप ही दुःखी हो हैं। बहुरि ऐसा जानना, जहाँ कषाय बहुत होय अर शक्तिहीन होय तहाँ घना दुःखी हो है। बहुरि जैसें कषायघटती जाय,शक्ति बधती

जाय तैसें दुःख घटता हो है। सो एकेन्द्रियनिके कषाय बहुत अर शक्ति-हीन तातें एकेन्द्रिय जीव महादुःखी हैं। उनके दुःख वे ही भोगवै,हैं अर केवली जानै हैं। जैसे सन्निपातीका ज्ञान घट जाय अर बाह्य शक्तिके हीनपनेतें अपनादुःख प्रगट भी न करि सकै परन्तु वह महादुःखी है,तैसे एकेन्द्रियका ज्ञान थोरा है अर बाह्य शक्तिहीनपनातें अपना दुःखकों प्रगट भी न करि सकै है परन्तु महादुःखी है। बहुरि अन्तरायके तीव्र उदयकरि चाह्या होता नाहीं तातें भी दुःखी ही हो है। बहुरि अघातिकर्मनिविषें विशेषपने पापप्रकृतिका उदय है तहां असातावेदनीयका उदय होतें तिसके निमित्ततें महादुःखी हो है। बहुरि वनस्पती है सो पवनते टूटै है,शीत उष्णकरि सूकि जाय है,जल न मिलै सूकि जाय है,अगनिकरि बलै है,ताकों कोऊ छेदै है, भेदै है,मसलै है, खाय है,तोरै है इत्यादि अवस्था हो है। ऐसैं ही यथासम्भव पृथ्वी आदिविषैं अवस्था हो है। तिन अवस्थाको होते वे महादुःखी हो हैं। जैसे मनुष्यके शरीर विषैं ऐसी अवस्था भए दुःख हो है तैसे ही उनके हो है। जातें इनका जानपना स्पर्शन इन्द्रियतें हो है सो वाकै स्पर्शनइन्द्रिय है ही, ताकरि उनको जानि मोहके वशतें महाव्याकुल हो हैं परन्तु भागनेकी वा लरनेकी वा पुकारनेकी शक्ति नाही तातें अज्ञानी लोक उनके दुःखको जानते नाहीं। बहुरि कदाचित् किंचित् साताका उदय होय सो वह बलवान् होता नाहीं। बहुरि आयुकर्मतें इन एकेंद्रिय जीवनिविषै जे अपर्याप्त हैं तिनके तो पर्यायको स्थिति उश्वासके अठारहवें भाग मात्र ही है अर पर्याप्तनिकी अन्तर्मुहूर्त्त आदि कितेकवर्ष पर्यंत है। सो आयुकर्म थोरा तातें जन्ममरण हुवाही करै,ताकरि दुःखी हैं; बहुरि नामकर्मविषै तिर्यंच

गति आदि पापप्रकृतिनिकाही उदय विशेषपने पाइएहै। कोईहीनपुण्य प्रकृतिका उदयहोइ ताका बलवानपना नाहीं तातें तिनकरिभी मोहके वशतें दुःखी हो है। बहुरि गोत्रकर्मविषें नीचगोत्रहो का उदय है तातें महंतता होय नाहीं तातें भी दुःखी ही हैं। ऐसें एकेन्द्रिय जीव महा-दुःखी हैं अर इस संसारविषें जैसे पाषाण आधारविषें तो बहुत काल रहै है, निराधार आकाशविषें तो कदाचित् किंचिन्मात्रकाल रहै, तैसें जीव एकेन्द्रिय पर्यायविषें बहुतकाल रहैहै अन्य पर्यायविषे तो कदाचित् किंचिन्मात्र काल रहै है। तातें यहु जीव संसारविषै महादुःखी है।

दो इन्द्रियादिक जीवों के दुःख

बहुरि द्वीन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरेन्द्रिय असज्ञीपचेन्द्रिय पर्यायनिकों जीव धरै तहाँ भी एकेन्द्रियवत् दुःख जानना। विशेष इतना—इहाँ क्रमतें एक एक इन्द्रियजनित ज्ञानदर्शनकी वा किछु शक्तिकी अधिकता भई है बहुरि बोलने चालनेकी शक्ति भई है। तहाँ भी जे अपर्याप्त हैं वा पर्याप्त भी हीन शक्ति के धारक छोटे जीव हैं, तिनकी शक्ति प्रगट होती नाहीं। बहुरि केई पर्याप्त बहुत शक्तिके धारक बड़े जीव हैं, तिनकी शक्ति प्रगट हो है। तातें ते जीव विषयनिका उपाय करै हैं, दुःख दूर होनेका उपाय करै हैं। क्रोधादिककरि काटना, मारना, लरना छलकरना, अन्नादिका संग्रह करना, भागना इत्यादि कार्य करै हैं। दुःखकरि तड़भड़ाट करना, पुकारना इत्यादि क्रिया करै हैं। तातें तिनका दुःख किछु प्रगट भी हो है। सो लट कीड़ी आदि जीवन के शीत उष्ण छेदन भेदनादिकतें वा भूख तृषा आदितें परम दुःख देखिए है। जो प्रत्यक्ष दीसै ताका विचार करि लेना। इहाँ विशेष

कहा लिखें। ऐसे द्वीन्द्रियादिक जीव भी महादुःखी ही जानने।

नरकगति के दुःख

बहुरि सञ्ज्ञीपचेन्द्रियनिविषे नारकी जीव हैं ते तो सर्व प्रकार घने दुःखी हैं। ज्ञानादिकी शक्ति किछु है परन्तु विषयनिकी इच्छा बहुत अर इष्टविषयनिकी सामग्री किंचित् भी न मिलै तातै तिस शक्तिके होने करि भी घने दु.खी है,बहुरि क्रोधादि कषायका अति तीव्रपना पाइए है, जातै उनके कृष्णादि अशुभलेश्या ही हैं। तहा क्रोध मानकरि परस्पर दुःख देनेका निरन्तर कार्य पाइए है। जो परस्पर मित्रता करै तो यह दुःख मिट जाय। अर अन्यको दुःख दिए किछु उनका कार्य भी होता नाही परन्तु क्रोध मानका अति तीव्रपना पाईए है ताकरि परस्पर दु.खदेनेहीकी बुद्धि रहै। विक्रियाकरि अन्यको दुःखदायक शरीर के अग बनावै वा शस्त्रादि बनावै, तिनकरि अन्यको आप पीडै अर आपको कोई और पीडै, कदाचित् कषाय उपशांत होय नाही। बहुरि माया लोभ की भी अति तीव्रता है परन्तु कोई इष्ट सामग्री तहाँ दीखै नाही। तातै तिन कषायनिका कार्य प्रगट करि सकते नाहीं तिनकरि अंतरगविषै महादुःखी हैं। बहुरि कदाचित् किंचित् कोई प्रयोजन पाय तिनका भी कार्य हो है। बहुरि हास्य रति कषाय हैं परन्तु बाह्य निमित्त नाही तातै प्रगट होते नाही, कदाचित् किंचित् किसी कारणतै हो हैं। बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सानिके बाह्य कारण बनि रहे हैं, तातै ए कषाय तीव्र प्रगट होय हैं। बहुरि वेदनिविषै नपुंसक वेद है सो इच्छा तो बहुत और स्त्री पुरुषसो रमनेका निमित्त नाही, तातै महापीडित हैं। ऐसे कषायनिकरि अति दुःखी हैं। बहुरि वेदनीय विषै

असाताहीका उदय है ताकरि तहां अनेक वेदनाका निमित्त है। शरीर विषै कोढ़ कास श्वासादि अनेकरोग युगपत् पाइए हैं अर क्षुधातृषा ऐसी है, सर्वका भक्षण पान किया चाहै है अर तहांकी माटीहीका भोजन मिलै है सो माटीभी ऐसी है जो इहां आवै तो ताका दुर्गंधतैं केई कोसनिके मनुष्य मरि जांय। अर शीत उष्ण तहां ऐसी है जो लक्ष योजन का लोहाका गोला होइ सो भी तिनकरि भस्म होय जाय। कहीं शीत है, कहीं उष्ण है। बहुरि तहां पृथ्वी शस्त्रनितैं भी महातीक्ष्ण कंटकनि कर सहित है। बहुरि तिस पृथ्वीविषै वन हैं सो शस्त्रकी धारा समान पत्रादि सहित हैं। नदी है सो ताका स्पर्श भए शरीर खंड खंड होइ जाय ऐसे जल सहितहै। पवन ऐसा प्रचंड है जाकरि शरीर दग्ध हुवा जाय है। बहुरि नारकी नारकीको अनेक प्रकार पीड़ै, घाणीमें पेलैं, खंड खड करैं, हांडीमें रांधैं, कोरडा मारैं, तप्त लोहादिकका स्पर्श करावैं इत्यादि वेदना उपजावैं। तीसरी पृथिवी पर्यंत असुरकुमारदेव जांय ते आप पीड़ा दें वा परस्पर लडावें। ऐसी वेदना होते भी शरीर छूटै नाहीं, परावत् खंड खंड होई जाय तो भी मिल जाय, ऐसी महा पीडा है। बहुरि साताका निमित्त तो किछु है नाहीं। कोई अंश कदाचित् कोईकै अपनी मानतैं कोई कारण अपेक्षा साताका उदय हो है सो बलवान् नाहीं। बहुरि आयु तहां बहुत, जघन्य दशहजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागर। इतने काल ऐसे दुःख तहाँ सहने होंय। बहुरि नामकर्मको सर्वपापप्रकृतिनिहीका उदय है, एक भी पुण्यप्रकृतिका उदय नाहीं, तिन करि महादुःखी हैं। बहुरि गोत्रविषै नीचगोत्रहीका उदय है ताकरि महंतता न होइ तातैं दुःखी ही हैं; ऐसें नरकगतिविषें महादुःख जानने।

तिर्यंच गतिके दुःख

बहुरि तिर्यंचगतिविषै बहुत लब्धि अपर्याप्त जीव हैं तिनका तो उश्वासके अठारवें भाग मात्र आयु है । बहुरि केई पर्याप्त भी छोटे जीव हैं सो इनकी शक्ति प्रगट भासै नाहीं । तिनके दुःख एकेन्द्रियवत् जानना । ज्ञानादिकका विशेष है सो विशेष जानना । बहुरि बड़े पर्याप्त जीव केई सम्मूर्छन है, केई गर्भज है। तिनविषै ज्ञानादिक प्रगट हो है सो विषयनिकी इच्छाकरि आकुलित है। बहुतको तो इष्टविषयकी प्राप्ति नाही है, काहूको कदाचित् किंचित् हो है । बहुरि मिथ्यात्व भावकरि अतत्त्व श्रद्धानी होय रहे हैं। बहुरि कषाय मुख्यपन तीव्र ही पाइए है । क्रोध मानकरि परस्पर लरै है, भक्षण करै है, दुःखदेय है, माया लोभकरि छल करै है, वस्तुको चाहै हैं, हास्यादिककरि तिन कषायनिका कार्यनिविषै न प्रवर्त हैं। बहुरि काहूकै कदाचितमंदकषाय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै हो है तातै मुख्यता नाहीं। बहुरि वेदनीयविषै मुख्य असाताका उदय है ताकरि रोग पीड़ा क्षुधा तृषा छेदन भेदन बहुतभारवहन शीत उष्ण अंगभंगादि अवस्था हो है ताकरि दुःखी होते प्रत्यक्ष देखिए है। तातैं बहुत न कह्या है। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिके हो है, मुख्यता नाहीं। बहुरिआयु अन्तर्मुहूर्त्त आदि कोटिवर्ष पर्यंत है। तहा घने जीव स्तोक आयुके धारक हो हैं तातें जन्म मरनका दुःख पावै हैं । बहुरि भोगभूमियोंकी बड़ी आयु है अर उनकै साताका भी उदय है सो वे जीव थोरे हैं । बहुरि नामकर्मकी मुख्यपने तो तिर्यंचगति आदि पापप्रकृतिनिकाही

उदय है। काहूकै कदाचित् कोई पुण्य प्रकृतिनिका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै थोरा हो है, मुख्यता नाही। बहुरि गोत्रविषै नीच गोत्रहीका उदय है तातैं हीन होय रहे हैं। ऐसे तिर्यंचगतिविषै महादुःख जानने।

मनुष्यगतिके दुःख

बहुरि मनुष्यगतिविषै असंख्याते जीव तो लब्धि अपर्याप्त है ते सम्मूर्छन ही हैं, तिनकी तो आयु उश्वासके अठारवें भागमात्र है। बहुरि केई जीव गर्भमें आय थोरे ही कालमें मरन पावे हैं, तिनकी तो शक्ति प्रगट भासै नाहीं है। तिनके दुःख एकेंद्रियवत् जानना। विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि गर्भजनिके कितेक काल गर्भमें रहना पीछें बाह्य निकसना हो है। सो तिनका दुःखका वर्णन कर्म अपेक्षा पूर्वे वर्णन किया है तैसें जानना। वह सर्व वर्णन गर्भज मनुष्यनिकै सम्भवै है अथवा तिर्यंचनिका वर्णन किया है तैसें जानना। विशेष यहु है,इहा कोइ शक्ति विशेष पाइए है वा राजादिकनिकै विशेष साताका उदय हो है वा क्षत्रियादिकनिकै उच्चगोत्रका भी उदय हो है। बहुरि धन कुटुम्बादिकका निमित्त विशेष पाइए है इत्यादि विशेष जानना। अथवा गर्भ आदि अवस्थाके दुःख प्रत्यक्ष भासै हैं। जैसें विष्टाविषै लट उपजै तैसें गर्भमें शुक्र शोणितका विन्दुको अपना शरीररूपकरि जीव उपजै। पीछें तहां क्रमतें ज्ञानादिककी वा शरीरकी वृद्धि होइ। गर्भका दुःख बहुत है। संकोचरूप अधोमुख क्षुधातृषादि सहित तहां काल पूरण करै। बहुरि बाह्य निकसै तब बाल्यअवस्थामें महा दुःख हो है। कोऊ कहै—बाल्यावस्थामें दुःख थोरा है सो नाहीं है। शक्ति

थोरी है तातैं व्यक्त न होय सक है। पीछं व्यापारादि वा विषयइच्छा आदि दुःखनिको प्रगटता हो है। इष्ट अनिष्ट जनित आकुलता रहबो ही करै। पीछे वृद्ध होइ तब शक्तिहीन होइ जाय तब परमदुःखी हो है। सो ए दुःख प्रत्यक्ष होते देखिए है। हम बहुत कहा कहै। प्रत्यक्ष जाको न भासै सो कह्या कैसे सुनै। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका उदय हो है सो आकुलतामय है। अर तीर्थंकरादि पद मोक्षमार्ग पाए बिना होय नाहीं। ऐसे मनुष्य पर्यायविषै दुःख ही हैं। एक मनुष्य पर्यायविषै कोई अपना भला होनेका उपाय करै तो होय सकै है। जैसे काना साँठा * की जड वा बांड ×तो चूसने योग्य नाहीं अर बीचकी पेली कानी सो भी चूसी जाय नाही। कोई स्वादका लोभी वाकूं बिगारै तो बिगारो। अर जो वाको बोइ दे तो वाके बहुत सांठे होइ, तिनका स्वाद बहुत मीठा आवै। तैसे मनुष्यपर्यायका बालकवृद्धपना तो सुख भोगने योग्य नाही अर बीचकी अवस्था सो रोग क्लेशादिकरि युक्त तहां सुख होइ सकै नाही। कोई विषय सुखका लोभी याको बिगारै तो बिगारो। अर जो वाको धर्मसाधनविषै लगावै तो बहुत ऊंचे पदको पावै। तहा सुख बहुत निराकुल पाइए। तातै इहां अपना हित साधना, सुख होनेका भ्रमकरि वृथा न खोवना।

देवगतिके दुःख

बहुरि देवपर्यायविषै ज्ञानादिककी शक्ति किछु औरनितै विशेष है। मिथ्यात्वकरि अतत्त्वश्रद्धानी होय रहे हैं। बहुरि तिनकै कषाय किछु

* गन्ना × गन्ने के ऊपरका फीका भाग।

मद है; तहां भवनबासी व्यंतर ज्योतिष्कनिके कषाय बहुत मन्द नाहीं अर उपयोग तिनका चचल बहुत अर किछु शक्ति भीहै सो कषायनिके कार्यनिविषै प्रवर्तै है । कोतूहल बिषयादि कार्यनिविषै लगि रहे हैं सो तिस आकुलताकर दुःखोहा हैं । बहुरि वमानिकनिकै ऊपरि-ऊपरि विशेष मद कषाय है अर शक्ति विशेष है ताते आकुलता घटनेतें दुःख भी घटता है । इहा देवनिके क्रोधमान कषाय है परन्तु कारन थोरा है । तातें तिनके कार्य की गौणता है । काहूका बुरा करना वा काहूको हीन करना इत्यादि कार्य निकृष्ट देवनिकै तो कोतूहलादिकार होइ है अर उत्कृष्ट देवनिकै थोरा हो है,मुख्यता नाही । बहुरि माया लाभ कषायनिके कारण पाइए हैं ताते तिनके कार्य की मुख्यता है । तातें छल करना विषयसामग्रीको चाह करनी इत्यादि कार्य विशेष हो है । सो भी ऊँचे ऊँचे देवनिकै घाटि※है । बहुरि हास्य रतिकषायके कारन घने पाइए है ताते इनके कार्यनिकी मुख्यता है । बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सा इनके कारण थोरे है ताते तिनके कार्यनिकी गौणता है । वहुरि स्त्रीवेद पुरुषवेदका उदय है अर रमनेका भी निमित्त है सो कामसेवन करै हैं । ए भी कषाय ऊपरि ऊपरि मन्द है । अहमिद्रनिके वेदनिकी मंदताकरि कामसेवनका अभाव है । ऐसें देवनिकै कषायभाव है सो कषायहोतें दुःख है । अर इनके कषाय जेता थोरा है तितना दुःख भी थोरा है तातें औरनिकी अपेक्षा इनको सुखी कहिए है । परमार्थतें कषायभाव जीवै है ताकरि दुःखी ही हैं । बहुरि वेदनीयविषै साताका उदय बहुत है । तहां भवनत्रिकके थोरा है । वैमानिकनिकै

※ कम है ।

ऊपरि ऊपरि विशेष है। इष्ट शरीरकी अवस्था स्त्रीमंदिरादि सामग्री का संयोग पाइए है। बहुरि कदाचित् किंचित् असाताका भी उदय कोई कारण करि हो है। तहां निकृष्टदेवनिकै किछु प्रगट भी है अर उत्कृष्ट देवनिकै विशेष प्रगट नाहीं है। बहुरि आयु बडी है। जघन्य दशहजार वर्ष उत्कृष्ट तेतीस सागर है। अर ३१ सागर से अधिक आयुका धारी मोक्षमार्ग पाए बिना होना नाहीं। सो इतना काल विषय सुखमें मगन रहै है। बहुरि नामकर्मकी देवगति आदि सर्व पुण्य प्रकृतिनिहीका उदय है तातै सुखका कारण है। अर गोत्र विषै उच्च गोत्रहीका उदय है तातैं महंतपदको प्राप्त हैं। ऐसैं इनके पुण्यउदयकी विशेषताकरि इष्ट सामग्री मिली है अर कषायनिकरि इच्छा पाइए है, तातैं तिनके भोगनेविषै आसक्त होय रहे हैं परन्तु इच्छा अधिक ही रहै है तातैं सुखी होते नाहीं। ऊँचे देवनिके उत्कृष्ट पुण्य का उदय है, कषाय बहुत मंद है तथापि तिनकै भी इच्छाका अभाव होता नाही, तातैं परमार्थतैं दुःखी ही हैं। ऐसें सर्वत्र संसारविषै दुःख ही दुःख पाइए है। ऐसैं पर्याय अपेक्षा दुःखका वर्णन किया।

दुःखका सामान्य स्वरूप

अब इस सर्व दुःखका सामान्यस्वरूप कहिए है। दुःखका लक्षण आकुलता है सो आकुलता इच्छा होते हो है। सोई संसारी-जीवकै इच्छा अनेक प्रकार पाइए है। एक तो इच्छा विषय ग्रहण की है सो देख्या जान्या चाहै। जैसें वर्ण देखनेकी, राग सुननेकी, अव्यक्तको जानने इत्यादिकी इच्छा हो है। सो तहां अन्य किछु पीड़ा नाहीं परन्तु यावत् देखै जानै नाहीं तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छाका

नाम विषय है। बहुरि एक इच्छा कषाय भावनिके अनुसारि कार्य करने की है सो कार्य किया चाहै। जैसे बुरा करनेको, हीन करनेकी इत्यादि इच्छा हो है। सो इहां भी अन्य कोई पीडा नाहीं। परन्तु यावत् वह कार्य होइ तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छा का नाम कषाय है। बहुरि एक इच्छा पापके उदयते शरीरविषै या बाह्य अनिष्ट कारण मिलै तब उनके दूरि करनेको हो है। जैसें रोग पीड़ा क्षुधा आदिका सयोग भए उनके दूरकरनेकी इच्छाहो है सो इहां यहु ही पीड़ा मानै है। यावत् वह दूरि न होइ तावत् महाव्याकुल रहै। इस इच्छाका नाम पापका उदय है। ऐसे इन तीन प्रकारकी इच्छा होते सर्व ही दुःख मानै हैं सो दुःख ही है। बहुरि एक इच्छा बाह्य निमित्ततै बनै है सो इन तीन प्रकार इच्छानिके अनुसारि प्रवर्तनेकी इच्छा ही है। सो तीन प्रकार इच्छानिविषै एक एक प्रकारको इच्छा अनेक प्रकार है। तहां केई प्रकारको इच्छा पूरण करनेका कारण पुण्यउदयतै मिलै। तिनिका साधन युगपत् होइसकै नाही। तातै एकको छोरि अन्यको लागै,आगै भी बाकों छोरि अन्यको लागै। जैसें काहूकै अनेक सामग्री मिली है, वह काहूका देखै है, वाको छोरि राग सुनै है,वाकों छोरि काहूका बुरा करनै लगि जाय,वाको छोरि भोजन करै है अथवा देखने विषें ही एकको देखि अन्यको देखै है। ऐसें ही अनेक कार्यनिकी प्रवृत्ति विषै इच्छा हो है सो इस इच्छाका नाम पुण्य का उदय है। याको जगत सुख मानै है सो सुख है नाही, दुःख ही है। काहेतें —प्रथम तो सर्वप्रकार इच्छा पूरन होनेके कारण काहूकै भी न बनें। अर कोई प्रकार इच्छा पूरन करनेके कारण बनै तो युगपत् तिन

का साधनन होय। सो एकका साधन यावत् न होय तावत् वाकी आकुलता रहै है, वाका साधन भए उस ही समय अन्यका साधनकी इच्छा हो है तब वाकी आकुलता होय। एक समयभी निराकुल न रहै, तातैं दुःख ही है। अथवा तीन प्रकारके इच्छा रोगके मिटावनेका किंचित् उपाय करै है, तातैं किंचित् दुःख घाटि हो है, सर्व दुःखका तो नाश न होइ तातैं दुःख ही है। ऐसै संसारी जीवनिकै सर्वप्रकार दुःख ही है। बहुरि यहाँ इतना जानना तीनप्रकार इच्छानिकरि सर्वजगत पीडित है अर चौथी इच्छा तो पुण्यका उदय आए होइ सो पुण्यका बंध धर्मानुरागतै होइ सो धर्मानुराग विषै जीव थोरा लागै। जीव तो बहुत पाप क्रियानिविषै ही प्रवर्तै है। तातै चौथी इच्छा कोई जीवकै कदाचित् कालविषैही हो है। बहुरि इतना जानना--जो समान इच्छावान् जीवनिकी अपेक्षा तो चौथी इच्छावालाकै किछु तीन प्रकार इच्छाके घटनेतै सुख कहिये है। बहुरि चौथी इच्छावालाकी अपेक्षा महान् इच्छावाला चौथी इच्छा होतेभी दुःखीहो है। काहूकै बहुत विभूति है अर वाकै इच्छा बहुत है तो वह बहुत आकुलतावान् है। अर जाकै थोरी विभूति है अर वाकै इच्छा थोरी है तो वह थोरा आकुलतावान है। अथवा कोऊकै अनिष्ट सामग्री मिली है,ताकै उसके दूर करनेकी इच्छा थोरी है तो वह थोडा आकुलतावान् है। बहुरि काहूकै इष्ट सामग्री मिली है परन्तु ताकै उनके भोगनेकी वा अन्य सामग्रीकी इच्छा बहुत है तो वह जीव घना आकुलतावान् है। तातै सुखी दुःखी होना इच्छाके अनुसार जानना; बाह्य कारणके आधीन नाहीं है। नारकी दुःखी अर देव सुखी कहिए है सो भी इच्छाहीकी अपेक्षा कहिए

है। तातें नारकीनिकै तीव्रकषायतें इच्छा बहुत है। देवनिकै मन्द कषायतें इच्छा थोरी है। बहुरि मनुष्य तिर्यंच भी सुखी दु .खी इच्छा हीकी अपेक्षा जानने। तीव्र कषायतें जाकै इच्छा बहुत ताको दुःखी कहिए है। मद कषायतें जाकै इच्छा थोरी ताको सुखी कहिए है। परमार्थतें घना वा थोरा दुःखही है, सुख नाहीं है, देवादिककै भी सुख मानिए है सो भ्रम ही है। उनकै चौथी इच्छाकी मुख्यता है तातें आकुलित हैं। या प्रकार जो इच्छा है सो मिथ्यात्व अज्ञान असयमतें हो है। बहुरि इच्छा है सो आकुलतामयहै अर आकुलता है सोदुःख है। ऐसें सर्वजीव संसारी नानाप्रकारके दुःखनिकरि पीडित ही होइ रहेहैं।

दुःख निवृत्तिका उपाय

अब जिन जीवनिको दुखतें छूटना होय सो इच्छा दूर करनेका उपाय करो। बहुरि इच्छा दूर तब ही होइ जब मिथ्यात्व अज्ञान असयमका अभाव होइ अर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति होय। तातें इस ही कार्यका उद्यम करना योग्य है। ऐसा साधन करते जेती जेती इच्छा मिटै तेता तेताही दुःखदूर होता जाय। बहुरि जब मोहके सर्वथा अभावतें सर्वथा इच्छाका अभाव होइ तब सर्व दुःख मिटै, सांच सुख प्रगटै। बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण अतरायका अभाव होय तब इच्छाका कारण क्षयोपशम ज्ञानदर्शनका वा शक्तिहीनपनाका भी अभाव होय। अनंतज्ञानदर्शनवीर्यकी प्राप्ति होय। बहुरि केतेक काल पीछै अघाति कर्मनिकाभी अभाव होय, तब इच्छाके बाह्य कारण तिनका भी अभाव होय। मोह गए पीछैं एक समय मात्र भी किछु इच्छा उपजावनेको समर्थ थे नाहीं, मोह होते कारण थे ताते कारण कहे

हैं सो इनका भी अभाव भया तब सिद्धपदको प्राप्त हो हैं । तहाँ दुःखका वा दुःखके कारणनिका सर्वथा अभाव होनेतें सदा काल अनोपम्य अखंडित सर्वोत्कृष्ट आनन्दसहित अनन्तकाल विराजमान रहै हैं। सोई दिखाइए है—

सिद्ध अवस्थामें दुःखके अभावकी सिद्धि

ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम होते वा उदय होते मोह करि एक एक विषय देखने जाननेकी इच्छाकरि महाव्याकुल होता था सो अब मोहका अभावतैं इच्छाका भी अभाव भया । तातैं दुःखका अभाव भया है । बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षय होनेतें सर्व इन्द्रियनिको सर्वविषयनिका युगपत् ग्रहण भया, तातें दुःखका कारण भी दूर भया है सोई दिखाइए है—जैसे नेत्रकरि एक विषयको देख्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोकके सर्व वर्णनिको युगपत् देखै है। कोऊ बिना देख्या रह्या नाही, जाके देखनेकी इच्छा उपजै । ऐसे ही स्पर्शनादिककरि एक एक विषयको ग्रह्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोक के सर्व स्पर्श रस गध शब्दनिको युगपत् ग्रहै है। कोऊ बिना ग्रह्या रह्या नाही, जाके ग्रहण को इच्छा उपजै ।

इहां कोऊ कहै, शरीरादिक बिना ग्रहण कैसे होइ ?

ताका समाधान—इन्द्रियज्ञान होते तो द्रव्यइन्द्रयादि बिना ग्रहण न होता था । अब ऐसा स्वभाव प्रगट भया जो बिनाही इन्द्रिय ग्रहण हो है । इहां कोऊ कहै, जैसे मनकरि स्पर्शादिकको जानिए है तैसें जानना होता होगा । त्वचा जीभ आदि करि ग्रहण हो है तैसे न होता होगा । सो ऐसैं नाहीं है । मनकरि तो स्मरणादि होते अस्पष्ट जानना किछु हो है । इहाँ तो स्पर्शरसादिकको जैसे त्वचा जीभ इत्यादि करि

स्पर्शे स्वादे सूंघे देखे सुनै जैसा स्पष्ट जानना हो है तिसतैं भी अनन्त गुणा स्पष्ट जानना तिनकै हो है। विशेष इतना भया है—वहाँ इन्द्रिय विषयका संयोग होतें ही जानना होता था, इहां दूर रहे भी वैसा ही जानना हो है। सो यहु शक्तिकी महिमा है। बहुरि मनकरि किछु अतीत अनागतको वा अव्यक्तको जान्या चाहै था, अब सर्वही अनादितें अनतकालपर्यन्त जे सर्व पदार्थनिके द्रव्य क्षेत्र काल भाव तिनको युगपत् जानै है। कोऊ बिना जान्या रह्या नाहीं, जाके जाननेकी इच्छा उपजै। ऐसें इन दुःख और दुःखनिके कारण तिनका अभाव जानना। बहुरि मोहके उदयतें मिथ्यात्व वा कषायभाव होते थे तिनका सर्वथा अभाव भया तातें दुःखका अभाव भया। बहुरि इनके कारणनिका अभाव भया तातें दुःखके कारणका भी अभाव भया। सो कारणका अभाव दिखाइए है।

सब तत्व यथार्थ प्रतिभासैं, अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व कैसे होइ? कोऊ अनिष्ट रह्या नाही,निंदक स्वयमेव अनिष्ट पावै हो है,आप क्रोध कौनसों करै? सिद्धनितैं ऊँचा कोई है नाही। इन्द्रादिक आपहीतें नमै हैं,इष्ट पावैं हैं तो कौनसो मान करै? सर्व भवितव्य भासि गया,कोऊ कार्य रह्या नाही, काहूसो प्रयोजन रह्या नाही, काहेका लोभ करैं? कोऊ अन्य इष्ट रह्या नाही, कौन कारणतें हास्य होइ? कोऊ अन्य इष्ट प्रीति करने योग्य है नाहीं,इहाँ कहा रति करै? कोऊ दुःखदायक संयोग रह्या नाही, कहा अरति करै? कोऊ इष्ट अनिष्ट संयोग वियोग होता नाहीं, काहेको शोक करै?कोऊअनिष्ट करनेवाला कारण रह्या नाहीं, कौनका भय करै? सर्ववस्तु अपने स्वभाव लिए भासै,आपको अनिष्ट

नाहीं, कहा जुगुप्सा करै ? काम पीडा दूर होनेतें स्त्री पुरुष उभयसों रमनेका किछु प्रयोजन रह्या नाही, काहेको पुरुष स्त्री नपुंसकवेद रूप भाव होई ? ऐसै मोह उपजनेके कारणनिका अभाव जानना। बहुरि अंतरायके उदयतें शक्ति हीनपनाकरि पूरण न होती थी, अब ताका अभाव भया, तातें दुःखका अभाव भया। बहुरि अनंत शक्ति प्रगट भई, तातै दुःखके कारणका भी अभाव भया।

इहाँ कोऊ कहै, दान लाभ भोग उपभोग तो करते नाही, इनकी शक्ति कैसे प्रगट भई ?

ताका समाधान—ए कार्य रोगके उपचार थे। जब रोग ही नाही तव उपचार काहेको करै। तातै इन कार्यनिका सद्भाव तो नाही। अर इनका रोकनहारा कर्मका अभाव भया, तातै शक्ति प्रगटी कहिए है। जैसे कोऊ नाही गमन किया चाहै ताको काहूनै रोक्या था तब दुःखी था। जब वाकै रोकना दूर भया अर जिस कार्यके अर्थि गया चाहै था सो कार्य न रह्या तब गमन भी न किया। तब वाकै गमन न करते भी शक्ति प्रगटी कहिए। तैसे ही इहाँ जानना। बहुरि ज्ञानादि की शक्तिरूप अनतवीर्य प्रगट उनके पाइए है। बहुरि अघाति कर्मनि विषै मोहतै पाप प्रकृतिनिका उदय होते दुःख मानै था, पुण्यप्रकृतिनि का उदय होते सुख मानै था, परमार्थतै आकुलताकरि सर्व दुःख ही था। अब मोहके नाशतै सर्व आकुलता दूर होनेतें सर्व दुःखका नाश भया। बहुरि जिन कारणनिकरि दुःख मानै था, ते तो कारण सर्व नष्ट भए। अर जिनकरि किंचित् दुःख दूर होनेतै सुख मानै था, सो अब मूलहीमें दुःख रह्या नाहीं। तातैं तिन दुःखके उपचारनिका किछु

प्रयोजन रह्या नाहीं, जो तिनकरि कार्यकी सिद्धि किया चाहै। ताकी स्वयमेव ही सिद्धि होय रही है। इसहीका विशेष दिखाइये है—

वेदनीय विषैं असाताका उदयतैं दुःखके कारण शरीर विषैं रोग क्षुधादिक होते थे। अब शरीर ही नाहीं तब कहां होंय? अर शरीरकी अनिष्ट अवस्थाको कारण आतापादिक थे सो अब शरीर बिना कौन को कारण होंय? अर बाह्य अनिष्ट निमित्त बनै था सो अब इनके अनिष्ट रह्या ही नाहीं। ऐसैं दुःखका कारणका तो अभाव भया। बहुरि साताके उदयतैं किंचित् दुःख मेटनेके कारण औषधि भोजनादिक थे, तिनका प्रयोजन रह्या नाहीं। अर इष्ट कार्य पराधीन रह्या नाहीं, तातै बाह्य भी मित्रादिकको इष्ट मानने का प्रयोजन रह्या नाहीं। इन करि दुःख मेटया चाहै था वा इष्ट किया चाहै था सो अब सम्पूर्ण दुःख नष्ट भया अर सम्पूर्ण इष्ट पाया। बहुरि आयुके निमित्ततैं मरण जीवन था तहां मरणकरि दुःख मानै था सो अविनाशी पद पाया, तातैं दुःखका कारण रह्या नाहीं। बहुरि द्रव्य प्राणनिको धरे कितेक काल जीवनतैं सुख मानै था, तहाँ भी नरक पर्याय विषै दुःखकी विशेषताकरि तहां जीवना न चाहै था, सो अब इस सिद्धपर्याय विषै द्रव्यप्राण बिना ही अपने चैतन्य प्राणकरि सदाकाल जीवै है अर तहां दुःख का लवलेश भी न रह्या है। बहुरि नामकर्मतैं अशुभ गति जाति आदि होते दुःख मानै था सो अब तिन सबनिका अभाव भया, दुःख कहांतैं होय? अर शुभगति जाति आदि होते किंचित् दुःख दूर होनेतैं सुख मानै था, सो अब तिन बिना ही सर्व दुःख का नाश अर सर्व सुख का प्रकाश पाईए है। तातैं तिनका भी किछु प्रयोजन

रह्या नाहीं। बहुरि गोत्रके निमित्ततें नीचकुल पाएदुःखमाने था सो ताका अभाव होने ते दुःखका कारण रह्या नाहीं। बहुरि उच्चकुल पाए सुख माने था सो अब उच्चकुल बिनाही त्रैलोक्यपूज्य उच्चपदको प्राप्त है, या प्रकार सिद्धनिके सर्वकर्मके नाश होनेतें सर्व दुःख का नाश भयाहै।

दुःखका लक्षण आकुलता है सो आकुलता तब ही हो है जब इच्छा होय। सो इच्छा का वा इच्छा के कारणनिका सर्वथा अभाव भया तातें निराकुल होय सर्व दुःख रहित अनन्त सुखको अनुभवै है, जातें निराकुलपना ही सुख का लक्षण है। ससारविषै भी कोई प्रकार निराकुलित होइ तब ही सुख मानिए है। जहां सर्वथा निराकुल भया तहाँ सुख सम्पूर्ण कैसे न मानिए? या प्रकार सम्यग्दर्शनादि साधनतें सिद्ध पद पाए सर्व दुःख का अभाव हो है, सर्व सुख प्रगट हो है।

अब इहाँ उपदेश दीजिए है—हे भव्य! हे भाई! जो तोकू ससारके दुःख दिखाए, ते तुझ विषै बीतै हैं कि नाहीं सो विचारि। अर तू उपाय करै है ते झूठे दिखाए सो ऐसें ही हैं कि नाही सो विचारि। अर सिद्धपद पाए सुख होय कि नाहीं सो विचारि। जो तेरे प्रतीति जैसे कही है तैसे ही आवै है तो तू ससारतें छूटि सिद्धपद पावने का हम उपाय कहैं है सो करि, विलम्ब मति करै। इह उपाय किए तेरा कल्याण होगा।

इति श्री मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसार दुःखका वा मोक्ष सुखका निरूपक तृतीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥३॥

चौथा अधिकार

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रका निरूपण

दोहा

इस भवके सब दुःखनिके, कारण मिथ्याभाव ।
तिनकी सत्ता नाश करि, प्रगटै मोक्ष उपाव ।।१।।

अब इहां संसार दुःखनिके बीजभूत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र हैं तिनका स्वरूप विशेष निरूपण कीजिए हैं। जैसे वैद्य है सो रोगके कारणनिका विशेष कहै तो रोगीकुपथ्य सेवन न करै तब रोगरहित होय, तैसें इहां संसारके कारणनिका विशेष निरूपण करिए है तो संसारी मिथ्यात्वादिकका सेवन न करै तब संसार रहित होय। तातै मिथ्यादर्शनादिकनिका स्वरूप विशेष कहिए है—

मिथ्यादर्शनका स्वरूप

यहु जीव अनादितै कर्मसम्बन्धसहित है। याकै दर्शनमोहके उदयतै भया जो अतत्त्व श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन है। जातै तद्भाव जो श्रद्धान करनेयोग्य अर्थहै ताका जो भाव अथवा स्वरूप ताका नाम तत्व है। तत्व नाही ताका नाम अतत्व है। अर जो अतत्व है सो असत्य है, तातै इसहीका नाम मिथ्या है। बहुरि ऐसै ही यहु है, ऐसा प्रतीति भाव ताका नाम श्रद्धान है। इहां श्रद्धानहीका नाम दर्शन है। यद्यपि दर्शन शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकन है तथापि इहा प्रकरणके वशतैं इस ही धातुका अर्थ श्रद्धान जानना। सो ऐसै ही सर्वार्थसिद्धि नाम

सूत्रको टीकाविषै कह्या है। जातै सामान्यअवलोकन संसारमोक्षको कारण होई नाहीं। श्रद्धान ही संसार मोक्षको कारण है, तातै संसार मोक्षका कारणविषै दर्शनका अर्थ श्रद्धान ही जानना। बहुरि मिथ्यारूप जो दर्शन कहिए श्रद्धान ताकानाम मिथ्यादर्शन है। जैसे वस्तुका स्वरूप नाहीं तैसे मानना, जैसे है तैसे न मानना ऐसा विपरीताभिनिवेश कहिए विपरीत अभिप्राय ताकों लिए मिथ्यादर्शन हो है।

इहाँ प्रश्न— जो केवलज्ञान बिना सर्व पदार्थ यथार्थ भासै नाहीं अर यथार्थ भासे बिना यथार्थ श्रद्धान न होइ, तातै मिथ्यादर्शनका त्याग कैसे बनै ?

ताका समाधान—पदार्थनिका जानना, न जानना, अन्यथा जानना तो ज्ञानावरण के अनुसार है। बहुरि प्रतीति हो है सो जाने ही हो है, बिना जाने प्रतीति कैसे आवै ? यह तो सत्य है। परन्तु जैसे कोऊ पुरुष है सो जिनसे प्रयोजन नाहीं, तिनको अन्यथा जान वा यथार्थ जाने बहुरि जैसे जानै तैसे ही मानै, किछु वाका बिगार सुधार है नाहीं, तातैं बाउला स्याना नाम पावै नाहीं। बहुरि जिनसों प्रयोजन पाइए है, तिनकों जो अन्यथा जानै अर तैसें ही मानै तो बिगार होई तातै वाकों बाउला कहिए। बहुरि तिनको जो यथार्थ जानै अर तैसे ही मानै तो सुधार होई तातै वाकों स्याना कहिए। तैसे ही जीव है सो जिनस्यो प्रयोजन नाही, तिनकों अन्यथा जानो वा यथार्थ जानो बहुरि जैसें जानै तैसे श्रद्धान करै, किछु याका बिगार सुधार नाही तातै मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि नाम पावै नाही। बहुरि जिनस्यों प्रयोजन पाइए है तिनकों जो अन्यथा जानै अर तैसें

ही श्रद्धान करै तो बिगार होइ तातै याको मिथ्यादृष्टि कहिए। बहुरि तिनकों जो यथार्थ जानै अर तैसे ही श्रद्धान करै तो सुधार होइ तातै याको सम्यग्दृष्टि कहिए। इहाँ इतना जानना कि अप्रयोजनभूत या प्रयोजनभूत पदार्थनिका न जानना वा यथार्थ अयथार्थ जानना जो होइ तामें ज्ञानकी हीनता अधिकता होना, इतना जीवका बिगार सुधार है। ताका निमित्त तो ज्ञानावरण कर्म है। बहुरि तहां प्रयोजनभूत पदार्थनिको अन्यथा वा यथार्थ श्रद्धान किए जीवका किछु और भी बिगार सुधार हो है। तातै याका निमित्त दर्शनमोह नामा कर्म है।

इहाँ कोऊ कहै कि जैसा जानै तैसा श्रद्धान करै तातै ज्ञानावरणही के अनुसारि श्रद्धान भासै है, इहां दर्शनमोहका विशेष निमित्त कैसे भासै?

ताका समाधान—प्रयोजनभूत जीवादि तत्वनिका श्रद्धान करने योग्य ज्ञानावरणका क्षयोपशम तो सर्व सञ्ज्ञी पचेन्द्रियनिकै भया है। परन्तु द्रव्यलिंगी मुनि ग्यारह अंग पर्यंत पढ़ें वा ग्रैवेयकके देव अवधि ज्ञानादियुक्त है तिनकै ज्ञानावरणका क्षयोपशम बहुत होते भी प्रयोजनभूत जीवादिका श्रद्धान न होइ। अर तिर्यंचादिककै ज्ञानावरणका क्षयोपशम थोरा होतै भी प्रयोजनभूत जीवादिकका श्रद्धान होइ, तातैं जानिए है ज्ञानवरणहीके अनुसारि श्रद्धान नाहीं। कोई जुदा कर्म है सो दर्शनमोह है। याके उदयतै जीवके मिथ्यादर्शन हो है तब प्रयोजनभूत जीवादितत्वनिका अन्यथा श्रद्धान करै है।

प्रयोजन अप्रयोजनभूत पदार्थ

इहां कोऊ पूछै कि प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ कौन कौन है?

ताका समाधान- इस जीवके प्रयोजन तो एक यहु ही है कि दुःख न होय, सुख होय। अन्य किछू भी कोई ही जीवकै प्रयोजन है नाही। बहुरि दुःख न होना, सुख का होना एक ही है, जातैं दुःख का अभाव सोई सुख है। सो इस प्रयोजनकी सिद्धि जीवादिकका सत्य श्रद्धान किए हो है। कैसे ? सो कहिए है।

प्रथम तो दुःख दूर करने विषै आपापरका ज्ञान अवश्य चाहिए। जो आपापरका ज्ञान नाही होय तो आपको पहिचाने बिना अपना दुःख कैसे दूरि करै। अथवा आपापरको एक जानि अपना दुःख दूर करनेके अर्थि परका उपचार करै तो अपना दुःख दूर कैसे होइ ? अथवा आपते पर भिन्न अर यहु परविषै अहंकार ममकार करै तातै दुःख ही होय। आपापरका ज्ञान भए ही दुःख दूर हो है। बहुरि आपापरका ज्ञान जीव अजीवका ज्ञान भए ही होइ। जातै आप जीव है, शरीरादिक अजीव हैं। जो लक्षणादिककरि जीव अजीव की पहिचान होइ तो आपापरको भिन्नपनो भासै। तातै जीव अजीवको जानना अथवा जीव अजीवका ज्ञान भए जिन पदार्थनिका अन्यथा श्रद्धानतै दुःख होता था तिनका यथार्थ ज्ञान होनैतै दुःख दूरि होइ तातै जीव अजीवको जानना। बहुरि दुःखका कारन तो कर्मबन्धन है अर ताका कारण मिथ्यात्वादिक आस्रव है। सो इनको न पहिचानै, इनको दुःख का मूलकारन न जानै तो इनका अभाव कैसे करै ? अर इनका अभाव न करै तब कर्मबन्धन होइ, तातैं दुःख ही होय। अथवा

मिथ्यात्वादिक भाव हैं सो दुःखमय हैं । सो इनको जैसेके तैंसे न जानै तो इनका अभाव न करै तब दुःखी ही रहै तातैं आस्रवको जानना। बहुरि समस्त दुःखका कारण कर्मबन्धन है सो याकों न जानै तब यातैं मुक्त होनेका उपाय न करै तब ताके निमित्ततैं दुःखी होइ तातैं बंधको जानना । बहुरि आश्रवका अभाव करना सो संवर है, याका स्वरूप न जानै तो या विषैं न प्रवर्तै तब आस्रव ही रहै तातैं वर्तमान या आगामी दुःख ही होइ तातैं संवरको जानना । बहुरि कथंचित् किंचित् कर्मबंधका अभाव ताकानाम निर्जरा है सो याको न जानै तब याकी प्रवृत्तिका उद्यमी न होइ। तब सर्वथा बंधही रहै तातैं दुःख ही होइ तातैं निर्जराको जानना। बहुरि सर्वथा सर्व कर्मबंधका अभाव होना ताका नाम मोक्ष है। सो याकों न पहिचानै तो याका उपाय न करै, तब संसारविषै कर्मबंधतैं निपजे दुःखनिहीकों सहै तातैं मोक्षको जानना। ऐसें जीवादि सप्त तत्त्व जाननें। बहुरि शास्त्रादिक करि कदाचित् तिनकों जानै अर ऐसें ही है ऐसी प्रतीति न आई तो जाने कहा होय तातै तिनका श्रद्धान करना कार्यकारी है । ऐसे जीवादि तत्त्वनिका सत्यश्रद्धान किएही दुःख होनेका अभावरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है। तातैं जीवादिक पदार्थ हैं ते ही प्रयोजनभूत जानने। बहुरि इनके विशेषभेद पुण्यपापादिकरूप तिनका भी श्रद्धान प्रयोजनभूत है जातै सामान्यतैं विशेष बलवान् है। ऐसें ये पदार्थ तो प्रयोजनभूत हैं तातै इनका यथार्थ श्रद्धान किए तो दुःख न होय, सुख होय अर इनको यथार्थ श्रद्धान किए बिना दुःखहो है, सुखन हो है। बहुरि इन बिना अन्य पदार्थ है, ते अप्रयोजनभूत हैं । जातै तिनकों

यथार्थश्रद्धान करो वा मति करो, उनका श्रद्धान किछू सुख दुःखकों कारण नाहीं।

इहाँ प्रश्न उपजै है, जो पूर्वे जीव अजीव पदार्थ कहे तिनविषै तो सर्व पदार्थ आय गए, तिन बिना अन्य पदार्थ कौन रहे जिनकों अप्रयोजनभूत कहे।

ताका समाधान—पदार्थ तो सर्व जीव अजीवविषै ही गर्भित हैं परन्तु तिन जीव अजोवनिके विशेष बहुत हैं। तिन विषैं जिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीवको यथार्थ श्रद्धान किये स्व-परका श्रद्धान होय रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ, तातै सुख उपजै; अयथार्थ श्रद्धान किए स्व-परका श्रद्धान न होई रागादिक दूर करनेका श्रद्धान न होइ, तातै दुःख उपजै, तिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीव पदार्थ तो प्रयोजनभूत जानने। बहुरि जिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीवकको यथार्थ श्रद्धान किए वा न किए स्व-परका श्रद्धान होइ वा न होइ अर रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ वा न होइ, किछू नियम नाहीं तिन विशेषनिकरि सहित जीव अजोव पदार्थ अप्रयोजनभूत जानने। जैसे जीव अर शरीरका चैतन्य मूर्त्तत्वादिक विशेषनिकरि श्रद्धान करना तो प्रयोजनभूत है अर मनुष्यादि पर्यायनिको वा घटादिकी अवस्था आकारादि विशेषनिकरि श्रद्धान करना अप्रयोजनभूत है। ऐसेही अन्य जानने। या प्रकार कहे जे प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्व तिनका अयथार्थ श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन जानना।

अब संसारी जीवनिकै मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति कैसें पाइए है सो कहिए हैं। इहाँ वर्णन तो श्रद्धानका करना है परन्तु जानै तब श्रद्धान करै, तातैं जाननेकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है।

मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति

अनादितैं जीव है सो कर्मके निमित्ततैं अनेक पर्याय धरै है तहाँ पूर्व पर्यायको छोरै, नवीन पर्याय धरै। बहुरि वह पर्याय है सो एक तो आप आत्मा अर अनन्त पुद्गलपरमाणुमय शरीर तिनका एक पिंड बंधानरूप है। बहुरि जीवकै तिस पर्यायविषै यह मैं हूं, ऐसें अहंबुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताका स्वभाव तो ज्ञानादिक है अर विभाव क्रोधादिक हैं अर पुद्गल परमाणूनिके वर्ण गंध रस स्पर्शादि स्वभाव हैं तिन सबनिको अपना स्वरूप मानै है। ए मेरे हैं, ऐसे मम बुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताको ज्ञानादिककी वा क्रोधादिककी अधिक हीनतारूप अवस्था हो है अर पुद्गलपरमाणूनिकी वर्णादि पलटनेरूप अवस्था हो है तिन सबनिको अपनी अवस्था मानै है। ए मेरी अवस्था हैं, ऐसें मम बुद्धि करै है। बहुरि जीवकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है तातै जो क्रिया हो है ताको अपनी मानै है। अपना दर्शनज्ञानस्वभाव है, ताको प्रवृत्तिको निमित्त मात्र शरीरका अंगरूपस्पर्शनादि द्रव्यइन्द्रिय हैं। यहु तिनको एक मान ऐसे मानै है जो हस्तादि स्पर्शनकरि मैं स्पर्श्या, जीभकरि चाख्या, नासिकाकरि सूंघ्या, नेत्रकरि देख्या, काननिकरि सुन्या, ऐसें मानै है। मनोवर्गणारूप आठ पांखुड़ीका फूल्या कमलके आकार हृदय स्थानविषै द्रव्यमन है, दृष्टिगम्य नाहीं ऐसा है सो शरीरका अंग है, ताका निमित्त भए स्मरणादिरूप ज्ञानकी प्रवृत्ति हो है। यहु द्रव्यमनको अर ज्ञानको एक मानि ऐसें मानै है कि मैं मनकरि जान्या। बहुरि अपने बोलनेकी इच्छा हो है तब अपने प्रदेशनिकों जैसें बोलना बनै हलावै, तब

एक क्षेत्रावगाह सम्बन्धतैं शरीरके अग भी हाले, ताके निमित्ततैं भाषा वर्गणारूप पुद्गल वचनरूप परिणमैं। यहु सबको एक मानि ऐसें मानै जो मैं बोलूं हूं। बहुरि अपने गमनादि क्रियाकी वा वस्तु ग्रहणादिक की इच्छा होय तब अपने प्रदेशनिको जैसें कार्य बनै तैसे हलावै, तब एक क्षेत्रावगाहते शरीरके अंग हालें तब वह कार्य बनै। अथवा अपनी इच्छा बिना शरीर हालै तब अपने प्रदेश भी हालै, यहु सबको एक मानि ऐसें मानै, मैं गमनादि कार्य करूं हू वा वस्तु ग्रहू हूँ वा मैं किया है इत्यादिरूप मानै है। बहुरि जीवकै कषायभाव होय तब शरीरकी ताके अनुसार चेष्टा होइ जाय। जैसें क्रोधादिक भए रक्त नेत्रादि होइ जाय, हास्यादि भए प्रफुल्लित वदनादि होइ जाय, पुरुष वेदादि भए लिंगकाठिन्यादि होइ जाय। यहु सबकों एक मानि ऐसा मानै कि ए सर्व कार्य मै करू हूँ। बहुरि शरीरविषै शीत उष्ण क्षुधा तृषा रोग इत्यादि अवस्था हो है ताके निमित्ततै मोहभावकरि आप सुखदुःख मानै। इन सबनिकों एक जानि शीतादिकको वा सुख दुःख को अपने ही भए मानै है। बहुरि शरीरका परमाणूनिका मिलना बिछुरनादि होनेकरि वा तिनकी अवस्था पलटनेकरि वा शरीर स्कध का खंडादि होनेकरि स्थूल कृशादिक वा बाल वृद्धादिक वा अगहीनादिक होय अर ताके अनुसार अपने प्रदेशनिका सकोच विस्तार होय। यहु सबको एक मानि मैं स्थूल हूँ, मै कृश हूँ, मैं बालक हूँ, मैं वृद्ध हूँ, मेरे इन अंगनिका भंग भया है इत्यादि रूप मानै है। बहुरि शरीरकी अपेक्षा गतिकुलादिक होइ तिनको अपने मानि मै मनुष्य हू, मैं तिर्यंच हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य हू इत्यादिरूप मानै है। बहुरि

शरीर संयोग होने छूटनेकी अपेक्षा जन्म मरण होय, तिनको अपना जन्म मरण मानि मैं उपज्या, मैं मरूंगा ऐसा मानै है। बहुरि शरीरही की अपेक्षा अन्य वस्तुनिस्यों नाता मानै है। जिनकरि शरीर निपज्या-तिनकों अपने माता पिता मानै है। जो शरीरको रमावै ताको अपनी रमनी मानै है। जो शरीरकरि निपज्या ताको अपना पुत्र मानै है। जो शरीरको उपकारी ताको मित्र मानै है। जो शरीर का बुरा करै ताको शत्रु मानै है इत्यादिरूप मानि हो है। बहुत कहा कहिए जिस तिस प्रकारकरि आप अर शरीरको एक ही मानै है। इन्द्रादिक का नाम तो इहां कह्या है। याको तो किछू गम्य नाही। अचेत हुआ पर्यायविषैं अहंबुद्धि धारै है। सो कारण कहा है? सो कहिए है।

इस आत्माकै अनादितैं इन्द्रियज्ञान है ताकरि आप अमूर्तीक है सो तो भासै नाही अर शरीर मूर्तीक है सोही भासै। अर आत्मा काहूको आपो जानि अहंबुद्धि धारै ही धारै. सो आप जुदा न भास्या तब तिनका समुदायरूप पर्यायविषैं ही अहबुद्धि धारै है। बहुरि आपकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध घना ताकरि भिन्नता भासै नाही। बहुरि जिस विचारकरि भिन्नता भासै सो मिथ्यादर्शनके जोर तैं होइ सकै नाही तातैं पर्याय ही विषैं अहंबुद्धि पाइए है। बहुरि मिथ्यादर्शनकरि यहु जीव कदाचित् बाह्य सामग्रीका संयोग होते तिन को भी अपनी मानै है। पुत्र, स्त्री, धन, धान्य, हाथी, घोड़े, मन्दिर, किंकरादिक प्रत्यक्ष आपतै भिन्न अर सदा काल अपने आधीन नाहीं, ऐसे आपकों भासै तो भी तिन विषै ममकार करै है। पुत्रादिकविषै ए हैं सो मैं ही हूँ, ऐसी भी कदाचित् भ्रमबुद्धि हो है। बहुरि मिथ्या-

दर्शनतें शरीरादिकका स्वरूप अन्यथा ही भासै है। अनित्यको नित्य मानै, भिन्नको अभिन्न मानै, दुःख के कारणको सुखका कारण मानै, दुःखको सुख मानै इत्यादि विपरीत भासै है। ऐसें जीव अजीव तत्त्वनिका अयथार्थज्ञान होते अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इस जीवकै मोहके उदयतें मिथ्यात्व कषायादिक भाव हो हैं। तिनकों अपना स्वभाव मानै है, कर्म उपाधितें भए न जानै है। दर्शन ज्ञान उपयोग अर ए आस्रवभाव तिनकों एक मानै है। जातें इनका आधारभूत तो एक आत्मा अर इनका परिणमन एकै काल होइ, तातें याकों भिन्नपनो न भासै अर भिन्नपनो भासनेका कारण जो विचारै है सो मिथ्यादर्शनके बलतें होइ सकै नाहीं। बहुरि ए मिथ्यात्व कषायभाव आकुलता लिए हैं, तातें वर्तमान दुःखमय हैं अर कर्मबंधके कारण हैं, तातें आगामी दुःख उपजावैंगे, तिनको ऐसें न मानै है। आप भला जानि इनभावनिरूप होइ प्रवर्त्तै है। बहुरि यहु दुःखी तो अपने इन मिथ्यात्व कषायभावनितें होइ अर वृथा ही औरनिकों दुःख उपजावनहारे मानैहै। जैसें दुःखीतो मिथ्यात्वश्रद्धानतें होइ अर अपने श्रद्धानके अनुसार जो पदार्थ न प्रवर्त्तै ताकों दुःखदायक मानै। बहुरि दुःखी तो क्रोधतें हो है। अर जासों क्रोध किया होय ताको दुःखदायक मानै। दुःखी तो लोभतें होइ अर इष्ट वस्तुकी अप्राप्तिको दुःखदायक मानै, ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि इन भावनिका जैसा फल लागै तैसा न भासै है। इनकी तीव्रताकरि नरकादिक हो है, मन्दताकरि स्वर्गादिक होहै। तहां घनी थोरी आकुलता हो है सो भासै नाहीं, तातें बुरे न लागै हैं। कारण कहा

है—ए आपके किए भासैं तिनकौं बुरे कैसैं मानै ? बहुरि ऐसैं ही आस्रव तत्वका अयथार्थ ज्ञान होतें अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इन आस्रवभावनिकरि ज्ञानावरणादिकर्मनिका बंध हो है। तिनका उदय होतें ज्ञानदर्शनका हीनपना होना, मिथ्यात्व-कषायरूप परिणमन, बाह्या न होना, सुख-दुःखका कारन मिलना, शरीर संयोग रहना, गतिजाति शरीरादिकका निपजना, नीचा ऊँचा कुल पावना होय। सो इनके होनेविषैं मूल कारन कर्म है। ताकौं तो पहिचाने नाहीं, जाते यहु सूक्ष्म है, याकौं सूझता नाहीं। अर वह आपको इन कार्यनिका कर्ता दोसै नाहीं, तातैं इनके होनेविषैं कै तो आपको कर्त्ता मानै, कै काहू औरको कर्त्ता मानै। अर आपका वा अन्यका कर्त्तापना न भासै तो गहलरूप होई भवितव्य मानै। ऐसैं ही बंधतत्वका अयथार्थ ज्ञान होते अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि आस्रवका अभाव होना सो संवर है। जो आस्रवको यथार्थ न पहिचानै, ताके संवरका यथार्थश्रद्धान कैसैं होइ? जैसैं काहूकै अहित आचरण है, वाकौं वह अहित न भासै तो ताके अभावको हितरूप कैसैं मानै ? तैसैं ही जीवकै आस्रव की प्रवृत्ति है। याकौं यहु अहित न भासै तो ताके अभावरूप संवरको कैसैं हित मानै। बहुरि अनादितैं इस जीवकै आस्रवभाव ही भया, संवर कबहू न भया, तातैं संवर का होना भासै नाहीं। संवर होतें सुख हो है सो भासै नाही। संवरतैं आगामी दुःख न होसी सो भासै नाहीं। तातैं आस्रवका तो संवर करै नाहीं अर तिन अन्य पदार्थनिकौं दुःखदायक मानै है। तिनहीके न होने का उपाय किया करै है सो वे

अपने आधान नाही, वृथा ही खेदखिन्न हो है। ऐसें संवर तत्वका अयथार्थ ज्ञान होतें अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि बंधका एकदेश अभाव होना सो निर्जरा है। जो बंधको यथार्थ न पहिचानै, ताके निर्जराका यथार्थ श्रद्धान कैसे होय? जैसें भक्षण किया हुवा विष आदिकतें दुःख होता न जानै तो ताके उषा-लक्षका उपायको कैसें भला जानें। तैसे बंधनरूप किए कर्मनितैं दुःख होता न जानै तो तिनकी निर्जराका उपायको कैसे भला जानै। बहुरि इस जीवकै इन्द्रियनितैं सूक्ष्मरूप जे कर्म तिनका तो ज्ञान होता नाहीं। बहुरि तिनविषै दुःखकू कारणभूत शक्ति है ताका ज्ञान नाही। तातैं अन्य पदार्थनिहीके निमित्तको दुःखदायक जानि तिनके ही अभाव करनेका उपाय करै है सो वे अपने आधीन नाहीं। बहुरि कदाचित दुःख दूरि करनेके निमित्त कोई इष्ट संयोगादि कार्य बनै है सो वह भी कर्मके अनुसार बनै है। तातै तिनका उपायकरि वृथा ही खेद करै है। ऐसे निर्जरातत्वका अयथार्थ ज्ञान होतै अयथाथ श्रद्धान हो है।

बहुरि सर्व कर्मबधका अभाव ताका नाम मोक्ष है। जो बंधको वा बधजनित सर्व दुःखनिको नाही पहिचानै, ताके मोक्षका यथार्थ श्रद्धान कैसे होइ। जैसे काहूकै रोग है, वह रोगको वा रोग-जनित दुःखनिको न जानै तो सर्वथा रोगके अभावको कैसे भला जानै? तैसे याकै कर्मबधन है, यहु तिस बंधनको वा बधजनित दुःखको न जानै तो सर्वथा बंधके अभावको कैसे भला जानै? बहुरि इस जीवकै कर्मका वा तिनकी शक्तिका तो ज्ञान न नाही, तातै बाह्यपदार्थ

---

* नष्ट करना

निको दुःखका कारन जानि तिनके सर्वथा अभाव करनेका उपाय करै है। अर यहु तो जानै,सर्वथा दुःख दूर होनेका कारन इष्ट सामग्रीनिको मिलाय सर्वथा सुखी होना सो कदाचित् होय सकै नाहीं । यहु वृथा ही खेद करै है। ऐसैं मिथ्यादर्शनतैं मोक्षतत्वका अयथार्थ ज्ञान होनेतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है। या प्रकार यहु जीव मिथ्यादर्शनतैं जीवादि सप्त तत्व जे प्रयोजनभूत हैं तिनका अयथार्थ श्रद्धान करै है । बहुरि पुण्यपाप हैं ते इनहीके विशेष है । सो इन पुण्यपापनिकी एक जाति है तथापि मिथ्यादर्शनतैं पुण्यको भला जानै है, पापको बुरा जानै है। पुण्यकरि अपनी इच्छाके अनुसार किंचित् कार्य बनै है, ताको भला जानै है। पापकरि इच्छाके अनुसार कार्य न बनै है. ताको बुरा जानै है सो दोनों ही आकुलताके कारण हैं, तातैं बुरे ही हैं। बहुरि यहु अपनी मानितैं तहाँ सुख दुःख मानै है। परमार्थतैं जहाँ आकुलता है तहाँ दुःख ही है। तातैं पुण्यपापके उदयको भला बुरा जानना भ्रम ही है। बहुरि केई जीव कदाचित् पुण्यपापके कारन जे शुभ अशुभ भाव तिनको भले बुरे जानै है सो भी भ्रम ही है, जातै दोऊ ही कर्मबन्धनके कारन हैं। ऐसैं पुण्यपापका अयथार्थज्ञान होतैं अयथार्थ-श्रद्धान हो है। या प्रकार अतत्वश्रद्धानरूप मिथ्यादर्शनका स्वरूप कह्या। यहु असत्यरूप है तातै याहीका नाम मिथ्यात्व है। बहुरि यहु सत्यश्रद्धानतै रहित है तातै याहीका नाम अदर्शन है।

मिथ्याज्ञानका स्वरूप

अब मिथ्याज्ञानका स्वरूप कहिए है—प्रयोजनभूत जीवादि

तत्त्वनिका अयथार्थ जानना ताका नाम मिथ्याज्ञान है। ताकरि तिनके जाननेविषै संशय विपर्यय अनध्यवसाय हो है। तहाँ ऐसै है कि ऐसै है, ऐसा परस्पर विरुद्धता लिए दोयरूप ज्ञान ताका नाम संशय है, जैसें 'मैं आत्मा हूं कि शरीर हूँ' ऐसा जानना। बहुरि ऐसैं ही है, ऐसा वस्तुस्वरूपतें विरुद्धता लिए एक रूप ज्ञान ताका नाम विपर्यय है, जैसे 'मैं शरीर हूँ' ऐसा जानना। बहुरि किछु है, ऐसा निर्द्धाररहित विचार ताका नाम अनध्यवसाय है जैसे 'मैं कोई हूँ' ऐसा जानना। या प्रकार प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वनिविषै संशय विपर्यय अनध्यवसायरूप जो जानना होय ताका नाम मिथ्याज्ञान है। बहुरि अप्रयोजनभूत पदार्थनिको यथार्थ जानै वा अयथार्थ जानै ताकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम नाही है। जैसे मिथ्यादृष्टि जेवरीको जेवरी जानै तो सम्यग्ज्ञान नाम न होय अर सम्यग्दृष्टि जेवरीको सांप जानै तो मिथ्याज्ञान नाम न होय।

इहाँ प्रश्न –जो प्रत्यक्ष सांचा झूठा ज्ञानको सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञान कैसे न कहिए ?

ताका समाधान—जहां जाननेहीका सांच झूठ निर्द्धार करनेही का प्रयोजन होय तहाँ तो कोई पदार्थ है ताका सांचा झूठा जाननेकी अपेक्षा ही मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पावै है। जैसे परोक्ष-प्रमाणका वर्णनविषै कोई पदार्थ हो है ताका सांचा जानने रूप सम्यग्ज्ञानका ग्रहण किया है। संशयादिरूप जाननेको अप्रमाणरूप मिथ्याज्ञान कह्या है। बहुरि इहाँ संसार मोक्षके कारणभूत सांचा झूठा जाननेका निर्द्धार करना है सो जेवरी सर्पादिकका यथार्थ वा

अन्यथा ज्ञान संसार मोक्षका कारण नाहीं । तातैं तिनकी अपेक्षा इहां मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान न कह्या । इहाँ प्रयोजनभूत जीवादिक-तत्वनिहीका जाननेकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान कह्या है । इस ही अभिप्रायकरि सिद्धान्तविषें मिथ्यादृष्टिका तो सर्वजानना मिथ्या-ज्ञान ही कह्या अर सम्यग्दृष्टिका सर्वजानना सम्यग्ज्ञान कह्या।

इहाँ प्रश्न—जो मिथ्यादृष्टिकै जीवादि तत्वनिका अयथार्थ जानना है ताको मिथ्याज्ञान कहो। जेवरी सर्पादिकके यथार्थ जाननेको तो सम्यग्ज्ञान कहो ?

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टि जानै है, तहाँ वाकै सत्ता असत्ता का विशेष नाहीं है। तातैं कारणविपर्यय वा स्वरूपविपर्यय वा भेदा-भेद विपर्ययको उपजावै है। तहाँ जाको जानै है ताका मूल कारणको न पहिचानै। अन्यथा कारण मानै सो तो कारण विपर्यय है। बहुरि जाको जानै ताका मूलवस्तु तत्वस्वरूप ताको नाहीं पहिचानै, अन्यथा स्वरूप मानै सो स्वरूप विपर्यय है। बहुरि जाको जानै ताको यहु इनतैं भिन्न है,यहु इनतैं अभिन्न है ऐसा न पहिचानै,अन्यथा भिन्न अभिन्नपनों मानै सो भेदाभेदविपर्यय है। ऐसैं मिथ्यादृष्टिकै जाननेविषै विपरीतता पाइए है। जैसें मतवाला माताको भार्या मानै, भार्याको माता मानै, तैसें मिथ्यादृष्टिकै अन्यथा जानना है। बहुरि जैसें काहू-कालविषें मतवाला माताको माता वा भार्याको भार्या भी जानै तो भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान लिए जानना न हो है। तातैं वाकै यथार्थज्ञान न कहिए। तैसें मिथ्यादृष्टि काहू काल विषै किसी पदार्थको सत्य भी जानै तो भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान

लिए जानना न हो है। अथवा सत्य भी जानै परन्तु तिनकरि अपना प्रयोजन तो अयथार्थ ही साधै है तातैं वाकै सम्यग्ज्ञान न कहिए। ऐसे मिथ्यादृष्टीके ज्ञानको मिथ्याज्ञान कहिए है।

इहां प्रश्न—जो इस मिथ्याज्ञानका कारण कौन है ?

ताका समाधान—मोहके उदयतें जो मिथ्यात्वभाव होय,सम्यक्त्व न होय सो इस मिथ्याज्ञानका कारण है। जैसें विषके संयोगतैं भोजन भी विषरूप कहिए'तैसें मिथ्यात्वके सम्बन्धतैं ज्ञान है सो मिथ्याज्ञान नाम पावै है।

इहाँ कोऊ कहै—ज्ञानावरणका निमित्त क्यों न कहो ?

ताका समाधान—ज्ञानावरणके उदयतैं तो ज्ञानका अभावरूप अज्ञानभाव हो है। बहुरि क्षयोपशमतें किंचित् ज्ञानरूप मतिज्ञान आदि ज्ञान हो है। जो इनविषै काहूको मिथ्याज्ञान काहूको सम्यग्ज्ञान कहिए तो दोऊहीका भाव मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टीकैं पाइए है तातैं तिन दोऊनिकै मिथ्याज्ञान वा सम्यग्ज्ञानका सद्भाव होइ जाय सो तो सिद्धान्तविषै विरुद्ध होइ। तातै ज्ञानावरणका निमित्त बने नाहीं।

बहुरि इहां कोऊ पूछै कि जेवरी सर्पादिकके अयथार्थज्ञानका कौन कारण है तिसहीको जीवादि तत्वनिका अयथार्थज्ञानका कारण कहो ?

ताका उत्तर—जो जाननेविषै जेता अयथार्थपना हो है तेता तो ज्ञानावरणका उदयतै हो है। अर जेता यथार्थपना हो है तेता ज्ञानावरणके क्षयोपशमतेंहो है। जैसें जेवरीको सर्प जान्या सो यथार्थ जानने की शक्तिका कारण उदयमें हो है,तातैं अयथार्थ जानै है। बहुरि जेवरी जेवरी जानी सो यथार्थ जाननेकी शक्तिका कारण क्षयोपशम है

तातें यथार्थ जानै है। तैसें ही जीवादि तत्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति न होने वा होन विषै ज्ञानावरणहीका निमित्त है परन्तु जैसें काहू पुरुषकै क्षयोपशमतें दुःखकों वा सुखकों कारणभूत पदार्थनिको यथार्थ जाननेकी शक्तिहोय तहाँ जाकै असातावेदनीयका उदय होय सो दुःखकों कारणभून जो होय तिसहीकों वेदै, सुखका कारणभूत पदार्थनिको न वेदै अर जो सुखका कारणभूत पदार्थको वेदै तो सुखी हो जाय। सो असाताका उदय होतें होय सकै नाहीं। तातै इहां दुःखको कारणभूत अर सुखको कारणभूत पदार्थ वेदनेविषैं ज्ञानावरणका निमित्त नाहीं, असाता साता का उदय ही कारणभूत है। तैसें ही जीवकै प्रयोजनभूत जीवादितत्व, अप्रयोजनभूत अन्य तिनके यथार्थ जानने की शक्ति होय। तह जाकै मिथ्यात्वका उदय होय सो जे अप्रयोजनभूत होय तिनहीको वेदै, जानै, अप्रयोजनभूतकों न जानै। जो प्रयोजनभूतकों जानै तो सम्यग्ज्ञान होय जाय सो मिथ्यात्वका उदय होतें होइ सकै नाहीं। तातें इहाँ प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ जाननेविषै ज्ञानावरणका निमित्त नाहीं, मिथ्यात्वका उदय अनुदय ही कारणभूत है। इहाँ ऐसा जानना—जहां एकेन्द्रियादिककै जीवादि तत्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति ही न होय तहा तो ज्ञानावरणका उदय अर मिथ्यात्वका उदयतें भया मिथ्याज्ञान अर मिथ्यादर्शन इन दोऊनिका निमित्त है। बहुरि जहाँ संज्ञी मनुष्यादिकै क्षयोपशमादि लब्धि होतें शक्ति होय अर न जानै तहां मिथ्यात्वके उदयहीका निमित्त जानना। याहीतें मिथ्याज्ञानका मुख्य कारण ज्ञानावरण न कह्या, मोहका उदयतें भया भाव सो ही कारण कह्या है।

बहुरि इहाँ प्रश्न – जो ज्ञान भए श्रद्धान हो है तातें पहिलै मिथ्या-ज्ञान कह्यो, पीछें मिथ्यादर्शन कह्यो ?

ताका समाधान– है तो ऐसें ही, जाने बिना श्रद्धान कैसे होय। परन्तु मिथ्या अर सम्यक् ऐसी संज्ञा ज्ञानकै मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शनके निमित्ततें हो है। जैसें मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टी सुवर्णादि पदार्थनिको जानै तो समान है परन्तु सो ही जानना मिथ्यादृष्टिकै मिथ्याज्ञान नाम पावै, सम्यग्दृष्टिकै सम्यग्ज्ञान नाम पावै। ऐसेही सर्वमिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञानको कारण मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शन जानना। तातै जहां सामान्यपने ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहाँ तो ज्ञान कारणभूत है ताकों पहिले कहना अर श्रद्धान कार्यभूत है ताकों पीछे। बहुरि जहाँ मिथ्या सम्यग्ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहां श्रद्धान कारणभूत है ताकों पहिले कहना, ज्ञान कार्यभूत है ताकों पीछे कहना।

बहुरि प्रश्न—जो ज्ञान श्रद्धान तो युगपत् हो है, इन विषै कारण कार्यपना कैसें कहो हो ?

ताका समाधान—वह होय तो वह होय इस अपेक्षा कारण कार्यपना हो है। जैसें दीपक अर प्रकाश युगपत् हो है तथापि दीपक होय तो प्रकाश होय, तातें दीपक कारण है, प्रकाश कार्य है। तैसें ही ज्ञान श्रद्धानकै मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञानकै वा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान कै कारणपना जानना।

बहुरि प्रश्न—जो मिथ्यादर्शन के संयोगतें ही मिथ्याज्ञान नाम पावै है तो एक मिथ्यादर्शन ही संसारका कारण कहना था, मिथ्या-ज्ञान जुदा काहेकों कह्या ?

ताका समाधान - ज्ञानहीकी अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टि कै क्षयोपशमसे भया यथार्थ ज्ञान तामें किछु विशेष नाहीं अर यहु ज्ञान केवलज्ञानविषै भी जाय मिलै है, जैसें नदी समुद्र में मिलै। तातें ज्ञानविषें किछु दोष नाहीं परन्तु क्षयोपशम ज्ञान जहां लागै तहाँ एक ज्ञेयविषै लागै सो यहु मिथ्यादर्शनके निमित्ततें अन्य ज्ञेयनिविषै तो ज्ञान लागै अर प्रयोजनभूतजीवादि तत्वनिका यथार्थ निर्णय करनेविषें न लागै सो यहु ज्ञान विषें दोष भया। याकों मिथ्याज्ञान कह्या। बहुरि जीवादि तत्वनिका यथार्थ श्रद्धान न होय सो यहु श्रद्धानविषें दोष भया। याको मिथ्यादर्शन कह्या। ऐसैं लक्षणभेदतें मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान जुदा कह्या। ऐसें मिथ्याज्ञान का स्वरूप कह्या। इसहीकों तत्वज्ञानके अभावतें अज्ञान कहिए है। अपना प्रयोजन न सधै तातें याहीकों कुज्ञान कहिए है।

मिथ्याचारित्रका स्वरूप

अब मिथ्याचारित्रका स्वरूप कहिए है—चारित्रमोहके उदयतें कषाय भाव होइ ताका नाम मिथ्याचारित्र है। इहां अपने स्वभावरूप प्रवृत्ति नाही, झूठी परस्वभावरूप प्रवृत्ति किया चाहै सो बनै नाहीं, तातें याका नाम मिथ्याचारित्र है। सोइ दिखाइए हैं—अपना स्वभाव तो दृष्टा ज्ञाता है सो आप केवल देखनहारा जाननहारा तो रहै नाहीं। जिन पदार्थनिको देखै जानै तिन विषै इष्ट अनिष्टपनो मानै तातें रागी द्वेषी होय काहूका सद्भावको चाहै,काहूका अभावको चाहै सो उनका सद्भाव अभाव याका किया होता नाहीं। जातैं

कोई द्रव्य कोई द्रव्यका कर्ता हर्ता है नाहीं। सर्व द्रव्य अपने अपने स्वभावरूप परिणमैं हैं। यहु वृथा ही कषाय भावकरि आकुलित हो है। बहुरि कदाचित् जैसे आप चाहै तैसें ही पदार्थ परिणमै तो अपना परिणमाया तो परिणम्या नाहीं। जैसें गाड़ा चालै है अर वाकों बालक धकायकरि ऐसा मानै कि याकों मैं चलाऊँ हूँ। सो वह असत्य मानै है; जो वाका चलाया चालै है तो वह न चालै तब क्यों न चलावै ? तैसें पदार्थ परिणमें है अर उनको यहु जीव अनुसारी होय करि ऐसा मानै जो याको मैं ऐसे परिणमाऊँ हूँ। सो यहु असत्य मानै है। जो याका परिणमाया परिणमै तो वह तैसे न परिणमै तब क्यों न परिणमावै ? सो जैसे आप चाहै तैसे तो पदार्थ का परिणमन कदाचित् ऐसे ही बनाव बनै तब हो है, बहुत परिणमन तो आप न चाहै तैसें ही होता देखिए है। तातैं यहु निश्चय है, अपना किया काहू का सद्भाव अभाव होइ ही नाहीं। कषायभाव करनेतैं कहा होय ? केवल आप ही दुःखी होय। जैसे कोऊ विवाहादि कार्य विषै जाका किछु कह्या न होय अर वह आप कर्ता होय कषाय करै तो आप ही दुःखी होय तैसें जानना। तातैं कषायभाव करना ऐसा है जैसा जल का बिलोवना किछु कार्यकारी नाहीं। तातै इन कषायनिकी प्रवृत्ति को मिथ्याचारित्र कहिए है। बहुरि कषायभाव हो है सो पदार्थनिकों इष्ट अनिष्ट मानें ही है। सो इष्ट अनिष्ट मानना भी मिथ्या है। जातैं कोई पदार्थ इष्ट अनिष्ट है नाहीं। कैसैं ? सो कहिए है।

इष्ट-अनिष्टकी मिथ्याकल्पना

आपको सुखदायक उपकारी होय ताकों इष्ट कहिए। आपका दुःख

दायक अनुपकारी होय ताको अनिष्ट कहिए। सो लोकमें सर्व पदार्थ अपने २ स्वभावहीके कर्ता हैं। कोऊ काहूकों सुख दुःखदायक उपकारी अनुपकारी है नाहीं। यह जीव अपने परिणामनिविषें तिनकों सुखदायक उपकारी मानि इष्ट जानै है अथवा दुःखदायक अनुपकारी जानि अनिष्ट मानै है। जातैं एक ही पदार्थ काहूको इष्ट लागै है, काहूको अनिष्ट लागैहै। जैसें जाको वस्त्र न मिलै ताकों मोटा वस्त्र इष्ट लागै अर जाको महीन वस्त्र मिलै ताको वह अनिष्ट लागै है। सूकरादिकको विष्टा इष्ट लागै है, देवादिकको अनिष्ट लागै है। काहूको मेघवर्षा इष्ट लागै है, काहूको अनिष्ट लागै है। ऐसें ही अन्य जानने। बहुरि याही प्रकार एक जीवको भी एक ही पदार्थ काहू कालविषै इष्ट लागै है, काहू कालविषै अनिष्ट लागै है। बहुरि यहु जीव जाको मुख्यपने इष्ट मानै सो भी अनिष्ट होता देखिए है, इत्यादि जानने। जैसे शरीर इष्ट है सो रोगादिसहित होय तब अनिष्ट होइ जाय। पुत्रादिक इष्ट हैं सो कारणपाय अनिष्ट होते देखिए हैं,इत्यादि जानने। बहुरि यहु जीव जाको मुख्यपने अनिष्ट मानै सो भी इष्ट होता देखिये है। जैसें गाली अनिष्ट लागै है सो सासरेमें इष्ट लागै है, इत्यादि जानने। ऐसें पदार्थनिविषैं इष्ट अनिष्टपनो है नाहीं। जो पदार्थविषे इष्ट अनिष्टपनो होता तो जो पदार्थ इष्ट होता सो सर्वको इष्ट ही होता, जो अनिष्ट होता सो अनिष्ट ही होता, सो है नाहीं। यहु जीव आप ही कल्पनाकरि तिनको इष्ट अनिष्ट मानै है सो यह कल्पना झूठी है। बहुरि पदार्थ है सो सुखदायक उपकारो वा दुःखदायक अनुपकारी हो है सो आपही नाहीं हो है, पुण्य पापके उदयके अनुसारि हो है।

जाकै पुण्यका उदय होहै ताकै पदार्थनिका संयोग सुखदायक उपकारी हो है, जाकै पापका उदय हो है ताकै पदार्थनिका संयोग दुःखदायक अनुपकारी होहै सो प्रत्यक्ष देखिये है। काहूकै स्त्रीपुत्रादिक सुखदायक हैं, काहूकै दुःखदायक हैं; व्यापार किए काहूकै नफ़ा हो है, काहूकै टोटा हो है; काहूकै शत्रु भी किंकर हो हैं, काहूकै पुत्र भी अहितकारी हो हैं। तातें जानिए है, पदार्थ आप ही इष्ट अनिष्ट होते नाहीं, कर्म उदयके अनुसार प्रवर्त्तें हैं। जैसे काहूकै किंकर अपने स्वामीके अनुसार किसी पुरुषको इष्ट अनिष्ट उपजावें तो किछू किंकरनिका कर्त्तव्य नाही, उनके स्वामीका कर्तव्य है। जो किंकरनिहीकों इष्टअनिष्ट मानै सो झूठ है। तैसें कर्मके उदयतै प्राप्तभए पदार्थ कर्मके अनुसार जीवको इष्टअनिष्ट उपजावे तो किछु पदार्थनिका कर्तव्य नाही, कर्मका कर्त्तव्य है। जो पदार्थकों इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है। तातैं यहु बात सिद्ध भई कि पदार्थनिकों इष्ट अनिष्ट मानि तिनविषै रागद्वेष करना मिथ्या है।

इहाँ कोऊ कहै कि बाह्य वस्तुनिका संयोग कर्म निमित्ततै बनै है तो कर्मनिविषै तो राग द्वेष करना।

ताका समाधान—कर्म तो जड़ हैं, उनके किछू सुख दुःख देनेकी इच्छा नाही। बहुरि वे स्वयमेव तो कर्मरूप परिणमें नाही, याके भावनिके निमित्ततै कर्मरूप हो हैं। जैसे कोऊ अपने हाथकरि भाटा (पत्थर) लेई अपना सिर फोरै तो भाटाका कहा दोष है? तैसें ही जीव अपने रागादिक भावनिकरि पुद्गलकों कर्मरूप परिणमाय अपना बुरा करै तो कर्मके कहा दोष है। तातें कर्मस्यों भी राग द्वेष करना मिथ्या है। या प्रकार परद्रव्यनिकों इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करना मिथ्या है।

जो परद्रव्य इष्ट अनिष्ट होता अर तहाँ राग द्वेष करता तो मिथ्या नाम न पाता। वे तो इष्ट अनिष्ट हैं नाहीं अर यहु इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करै, तातैं इन परिणामनिकों मिथ्या कह्या है। मिथ्यारूप जो परिणमन ताका नाम मिथ्याचारित्र है।

अब इस जीवकै रागद्वेष होय है, ताका विधान वा विस्तार दिखाइए है—

राग-द्वेषकी प्रवृत्ति

प्रथम तो इस जीवकै पर्यायविषै अहंबुद्धि है सो आपको वा शरीर को एक जानि प्रवर्तै है। बहुरि इस शरीरविषै आपको सुहावै ऐसी इष्ट अवस्था हो है तिसविषै राग करै है। आपको न सुहावै ऐसो अनिष्ट अवस्था हो है तिसविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरको इष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्य पदार्थनिविषै तो राग करै है अर ताके घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरको अनिष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्यपदार्थनिविषै तो द्वेष करै है अर ताके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इन विषै जिन बाह्य पदार्थनिसों राग करै है तिनकै कारणभूत अन्य पदार्थनिविषै राग करै है, तिनके घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि जिन बाह्य पदार्थनिस्यो द्वेष करै है तिनके कारणभूत अन्य पदार्थ निविषै द्वेष करै है, तिनके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इन विषै भी जिनस्यों राग करै है तिनके कारण वा अन्य पदार्थनिविष राग वा द्वेष करै है अर जिनस्यों द्वेष करै है तिनके कारण वा घातक अन्य पदार्थनिविषै द्वेष वा राग करै है। ऐसैं ही रागद्वेषकी परम्परा प्रवर्तै है। बहुरि केई बाह्य पदार्थ शरीरको अवस्थाको कारण नाहीं

तिन विषैं भी रागद्वेष करै है। जैसें गऊ आदिके पुत्रादिकतें किछु शरीरका इष्ट होय नाहीं तथापि तहां राग करै है। जैसें कूकरा आदिकै बिलाई आदिक आवतें किछु शरीर का अनिष्ट होय नाहीं तथापि तहाँ द्वेष करै है। बहुरि केई वर्ण गन्ध शब्दादिकके अवलोकनादिकतें शरीरका इष्ट होता नाहीं तथापि तिनविषै राग करै है। केई वर्णादिकके अवलोकनादिकतें शरीरका अनिष्ट होता नाहीं तथापि तिनविषै द्वेष करै है। ऐसें भिन्न बाह्य पदार्थनिविषै रागद्वेष हो है। बहुरि इनविषें भी जिनस्यौं राग करै है तिनके कारण अर घातक अन्य पदार्थनिविषैं राग वा द्वेष करै है अर जिनस्यों द्वेष करै है तिनके कारण वा घातक अन्यपदार्थ तिन विषै द्वेष वा राग करै है। ऐसैं ही यहाँ भी रागद्वेषकी परम्परा प्रवर्त्तै है।

इहाँ प्रश्न--जो अन्य पदार्थनिविषै तो रागद्वेष करनेका प्रयोजन जान्या परन्तु प्रथम ही तो मूलभूत शरीरकी अवस्थाविषै वा शरीरकी अवस्थाको कारण नाहीं, तिन पदार्थनिविषें इष्ट अनिष्ट माननेका प्रयोजन कहा है ?

ताका समाधान—जो प्रथम मूलभूत शरीरकी अवस्था आदिक हैं तिन विषै भी प्रयोजन विचार राग करै तो मिथ्याचारित्र काहेकों नाम पावै। तिनविषै बिना ही प्रयोजन रागद्वष करै है अर तिनहीके अर्थि अन्यस्यों रागद्वष करै है तातै सब रागद्वेष परिणतिका नाम मिथ्याचारित्र कह्या है।

इहां प्रश्न—जो शरीरकी अवस्था वा बाह्य पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्ट माननेका प्रयोजन तो भासै नाहीं अर इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाहीं सो कारण कहा है ?

ताका समाधान—इस जीवकै चारित्रमोहका उदयतैं रागद्वेषभाव होय सो ए भाव कोई पदार्थका आश्रय बिना होय सकै नाहीं । जैसें राग होय सो कोई पदार्थ विषै होय, द्वेष होय सो कोई पदार्थ विषै ही होय । ऐसें तिन पदार्थनिकै अर रागद्वेषकै निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है । तहाँ विशेष इतना जो केई पदार्थ तो मुख्यपने रागकौं कारण हैं, केई पदार्थ मुख्यपने द्वेषकों कारण हैं । केई पदार्थ काहूकों काहू काल विषैं रागके कारण हो हैं, काहूकों काहूकाल विषैं द्वेषके कारण हो हैं । इहाँ इतना जानना—एक कार्य होने विषै अनेक कारण चाहिए हैं सो रागादिक होने विषैं अंतरंग कारण मोहका उदय है सो तो बलवान् है अर बाह्य कारण पदार्थ है सो बलवान् नाहीं है । महामुनिनिकै मोह मन्द होतें बाह्य पदार्थनिका निमित्त होतें भी रागद्वेष उपजते नाहीं । पापी जीवनिकै मोह तीव्र होतें बाह्यकारण न होतें भी तिनका संकल्प ही करि रागद्वेष हो है । तातै मोहका उदय होतें रागादिक हो हैं । तहाँ जिस बाह्यपदार्थका आश्रय करि रागभाव होना होय, तिस विषै बिना ही प्रयोजन वा कछू प्रयोजन लिए इष्टबुद्धि हो है । बहुरि जिस पदार्थका आश्रय करि द्वेषभाव होना होय, तिस विषैं बिना ही प्रयोजन वा किछू प्रयोजन लिए अनिष्ट बुद्धि हो है । तातैं मोहका उदयतै पदार्थनिको इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाहीं । ऐसें पदार्थनि विषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि होतें जो रागद्वेष रूप परिणमन होय ताका नाम मिथ्याचारित्र जानना । बहुरि इन रागद्वेषनि हीके विशेष क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुन्सकवेदरूप कषायभाव हैं ते सर्व इस

मिथ्याचारित्रहीके भेद जानने । इनका वर्णन पूर्वे कियाही है। बहुरि इस मिथ्याचारित्रविषें स्वरूपाचरणचारित्रका अभाव है तातैं याका नाम अचारित्र भी कहिए। बहुरि यहाँ परिणाम मिटे नाहीं अथवा विरक्त नाहीं, तातैं याहीका नाम असंयम कहिए है वा अविरति कहिए है। जातैं पाँच इन्द्रिय अर मनके विषयनिविषें बहुरि पंचस्थावर अर त्रसकी हिंसा विषें स्वछन्दपना होय अर इनके त्यागरूप भाव न होय सोई असंयम वा अविरति बारह प्रकार कह्या है सो कषायभाव भए ऐसें कार्य हो हैं तातैं मिथ्याचारित्रका नाम असंयम वा अविरति जानना। बहुरि इसही का नाम अव्रत जानना। जातैं हिंसा, अनृत, अस्तेय, अब्रह्म, परिग्रह इन पाप कार्यनिविषै प्रवृतिका नाम अव्रत है। सो इनका मूलकारण प्रमत्तयोग कह्या है। प्रमत्तयोग है सो कषायमय है तातैं मिथ्याचारित्रका नाम अव्रत भी कहिए है। ऐसें मिथ्याचारित्र का स्वरूप कह्या। या प्रकार इस संसारी जीवकै मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्ररूप परिणमन अनादितैं पाइए है। सो ऐसा परिणमन एकेन्द्रिय आदि असञ्ज्ञीपर्यंत तो सर्व जीवनिकै पाइए है। बहुरि संज्ञी पंचेन्द्रियनिविषै सम्यग्दृष्टी बिना अन्य सर्वजीवनिकै ऐसा ही परिणमन पाइए है। परिणमनविषै जैसा जहाँ सम्भवै तैसा तहाँ जानना। जैसें एकेन्द्रियादिककै इन्द्रियादिकनिकी हीनता अधिकता पाइए है वा धन पुत्रादिकका सम्बन्ध मनुष्यादिककै ही पाइये है सो इनके निमित्ततैं मिथ्यादर्शनादिका वर्णन किया है। तिसविषै जैसा विशेष सम्भवै तैसा जानना। बहुरि एकेन्द्रियादिक जीव इन्द्रिय शरीरादिक का नाम जानै नाहीं हैं परन्तु तिस नामका अर्थरूप जो भाव

है तिसविषै पूर्वोक्त प्रकार परिणमन पाइए है। जैसें मैं स्पर्शनकरि स्परशूं हूं, शरीर मेरा है ऐसा नाम न जानै है तथापि इसका अर्थरूप जो भाव है तिस रूप परिणमै है। बहुरि मनुष्यादिक केई नाम भी जानै हैं अर ताके भावरूप परिणमैं हैं, इत्यादि विशेष सम्भवै सो जान लेना। ऐसें ए मिथ्यादर्शनादिकभाव जीवकै अनादितै पाइये हैं, नवीन ग्रहे नाहीं। देखो याकी महिमा कि जो पर्याय धरै है तहाँ बिना ही सिखाए मोहके उदयतैं स्वयमेव ऐसा ही परिणमन हो है। बहुरि मनुष्यादिककै सत्यविचार होनेके कारण मिलैं तो भी सम्यक् परिणमन होय नाहीं। श्रीगुरुके उपदेशका निमित्त बनै, वे बारबार समझावैं, यहु कछु विचार करै नाहीं। बहुरि आपको भी प्रत्यक्ष भासै सो तो न मानै अर अन्यथा ही मानै। कैसें ? सो कहिए है--

मरण होते शरीर आत्मा प्रत्यक्ष जुदा हो हैं। एक शरीरको छोरि आत्मा अन्य शरीर धरै है सो व्यतरादिक अपने पूर्व भवका सम्बन्ध प्रगट करते देखिए हैं परन्तु याकै शरीरतै भिन्नबुद्धि न होय सकै है। स्त्री पुत्रादिक अपने स्वार्थके सगे प्रत्यक्ष देखिए हैं। उनका प्रयोजन न सधै तब ही विपरीत होते देखिए हैं। यहु तिन विषै ममत्व करै है अर तिनके अर्थि नरकादिकविषै गमनको कारण नाना पाप उपजावै है। धनादिक सामग्री अन्यकी अन्यकै होती देखिए है,यहु तिनको अपनी मानै है; बहुरि शरीरकी अवस्था वा बाह्यसामग्री स्वयमेव होती विनशती दीसै है, यहु वृथा आप कर्ता हो है। तहाँ जो अपने मनोरथ अनुसार कार्य होय ताको तो कहै मैं किया अर अन्यथा होय ताकों कहै मैं कहा करूं ? ऐसें ही होना था वा ऐसें क्यों

भया ऐसा मानै। सो कै तो सर्वका कर्त्ता ही होना था, कै अकर्ता रहना था सो विचार नाहीं। बहुरि मरण अवश्य होगा ऐसा जानै परन्तु मरणका निश्चयकरि किछू कर्तव्य करै नाहीं, इस पर्याय सम्बन्धी ही यत्न करै है। बहुरि मरणका निश्चयकार कबहूं तो कहै मैं मरूँगा. शरीरको जलावेंगे। कबहू कहै मोको जलावेंगे। कबहू कहै जस रह्या तो हम जीवते ही है। कबहूं कहै पुत्रादिक रहेंगे तो मै ही जीऊंगा। ऐसें बाउलाकीसी नाईं वाकै किछू सावधानी नाहीं। बहुरि आपको परलोकविषै प्रत्यक्ष जाता जानै,ताका तो इष्ट अनिष्ट का किछू उपाय नाहीं अर इहां पुत्र पोत्रा आदि मेरी संततिविषै घनेकाल ताईं इष्ट रह्या कर अर अनिष्ट न होइ,ऐसें अनेक उपाय करै है। काहूका परलोक भए पीछें इस लोककी सामग्रीकरि उपकार भया देख्या नाहीं परन्तु याकै परलोक होनेका निश्चय भए भी इस लोककी सामग्रीहीका यतन रहै है। बहुरि विषयकषायकी प्रवृत्तिकरि वा हिंसादि कार्यकरि आप दु:खी होय, खेदखिन्न होय, औरनिका वैरी होय, इस लोकविषै निंद्य होय, परलोकविषै बुरा होय सो प्रत्यक्ष आप जानै तथापि तिनही विषै प्रवर्त्तै। इत्यादि अनेक प्रकार प्रत्यक्ष भासैं ताकों भी अन्यथा श्रद्धै जानै आचरै, सो यह मोहका माहात्म्य है ऐसें यहु मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्ररूप अनादितैं जीव परिणमै है। इस ही परिणमनकरि संसारविषै अनेक प्रकार दु:ख उपजावनहारे कर्मनिका सम्बन्ध पाइये है। एई भाव दु:खनिके बीज हैं, अन्य काई नाही। तातै हे भव्य जो दुखतै मुक्त भया चाहै तो इन मिथ्यादर्शनादिक विभावनिका अभाव करना, यहु ही कार्य है, इस कार्यके किए तेरा परम कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्रका निरूपणरूप चौथा अधिकार सम्पूर्ण भया ॥४॥

पाँचवाँ अधिकार

विविध मत-समीक्षा

दोहा

बहुविधि मिथ्या गहनकरि, मलिन भयोनिज भाव ।
ताको होत अभाव ह्वै, सहजरूप दरसाव ।। १ ।।

अथ यहु जीव पूर्वोक्त प्रकारकरि अनादितें मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्ररूप परिणमै है ताकरि संसारविषै दुःख सहतो संतो कदाचित् मनुष्यादि पर्यायनि विषै विशेष श्रद्धानादि करनेकी शक्तिको पावै । तहाँ जो विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिकरि तिन मिथ्या-श्रद्धानादिककों पोषै तो तिस जीवका दुःखतें मुक्त होना अति दुर्लभ हो है। जैसें कोई पुरुष रोगी है सो किछू सावधानीकों पाय कुपथ्य सेवन करै तो उस रोगी का सुलझना कठिन ही होय । तैसें यहु जीव मिथ्यात्वादि सहित है सो किछू ज्ञानादि शक्तिकों पाय विशेष विप-रीत श्रद्धानादिकके कारणनिका सेवन कर तो इस जीवका मुक्त होना कठिन ही होय । तातैं जैसें वैद्य कुपथ्यनिका विशेष दिखाय तिनके सेवनकों निषेधै तैसें ही इहाँ विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिका विशेष दिखाय तिनका निषेध करिए है। इहां अनादितें जे मिथ्यात्वादि भाव पाइए हैं ते तो अगृहीतमिथ्यात्वादि जानने, जातैं ते नवीन ग्रहण किए नाहीं। बहुरि तिनके पुष्ट करनेके कारण-निकरि विशेष मिथ्यात्वादिभाव होय ते गृहीतमिथ्यात्वादि जानने ।

तहाँ अगृहीतमिथ्यात्वादिकका तो पूर्वे वर्णन किया है सो ही जानना अर गृहीतमिथ्यात्वादिकका अब निरूपण कीजिए है सो जानना।

गृहीत मिथ्यात्व

कुदेव कुगुरु कुधर्म अर कल्पिततत्त्व तिनका श्रद्धान सो तौ मिथ्यादर्शन है। बहुरि जिनके विषै विपरीत निरूपणकरि रागादि पोषे होंय ऐसे कुशास्त्र तिनविषै श्रद्धानपूर्वक अभ्यास सो मिथ्याज्ञान है। बहुरि जिस आचरणविषै कषायनिका सेवन होय अर ताकौं धर्म रूप अंगीकार करे सो मिथ्याचारित्र है। अब इनका विशेष दिखाइए हैं—इन्द्र लोकपाल इत्यादि; बहुरि अद्वैत ब्रह्म, राम, कृष्ण, महादेव बुद्ध, खुदा, पीर, पैगम्बर इत्यादि, बहुरि हनुमान, भैरू, क्षेत्रपाल, देवी, दिहाडी, सती इत्यादि; बहुरि शीतला, चौथि, साँझी, गणगोरि, होली इत्यादि, बहुरि सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, अऊत, पितर, व्यन्तर इत्यादि; बहुरि गऊ, सर्प इत्यादि, बहुरि अग्नि, जल, वृक्ष इत्यादि; बहुरि शस्त्र दवात, बासण इत्यादि अनेक तिनका अन्यथा श्रद्धानकरि तिनको पूजे। बहुरि तिनकरि अपना कार्य सिद्ध किया चाहैं सो वे कार्य सिद्धिके कारण नाहीं, तातै ऐसे श्रद्धानको गृहीतमिथ्यात्व कहिए है। तहाँ तिनका अन्यथा श्रद्धान कैसें हो है सो कहिए है—

सर्वव्यापी अद्वैत ब्रह्म

अद्वैतब्रह्मको ❀ सर्वव्यापी सर्वका कर्त्ता मानें सो कोई है नाहीं।

❀"सर्वं वैखल्विद ब्रह्म" छान्दोग्योपनिषद् प्र० खं० १४ मं० १
"नेह नानास्ति किंचन" कण्ठोपनिषद् अ० २ व० ४१ मं०११
ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद ब्रह्मदक्षिणतपश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥ मुण्डको०खंड२, मं०११

प्रथम वाकों सर्वव्यापी मानें सो सर्व पदार्थ तो न्यारे न्यारे प्रत्यक्ष हैं वा तिनके स्वभाव न्यारे न्यारे देखिए हैं, इनकों एक कैसें मानिए है ? इनका मानना तो इन प्रकारनि करि है - एक प्रकार तो यहु है जो सर्व न्यारे न्यारे हैं तिनके समुदायकी कल्पनाकरि ताका किछू नाम धरिए । जैसें घोटक हस्तो इत्यादि भिन्न भिन्न हैं तिनके समुदायका नाम सैना है, तिनतें जुदा कोई सैना वस्तु नाहीं । सो इस प्रकारकरि सर्वपदार्थनिका जो नाम ब्रह्म है तो ब्रह्म कोई जुदा वस्तु तो न ठहरचा, कल्पना मात्र ही ठहरचा । बहुरि एक प्रकार यहु है जो व्यक्ति अपेक्षा तो न्यारे न्यारे हैं तिनको जाति अपेक्षा कल्पना करि एक कहिए है । जैसें सौ घोटक (घोडा) हैं ते व्यक्ति अपेक्षा तो जुदे जुदे सो ही हैं तिनके आकारदिकको समानता देखि एक जाति कहें, सो वह जाति तिनतें जुदो ही तो कोई है नाहीं । सो इस प्रकार करि जो सबनिकी कोई एक जाति अपेक्षा एक ब्रह्म मानिए है तो ब्रह्म जुदा तो कोई न ठहरचा, इहाँ भी कल्पना मात्र ही ठहरचा । बहुरि एक प्रकार यहु है जो पदार्थ न्यारे न्यारे हैं तिनके मिलापतें एक स्कध होय ताकों एक कहिए । जैसे जलके परमाणू न्यारे न्यारे हैं तिनका मिलाप भए समुद्रादि कहिए अथवा जैसें पृथवी के परमाणूनिका मिलाप भए घट आदि कहिए सो इहाँ समुद्रादि वा घटादिक हैं ते तिन परमाणूनितें भिन्न कोई जुदा तो वस्तु नाहीं । सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ न्यारे २ हैं परन्तु कदाचित् मिलि एक हो जाय हैं सो ब्रह्म है, ऐसें मानिए तो इनतें जुदा तो कोई ब्रह्म न ठहरचा । बहुरि एक प्रकार यहु है जो अंग तो न्यारे न्यारे हैं अर

जाके अंग हैं सो अंगी एक है। जैसें नेत्र, हस्त, पादादिक भिन्न भिन्न हैं अर जाके ए है सो मनुष्य एक है। सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ तो अग हैं अर जाके ए हैं सो अंगो ब्रह्म है। यहु सर्व लोक विराट स्वरूप ब्रह्मका अंग है, ऐसें मानिए तो मनुष्यके हस्तपादादिक अंगनिकै परस्पर अंतराल भए तो एकत्वपना रहता नाहीं। जुड़े रहैं ही एक शरीर नाम पावै। सो लोकविषै तो पदार्थनिकै अंतराल परस्पर भासै है। याका एकत्वपना कैसें मानिए? अंतराल भए भी एकत्व मानिए तो भिन्नपना कहाँ मानिएगा।

इहा कोऊ कहै कि समस्त पदार्थनिके मध्यविषै सूक्ष्मरूप ब्रह्मके अग हैं तिनकरि सर्व जुरि रहे हैं, ताकों कहिए है—

जो अग जिस अगतैं जुरचा है, तिसहीतैं जुरचा रहै है कि टूटि टूटि अन्य अन्य अगनिस्यों जुरचा करै है। जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तो सूर्यादि गमन करै हैं, तिनको साथि जिन सूक्ष्म अंगनितैं वह जुरै हैं ते भी गमन करें। बहुरि उनको गमन करते वे सूक्ष्म अग अन्य स्थूल अगनितैं जुरे रहै, ते भी गमन करें हैं सो ऐसैं सर्व लोक अस्थिर होइ जाय। जैसें शरीरका एक अंग खीचे सर्व अग खींचे जांय, तैसें एक पदार्थको गमनादि करते सर्व पदार्थनिका गमनादि होय सो भासै नाहीं। बहुरि जो द्वितीय पक्ष ग्रहेगा तो अंग टूटनेतैं भिन्नपना होय हो जाय तब एकत्वपना कैसें रह्या? तातैं सर्वलोक के एकत्वको ब्रह्म मानना कैसें सम्भवै? बहुरि एक प्रकार यहु है जो पहलें एक था, पीछें अनेक भया बहुरि एक होय जाय तातै एक है। जैसें जल एक था सो बासणनिमें जुदा जुदा भया बहुरि मिले तब एक होय

वा जैसे सोनाका गदा* एक था सो कंकण कुडलादिरूप भया बहुरि मिलकरि सोनाका गदा होय जाय। तैसें ब्रह्म एक था पीछें अनेक-रूप भया बहुरि एक होयगा तातें एक ही है। इस प्रकार एकत्व मानै है तो जब अनेक रूप भया तब जरथा रह्या कि भिन्न भया। जो जुरथा कहेगा तो पूर्वोक्त दोष आवेगा। भिन्न भया कहेगा तो तिस काल तो एकत्व न रह्या। बहुरि जब सुवर्णादिकको भिन्न भए भी एक कहिए है सो तो एक जाति अपेक्षा कहिए है सो सर्व पदार्थनि की एक जाति भासै नाहीं। कोऊ चेतन है, कोऊ अचेतन है इत्यादि अनेकरूप है तिनकी एक जाति कैसें कहिए ? बहुरि पहिले एक था पीछें भिन्न भया मानै है तो जैसें एक पाषाणादि फूटि टुकड़े होय जाय हैं तैसे ब्रह्मके खंड होय गए, बहुरि तिनका एकट्ठा होना मानै है तो तहाँ तिनका स्वरूप भिन्न रहै है कि एक होइ जाय है। जो भिन्न रहै है तो तहाँ अपने अपने स्वरूपकरि भिन्न ही है अर एक होइ जाय है तो जड़ भी चेतन होइ जाय वा चेतन जड़ होइ जाय। तहाँ अनेक वस्तुनिका एक वस्तु भया तब काहू कालविषें अनेक वस्तु, काहू कालविषें एक वस्तु ऐसा कहना बनै। अनादि अनन्त एक ब्रह्म है ऐसा कहना बनै नाहीं। बहुरि जो कहेगा लोक रचना होतें वा न होतें ब्रह्म जैसाका तैसा ही रहै है, तातें ब्रह्म अनादि अनंत है। सो हम पूछै हैं, लोकविषैं पृथवी जलादिक देखिए है ते जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं कि ब्रह्मही इन स्वरूप भया है ? जो जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं तो ए न्यारे भए ब्रह्म न्यारा रहा, सर्वव्यापी अद्वैतब्रह्म न

* डला वा पासा

ठहरचा । बहुरि जो ब्रह्म ही इन स्वरूप भया तो कदाचित् लोक भया, कदाचित् ब्रह्म भया तो जैसाका तैसा कैसें रह्या ? बहुरि वह कहै है जो सबही ब्रह्म तो लोकस्वरूप न हो है,वाका कोई अंश हो है । ताकौं कहिए है:- जैसे समुद्रका एक बिन्दु विषरूप भया तहां स्थूलदृष्टिकरि तो गम्य नाहीं परन्तु सूक्ष्मदृष्टि दिए तो एक बिन्दु अपेक्षा समुद्रकै अन्यथापना भया तैसे ब्रह्मका एक अश भिन्न होय लोकरूप भया तहाँ स्थूल विचारकरि तो किछू गम्य नाही परन्तु सूक्ष्मविचार किए तो एक अंश अपेक्षा ब्रह्मकै अन्यथापना भया । यह अन्यथापना और तो काहूकै भया नाही । ऐसें सर्वरूप ब्रह्मको मानना भ्रम ही है ।

बहुरि एक प्रकार यहु है जैसे आकाश सर्वव्यापी एक है तैसें ब्रह्म सर्व व्यापी एक है । जो इस प्रकार मानै है तो आकाशवत् बड़ा ब्रह्मको मानि वा जहाँ घटपटादिक हैं तहाँ जैसे आकाश है तैसे तहाँ ब्रह्म भी है ऐसा भी मानि । परन्तु जैसें घटपटादिकको अर आकाशको एक ही कहिए तो कैसे बनै ? तैसें लोकको अर ब्रह्मको एक मानना कैसें सम्भवै ? बहुरि आकाशका तो लक्षण सर्वत्र भासै है तातै ताका तो सर्वत्र सद्भाव मानिए है । ब्रह्मका तो लक्षण सर्वत्र भासता नाहीं तातैं ताका सर्वत्र सद्भाव कैसें मानिए? ऐसै इस प्रकारकरि भी सर्वरूप ब्रह्म नाही है । ऐसें ही विचारकरतें किसी भी प्रकारकरि एक सम्भवै नाहीं । सर्व पदार्थ भिन्न भिन्न भासै हैं ।

इहाँ प्रतिवादी कहै है—जो सर्व एक ही है परन्तु तुम्हारे भ्रम है तातें तुमको एक भासै नाही । बहुरि तुम युक्ति कही सो ब्रह्म का स्वरूप युक्तिगम्य नाही, वचन अगोचर है । एक भी है, अनेक भी है । जुदा

भी है, मिल्या भी है। वाकी महिमा ऐसी ही है। ताको कहिए है—जो प्रत्यक्ष तुझको वा हमको वा सबनिको भासै, ताको तो तू भ्रम कहै अर युक्तिकरि अनुमान करिए सो तू कहै कि सांचा स्वरूप युक्ति-गम्य है ही नाहीं। बहुरि वह कहै, सांचास्वरूप वचन अगोचर है तो वचन बिना कैसे निर्णय करे ? बहुरि कहै—एक भी है, अनेक भी है; जुदा भी है, मिल्या भी है सो तिनकी अपेक्षा बतावै नाहीं, बाउलेकीसी नाईं ऐसे भी है, ऐसे भी है ऐसा कहि याकी महिमा बतावै। सो जहां न्याय न होय है तहां झूठे ऐसैं ही वाचालपना करै है सो करो, न्याय तो जैसें सांच है तैसें ही होयगा।

ब्रह्म की इच्छासे जगत्की सृष्टि

बहुरि अब तिस ब्रह्मको लोकका कर्त्ता मानै है ताको मिथ्या दिखाइए हैं - प्रथम तो ऐसा मानै है जो ब्रह्मकै ऐसी इच्छा भई कि "एको ऽहं बहुस्यां" कहिए मैं एक हू सो बहुत होस्यूं। तहां पूछिए है—पूर्वे अवस्थामें दुःखी होय तब अन्य अवस्थाको चाहै। सो ब्रह्म एकरूप अवस्थातैं बहुत रूप होनेकी इच्छा करी सो तिस एक रूप अवस्थाविषै कहा दुःख था ? तब वह कहै है जो दुःख तो न था, ऐसा ही कोतूहल उपज्या। ताको कहिए है—जो पूर्वे थोरा सुखी होय अर कोतूहल किए घना सुखी होय सो कोतूहल करना विचारै। सो ब्रह्मकै एक अवस्थातैं बहुत अवस्थारूप भए घना सुख होना कैसें सम्भवै ? बहुरि जो पूर्वे ही सम्पूर्ण सुखी होय तो अवस्था काहेको पलटै। प्रयोजन बिना तो कोई किछू कर्त्तव्य करै नाहीं। बहुरि पूर्वे भी सुखी होगा, इच्छा अनुसारि कार्य भए भी सुखी होगा परन्तु इच्छा भई तिस काल तो दुःखी होय।

तब वह कहै है, ब्रह्मकै जिस काल इच्छा हो है तिस काल ही कार्य हो है तातैं दुःखी न हो है। तहाँ कहिए है—स्थूलकालकी अपेक्षा तो ऐसैं मानो परन्तु सूक्ष्मकालकी अपेक्षा तो इच्छाका अर कार्यका होना युगपत् सम्भवै नाहीं। इच्छा तो तब ही होय जब कार्य न होय। कार्य होय तब इच्छा न रहै, तातैं सूक्ष्मकाल मात्र इच्छा रही तब तो दुःखी भया होगा। जातैं इच्छा है सो ही दुःख है, और कोई दुःखका स्वरूप है नाहीं। तातैं ब्रह्मकै इच्छा कैसैं बनै ?

ब्रह्म की माया

बहुरि वे कहै हैं, इच्छा होते ब्रह्मको माया प्रगट भई सो ब्रह्मकै माया भई तब ब्रह्म भी मायावी भया, शुद्धस्वरूप कैसें रह्या ? बहुरि ब्रह्मकै अर मायाकै दंडी दंडवत संयोग सम्बन्ध है कि अग्नि उष्णवत् समवायसम्बन्ध है। जो संयोगसम्बन्ध है तो ब्रह्म भिन्न है, माया भिन्न है, अद्वैत ब्रह्म कैसे रह्या ? बहुरि जैसे दंड दडको उपकारी जानि ग्रहै है तैसें ब्रह्म मायाको उपकारी जानै है तो ग्रहै है, नाहीं तो काहेको ग्रहै ? बहुरि जिस मायाकों ब्रह्म ग्रहै ताका निषेध करना कैसें सम्भवै, वह तो उपादेय भई। बहुरि जो समवायसम्बन्ध है तो जैसे अग्नि का उष्णत्व स्वभाव है तैसे ब्रह्मका मायास्वभाव ही भया। जो ब्रह्मका स्वभाव है ताका निषेध करना कैसें सम्भवै ? यहु तो उत्तम भई।

बहुरि वे कहैं हैं कि ब्रह्म तो चैतन्य है, माया जड़ है सो समवाय संबंधविषैं ऐसे दोय स्वभाव सम्भवै नाहीं। जैसें प्रकाश अर अन्धकार एकत्र कैसें सम्भवै ? बहुरि वह कहै है—मायाकरि ब्रह्म आप तो भ्रम रूप होता नाही, ताकी माया करि जीव भ्रमरूप हो है। ताकों कहिए

है—जैसें कपटी अपने कपटको आप जाने सो आप भ्रमरूप न होय, वाके कपटकरि अन्य भ्रम रूप होय जाय। तहाँ कपटी तो वाही कों कहिए जाने कपट किया, ताके कपटकरि अन्य भ्रमरूप भए तिनकों तो कपटी न कहिए। तैसें ब्रह्म अपनी मायाकों आप जानै सो आप तो भ्रमरूप न होय, वाकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप होय हैं। तहाँ मायावी तो ब्रह्म ही कों कहिए, ताकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप भए तिनको मायावी काहेकों कहिए है।

बहुरि पूछिए है, वे जीव ब्रह्म तें एक हैं कि न्यारे हैं। जो एक हैं तो जैसें कोऊ आपही अपने अंगनिको पीड़ा उपजावै तो ताकों बाउला कहिए है तैसे ब्रह्म आप ही आपतें भिन्न नाहीं ऐसे अन्य जीव तिनको मायाकरि दुःखी करे है सो कैसे बनै ? बहुरि जो न्यारे हैं तो जैसे कोऊ भूत बिना ही प्रयोजन औरनिकों भ्रम उपजाय पीड़ा उपजावै तैसे ब्रह्म बिना ही प्रयोजन अन्य जीवनि कों माया उपजाय पीड़ा उपजावै सो भी बनै नाहीं। ऐसे माया ब्रह्म की कहिए है सो कैसे सम्भवे ?

जीवों की चेतना को ब्रह्म की चेतना मानने का निराकरण

बहुरि वे कहै है, माया होतें लोक निपज्या तहाँ जीवनिकै जो चेतना है सो तो ब्रह्मस्वरूप है। शरीरादिक माया है, तहाँ जैसें जुदे जुदे बहुत पात्रनिविषें जल भरया है तिन सबनिविषै चन्द्रमाका प्रतिबिंब जुदा जुदा पड़ै है, चन्द्रमा एक है। तैसें जुदे जुदे बहुत शरीरनिविषें ब्रह्म का चैतन्य प्रकाश जुदा जुदा पाइए है। ब्रह्म एक है, तातें जीवनिकै चेतना है सो ब्रह्म की है। सो ऐसा कहना भी भ्रमही

है जातें शरीर जड़ है, या विषें ब्रह्म का प्रतिबिंबतें चेतनाभई तो घट पटादि जड़ हैं तिनविषें ब्रह्मका प्रतिबिंब क्यों न पड्या अर चेतना क्यों न भई ? बहुरि वह कहै है शरीरको तो चेतन नाही करै है,जीवको करै है। तब वाको पूछिए है कि जीवका स्वरूप चेतन है कि अचेतन है। जो चेतन है तो चेतन का चेतन कहा करेगा। अचेतन है तो शरीर की वा घटादिक की वा जीव की एक जाति भई। बहुरि वाकों पूछिए है—ब्रह्म की अर जीवनि की चेतना एक है कि भिन्न है। जो एक है तो ज्ञानका अधिकहीनपना कैसे देखिए है। बहुरि ए जीव परस्पर वह वाको जानी को न जानै, वह वाकी जानी को न जानै सो कारण कहा ? जो तू कहेगा, यहु घट उपाधि भेदहै तो घट उपाधि होते तो चेतना भिन्न भिन्न ठहरी। घटउपाधि मिटे याकी चेतना ब्रह्म में मिलेगी कै नाश हो जायगी ? जो नाश हो जायगी तो यहु जीव तो अचेतन रह जायेगा। अर तू कहेगा जीव ही ब्रह्म में मिल जाय है तो तहाँ ब्रह्मविषै मिले याका अस्तित्व रहै है कि नाही रहै है। जो अस्तित्व रहै है तो यहु रह्या, याको चेतना याकै रही, ब्रह्मविषै कहा मिल्या ? अर जो अस्तित्व न रहै है तो ताका नाश ही भया, ब्रह्मविषै कौन मिल्या ? बहुरि जो तू कहेगा—ब्रह्मकी अर जीवनिकी चेतना भिन्न है तो ब्रह्म अर सर्वजीव आपही भिन्न-भिन्न ठहरे। ऐसें जीवनि कें चेतना है सो ब्रह्म की है, ऐसें भी बनै नाही।

शरीरादिक का मायारूप माननेका निराकरण

शरीरादि मायाके कहो हो सो माया ही हाड मांसादिरूप हो है कि माया के निमित्ततें और कोई तिनरूप हो है। जो माया ही होय तो

माया के वर्ण गंधादिक पूर्वे ही थे कि नवीन भए। जो पूर्वे ही थे तो पूर्वे तो माया ब्रह्मकी थी, ब्रह्म अमूर्तीक है तहाँ वर्णादि कैसें सम्भवै ? बहुरि जो नवीन भए तो अमूर्त्तीक का मूर्तिक भया तब अमूर्त्तीक स्वभाव शाश्वता न ठहरचा। बहुरि जो कहेगा, माया के निमित्त तें और कोई हो है तो और पदार्थ तो तू ठहरावता ही नाहीं, भया कौन ? जो तू कहेगा, नवीन पदार्थ निपजे। तो ते मायातें भिन्न निपजे कि अभिन्न निपजे। मायातें भिन्न निपजे तो मायामयी शरीरादिक काहेकों कहै, वे तो तिनपदार्थमय भए। अर अभिन्न निपजे तो माया ही तद्रूप भई, नवीन पदार्थ निपजे काहेको कहै। ऐसें शरीरादिक मायास्वरूप हैं ऐस. कहना भ्रम है।

बहुरि वे कहै हैं, माया तें तीन गुण निपजे—राजस १ तामस २ सात्विक ३। सो यहु भी कहना कैसें बनै ? जातें मानादि कषायरूप भावकों राजस कहिए है, क्रोधादिकषायरूप भावकों तामस कहिए है, मंदकषायरूप भावकों सात्विक कहिएहै। सो ए तो भाव चेतनामई प्रत्यक्ष देखिए है अर माया का स्वरूप जड़ कहो हो सो जड़तें ए भाव कैसे निपजें। जो जड़के भी होई तो पाषाणादिकके भी होता सो तो चेतनास्वरूप जीव तिनहीके ए भाव दीसे हैं। तातैं ए भाव मायातें निपजे नाहीं। जो मायाको चेतन ठहरावै तो यहु मानें। सो मायाको चेतन ठहराएं शरीरादिक मायातें निपजे कहेगा तो न मानेंगे तातें निर्धारकर, भ्रमरूप माने नफ़ा कहा है ?

बहुरि वे कहै हैं तिन गुणनि ते ब्रह्मा विष्णु महेश ए तीन देव प्रगट भए सो कैसें सम्भवै ? जातें गुणीतें तो गुण होइ, गुणतें

गुणी कैसें निपजै। पुरुषतें तो क्रोध होय, क्रोधते पुरुष कैसें निपजै। बहुरि इन गुणनिकी तो निन्दा करिए है। इनकरि निपजे ब्रह्मादिक तिनकों पूज्य कैसें मानिए है। बहुरि गुण तो मायामई अर इनकों ब्रह्म के अवतार १ कहिए है सो ए तो माया के अवतार भए,इनकों ब्रह्म के अवतार कैसें कहिए है ? बहुरि ए गुण जिनके थोरे भी पाइए तिनकों तो छुड़ावने का उपदेश दीजिए अर जे इनही की मूर्ति तिनकों पूज्य मानिए, यह कहा भ्रम है। बहुरि तिनका कर्तव्य भी इनमई भासै है। कौतूहलादिक वा स्त्री सेवनादिक वा युद्धादिक कार्य करै हैं सो तिन राजसादि गुणनिकरि ही ये क्रिया हो है सो इनके राजसादिक पाइये है ऐसा कहो। इनको पूज्य कहना, परमेश्वर कहना तो बनै नाहीं। जैसे अन्य संसारी है तैसे ए भी है। बहुरि कदाचित् तू कहेगा, संसारी तो माया के आधीन है सो बिना जानें तिन कार्यनिको करै है। ब्रह्मादिक कै माया आधीन है सो ए जानते ही इन कार्यनिको करै है सो यहु भी भ्रम ही है। जातै माया के आधीन भए तो काम क्रोधादिकही निपजै है और कहा हो है। सो ए ब्रह्मादिकनिकै तो काम क्रोधादिककी तीव्रता पाइए है। कामकी तीव्रताकरि स्त्रीनिके

---

१ ब्रह्मा, विष्णु और शिव यह तीनों ब्रह्म की प्रधान शक्तियां है।

विष्णुपु० अ० २२-५८

कलिकाल के प्रारम्भमें परब्रह्म परमात्माने रजोगुणसे उत्पन्न होकर ब्रह्मा बनकर प्रजा की रचनाकी। प्रलयके समय तमोगुणसे उत्पन्न हो काल(शिव) बनकर उस सृष्टिको ग्रस लिया। उस परमात्मा ने सत्वगुण से उत्पन्न हो। नारायणबनकर समुद्रमे शयन किया। —वायुपु० अ० ७-६८,६९।

वशीभूत भए नृत्यगानादि करते भए, विह्वल होते भए, नाना प्रकार कुचेष्टा करते भए, बहुरि क्रोध के वशीभूत भए अनेक युद्धादि कार्य करते भए, मान के वशीभूत भए आपकी उच्चता प्रगट करने के अर्थि अनेक उपाय करते भए, माया के वशीभूत भए अनेक छल करते भए, लोभ के वशीभूत भए परिग्रहका संग्रह करते भए इत्यादि बहुत कहा कहिए। ऐसैं वशीभूत भए, चीरहरणादि निर्लज्जनिकी क्रिया और दधि लुन्टनादि चौरनिकी क्रिया अर रुन्डमाला धारणादि बाउलेनिकी क्रिया,※बहुरूपधारणादि भूतनिकीक्रिया, गौचरावणादि नीच कुल वालों की क्रिया इत्यादि जे निंद्य क्रिया तिनको तो करते भए, यातैं अधिक माया के वशीभूत भए कहा क्रिया हा है सो जानी न परी। जैसें कोऊ मेघपटलसहित अमावस्याकी रात्रिको अंधकार रहित मानै तैसें बाह्य कुचेष्टा सहित तीव्र काम क्रोधादिकनिके धारी ब्रह्मादिकनिकों मायारहित मानना है।

बहुरि वह कहै है कि इनको काम क्रोधादि व्याप्त नाहीं होता, यहु भी परमेश्वर की लीला है। याकों कहिए है—ऐसैं कार्य करै है ते इच्छाकरि करै है कि बिना इच्छा करै है। जो इच्छाकरि करै है तो स्त्रीसेवनकी इच्छाहीका नाम काम है,युद्ध करनेकी इच्छाही का नाम क्रोध है इत्यादि ऐसैं हो जानना। बहुरि जो बिना इच्छा करै है तो आप जाकों न चाहै ऐसा कार्य तो परवश भए ही होय, सो परवशपना कैसें सम्भवै? बहुरि तू लीला बतावै है सो परमेश्वर

※ नानारूपाय मुण्डाय वरुथपृथुदण्डिने।
नमः कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने॥ मत्स्य पु०अ०२५०, श्लोक २

अवतार धारि इन कार्यनिकरि लीला करै है तो अन्य जीवनिकों इन कार्यनितैं छुड़ाय मुक्त करनेका उपदेश काहेकों दीजिए है। क्षमा सन्तोष शील संयमादिका उपदेश सर्व झूठा भया।

बहुरि वह कहै है कि परमेश्वरको तो किछू प्रयोजन नाहीं। लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि वा भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह ताके अर्थि अवातार धरै ❀ है तो याकों पूछिए है—प्रयोजन बिना चींटी हू कार्य न करै, परमेश्वर काहेकों करै। बहुरितैं प्रयोजन भी कह्या, लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि करै है। सो जैसें कोई पुरुष आप कुचेष्टा-करि अपने पुत्रनिकों सिखावै बहुरि वे तिस चेष्टारूप प्रवर्त्तैं तब उनको मारै तो ऐसे पिताकों भला कैसें कहिए तैसे ब्रह्मादिक आप कामक्रोधरूप चेष्टाकरि अपने निपजाए लोकनिकों प्रवृत्ति करावै। बहुरि वे लोक तैसे प्रवर्त्तें तब उनको नरकादिकविषैं डारै। नरकादिक इनही भावनिका फल शास्त्रविषैं लिख्या है सो ऐसे प्रभुकों भला कैसें मानिए? बहुरि तै यहु प्रयोजन कह्या कि भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह करना। सो भक्तनिकों दुखदायक जे दुष्ट भए ते परमेश्वर की इच्छाकरि भए कि बिना इच्छाकरि भए। जो इच्छाकरि भए तो जैसे कोऊ अपने सेवकको आप ही काहू को कहकरि मरावै बहुरि पीछे तिस मारने वालोकों आप मारै सो ऐसे स्वामीकों भला कैसें कहिए। तैसें ही जो अपने भक्तकों आप ही इच्छाकरि दुष्टनिकरि पीड़ित करावै बहुरि पीछें तिन दुष्टनिकों आप

❀ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥८॥ — गीता ४—८

अवतार धारि मारै तो ऐसे ईश्वर को भला कैसें मानिए ? बहुरि जो तू कहेगा कि बिना इच्छा दुष्ट भए तो कै तो परमेश्वरकै ऐसा आगामी ज्ञान न होगा जो ए दुष्ट मेरे भक्तनिको दुःख देवेंगे, कै पहिलें ऐसे शक्ति न होगी जो इनको ऐसे न होने दे। बहुरि वाकों पूछिए है जो ऐसे कार्य के अर्थि अवतार धारया, सो कहा बिना अवतार धारे शक्ति थी कि नाहीं। जो थी तो अवतार काहेकों धारै अर न थी तो पीछे सामर्थ्य होनेका कारण कहा भया। तब वह कहै है-ऐसैं किए बिना परमेश्वरकी महिमा प्रगट कैसें होय। याकों पूछिए है कि अपनी महिमा के अर्थि अपने अनुचरनिका पालन करै, प्रतिपक्षीनिका निग्रह करै सो ही राग द्वेष है। सो रागद्वेष तो लक्षण संसारी जीवका है। जो परमेश्वरकै भी रागद्वेष पाइए है तो अन्य जीवनिका रागद्वेष छोरि समता भाव करने का उपदेश काहेको दीजिए। बहुरि रागद्वेषके अनुसारि कार्य करना विचारया सो कार्य थोरे वा बहुत काल लागे बिना होय नाहीं, तावत् काल आकुलता भी परमेश्वर कै होती होसी। बहुरि जैसें जिस कार्यको छोटा आदमी ही कर सकै तिस कार्यको राजा आप आय करै तो किछू राजा की महिमा होती नाहीं, निन्दा ही होय। तैसें जिस कार्य को राजा वा व्यंतरदेवादिक करि सकै तिस कार्यको परमेश्वर आप अवतार धारि करै ऐसा मानिए तो किछू परमेश्वर की महिमा होती नाहीं, निंदा ही है। बहुरि महिमा तो कोई और होय ताकों दिखाइए है। तू तो अद्वैत ब्रह्म मानै है, कौनको महिमा दिखावै है। अर महिमा दिखावने का फल तो स्तुति करावना है सो कौनपै स्तुति कराया चाहै है। बहुरि

तू तो कहै है सर्व जीव परमेश्वरकी इच्छा अनुसारि प्रवर्तें हैं अर आपके स्तुति करावनेकी इच्छा है तो सबकों अपनी स्तुतिरूप प्रवर्त्तावो, काहेकों अन्य कार्य करना परै। तातैं महिमाकै अर्थि भी कार्य करना न बनैं।

बहुरि वह कहै है—परमेश्वर इन कार्यनिकों करता संता भी अकर्त्ता है, वाका निर्द्धार होता नाही। याकों कहिए है-तू कहेगा यह मेरी माता भी है अर बांझ भी है तो तेरा कह्या कैसें मानेंगे। जो कार्य करै ताकों अकर्त्ता कैसे मानिए। अर तू कहै निर्द्धार होता नाहीं सो निर्द्धार बिना मान लेना ठहरया तो आकाश के फूल, गधे के सींग भी मानो, सो ऐसा असम्भव कहना युक्त नाही। ऐसैं ब्रह्मा, विष्णु महेशका होना कहै हैं सो मिथ्या जानना।

ब्रह्मा-विष्णु-महेशका सृष्टिका कर्त्ता, रक्षक और संहारक पने का निराकरण

बहुरि वे कहै है- ब्रह्मा तो सृष्टिको उपजावै है, विष्णु रक्षा करै है, महेश संहार करै है सो ऐसा कहना भी न सम्भवै है। जातै इन कार्यनिको करते कोऊ किछू किया चाहै कोऊ किछू किया चाहै तब परस्पर विरोध होय। अर जो तू कहेगा, ए तो एक परमेश्वरका ही स्वरूप है, विरोध काहेको होय। तो आप ही उपजावै, आप ही क्षपावै ऐसे कार्यमे कौन फल है। जो सृष्टि आपकों अनिष्ट है तो काहेकों उपजाई अर इष्ट है तो काहे को क्षपाई। अर जो पहिले इष्ट लागी तब उपजाई,पीछे अनिष्ट लागी तब क्षपाई ऐसै है तो परमेश्वर का स्वभाव अन्यथा भया कि सृष्टिका स्वरूप अन्यथा भया। जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तो परमेश्वर का एक स्वभाव न ठहरया। सो एक स्वभाव न रहनेका कारण कौन है ? सो बताय, बिना कारण स्वभाव

की पलटनि काहेकौं होय । अर द्वितीय पक्ष कहेगा तो सृष्टि तो परमेश्वर के आधीन थी, वाकौं ऐसी काहेकौं होने दीनी जो आपकौं अनिष्ट लागै।

बहुरि हम पूछें हैं—ब्रह्मा सृष्टि उपजावे है सो कैसें उपजावे है। एक तो प्रकार यहु है— जैसें मन्दिर चुननेवाला चूना पत्थर आदि सामग्री एकट्ठी करि अकारादि बनावे है तैसें ही ब्रह्मा सामग्री एकठ्ठी करि सृष्टि रचना करै है तो ए सामग्री जहांतै ल्याय एकट्ठी करी सो ठिकाना बताय। अर एक ब्रह्माहो एतो रचना बनाई सो पहिले पीछें बनाई होगी, कै अपने शरीरके हस्तादि बहुत किए होगे सो कैसें है सो बताय। जो बतावेगा तिसही मे विचार किए विरुद्ध भासेगा।

बहुरि एक प्रकार यहु है— जैसे राजा आज्ञा करं ताके अनुसार कार्य होय, तैसे ब्रह्माकी आज्ञाकरि सृष्टि निपजै है तो आज्ञा कौनकौं दई। अर जिनकौं आज्ञा दई वे कहांतै सामग्री ल्याय कैसे रचना करै हैं सो बताय।

बहुरि एक प्रकार यहु है--जैसें ऋद्धिधारी इच्छा करै ताके अनुसारि कार्य स्वयमेव बनै। तैसे ब्रह्म इच्छा करै ताके अनुसारि सृष्टि निपजै है तो ब्रह्मा तो इच्छाहीका कर्त्ता भया, लोक तो स्वयमेव ही निपज्या। बहुरि इच्छा तो परमब्रह्म कीन्ही थी, ब्रह्माका कर्त्तव्य कहा भया जातै ब्रह्म को सृष्टिका निपजावनहारा कह्या। बहुरि तू कहेगा परमब्रह्म भी इच्छा करी अर ब्रह्मा भी इच्छा करी तब लोक निपज्या तो जानिए है केवल परमब्रह्मकी इच्छा कार्यकारी नाहीं। तहां शक्तिहीनपना आया।

बहुरि हम पूछें हैं—जो लोक केवल बनाया हुवा बनै है तो बनावनहारा तो सुखके अर्थि बनावै सो इष्ट ही रचना करै। इस लोकविषै तो इष्ट पदार्थ थोरे देखिए हैं, अनिष्ट घने देखिए हैं। जीवनिविषै देवादिक बनाए सो तो रमनेके अर्थि वा भक्ति करावनेके अर्थि इष्ट बनाए अर लट कीड़ी कूकर सूअर सिहादिक बनाए सोकिस अर्थि बनाए। ए तो रमणीक नाहीं, भक्ति करते नाहीं। सर्व प्रकार अनिष्ट हो हैं। बहुरि दरिद्री दुःखी नारकिनिकों देखें आपको जुगुप्सा ग्लानि आदि दुःख उपजै ऐसे अनिष्ट काहेको बनाए। तहाँ वह कहै है—कि जीव अपने पापकरि लट कीडी दरिद्री नारकी आदि पर्याय भुगतै हैं। याकों पूछिए है कि पीछें तो पापहीका फलतें ए पर्याय भए कहो परन्तु पहिले लोकरचना करते ही इनको बनाए सो किस अर्थि बनाए। बहुरि पीछे जीव पापरूप परिणए सो कैसें परिणए। जो आपही परिणए कहोगे तो जानिए है ब्रह्मा पहले तो निपजाए पीछें वे याके आधीन न रहे। इस कारणतें ब्रह्माको दुःख ही भया। बहुरि जो कहोगे—ब्रह्माके परिणमाए परिणमैं हैं तो तिनको पापरूप काहेकों परिणमाए। जीव तो आपके निपजाए थे उनका बुरा किस अर्थि किया। तातै ऐसैं भी न बनै। बहुरि अजीवनिविषै सुवर्ण सुगन्धादि सहित वस्तु बनाए सो तो रमणेके अर्थि बनाए,कुवर्ण दुर्गन्धादिसहित वस्तु दुःखदायक बनाए सो किस अर्थि बनाए। इनका दर्शनादिकरि ब्रह्माकै किछू सुख तो नाहीं उपजता होगा। बहुरि तू कहेगा, पापी जीवनिकों दुःख देने के अर्थि बनाए। तो आपहीके निपजाए जीव तिनस्यों ऐसी दुष्टता काहे कों करी जो तिनकों दुःखदायक सामग्री

पहले ही बनाई । बहुरि धूलि पर्वतादिक वस्तु केतीक ऐसी हैं जे रमणीक भी नाहीं अर दुःखदायक भी नाहीं, तिनको किस अर्थि बनाए । स्वयमेव तो जैसें तैसें ही होय अर बनावनहारा तो जो बनावै सो प्रयोजन लिए ही बनावै । तातैं ब्रह्मा सृष्टिका कर्त्ता कैसें कहिए है ?

बहुरि विष्णुको लोकका रक्षक कहै हैं । रक्षक होय सो तो दोय ही कार्य करै । एक तो दुःख उपजावने के कारण न होने दे अर एक विनशने के कारण न होने दे । सो तो लोकविषैं दुःखही के उपजनेके कारण जहाँ तहाँ देखिए हैं अर तिनकरि जीवनिकौं दुःख ही देखिए है । क्षुधा तृषादिक लगि रहे हैं । शीत उष्णादिक करि दुःख हो है । जीव परस्पर दुःख उपजावै हैं, शस्त्रादि दुःख के कारण बनि रहे हैं । बहुरि विनशनेके कारण अनेक बन रहे हैं । जीवनिकै रोगादिक वा अग्नि विष शस्त्रादिक पर्यायके नाशके कारण देखिए है अर अजीवनिकै भी परस्पर विनशनेके कारण देखिए हैं । सो ऐसें दोय प्रकारहीकी रक्षा तो कीन्हीं नाहीं तो विष्णु रक्षक होय कहा किया । वह कहै है—विष्णु रक्षक ही है । देखो क्षुधा तृषादिकके अर्थि अन्न जलादिक किए हैं । कीड़ीको कण कुञ्जरको मण पहुंचावै है । सकटमें सहाय करै है । मरणके कारण बने टीटोड़ी कोसी नाईं उबारै है । इत्यादि प्रकार करि विष्णु रक्षा करै है । याकौं कहिए है—ऐसें है तो जहाँ जीवनिकै

* एक प्रकार का पक्षी जो एक समुद्र के किनारे रहता था । उसके अंडे समुद्र बहा ले जाता था सो उसने दुःखी होकर गरुड पक्षी की मार्फत विष्णु से अर्ज की, तो उन्होंने समुद्रसे अंडे दिलवा दिये। ऐसी पुराणों में कथा है ।

क्षुधातृषादिक बहुत पीड़े अर अन्न जलादिक मिलें नाहीं, संकट पड़े सहाय न होय, किंचित कारण पाइ मरण होय जाय, तहाँ विष्णु की शक्ति हीन भई कि वाको ज्ञान ही न भया। लोकविषें बहुत तो ऐसे ही दुःखी हो हैं, मरण पावै हैं, विष्णु रक्षा काहे को न करी। तब वह कहै है, यहु जीवनिके अपने कर्तव्यका फल है। तब वाको कहिए है कि जैसे शक्तिहीन लोभी झूठा वैद्य काहूकै किछू भला होइ ताको तो कहै, मेरा किया भया है अर जहाँ बुरा होय, मरण होय तब कहै याका ऐसा ही होनहार था। तैसे ही तू कहै है कि भला भया तहाँ तो विष्णुका किया भया अर बुरा भया सो याका कर्तव्यका फल भया। ऐसे झूठी कल्पना काहेकों कीजिए। कै तो बुरा वा भला दोऊ विष्णु का किया कहो, कै अपना कर्तव्यका फल कहो। जो विष्णुका किया भया तो घने जीव दुःखी अर शीघ्र मरते देखिए हैं सो ऐसा कार्य करै ताको रक्षक कैसे कहिए? बहुरि अपने कर्तव्य का फल है तो करेगा सो पावेगा, विष्णु कहा रक्षा करेगा? तब वह कहै है, जे विष्णुके भक्त हैं तिनकी रक्षा करै है। याको कहिए है कि जो ऐसा है तो कीडी कुंजर आदि भक्त नाहीं उनकै अन्नादिक पहुँचावने विषै वा संकट मे सहाय होने विषै वा मरण न होने विषें विष्णु का कर्त्तव्य मानि सर्व का रक्षक काहे कों मानैं, भक्तनिही का रक्षक मानि। सो भक्तनिका भी रक्षक दीसता नाहीं जातै अभक्त भी भक्त पुरुषनिको पीड़ा उपजावते देखिए हैं। तब वह कहै है—घनी ही जायगा (जगह) प्रहलादादिककी सहाय करी है। याको कहै है—जहां सहाय करी तहाँ तो तू तैसे ही मानि परन्तु हम

तो प्रत्यक्ष म्लेच्छ मुसलमान आदि अभक्त पुरुषनिकरि भक्त पुरुष पीड़ित होते देखि वा मन्दिरादिकों विघ्न करते देखि पूछें हैं कि इहां सहाय न करै है सो शक्ति ही नाहीं, कि खबर ही नाहीं। जो शक्ति नाहीं तो इनतेंभी हीनशक्तिका धारक भया। खबरही नाहीं तो जाकों एती भी खबर नाहीं सो अज्ञान भया। अर जो तू कहेगा, शक्ति भी है अर जानै भी है, इच्छा ऐसी ही भई, तो फिर भक्तवत्सल काहेंकों कहै। ऐसें विष्णुको लोकका रक्षक मानना बनता नाहीं।

बहुरि वे कहै हैं—महेश संहार करै है सो वाकों पूछिए है। प्रथम तो महेश संहार सदा करै है कि महाप्रलय हो है तब ही करै है। जो सदा करै है तो जैसें विष्णुकी रक्षा करनेकरि स्तुति कीनी, तैसें याकी संहार करवेकरि निंदा करो। जातें रक्षा अर संहार प्रतिपक्षी हैं। बहुरि यहु संहार कैसे करै है ? जैसे पुरुष हस्तादिककरि काहूकों मारै वा कहकरि मरावै तैसें महेश अपने अंगनिकरि संहार करै है वा आज्ञाकरि मरावै है। तो क्षण क्षणमें संहार तो घने जीवनिका सर्व लोकमें हो है, यहु कैसे कैसे अंगनिकरि वा कौन कौनकों आज्ञा देय युगपत् कैसें संहार करै है। बहुरि महेश तो इच्छा ही करै, याकी इच्छातें स्वयमेव उनका संहार हो है। तो याकै सदा काल मारने रूप दुष्ट परिणामही रह्या करते होंगे अर अनेक जीवनिके युगपत्मारनें की इच्छा कैसें होती होगी। बहुरि जो महाप्रलय होते संहार करै है सो परमब्रह्मकी इच्छा भए करै है कि वाकी बिना इच्छा ही करै है। जो इच्छा भए करै है तो परमब्रह्मके ऐसा क्रोध कैसें भया जो सर्वका प्रलय करने की इच्छा भई। जातें कोई कारण बिना नाश करनेकी

इच्छा होय नाहीं। अर नाश करनेकी जो इच्छा ताहीका नाम क्रोध है सो कारन बताय। बहुरि तू कहेगा-परमब्रह्म यह ख्याल (खेल) बनाया था बहुरि दूर किया,कारन किछू भी नाहीं। जो ख्याल बनावने वालोंकों भी ख्याल इष्ट लागै तब बनावै है, अनिष्ट लागै है तब दूर करै है। जो याकों यहुलोक इष्ट अनिष्ट लागै है तो याकै लोकस्यों रागद्वेष तो भया। साक्षीभूत ब्रह्मका स्वरूप काहेकों कहो हो,साक्षीभूत तो वाका नाम है जो स्वयमेव जैसैं होय तैसे देख्या जान्या करै। जोइष्ट अनिष्ट मान उपजावै, नष्ट करै ताको साक्षीभूत कैसें कहिए, जातै साक्षीभूत रहना अर कर्त्ता हर्त्ता होना ए दोऊ परस्पर विरोधी है। एककैं दोऊ सम्भवै नाहीं। बहुरि परमब्रह्मके पहिले तो इच्छा यहु भई थी कि 'मैं एक हूँ सो बहुत होस्यू' तब बहुत भया। अब ऐसी इच्छा भई होसी जो "मै बहुत हूँ सो एक होस्यू" सो जैसे कोऊ भोलपते कार्यकरि पीछे तिस कार्यकों दूर किया चाहै, तैसे परमब्रह्म भी बहुत होय एक होनेको इच्छाकरी सो जानिये है कि बहुत होने का कार्य किया होय सो भोलपतेहीतै किया, आगामी ज्ञानकरि किया होता तो काहेकों ताके दूरि करनेकी इच्छा होती।

बहुरि जो परमब्रह्मकी इच्छा बिना ही महेश संहार करै है तो यहु परमब्रह्मका वा ब्रह्मका विरोधी भया। बहुरि पूछें हैं यहु महेश लोककों कैसें संहार करैहै। अपने अंगनिहीकरि संहार करैहै किइच्छा होतें स्वयमेवही संहार होय है ? जो अपने अंगनिकरि संहारकरै है तो सर्वका युगपत् संहार कैसे करै है ? बहुरि याकी इच्छा होतें स्वयमेव संहार हो है तो इच्छातो परमब्रह्म कीन्हीं थी,यानें संहार कहा किया?

बहुरि हम पूछें हैं कि संहार भए सर्व लोकविषै जीव अजीव थे ते कहां गए ? तब वह कहै है—जीवनिविषें भक्ततो ब्रह्म विषै मिले, अन्य मायाविषै मिले । अब याकों पूछिये है कि माया ब्रह्मतें जुदी रहै है कि पीछें एक होय जाय है। जो जुदी रहै है तो ब्रह्मवत् माया भी नित्य भई। तब अद्वैतब्रह्म न रह्या। अर मायाब्रह्म में एक होय जाय है तो जे जीव मायामें मिले थे ते भी मायाकी साथि ब्रह्ममें मिल गए तो महाप्रलय होतें सर्वका परमब्रह्ममें मिलना ठहरचा ही तो मोक्षका उपाय काहेकों करिए। बहुरि जे जीव मायामें मिले ते बहुरि लोकरचना भए वे ही जीव लोकविषें आवेगे कि वे तो ब्रह्म में मिल गए थे कि नए उपजेंगे। जो वे ही आवेंगे तो जानिए है जुदे जुदे रहै हैं, मिले काहेकों कहो। अर नए उपजेंगे तो जीवका अस्तित्व थोरा कालपर्यंत ही रहै, काहेको मुक्त होनेका उपाय कीजिए। बहुरि वह कहै है कि पृथिवी आदिक है ते मायाविषें मिले हैं सो माया अमूर्त्तीक सचेतन है कि मूर्त्तीक अचेतन है। जो अमूर्त्तीक सचेतन है तो अमूर्त्तीक में मूर्त्तीक अचेतन कैसें मिलै ? अर मूर्त्तीक अचेतन है तो यहु ब्रह्ममें मिलै है कि नाहीं। जो मिलै है तो याके मिलनेतें ब्रह्म भी मूर्त्तीक अचेतनकरि मिश्रित भया। अर न मिलै है तो अद्वैतता न रही। अर तू कहेगा ए सर्व अमूर्त्तीक अचेतन होइ जाय हैं तो आत्मा अर शरीरादिककी एकता भई, सो यहु संसारी एकता मानै ही है, याकों अज्ञानी काहेकों कहिए। बहुरि पूछें हैं— लोकका प्रलय होतें महेशका प्रलय हो है कि न हो है। जो हो है तो युगपत् हो है कि आगें पीछें हो है। जो युगपत् हो है तो आप नष्ट

होता लोककों नष्ट कैसें करें। अर आगैं पीछें ही है तो महेश लोककों नष्टकरि आप कहाँ रह्या,आप भी तो सृष्टिविषै ही था,ऐसें महेशकों सृष्टिका संहारकर्ता मानै हैं सो असम्भव है। या प्रकारकरि वा अन्य अनेक प्रकारनिकरि ब्रह्मा विष्णु महेशकों सृष्टिका उपजावनहारा, रक्षा करनहारा, सहार करनहारा मानना न बनै तातें लोक कों अनादिनिधन मानना।

इसलोकविषै जे जीवादि पदार्थ हैं ते न्यारे न्यारे अनादिनिधन हैं। बहुरि तिनकी अवस्थाकी पलटनि हुवा करै है। तिस अपेक्षा उपजते विनशते कहिये है। बहुरि जे स्वर्ग नरक द्वीपादिक है ते अनादितें ऐसे ही हैं अर सदाकाल ऐसें ही रहेंगे। कदाचित् तू कहेगा बिना बनाए ऐसे आकारादिक कैसे भए, सो भए होंय तो बनाए ही होंय। सो ऐसा नाहीं है जातें अनादितें ही जे पाइए तहाँ तर्क कहा। जैसें तू परमब्रह्मका स्वरूप अनादिनिधन मानै है तैसें ए जीवादिक वा स्वर्गादिक अनादिनिधन मानिए हैं। तू कहेगा जीवादिक वा स्वर्गादिक कैसें भए ? हम कहेंगे परमब्रह्म कैसे भया। तू कहेगा इनकी रचना ऐसी कौनकरी ?हम कहेंगे परमब्रह्मकों ऐसा कौन बनाया ?तू कहेगा परमब्रह्म स्वयंसिद्ध है; हम कहैं है जीवादिक वा स्वर्गादिक स्वयंसिद्ध है;तू कहेगा इनकी अर परब्रह्मकी समानता कैसे सम्भवै ? तौ सम्भवनेविषैं दूषण बताय। लोककों नवा उपजावना ताका नाश करना तिसविषैं तो हम अनेक दोष दिखाये। लोककों अनादि निधन माननेतें कहा दोष है ? सो तू बताय। जो तू परमब्रह्म मानै है सो जुदा ही कोई है नाहीं। ए संसारविषै जीव हैं ते ही यथार्थ ज्ञानकरि मोक्षमार्ग साधनतें सर्वज्ञ

वीतराग हो हैं।

इहां प्रश्न— जो तुम तो न्यारे न्यारे जीव अनादिनिधन कहो हो। मुक्त भए पीछें तो निराकार हो हैं, तहां न्यारे न्यारे कैसें सम्भवें ?

ताका समाधान—जो मुक्त भए पीछे सर्वज्ञकों दीसै हैं कि नाहीं दीसै हैं। जो दीसै हैं तो किछू आकार दीसता ही होगा। बिना आकार देखें कहा देख्या अर न दीसै है तो कै तो वस्तु ही नाहीं, कै सर्वज्ञ नाही। तातें इन्द्रियज्ञानगम्य आकार नाहीं तिस अपेक्षा निराकार है अर सर्वज्ञ ज्ञानगम्य है तातें आकारवान् है। जब आकारवान् ठहरचा तब जुदा जुदा होय तो कहा दोष लागै ? बहुरि जो तू जाति अपेक्षा एक कहै तो हम भी मानें हैं। जैसें गेहूँ भिन्न भिन्न हैं तिनकी जाति एक है ऐसें एक मानें तो किछू दोष है नाहीं। या प्रकार यथार्थ श्रद्धानकरि लोकविषें सर्व पदार्थ अकृत्रिम जुदे जुदे अनादिनिधन मानने। बहुरि जो वृथा ही भ्रमकरि सांच झूंठ का निर्णय न करै तो तू जानै, तेरे श्रद्धान का फल तू पावेगा।

ब्रह्म से कुलप्रवृत्ति आदि का प्रतिषेध

बहुरि वे ही ब्रह्मतें पुत्रपौत्रादिकरि कुलप्रवृत्ति कहै हैं। बहुरि कुलनिविषें राक्षस मनुष्यदेव तिर्यंचनिकै परस्पर प्रसूति भेद बतावै हैं। तहां देवतें मनुष्य वा मनुष्यतें देव वा तिर्यंचतें मनुष्य इत्यादि कोई माता कोई पितातें कोई पुत्रपुत्री का उपजना बतावें सो कैसें सम्भवै? बहुरि मनहीकरि वा पवनादिकरि वा वीर्य सूंघने आदिकरि प्रसूति

होनी बतावै हैं सो प्रत्यक्षविरुद्ध भासै है। ऐसैं होते पुत्रपौत्रादिकका नियम कैसें रह्या? बहुरि बड़े बड़े महन्तनिकों अन्य अन्य मातापितातैं भए कहैं हैं। सो महंत पुरुष कुशीली माता पिताकै कैसे उपजे ? यहु तो लोकविषै गालि है। ऐसा कहि उनकी महतता काहेको कहिए है।

अवतार मीमांसा

बहुरि गणेशादिककी मैल आदि करि उत्पत्ति बतावै हैं वा काहूके अंग काहूके जुरे बतावै हैं। इत्यादि अनेक प्रत्यक्ष विरुद्धकहै है। बहुरि चौईस अवतार * भए कहै हैं, तहा केई अवतारनिको पूर्णावतार कहैं है। केईनिकों अंशावतार कहै है। सो पूर्णावतार भए तब ब्रह्म अन्यत्र व्यापक रह्या कि न रह्या। जो रह्या तो इनअवतारनिको पूर्णावतार काहेकों कहो। जो (व्यापक) न रह्या तो एतावन्मात्र ही ब्रह्म रह्या। बहुरि अंशावतार भए तहां ब्रह्म का अंश तो सर्वत्र कहो हो, इन विषै कहा अधिकता भई ? बहुरि कार्य तो तुच्छ तिसकै वास्ते आप ब्रह्म अवतार धारया कहैं सो जानिये है बिना अवतार धारे ब्रह्मकी शक्ति तिस कार्यके करनेकी न थी। जातैं जो काय स्तोक उद्यमतैं होइ तहां बहुत उद्यम काहेको करिए ? बहुरि अवतारनिविषै मच्छ कच्छादि अवतार भए सो किंचित् कार्य करने के अर्थि हीन तिर्यंच पर्यायरूप

* सनत्कुमार १ शूकरावतार २ देवर्षि नारद ३ नर नारायण ४ कपिल ५ दत्तात्रय ६ यज्ञपुरुष ७ ऋषभावतार ८ पृथु अवतार ९ मत्स्य १० कच्छप ११ धन्वन्तरि १२ मोहिनी १३ नृसिंहावतार १४ वामन १५ परशुराम १६ व्यास १७ हंस १८ रामावतार १९ कृष्णावतार २० हयग्रीव २१ हरि २२ बुद्ध २३ और कल्कि ये २४ अवतार माने जाते हैं।

भए, सो कैसें सम्भवै ? बहुरि प्रह्लादके अर्थि नरसिंह अवतार भए सो हरिणांकुशकों ऐसा काहेकों होने दिया अर कितेक काल अपने भक्तकों काहेकों दुःख द्याया। बहुरि ऐसा रूप काहेकों धरया। बहुरि नाभिराजाके वृषभावतार भया बतावे हैं सो नाभिकों पुत्रपनेका सुख उपजावनेकों अवतारधारया। घोरतपश्चरण किस अर्थि किया। उनकों तो किछु साध्य था ही नाहीं। अर कहेगा जगत्के दिखावनेकों किया तो कोई अवतार तो तपश्चरण दिखावै, कोई अवतार भोगादिक दिखावै, जगत किसको भला जानि लाग।

बहुरि (वह) कहै है- एक अरहत नामका राजा भया❀ सो वृषभावतारका मत अंगीकारकरि जैनमत प्रगट किया सो जैनविषै कोई एक अरहत भया नाहीं। जो सर्वज्ञपद पाय पूजन योग्य होय ताहीका नाम अर्हत् है। बहुरि रामकृष्ण इन दोउ अवतारनिकों मुख्य कहैं हैं सो रामावतार कहा किया। सीताके अर्थि विलापकरि रावणसों लरि वाकूं मारि राज किया। अर कृष्णावतार पहिले गुवालिया होइ परस्त्री गोपिकानिके अर्थि नाना विपरीति निंद्य चेष्टाकरी ×, पीछें जरासिंधु आदिकों मारि राजकिया। सो ऐसे कार्य करनेमे कहा सिद्धिभई। बहुरि रामकृष्णादिकका एक स्वरूप कहैं। सो बीचमें इतने काल कहां रहे ? जो ब्रह्मविषै रहे तो जुदे रहे कि एक रहे। जुदे रहे तो जानिए है, ए ब्रह्मतें जुदे रहै हैं। एक रहे तो राम ही कृष्ण भया, सीता ही रुक्मणी

❀ भागवत स्कंध ५ अ० ६, ७, ११

× विष्णु०पु०अ०१३ श्लोक ४५ से ६० तक

ब्रह्मपुराण अ०१८९ और भागवतस्कंध १०, अ० ३०, ४८

भई इत्यादि कैसें कहिए है। बहुरि रामावतारविषें तो सीताकों मुख्य करें अर कृष्णावतारविषें सीताकों रुक्मणी भई कहैं अर ताको तो प्रधान न कहैं, राधिका कुमारी ताकों मुख्य करें। बहुरि पूछें तब कहैं राधिका भक्त थी,सो निजस्त्रीकों छोरि दासीका मुख्य करना कैसें बनें? बहुरि कृष्णकै तो राधिकासहित परस्त्री सेवनके सर्व विधान भए सो यहु भक्ति कैसी करी, ऐसे कार्य तो महानिंद्य हैं। बहुरि रुक्मणी को छोरि राधा को मुख्य करी, सो परस्त्री सेवनकों भला जानि करी होसी। बहुरि एक राधा विषै ही आसक्त न भया, अन्य गोपिका कुब्जा* आदि अनेक परस्त्रीनिविषै भी आसक्त भया। सो यहु अवतार ऐसेही कार्यका अधिकारी भया। बहुरि कहैं-लक्ष्मी वाकी स्त्री है अर धनादिककों लक्ष्मी कहैं सो ए तो पृथ्वी आदि विषै जैसें पाषाण धूलि है तैसें ही रत्न सुवर्णादि धन देखिए है। जुदी ही लक्ष्मी कौन जाका भर्तार नारायण है। बहुरि सीतादिककों माया का स्वरूप कहैं सो इन विषें आसक्त भए तब मायाविषै आसक्त कैसें न भया। कहां ताईं कहिए जो निरूपण करै सो विरुद्ध करै। परन्तु जीवनिकों भोगादिकको वार्ता सुहावै,तातै तिनका कहना वल्लभ लागै है। ऐसे अवतार कहे हैं, इनको ब्रह्मस्वरूप कहै हैं। बहुरि औरनिकों भी ब्रह्मस्वरूप कहे हैं। एक तो महादेवकों ब्रह्मस्वरूप मानै हैं ताको योगी कहै हैं, सो योग किस अर्थि गह्या। बहुरि मृगछाला भस्मी धारैं हैं सो किस अर्थीधारी है। बहुरि रुण्डमाला पहरै हैं सो हाड़का छीवना भी निंद्य है ताकों गलेमें किस अर्थि धारैं हैं। सर्पादि सहित है सो यामें कौन

* भागवतस्कंध १० अ० ४८ १-११

बड़ाई है। आक धतूरा खाय है सो यामें कौन भलाई है। त्रिशूलादि राखे है सो कौनका भय है। बहुरि पार्वती संग लिए है सो योगी होय स्त्रीराखै सो ऐसा विपरीतपना काहेकों किया। कामासक्त था तो घरही में रह्या होता। बहुरि वानै नाना प्रकार विपरीत चेष्टा कीन्हीं ताका प्रयोजन तो किछू भासै नाहीं। बाउलेकासा कर्त्तव्य भासै ताकों ब्रह्मस्वरूप कहैं।

बहुरि कबहूँ कृष्णको याका सेवक कहैं, कबहूं याकों कृष्णका सेवक कहैं। कबहूँ दोऊनिकों एक ही कहै, किछू ठिकाना नाही। बहुरि सूर्य्यादिककों ब्रह्मका स्वरूप कहैं। बहुरि ऐसा कहैं जो विष्णु कह्या सो धातुनिविषै सुवर्ण, वृक्षनिविषै कल्पवृक्ष, जूवा विषै झूंठ इत्यादि मे मै ही हूँ सो किछू पूर्वापर विचारै नाही। कोई एक अंगकरि केई संसारी जाको महंत मानै ताहीकों ब्रह्मका स्वरूप कहैं। सो ब्रह्म सर्वव्यापी है तो ऐसा विशेष काहेको किया। अर सूर्यादिविषै वा सुवर्णादिविषै ही ब्रह्म है तो सूर्य उजारा करै है, सुवर्ण धन है इत्यादि गुणनिकरि ब्रह्म मान्या सो सूर्यवत् दीपादिकभी उजाला करै हैं, सुवर्णवत् रूपा लोहा आदि भी धन हैं इत्यादि गुण अन्य पदार्थनिविषै भी हैं तिनकों भी ब्रह्म मानो। बडा छोटा मानो परन्तु जाति तो एक भई। सो झूंठी महंतता ठहरावनेके अर्थि अनेक प्रकार युक्ति बनावै हैं।

बहुरि अनेक ज्वालामालिनी आदि देवी तिनकों मायाका स्वरूप कहि हिंसादिक पाप उपजाय पूजना ठहरावै हैं सो माया तो निंद्य है ताका पूजना कैसें सम्भवै? अर हिंसादिक करना कैसें भला होय? बहुरि गऊ सर्प आदि पशु अभक्ष्य भक्षणादिसहित तिनको पूज्य कहैं।

अग्नि पवन जलादिकको देव ठहराय पूज्य कहैं। वृक्षादिककों युक्ति बनाय पूज्य कहैं। बहुत कहा कहिए, पुरुषलिंगी नाम सहित जे होंय तिनिविषै ब्रह्माकी कल्पना करै अर स्त्रीलिंगी नाम सहित होंय तिनि विषै मायाकी कल्पनाकरि अनेक वस्तुनिका पूजन ठहरावैं हैं। इनके पूजे कहा होगा सो किछू विचार नाहीं। झूठे लौकिक प्रयोजनके कारण ठहराय जगतकों भ्रमावै है। बहुरि वे कहै है—विधाता शरीरकों घड़ै है, बहुरि यम मारै है, मरते समय यम के दूत लेने आवैं हैं, मूए पीछे मार्गविषै बहुत काल लागै है, बहुरि तहा पुण्य पाप का लेखा करै हैं, बहुरि तहाँ दडादिक दे हैं। सो ए कल्पित झूठी युक्ति है। जीव तो समय समय अनन्ते उपजे मरे तिनका युगपत ऐसे होना कैसे सम्भवै ? अर ऐसै माननेका कोई कारण भी भासै नाहीं।

बहुरि मूए पीछै श्राद्धादिककरि वाका भला होना कहैं सो जीवतां तो काहूके पुण्य-पापकरि कोई सुखी दुःखी होता दीसै नाही, मूए पीछै कैसें होइ। ए युक्ति मनुष्यनिकों भ्रमाय अपने लोभ साधनेके अर्थि बनाई है। कीडी पतग सिहादिक जीव भी तो उपजैं मरें हैं, उनको तो प्रलय के जीव ठहरावैं। सो जैसे मनुष्यादिकके जन्म मरण होते देखिए है, तैसे ही उनके होते देखिए है। झूठी कल्पना किए कहा सिद्धि है ? बहुरि वे शास्त्रनिविषै कथादिक निरूपै हैं तहाँ विचार किए विरुद्ध भासै।

यज्ञमें पशुहिंसा का प्रतिषेध

बहुरि यज्ञादिक करना धर्म ठहरावै हैं। सो तहाँ बड़े जीव तिनि का होम करै हैं, अग्न्यादिकका महा आरम्भ करै हैं,तहाँ जीवघात हो

है सो उनहीके शास्त्रविषैं वा लोकविषै हिंसाका निषेध है सो ऐसे निर्दय हैं किछू गिनै नाहीं। अर कहै—"यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः" ए यज्ञ ही के अर्थि पशु बनाए हैं। तहाँ घात करने का दोष नाहीं। बहुरि मेघादिकका होना, शत्रु आदिका विनशना इत्यादि फल दिखाय अपने लोभके अर्थि राजादिकनिकों भ्रमावै। सो कोई विषतैं जीवना कहै सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। तैसें हिंसा किए धर्म अर कार्यसिद्ध कहना प्रत्यक्ष विरुद्ध है। परन्तु जिनकी हिंसा करनी कही, तिनकी तो किछू शक्ति नाहीं, उनकी काहूकों पीर नाही। जो किसी शक्तिवान् वा इष्ट का होम करना ठहराया होता तो ठीक पडता। बहुरि पाप का भय नाही तातैं पापी दुर्बलके घातक होय अपने लोभके अर्थि अपना वा अन्यका बुरा करनेविषै तत्पर भए हैं।

बहुरि ते मोक्षमार्ग भक्तियोग अर ज्ञानयोग करि दोय प्रकार प्ररूपे हैं। अब भक्तियोग करि मोक्षमार्ग कहैं ताका स्वरूप कहिये हैं :—

भक्तियोग मीमांसा

तहां भक्ति निर्गुण सगुण भेदकरि दोय प्रकार कहै हैं। तहाँ अद्वैत परब्रह्म की भक्ति करनी सो निर्गुणभक्ति है। सो ऐसें करै हैं—तुम निराकार हो, निरजन हो, मन बचन के अगोचर हो, अपार हो, सर्वव्यापी हो, एक हो, सर्वके प्रतिपालक हो, अधमउधारण हो, सर्व के कर्ता हर्ता हो इत्यादि विशेषणनिकरि गुण गावे हैं। सो इन विषैं केई तो निराकारादि विशेषण हैं सो अभावरूप हैं तिनकों सर्वथा माने अभाव ही भासै। जातैं आकारादि बिना वस्तु कैसें होई। बहुरि

केई सर्वव्यापी आदि विशेषण असम्भवी हैं सो तिनिका असम्भवपना पूर्वै दिखाया ही है । बहुरि ऐसा कहैं जो जीव बुद्धिकरि मैं तिहारा दास हूँ, शास्त्रदृष्टिकरि तिहारा अंश हूँ, तत्त्वबुद्धिकरि 'तू ही मैं हूँ' सो ए तीनों ही भ्रम हैं। यहु भक्तिकरनहारा चेतन है कि जड़ है। जो चेतन है तो यहु चेतना ब्रह्मकी है कि इसहीको है। जो ब्रह्मकी है तो मैं दास हूँ ऐसा मानना तो चेतनाहीके हो है सो चेतना ब्रह्मका स्वभाव ठहरचा अर स्वभाव स्वभावीकै तादात्म्यसम्बन्ध है। तहा दास अर स्वामी का सम्बन्ध कैसें बनै ? दास स्वामी का सम्बन्ध तो भिन्न पदार्थ होय तब ही बनै। बहुरि जो यहु चेतना इसहीकी है तो यहु अपनो चेतनाका धनी जुदा पदार्थ ठहरचा तो मैं अंश हूँ वा 'जो तू है सो मैं हूँ' ऐसा कहना झूंठा भया। बहुरि जो भक्ति करणहारा जड़ है तो जडकै बुद्धिका होना असम्भव है ऐसी बुद्धि कैसे भई। तातै 'मैं दास हू' ऐसा कहना तो तब ही बनै जब जुदे-जुदे पदार्थ होंय। अर 'तेरा मैं अंश हूँ' ऐसा कहना बनै ही नाही। जातै 'तू' अर 'मैं' ऐसा तो भिन्न होय तब हो बनै,सो अंश अशी भिन्न कैसें होय ? अशी तो कोई जुदा वस्तु है नाही, अंशनिका समुदाय सो ही अशी है। अर तू है सो मैं हूँ, ऐसा बचन ही विरुद्ध है। एक पदार्थविषें आपो भी मानै अर वाको पर भी मानै सो कैसे सम्भवै ? तातैं भ्रम छोड़ि निर्णय करना। बहुरि केई नाम ही जपै हैं सो जाका नाम जपें ताका स्वरूप पहिचाने बिना केवल नामही का जपना कैसें कार्यकारी होय ? जो तू कहेगा, नामहीका अतिशय है, तो जो नाम ईश्वरका है सो ही नाम किसी पापी पुरुषका धरचा, तहाँ दोऊनिका नाम उच्चारणविषै

फलकी समानता होय सो कैसें बनै। तातैं स्वरूपका निर्णयकरि पीछें भक्ति करने योग्य होय ताकी भक्ति करनी। ऐसें निर्गुणभक्तिका स्वरूप दिखाया।

बहुरि जहां काम क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिका वर्णनकरि स्तुत्यादि करिए ताकों सगुणभक्ति कहै हैं। तहां सगुणभक्तिविषै लौकिक शृङ्गार वर्णन जैसें नायक नायिकाका करिए तैसें ठाकुरठकुरानीका वर्णन करै हैं। स्वकीया परकीया स्त्रीसम्बन्धी संयोगवियोगरूप सर्वव्यवहार तहां निरूपै है। बहुरि स्नान करती स्त्रीनिका वस्त्र चुरावना, दधि लूटना स्त्रीनिके पगां पड़ना, स्त्रीनिके आगै नाचना इत्यादि जिन कार्यनिकों ससारी जीव भी करते लज्जित होंय तिनि कार्यनिका करना ठहरावै हैं। सो ऐसा कार्य अतिकाम पीड़ित भएही बनै। बहुरि युद्धादिक किए कहैं तो ए क्रोध के कार्य है। अपनी महिमा दिखावने के अर्थि उपाय किए कहै सो ए मान के कार्य है। अनेक छल किए कहैं सो मायाके कार्य है। विषय सामग्री प्राप्तिके अर्थि यत्न किए कहैं सो ए लोभके कार्य हैं। कौतूहलादिक किए कहै सो हास्यादिकके कार्य हैं। ऐसे ए कार्य क्रोधादिकरि युक्त भए ही बनै। या प्रकार काम क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिको प्रगटकरि कहैं, हम स्तुति करै हैं। सो काम क्रोधादिके कार्य ही स्तुतियोग्य भए तो निंद्य कौन ठहरेंगे। जिनकी लोकविषें, शास्त्रविषै अत्यन्त निन्दा पाइए तिनि कार्यनिका वर्णनकरि स्तुति करना तो हस्तचुगलकासा कार्य भया। हम पूछे हैं– कोऊ किसीका नाम तो कहै नाहीं अर ऐसे कार्यनिहीका निरूपण करि कहैं कि किसीनै ऐसे कार्य किए हैं,तब तुम वाकों भला जानो कि

बुरा जानो। जो भला जानो तो पापी भले भए, बुरा कौन रह्या। बुरे जानो तो ऐसे कार्य कोई करो सो ही बुरा भया। पक्षपात रहित न्याय करो। जो पक्षपातकरि कहोगे, ठाकुरका ऐसा वर्णन करना भी स्तुति है तो ठाकुर ऐसे कार्य किस अर्थि किए। ऐसे निंद्यकार्य करनेमें कहा सिद्धी भई? कहोगे, प्रवृत्ति चलावनेके अर्थि किए तो परस्त्री सेवन आदि निंद्यकार्यनिकी प्रवृत्ति चलावनेमें आपकै वा अन्यकै कहा नफा भया। तातै ठाकुरकै ऐसा कार्य करना सम्भव नाहीं। बहुरि जो ठाकुर कार्य न किए तुम ही कहो हो, तो जामें दोष न था ताको दोष लगाया, तातै ऐसा वर्णन करना तो निंदा है, स्तुति नाही। बहुरि स्तुति करतै जिन गुणनिका वर्णन करिए तिस रूप ही परिणाम होय वा तिनही विषै अनुराग आवै। सो काम क्रोधादि कार्यनिका वर्णन करता आप भी कामक्रोधादिरूप होय अथवा कामक्रोधादि विषै अनुरागी होय तो ऐसे भाव तो भले नाही। जो कहोगे, भक्त ऐसा भाव न करैं है तो परिणाम भए बिना वर्णन कैसे किया। तिनका अनुराग भए बिना भक्ति कैसें करी। सो ए भाव ही भले होंय तो ब्रह्मचर्यको वा क्षमादिकको भले काहेकों कहिए। इनके तो परस्पर प्रतिपक्षीपना है। बहुरि सगुणभक्ति करने के अर्थि राम कृष्णादिकको मूर्ति भी शृंगारादि किए वक्रत्वादिसहित स्त्री आदि संग लिए बनावै हैं, जाकों देखते ही कामक्रोधादि भाव प्रगट होय आवै अर महादेवके लिंगहीका आकार बनावैं हैं। देखो विडम्बना, जाका नाम लिए लाज आवै, जगत् जिसको ढाँक्या राखै ताके आकारका पूजन करावैं है। कहा अन्य अंग बाके न थे?

परन्तु घनी विडम्बना ऐसे ही किए प्रगट होय। बहुरि सगुणभक्तिके अर्थि नाना प्रकार विषयसामग्री भेली करें। बहुरि नाम तो ठाकुरका करै अर तिनिकों आप भोगवै। भोजनादि बनावै बहुरि ठाकुरकों भोग लगाया कहै, पीछे आप हो प्रसादकी कल्पनाकरि ताका भक्षणादि करै। सो इहां पूछिये है, प्रथम तो ठाकुरकै क्षुधा तृषा पोड़ा होसी। न होइ तो ऐसी कल्पना कैसे सम्भवै। अर क्षुधादिकरि पीडित होय सो व्याकुल होइ तब ईश्वर दुःखी भया, औरका दुःख कैसें दूरि करै। बहुरि भोजनादि सामग्री आप तो उनके अर्थि अर्पण करी, सो करी, पीछें प्रसाद तो ठाकुर देवै तब होय, आपही का तो किया न होय। जैसे कोऊ राजाको भेंट करि पीछें राजा बक्से तो वाकों ग्रहण करना योग्य अर आप राजा की भेंट करै अर राजा तो किछू कहै नाहीं, आप ही 'राजा मोकूं बकसी' ऐसे कहि वाकों अंगीकार करै तो यहु ख्याल (खेल) भया। तैसे इहाँ भी ऐसें किए भक्ति तो भई नाहीं, हास्य करना भया। बहुरि ठाकुर अर तू दोय हो कि एक हो। दोय हो तो तैंने भेंट करी, पीछै ठाकुर बकसै सो ग्रहण कीजे, आप ही तैं ग्रहण काहेकों करै है। अर तू कहेगा ठाकुरकी तो मूर्ति है तातै मैं ही कल्पना करू हू, तो ठाकुरका करने का कार्य तै ही किया तब तू ही ठाकुर भया। बहुरि जो एक हो तो भेंट करनी, प्रसाद कहना झूंठा भया। एक भए यहु व्यवहार सम्भवै नाहीं तातै भोजनासक्त पुरुषनिकरि ऐसी कल्पना करिए है। बहुरि ठाकुरके अर्थि नृत्य गानादि करावना, शीत ग्रीष्म बसंत आदि ऋतुनिविषै संसारीनिकै सम्भवती ऐसी विषय सामग्री भेली करनी इत्यादि कार्य करै। तहां नाम

तो ठाकुर का लेना अर इन्द्रियनिके विषय अपने पोषने सो विषया-सक्त जीवनिकरि ऐसा उपाय किया है। बहुरि जन्म विवाहादिक की वा सोवना जागना इत्यादिककी कल्पना तहां करै है सो जैसे लड़की गुड्डागुड्डीनिका ख्याल बनाय करि कोतूहल करै, तैसें यहु भी कोतूहल करना है। किछू परमार्थरूप गुण है नाहीं। बहुरि लड़के ठाकुरका स्वांग बनाय चेष्टा दिखावें। ताकरि अपने विषय पोषें अर कहैं यहु भी भक्ति है, इत्यादि कहा कहिए। ऐसी अनेक विपरीतता सगुण भक्ति विषें पाईए है। ऐसें दोय प्रकार भक्तिकरि मोक्ष मार्ग कहैं सो ताकों मिथ्या दिखाया।

अब अन्य मत प्ररूपित ज्ञानयोगकरि मोक्षमार्गका स्वरूप बताइये है–

ज्ञानयोग मीमांसा

एक अद्वैत सर्वव्यापी परब्रह्म को जानना ताकों ज्ञान कहै है सो ताका मिथ्यापना तो पूर्वे कह्या ही है। बहुरि आपकों सर्वथा शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मानना, कामक्रोधादिक व शरीरादिकको भ्रम जानना ताकों ज्ञान कहै है सो यहु भ्रम है। आप शुद्ध है तो मोक्षका उपाय काहेकों करै है। आप शुद्धब्रह्म ठहरया तब कर्तव्य कहा रह्या? बहुरि प्रत्यक्ष आपकै काम क्रोधादिक होते देखिए है अर शरीरादिकका सयोग देखिए है सो इनिका अभाव होगा तब होगा, वर्त्तमान विषै इनिका सद्भाव मानना भ्रम कैसे भया? बहुरि कहै है,मोक्षका उपाय करना भी भ्रम है। जैसें जेवरी तो जेवरी ही है ताकों सर्प जानै था सो भ्रम था—भ्रम मेटें जेवरी ही है। तैसे आप तो ब्रह्म ही है. आपको अशुद्ध जानै था सो भ्रम था, भ्रम मेटें आप ब्रह्म ही है। सो ऐसा कहना

मिथ्या है। जो आप शुद्ध होय अर ताको अशुद्ध जानै तो भ्रम अब आप कामक्रोधादिसहित अशुद्ध होय रह्या ताकों अशुद्ध जानै तो भ्रम कैसे होइ। शुद्ध जानै भ्रम होइ सो भूंठा भ्रम-करि आपको शुद्धब्रह्म मानै कहा सिद्धि है। बहुरि तू कहेगा, ए काम क्रोधादिक तो मनके धर्म हैं, ब्रह्मन्यारा है तो तुझकूं पूछिए है—मन तेरा स्वरूप है कि नाहीं। जो है तो काम क्रोधादिक भी तेरे ही भए। अर नाहीं है तो तू ज्ञान स्वरूप है कि जड़ है। जो ज्ञानस्वरूप है तो तेरे तो ज्ञान मन वा इन्द्रिय द्वारा ही होता दीसै है। इनि बिना कोई ज्ञान बतावै तो ताकों जुदा तेरा स्वरूप मानें सो भासता नाहीं। बहुरि 'मन ज्ञाने' धातुतें मन शब्दनिपजै है सो मन तो ज्ञानस्वरूप है। सो यहु ज्ञान किसका है ताकों बताय सो जुदा कोऊ भासै नाहीं। बहुरि जो तू जड़ है तो ज्ञान बिना अपने स्वरूपका विचार कैसें करै है, यहु बनै नाही। बहुरि तू कहै है, ब्रह्मन्यारा है सो वह न्यारा ब्रह्म तू ही है कि और है। जो तू ही है तो तेरे 'मैं ब्रह्म हू' ऐसा मानने वाला जो ज्ञान है सो तो मन स्वरूप ही है, मनतें जुदा नाहीं अर आपा मानना आप ही विषै होय। जाकों न्यारा जानै तिसविषै आपा मान्यो जाय नाहीं। सो मनतें न्यारा ब्रह्म है तो मनरूप ज्ञान ब्रह्मविषै आपा काहेकों मानै है। बहुरि जो ब्रह्म और ही है तो तू ब्रह्मविषें आपा काहेकों मानै तातें भ्रम छोड़ि ऐसा जानि,जैसें स्पर्शनादि इन्द्रिय तो शरीर का स्वरूप है सो जड़ है, याके द्वारि जो जानपनो हो है सो आत्माका स्वरूप है; तैसें ही मन भी सूक्ष्म परमाणूनिका पुञ्ज है सो शरीर हीका अंग है, ताके द्वारि जानपना हो है वा कामक्रोधादि भाव हो हैं सो सर्व

आत्माका स्वरूप है। विशेष इतना—जानपना तो निज स्वभाव है, काम क्रोधादिक उपाधिक भाव है तिसकरि आत्मा अशुद्ध है। जब कालपाय काम क्रोधादि मिटेंगे अर जानपनाकै मन इन्द्रियका आधीन पना मिटेगा, तब केवल ज्ञानस्वरूप आत्मा शुद्ध होगा। ऐसे ही बुद्धि अहंकारादिक भी जानि लेने, जातै मन अर बुद्धयादिक एकार्थ हैं अर अहंकारादिक हैं ते काम क्रोधादिकवत् उपाधिक भाव हैं। इनिकों आपतै भिन्न जानना भ्रम है। इनकों अपने जानि उपाधिक भावनिके अभाव करनेका उद्यम करना योग्य है। बहुरि जिनितै इनिका अभाव न होय सकै अर अपनी महतता चाहैं ते जीव इनिकों अपने न ठहराय स्वच्छन्द प्रवर्त्तै हैं। काम क्रोधादिक भावनिको बधाय विषय-सामग्रीनिविषै वा हिंसादिकार्यनिविषै तत्पर हो है। बहुरि अहंकारादिक का त्यागकों भी अन्यथा मानै है। सर्वकों परब्रह्म मानना, कहीं आपो न माननों ताको अहंकारका त्याग बतावै सो मिथ्या है जातैं कोई आप है कि नाहीं। जो है तो आपविषै आपो कैसे न मानिए, जो आप नाहीं है तो सर्वको ब्रह्म कौन मानै है? तातै शरीरादि पर विषै अहंबुद्धि न करनी, तहां करता न होना सो अहंकार का त्याग है। आप विषैं अहंबुद्धि करनेका दोष नाहीं। बहुरि सर्वको समान जानना, कोई विषै भेद न करना ताकों रागद्वेषका त्याग बतावै हैं सो भी मिथ्या है। जातै सर्व पदार्थ समान हैं नाहीं। कोई चेतन है कोई अचेतन है, कोई कैसा है कोई कैसा है तिनिको समान कैसें मानिए? तातैं परद्रव्यनिको इष्ट अनिष्ट न मानना सो रागद्वेषका त्याग है। पदार्थनिका विशेष जानने में तो किछू दोष नाहीं। ऐसें

ही अन्य मोक्षमार्गरूप भावनिके अन्यथा कल्पना करें हैं। बहुरि ऐसी कल्पनाकरि कुशील सेवे हैं, अभक्ष्य भखे हैं, वर्णादि भेद नाहीं करें हैं, हीन क्रिया आचरें हैं इत्यादि विपरीतरूप प्रवर्त्ते हैं। जब कोऊ पूछै तब कहै हैं, ए तो शरीरका धर्म है अथवा जैसी प्रालब्धि है तैसें हो है अथवा जैसें ईश्वरकी इच्छा हो है तैसें हो है, हमको तो विकल्प न करना। सो देखो झूंठ, आप जानि जानि प्रवर्त्ते ताकों तो शरीर का धर्म बतावे। आप उद्यमी होय कार्य करै ताकों प्रालब्धि कहै। आप इच्छाकरि सेवे ताकों ईश्वरकी इच्छा बतावे। विकल्प करै अर कहै हमको तो विकल्प न करना। सो धर्मका आश्रय लेय विषयकषाय सेवने, तातें ऐसी झूंठी युक्ति बनावै है। जो अपने परिणाम किछू भी न मिलावै तो हम याका कर्त्तव्य न मानें। जैसे आप ध्यान धरे तिष्ठै है, कोऊ अपने ऊपरि वस्त्र गेरि गया तहां आप किछू सुखी न भया, तहां तो ताका कर्त्तव्य नाही सो सांच अर आप वस्त्रकों अंगीकारकरि पहरै, अपनी शीतादिक वेदना मिटाय सुखी होय, तहाँ जो अपना कर्त्तव्य माने नाही सो कैसे सभवै। बहुरि कुशील सेवना अभक्ष्य भखणा इत्यादि कार्य तो परिणाम मिले बिना होते ही नाही। तहाँ अपना कर्त्तव्य कैसें न मानिए। तातें जो काम क्रोधादिका अभाव ही भया होय तो तहाँ किसी क्रियानिविषैं प्रवृत्ति सम्भवै ही नाही। अर जो कामक्रोधादि पाईए है तो जैसें ए भाव थोरे होंय तैसें प्रवृत्ति करनी। स्वछन्द होय इनिको बधावना युक्त नाहीं।

पवनादि साधन द्वारा ज्ञानी होने का प्रतिषेध

बहुरि कई जीव पवनादिका साधनकरि आपकों ज्ञानी मानै हैं तहाँ

इडा पिंगला सुषुम्णारूप नासिकाद्वारकरि पवन निकसै, तहां वर्णादिक भेदनितैं पवन हीकौं पृथ्वी तत्त्वादिकरूप कल्पना करै हैं। ताका विज्ञानकरि किछू साधनतैं निमित्तका ज्ञान होय तातै जगतकौं इष्ट अनिष्ट बतावै, आप मह'त कहावै सो यह तो लौकिक कार्य है, किछू मोक्षमार्ग नाहीं। जीवनिको इष्ट अनिष्ट बताय उनके राग द्वेष बधावै अर अपने मान लोभादिक निपजावै, यामें कहा सिद्धि है? बहुरि प्राणायामादिका साधन करै, पवनको चढाय समाधि लगाई कहै, सो यह तो जैसें नट साधनतै हस्तादिक करि क्रिया करै तैसें यहाँ भी साधनतै पवनकरि क्रिया करी। हस्तादिक अर पवन ए तो शरीर हो के अग हैं। इनिके साधनतै आत्महित कैसे सधै? बहुरि तू कहेगा-तहाँ मनका विकल्प मिटै है, सुख उपजै है, यमके वशीभूतपना न हो है सो यहु मिथ्या है। जैसै निद्राविषै चेतनाकी प्रवृत्ति मिट है तैसै पवन साधनतै यहां चेतनाकी प्रवृत्ति मिटै है। तहाँ मनको रोकि राख्या है, किछू वासना तो मिटी नाही। तात मनका विकल्प मिट्या न कहिए अर चेतना बिना सुख कौन भोगवै है तातै सुख उपज्या न कहिए। अर इस साधनवाले तो इस क्षेत्रविषै भए हैं तिन विषै कोई अमर दीसता नाहीं। अग्नि लगाए ताका भी मरण होता दीसै है तातै यमके वशीभूत नाही, यहु झूठी कल्पना है। बहुरि जहां साधन विषै किछू चेतना रहै अर तहां साधनतै शब्द सुनै, ताकौं अनहद नाद बतावै। सो जैसै वीणादिकके शब्द सुननेतै सुख मानना तैसे तिसके सुननेतैं सुख मानना है। इहां तो विषयपोषण भया, परमार्थसो किछू नाहीं। बहुरि पवन का निकसने पैठने विषैं "सोहं" ऐसे

शब्दकी कल्पनाकरि ताको 'अजपा जाप' कहै हैं। सो जैसें तीतरके शब्दविषें 'तू ही' शब्दकी कल्पना करै है, किछू तीतर अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाहीं। तैसें यहाँ 'सोहं' शब्दकी कल्पना है, किछू पवन अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाहीं। बहुरि शब्दके जपने सुनने ही तें तो किछू फलप्राप्ति नाहीं, अर्थ अवधारे फलप्राप्ति हो है। सो 'सोहं' शब्दका तो अर्थ यहु है 'सो हूँ छू', यहाँ ऐसी अपेक्षा चाहिए है, 'सो' कौन ? तब ताका निर्णय किया चाहिए। जातैं तत् शब्दकै अर यत् शब्दकै नित्य सम्बन्ध है। तातैं वस्तुका निर्णयकरि ताविषैं अहंबुद्धि धारने विषैं 'सोहं' शब्द बनै। तहाँ भी आपकों आप अनुभवै, तहाँ तो 'सोहं' शब्द सम्भवै नाहीं। परकों अपने स्वरूप बतावनेविषैं 'सोहं' शब्द सम्भवै है। जैसें पुरुष आपकों आप जानै, तहाँ 'सो हूं छूं' ऐसा काहेकों विचारै। कोई अन्य जीव आपकों न पहचानता होय अर कोई अपना लक्षण न पहचानता होय, तब वाक कहिए '**जो ऐसा है सो मैं हूँ**' तैसे ही यहा जानना। बहुरि केई ललाट भोंह अर नासिकाके अग्रके देखनेका साधनकरि त्रिकुटी आदि का ध्यान भया कहि परमार्थ मानै सो नेत्रकी पूतरी फिरे मूर्त्तीक वस्तु देखी, यामें कहा सिद्धि है। बहुरि ऐसे साधननितैं किंचित् अतीत अनागतादिकका ज्ञान होय वा वचनसिद्धि होय वा पृथ्वी आकाशादि-विषैं गमनादिककी शक्ति होय वा शरीरविषैं आरोग्यतादिक होय तो ए तो सर्व लौकिक कार्य हैं। देवादिककै स्वयमेव ही ऐसी शक्ति पाइए है। इनितैं किछू अपना भला तो होता नाहीं,भला तो विषयकषायकी

वासना मिटें होय। सो ए तो विषयकषायपोषनेके उपाय हैं। तातैं ए सर्व साधन किछू हितकारी हैं नाहीं। इनिविषैं कष्ट बहुत मरणादि पर्यन्त होय अर हित सधै नाहीं। तातैं ज्ञानी वृथा ऐसा खेद करै नाहीं। कषायी जीव ही ऐसे साधनविषैं लागै हैं। बहुरि काहूकों बहुत तपश्चरणादिककरि मोक्षका साधन कठिन बतावैं हैं। काहूकों सुगमपनें ही मोक्ष भया कहैं। उद्धवादिककों परमभक्त कहैं, तिनको तो तपका उपदेश दिया कहैं,वेश्यादिकके बिना परिणाम (केवल) नामादिकहीतैं तरना बतावैं,किछू थल है नाहीं। ऐसें मोक्षमार्गकों अन्यथा प्ररूपै हैं।

अन्यमत कल्पित मोक्षमार्ग की मीमांसा

बहुरि मोक्षस्वरूपकों भी अन्यथा प्ररूपै हैं। तहां मोक्ष अनेक प्रकार बतावै हैं। एक तो मोक्ष ऐसा कहै हैं—जो वैकुण्ठधामविषैं ठाकुर ठकुराणीसहित नाना भोगविलास करै हैं तहां जाय प्राप्त होय अर तिनिकी टहल किया करै सो मोक्ष है। सो यहु तो विरुद्ध है। प्रथम तो ठाकुर भी संसारीवत् विषयाशक्त होय रह्या है। तो जैसा राजादिक है तैसा ही ठाकुर भया। बहुरि अन्य पासि टहल करावनी भई तब ठाकुरकै पराधीनपना भया। बहुरि जो यहु मोक्षकों पाय तहाँ टहल किया करै तो जैसें राजाकी चाकरी करनी तैसें यहु भी चाकरी भई, तहां पराधीन भए सुख कैसें होय? तातैं यहु भी बनैं नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहैं हैं—ईश्वरके समान आप हो है सो भी मिथ्या है। जो उसके समान और भी जुदा होय है तो बहुत ईश्वर भए। लोकका कर्त्ता हर्त्ता कौन ठहरैगा? सबही ठपरैं तो भिन्न इच्छा भए परस्पर विरुद्ध होय। एक ही है तो समानता न भई। न्यून

है ताकै नीचापनेकरि उच्च होने की आकुलता रही, तब सुखी कैसैं होय ? जैसें छोटा राजाकै बड़ा राजा संसारविषें हो है तैसें छोटा बड़ा ईश्वर मुक्तिविषें भी भया सो बनें नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै हैं—जो बैकुण्ठविषें दीपककीसी एक ज्योति है, तहाँ ज्योतिविषें ज्योति जाय मिलै है सो यहु भी मिथ्या है। दीपककी ज्योति तो मूर्तीक अचेतन है, ऐसी ज्योति तहाँ कैसें सम्भवै ? बहुरि ज्योतिमें ज्योति मिलें यहु ज्योति रहै है कि विनशि जाय है। जो रहै है तो ज्योति बधती जायसी, तब ज्योतिविषें हीनाधिकपनों होसी। अर विनशि जाय है तो आपकी सत्ता नाश होय ऐसा कार्य उपादेय कैसें मानिए। तातें ऐसें भी बनें नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहैं हैं—जो आत्मा ब्रह्म ही है, मायाका आवरण मिटे मुक्ति ही है सो यहु भी मिथ्या है। यहु माया का आवरणसहित था तब ब्रह्मस्यों एक था कि जुदा था। जो एक था तो ब्रह्म ही मायारूप भया अर जुदा था तो माया दूरि भए ब्रह्मविषें मिलै है तब याका अस्तित्व रहै है कि नाहीं। जो रहै है तो सर्वज्ञकों तो याका अस्तित्व जुदा भासै, तब संयोग होनेतें मिल्या कहो परन्तु परमार्थतें तो मिल्या नाहीं। बहुरि अस्तित्व नाहीं रहै है तो आपका अभाव होना कौन चाहै, तातें यहु भी न बनै।

बहुरि एक प्रकार मोक्षकों ऐसा भी केई कहै हैं जो बुद्धिआदिकका नाश भए मोक्ष हो है। सो शरीर के अंगभूत मन इन्द्रिय तिनके आधीन ज्ञान न रह्या। काम क्रोधादिक दूरि भए ऐसें कहना तो बनै है अर तहाँ चेतनताका भी अभाव भया मानिए तो पाषाणादि समान

जड़ अवस्थाकों कैसें भली मानिए । बहुरि भला साधन करतें तो जानपना बधै है, बहुत भला साधन किए जानपनेका अभाव होना कैसें मानिए ? बहुरि लोकविषें ज्ञानकी महंततातें जड़पनाकी तो महंतता नाहीं तातें यहु बनै नाहीं । ऐसें ही अनेक प्रकार कल्पनाकरि मोक्षकों बतावैं सो किछू यथार्थ तो जानैं नाहीं, संसार अवस्थाकी मुक्ति अवस्थाविषें कल्पनाकरि अपनी इच्छा अनुसारि बकै हैं । या प्रकार वेदांतादि मतनिविषें अन्यथा निरूपण करें हैं।

मुस्लिममत सम्बन्धी विचार

बहुरि ऐसें ही मुसलमानोंके मतविषै अन्यथा निरूपण करै हैं। जैसें वे ब्रह्मकों सर्वव्यापी, एक, निरंजन, सर्वका कर्त्ता हर्त्ता मानै हैं तैसें ए खुदाकों मानै हैं । बहुरि जैसे वे अवतार भए मानै है तैसें ए पैगम्बर भए मानै हैं। जैसें वे पुण्य पापका लेखा लेना, यथायोग्य दण्डादिक देना ठहरावें है तैसें ए खुदाकै ठहरावें हैं। बहुरि जैसे वे गऊ आदिकों पूज्य कहै हैं तैसें ए सूअर आदिकों कहै हैं, सब तिर्यंच आदिक हैं। बहुरि जैसे वे ईश्वरकी भक्तितै मुक्ति कहै हैं तैसें ए खुदा की भक्तितै कहै हैं। बहुरि जैसे वे कहीं दया पोषैं कहीं हिंसा पोषैं, तैसे ए भी कही मेहर करनी पोषैं कही कतल करना पोषै । बहुरि जैसे वे कहीं तपश्चरण करना पोषै कहीं विषयसेवन पोषैं तैसें ही ए भी पोषै हैं। बहुरि जैसें वे कहीं मांस मदिरा शिकार आदिका निषेध करें, कहीं उत्तम पुरुषोंकरि तिनिका अंगीकार करना बतावें हैं तैसें ए भी तिनिका निषेध वा अंगीकार करना बतावैंहैं। ऐसें अनेक प्रकार करि समानता पाइए है । यद्यपि नामादिक और और हैं तथापि

प्रयोजनभूत भवकी एकता पाइए है। बहुरि ईश्वर खुदा आदि मूल-श्रद्धानकी तो एकता है अर उत्तर श्रद्धानविषें घने ही विशेष हैं। तहाँ उनके भी ए विपरीतरूप विषयकषायके पोषक, हिंसादिपापके पोषक, प्रत्यक्षादि प्रमाणतें विरुद्ध निरूपण करें हैं। तातें मुसलमानों का मत महाविपरीतरूप जानना। या प्रकार इस क्षेत्र कालविषें जिनिमतनिको प्रचुर प्रवृत्ति है ताका मिथ्यापना प्रगट किया।

इहां कोऊ कहै जो ए मत मिथ्या है तो बड़े राजादिक वा बड़े विद्यावान् इनि मतनिविषें कैसें प्रवर्तें हैं ?

ताका समाधान—जीवनिकै मिथ्यावासना अनादितें है सो इनिविषे मिथ्यात्वहीका पोषण है। बहुरि जीवनिकै विषयकषायरूप कार्यनिकी चाह वर्तें है सो इनि विषें विषयकषायरूप कार्यनिहीका पोषण है। बहुरि राजादिकनिका वा विद्यावानोंका ऐसे धर्मविषें विषयकषायरूप प्रयोजनसिद्धि हो है। बहुरि जीव तो लोकनिंद्यपना कों भी उलंघि, पाप भी जानि जिन कार्यनिकों किया चाहै तिनि कार्यनिको करते धर्म बतावें तो ऐसे धर्मविषें कौन न लागें। तातें इनि धर्मनिकी विशेष प्रवृत्ति है। बहुरि कदाचित् तू कहैगा—इनि धर्मनिविषें विरागता दया इत्यादि भी तो कहै हैं, सो जैसें झोल दिये बिना खोटा द्रव्य चालै नाहीं, तैसें सांच मिलाए बिना झूंठ चालै नाहीं परन्तु सर्वके हित प्रयोजन विषैं विषयकषायका ही पोषण किया है। जैसें गीताविषें उपदेश देय राडि (युद्ध) करावनेका प्रयोजन प्रगट किया, वेदान्तविषै शुद्ध निरूपणकरि स्वच्छन्द होनेका प्रयोजन दिखाया। ऐसैं ही अन्य

जानने। बहुरि यहु काल तो निकृष्टहै सो इसविषें तो निकृष्ट धर्महीकी प्रवृत्ति विशेष होय है। देखो इस कालविषै मुसलमान बहुत प्रधान हो गए, हिन्दू घटि गए। हिन्दूनिविषें और बधि गए, जैनी घटि गए। सो यहु कालका दोष है, ऐसें इहाँ अबार मिथ्याधर्मकी प्रवृत्ति बहुत पाइए है। अब पंडितपनाके बलतें कल्पितयुक्तिकरि नाना मत स्थापित भए हैं तिनिविषें जे तत्वादिक मानिए हैं तिनका निरूपण कीजिए है:—

सांख्यमत निराकरण

तहाँ सांख्यमतविषें पच्चीस तत्त्व माने हैं * सो कहिए हैं सत्त्व रज: तम: ए तीन गुण कहैं हैं। तहाँ सत्त्वकरि प्रसाद हो है, रजोगुणकरि चित्तकी चचलता हो है, तमोगुणकरि मूढ़ता हो है, इत्यादि लक्षण कहैं हैं। इनिरूप अवस्था ताका नाम प्रकृति है। बहुरि तिसतै बुद्धि निपजै है, याहीका नाम महतत्त्व है। बहुरि तिसतैं अहंकार निपजै है। बहुरि तिसतें सोलहमात्रा हो हैं। तहां पांच तो ज्ञानइन्द्रिय हो हैं— स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र। बहुरि एक मन हो है। बहुरि पाँच कर्मइन्द्रिय हो हैं—बचन, चरन, हस्त, लिंग, पायु। बहुरि पांच तन्मात्रा हो हैं—रूप, रस, गंध स्पर्श, शब्द। बहुरि रूपतें अग्नि, रसतै जल, गंधतै पृथ्वी, स्पर्शतें पवन, शब्दतें आकाश, ऐसें भया कहै है। ऐसें चौईस तत्त्व तो प्रकृतिस्वरूप हैं। इनितै भिन्न निर्गुण कर्त्ता भोक्ता एक पुरुष है। ऐसें पच्चीस तत्त्व

* प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशक:।
तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्य: पंचभूतानि ॥ —सांख्य का० १२

कहे हैं सो ए कल्पित हैं जातैं राजसादिक गुण आश्रय बिना कैसें होंय। इनका आश्रय तो चेतनद्रव्य ही सम्भवै है। बहुरि इनितैं बुद्धि भई कहैं सो बुद्धि नाम तो ज्ञान का है। सो ज्ञानगुणका धारी पदार्थ-विषैं ए होते देखिए हैं। इनितैं ज्ञान भया कैसें मानिए। कोई कहै— बुद्धि जुदी है,ज्ञान जुदा है तो मन तो आगैं षोड़शमात्राविषैं कह्या अब ज्ञान जुदा कहोगे तो बुद्धि किसका नाम ठहरेगा। बहुरि तिसतैं अहंकार भया कह्या सो परवस्तु विषै 'मैं करूं हूं' ऐसा माननेका नाम अहंकार है। साक्षीभूत जाननें करि तो अहंकार होता नाहीं तो ज्ञानकरि उपज्या कैसें कहिए है ? बहुरि अहंकारकरि षोड़श मात्रा कहीं, तिनि विषें पांच ज्ञानइन्द्रिय कहीं सो शरीरविषैं नेत्रादि आकाररूप द्रव्येन्द्रिय हैं सो तो पृथ्वी आदिवत् जड़ देखिए है अर वर्णादिकके जाननेरूप भावइन्द्रिय हैं सो ज्ञानरूप हैं,अहंकारका कहा प्रयोजन है। अहंकार बुद्धिरहित कोऊ काहूकों देखै है। तहां अहंकारकरि निपजना कैसें सम्भवै? बहुरि मन कह्या सो इन्द्रियवत् ही मन है। जातैं द्रव्य-मन शरीररूप है, भावमन ज्ञानरूप हैं। बहुरि पांच कर्मइन्द्रिय कहैं सो ए तो शरीर के अंग हैं, मूर्तीक हैं। अहंकार अमूर्तीक तैं इनिका उपजना कैसें मानिए। बहुरि कर्मइन्द्रिय पांच ही तो नाहीं। शरीरके सर्व अंग कार्यकारी हैं। बहुरि वर्णन तो सर्व जीवाश्रित है, मनुष्याश्रित ही तो नाहीं, तातैं सूंडि पूंछ इत्यादि अंग भी कर्मइन्द्रिय हैं। पांच हीकी संख्या काहेकों कहिए है। बहुरि स्पर्शादिक पांच तन्मात्रा कहीं सो रूपादि किछू जुदे वस्तु नाहीं, ए तो परमाणूनिस्यौं तन्मय गुण हैं। ए जुदे कैसें निपजै ? बहुरि अहंकार तो अमूर्तीक जीवका

परिणाम है। तातैं ए मूर्तीकगुण कैसें निपजे मानिए। बहुरि इनि पांचनितें अग्नि आदि निपजे कहैं सो प्रत्यक्ष झूंठ है। रूपादिक अग्न्यादिकके तो सहभूत गुण गुणो सम्बन्ध है। कहने मात्र भिन्न हैं, वस्तुविषैं भेद नाहीं। किसी प्रकार कोऊ भिन्न होता भासै नाहीं, कहने मात्रकरि भेद उपजाइए है। तातैं रूपादि करि अग्न्यादि निपजे कैसें कहिए। बहुरि कहनेविषैं भो गुणीविषै गुण हैं, गुणतैं गुणी निपज्या कैसें मानिए ?

बहुरि इनितैं भिन्न एक पुरुष कहै हैं सो वाका स्वरूप अवक्तव्य कहि प्रत्युत्तर न करै तो कहा बूझै नाहीं। कैसा है, कहां है, कैसे कर्त्ता हर्त्ता है सो बताय। जो बतावेगा ताहीमे विचार किएं अन्यथापनौं भासेगा। ऐसैं सांख्यमत करि कल्पित तत्त्व मिथ्या जाननें।

बहुरि पुरुषकों प्रकृतितैं भिन्न जाननेका नाम मोक्षमार्ग कहैं हैं। सो प्रथम तो प्रकृति अर पुरुष कोई है ही नाहीं। बहुरि केवल जाननें ही तैं तो सिद्धि होती नाही। जानिकरि रागादिक मिटाए सिद्धि होय। सो ऐसैं जाने किछू रागादिक घटैं नाहीं। प्रकृतिका कर्त्तव्य मानै, आप अकर्त्ता रहै, तब काहेकों आप रागादि घटावै। तातैं यहु मोक्षमार्ग नाहीं है।

बहुरि प्रकृति, पुरुषका जुदा होना मोक्ष कहैं हैं। सो पच्चीस तत्त्वनिविषैं चौईस तत्त्व तो प्रकृति सम्बन्धी कहे, एक पुरुष भिन्न कह्या। सो ए तो जुदे हैं ही अर जीव कोई पदार्थ पच्चीस तत्त्वनि-विषैं कह्या हो नाहीं। अर पुरुष ही कों प्रकृति संयोग भए जीव संज्ञा हो है तो पुरुष न्यारे न्यारे प्रकृति सहित हैं, पीछैं साधनकरि

कोई पुरुष प्रकृति रहित हो है, ऐसा सिद्ध भया-एक पुरुष न ठहरया।

बहुरि प्रकृति पुरुषकी भूलि है कि कोई व्यंतरीवत् जुदी ही है जो जीवकों आनि लागै है। जो याको भूलि है तो प्रकृतितैं इन्द्रियादिक वा स्पर्शादिक तत्त्व उपजे कैसें मानिए? अर जुदी है तो वह भी एक वस्तु है, सर्व कर्त्तव्य वाका ठहरया। पुरुषका किछू कर्त्तव्य ही रह्या नाहीं,तब काहेकों उपदेश दीजिए है। ऐसैं यहु मोक्ष मानना मिथ्या है। बहुरि तहाँ प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम ए तीन प्रमाण कहै हैं सो तिनिका सत्य असत्यका निर्णय जैनके न्याय ग्रन्थनितैं जानना।

बहुरि इस सांख्यमतविषैं कोई ईश्वरकों न मानै हैं। केई एक पुरुषकों ईश्वर मानै हैं। केई शिवकों, केई नारायणकों देव मानै हैं। अपनी इच्छा अनुसारि कल्पना करै हैं, किछू निश्चय है नाहीं। बहुरि इस मतविषैं केई जटा धारै हैं, केई चोटी राखैं हैं, केई मुण्डित हो हैं, केई काथे वस्त्र पहरैं हैं, इत्यादि अनेक प्रकार भेष धारि तत्त्वज्ञानका आश्रयकरि महंत कुहावैं हैं। ऐसे सांख्यमतका निरूपण किया।

नैयायिक मत निराकरण

बहुरि शिवमतविषैं दोय भेद हैं--नैयायिक, वैशेषिक। तहाँ नैयायिकमत विषै सोलह तत्त्व कहै हैं। प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान। तहां प्रमाण च्यारि प्रकार कहै हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमा। बहुरि आत्मा, देह, अर्थ, बुद्धि इत्यादि प्रमेय कहै हैं। बहुरि 'यहु कहा है' ताका नाम संशय है। जाके अर्थि प्रवृत्ति होय सो प्रयोजन है। जाकों वादी प्रतिवादी मानैं

सो दृष्टांत है। दृष्टांतकरि जाकों ठहराइए सो सिद्धान्त है। बहुरि अनुमानके प्रतिज्ञा आदि पंच अंग ते अवयव हैं। संशय दूरि भए किसी विचारतें ठीक होय सो तर्क है। पीछें प्रतीतिरूप जानना सो निर्णय है। आचार्य शिष्यकै पक्ष प्रतिपक्षकरि अभ्यास सो वाद है। जाननेकी इच्छारूप कथाविषैं जो छल जाति आदि दूषण होय सो जल्प है। प्रतिपक्ष-रहित वाद सो वितंडा है। सांचे हेतु नाहीं, ते असिद्ध आदि भेद लिए हेत्वाभास है। छललिए बचन सो छल हैं। सांचे दूषण नाही ऐसे दूषणाभास सो जाति है। जाकरि परिवादीका निग्रह होय सो निग्रहस्थान है। या प्रकार संशयादि तत्त्व कहे सो ए तो कोई वस्तुस्वरूप तो तत्त्व हैं नाही। ज्ञानके निर्णय करने को वा वादकरि पांडित्य प्रगट करनेकों कारणभूत विचाररूप तत्त्व कहें सो इनितें परमार्थ कार्य कहा होई ? काम क्रोधादि भावकों मेटि निराकुल होना सो कार्य है। सो तो इहां प्रयोजन किछू दिखाया ही नाहीं। पंडिताई की नाना युक्ति बनाई सो यहु भी एक चातुर्य्य है,तातें ये तत्त्व तत्त्वभूत नाहीं। बहुरि कहोगे इनिकों जानें बिना प्रयोजनभूत तत्त्वनिका निर्णय न करि सकैं, तातैं ए तत्त्व कहे हैं। सो ऐसे परम्परा तो व्याकरणवाले भी कहै हैं। व्याकरण पढ़े अर्थ निर्णय होइ, वा भोजनादिकके अधिकारी भी कहै हैं कि भोजन किएं शरीरकी स्थिरता भए तत्त्व-निर्णय करनेकों समर्थ होंय सो ऐसी युक्ति कार्यकारी नाहीं। बहुरि जो कहोगे,व्याकरण भोजनादिक तो अवश्य तत्त्वज्ञानकों कारण नाहीं, लौकिक कार्य साधनेकों भी कारण हैं, सो जैसें ये हैं, तैसें ही तुम तत्त्व कहे,सो भी लौकिक (कार्य) साधनेकों कारण हो हैं। जैसें इन्द्रियादिक

के जाननेकों प्रत्यक्षादि प्रमाण कहे वा स्थाणु पुरुषादिविषैं संशया-दिकका निरूपण किया । तातैं जिनिकौं जानें अवश्यकाम क्रोधादि दूरि होंय, निराकुलता निपजै,वे ही तत्त्व कार्यकारी हैं। बहुरि कहोगे, जो प्रमेय तत्त्वविषैं आत्मादिकका निर्णय हो है सो कार्यकारी है। सो प्रमेय तो सर्व ही वस्तु हैं । प्रमितिका विषय नाहीं, ऐसा कोई भी नाहीं, तातैं प्रमेय तत्त्व काहेकों कह्या । आत्मा आदि तत्त्व कहने थे । बहुरि आत्मादिकका भी स्वरूप अन्यथा प्ररूपण किया सो पक्षपात-रहित विचार किए भासै है । जैसें आतमाके दोय भेद कहै हैं— परमात्मा,जीवात्मा । तहां परमात्मा कौं सर्वका कर्त्ता बतावैं हैं । तहां ऐसा अनुमान करैं हैं जो यह जगत कर्त्ताकरि निपज्या है, जातैं यह कार्य है । जो कार्य है सो कर्त्ताकरि निपज्या है, जैसें घटादिक । सो यह अनुमानाभास हैं । जातैं ऐसा अनुमानान्तर सम्भवै है । यह जगत सर्व कर्त्ताकरि निपज्या नाहीं जातैं याविषैं कोई अकार्यरूप भी पदार्थ हैं । जो अकार्य हैं सो कर्त्ताकरि निपज्या नाहीं, जैसें सूर्यबिम्बादिक । जातैं अनेक पदार्थनिका समुदायरूप जगत् तिसविषैं कोई पदार्थ कृत्रिम हैं सो मनुष्यादिककरि किए होय हैं, कोई अकृत्रिम हैं सो ताका कर्त्ता नाहीं। यह प्रत्यक्षादि प्रमाणके अगोचर है तातैं ईश्वरकों कर्त्ता मानना मिथ्या है। बहुरि जीवात्माकों प्रति शरीर भिन्न कहैं हैं सो यहु सत्य है परन्तु मुक्त भए पीछैं भी भिन्न ही मानना योग्य है। विशेष पूर्वे कह्या ही है। ऐसें ही अन्य तत्त्वनिको मिथ्या प्ररूपैं हैं। बहुरि प्रमाणादिकका भी स्वरूप अन्यथा कल्पै हैं सो जैनग्रन्थनितैं परीक्षा किए भासै है। ऐसें नैयायिकमतविषैं कहे कल्पित तत्त्व जानने।

वैशेषिकमत निराकरण

बहुरि वैशेषिकमतविषैं छह तत्त्व कहे हैं। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष, समवाय। तहां द्रव्य नवप्रकार-पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन। तहां पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणु भिन्न भिन्न हैं। ते परमाणु नित्य हैं। तिनकरि कार्यरूप पृथ्वी आदि हो है सो अनित्य है। सो ऐसा कहना प्रत्यक्षादितैं विरुद्ध है। ईंधनरूप पृथ्वी आदिके परमाणु अग्निरूप होते देखिए है। अग्निके परमाणु राखरूप पृथ्वी होते देखिए है। जलके परमाणु मुक्ताफल (मोती) रूप पृथ्वी होते देखिए है। बहुरि जो तू कहैगा, वे परमाणु जाते रहै हैं, और हो परमाणु तिनिरूप हो हैं सो प्रत्यक्षकों असत्य ठहरावै है। ऐसी कोई प्रबलयुक्ति कहै तो ऐसैं ही मानैं, परन्तु केवल कहे ही तो ऐसैं ठहरैं नाहीं। तातैं सब परमाणूनिकी एक पुद्गलरूप मूर्त्तीक जाति है सो पृथ्वी आदि अनेक अवस्थारूप परिणमै है। बहुरि इन पृथ्वी आदिकका कहीं जुदा शरीर ठहरावै है, सो मिथ्या ही है। जातैं वाका कोई प्रमाण नाहीं। अर पृथ्वी आदि तो परमाणुपिंड है। इनिका शरीर अन्यत्र, ए अन्यत्र ऐसा सम्भवै नाहीं तातैं यहु मिथ्या है। बहुरि जहां पदार्थ अटकै नाहीं, ऐसी जो पोलि ताकों आकाश कहै हैं। क्षण पल आदिकों काल कहै हैं। सो ए दोन्यों ही अवस्तु हैं। सत्तारूप ए पदार्थ नाहीं। पदार्थनिका क्षेत्रपरिणमनादिकका पूर्वापरविचार करनेके अर्थि इनकी कल्पना कीजिए है। बहुरि दिशा किछू है ही नाहीं। आकाशविषैं खंड कल्पनाकरि दिशा मानिए है। बहुरि आत्मा दोय प्रकार कहै हैं

सो पूर्वें निरूपण किया ही है। बहुरि मन कोई जुदा पदार्थ नाहीं। भावमन तो ज्ञानरूप है सो आत्माका स्वरूप है। द्रव्यमन परमाणूनिका पिंड है सो शरीरका अंग है। ऐसें ए द्रव्य कल्पित जानने। बहुरि गुण चौईस कहै हैं—स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, संख्या, विभाग संयोग, परिणाम, पृथक्त्व, परत्व, अपरत्व बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, धर्म अधर्म, प्रयत्न, संस्कार, द्वेष, स्नेह, गुरुत्व, द्रव्यत्व। सो इनिविषैं स्पर्शादिक गुण तो परमाणुनिविषैं पाइए है। परन्तु पृथ्वीको गन्धवती ही कहनी, जल को शीत स्पर्शवान ही कहना इत्यादि मिथ्या है, जातैं कोई पृथ्वी विषैं गंधकी मुख्यता न भासै है, कोई जल उष्ण देखिए है इत्यादि प्रत्यक्षादितैं विरुद्ध है। बहुरि शब्दकों आकाशका गुण कहैं सो मिथ्या है। शब्द तो भीति इत्यादिस्यों रुकै है, तातैं मूर्तीक है। आकाश अमूर्तीक सर्वव्यापी है। भींतिविषैं आकाश रहै शब्दगुण न प्रवेशकरि सकै, यहु कैसे बनै? बहुरि संख्यादिक हैं सो वस्तुविषैं तो किछू हैं नाहीं, अन्य पदार्थ अपेक्षा अन्य पदार्थके हीनादिक जानने कों अपने ज्ञानविषैं संख्यादिककी कल्पनाकरि विचार कीजिए है। बहुरि बुद्धि आदि हैं, सो आत्माका परिणमन है। तहाँ बुद्धि नाम ज्ञानका है तो आत्माका गुण है ही अर मनका नाम है तो मन तो द्रव्यनिविषैं कह्याही था, यहां गुण काहेकों कह्या। बहुरि सुखादिक हैं सो आत्माविषैं कदाचित् पाइए हैं, आत्माके लक्षणभूत तो ए गुण हैं नाहीं, अव्याप्तपनेतैं लक्षणाभास हैं; बहुरि स्निग्धादि पुद्गलपरमाणुविषैं पाइए हैं सो स्निग्ध गुरुत्व इत्यादि तो स्पर्शन इन्द्रियकरि जानिए तातैं स्पर्शगुणविषैं गर्भित भए, जुदे काहेकों कहे। बहुरि द्रव्यत्वगुण जलविषैं कह्या, सो ऐसें तो

अणिमादिविषें ऊर्ध्वगमनत्व आदि पाइए है। कै तो सर्व कहने थे, कै सामान्यविषें गर्भित करने थे। ऐसें ए गुण कहे ते भी कल्पित हैं। बहुरि कर्म पांच प्रकार कहे हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण, गमन। सो ए तो शरीरकी चेष्टा हैं। इनिको जुदा कहनेंका अर्थ कहा। बहुरि एती ही चेष्टा तो होती नाहीं, चेष्टा तो घनी ही प्रकारकी हो हैं। बहुरि जुदी ही इनको तत्त्वसंज्ञा कही; सो कै तौ जुदा पदार्थ होय तो ताकों जुदा तत्त्व कहना था,कै काम क्रोधादि मेटनेकों विशेष प्रयोजनभूत होय तो तत्त्व कहना था; सो दोऊ ही नाहीं। अर ऐसें ही कहि देना तो पाषाणादिकको अनेक अवस्था हो हैं सो कह्या करो, किछू साध्य नाहीं। बहुरि सामान्य दोय प्रकार है—पर अपर। तहां पर तो सत्तारूप है, अपर द्रव्यत्वादिरूप है। बहुरि नित्य द्रव्यविषें प्रवृत्ति जिनकी होय ते विशेष हैं। बहुरि अयुतसिद्ध सम्बन्ध का नाम समवाय है। सो सामान्यादिक तो बहुतनिकों एकप्रकारकरि वा एक वस्तुविषें भेदकल्पना करि वा भेद कल्पना अपेक्षा सम्बन्ध माननेकरि अपने विचारहीविषें हो है, कोई जुदे पदार्थ तो नाहीं। बहुरि इनिके जानें कामक्रोधादि मेटनेरूप विशेष प्रयोजनकी भी सिद्धि नाहीं तातें इनको तत्त्व काहेकों कहे। अर ऐसे ही तत्त्व कहने थे तो प्रमेयत्वादि वस्तुके अनंतधर्म हैं वा सम्बन्ध आधारादिक कारकनिके अनेक प्रकार वस्तुविषें सम्भवै हैं। कै तो सर्व कहनें थे, कै प्रयोजन जानि कहने थे। तातें ए सामान्यादिक तत्त्व भी वृथा ही कहे। ऐसें वैशेषिकनिकरि कहे कल्पित तत्त्व जानने। बहुरि वैशेषिक दोय ही प्रमाण मानै हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिका सत्य असत्यका

निर्णय जैनन्यायग्रंथनितैं* जानना।

बहुरि नैयायिक तो कहै हैं—विषय, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीर, सुख, दुःख इनिका अभावतें आत्माकी स्थिति सो मुक्ति है। अर वैशेषिक कहै हैं—चौईस गुणनिविषें बुद्धि आदि नवगुण तिनिका अभाव सो मुक्ति है। सो इहां बुद्धिका अभाव कह्या सो बुद्धि नाम ज्ञानका है तो ज्ञानका अधिकरणपना आत्माका लक्षण कह्या था, अब ज्ञानका अभाव भए लक्षणका अभाव होतें लक्ष्यका भी अभाव होय, तब आत्माकी स्थिति कैसें रही। अर जो बुद्धि नाम मनका है तो भावमन तो ज्ञानरूप है ही अर द्रव्यमन शरीररूप है सो मुक्त भए द्रव्यमनका सम्बन्ध छूटै ही है सो द्रव्य-मन जड़ ताका नाम बुद्धि कैसें होय ? बहुरि मनवत् ही इन्द्रिय जानने। बहुरि विषयका अभावहोय सो स्पर्शादि विषयनिका जानना मिटै है तो ज्ञान काहेका नाम ठहरेगा। अर तिनि विषयनिका ही अभाव होयगा तो लोकका अभाव होयगा। बहुरि सुखका अभाव कह्या सो सुखहीके अर्थ उपाय कीजिए है, ताका जहाँ अभाव होय सो उपादेय कैसें होय। बहुरि जो आकुलतामय इन्द्रियजनित सुखका तहाँ अभाव भया कहैं तो यहु सत्य है। अर निराकुलता लक्षण अतीन्द्रियसुख तो तहाँ सम्पूर्ण सम्भवै है तातें सुखका अभाव नाहीं। बहुरि शरीर दुःख द्वेषादिकका तहाँ अभाव कहैं सो सत्य ही है।

बहुरि शिवमतविषें कर्त्ता निर्गुण ईश्वर शिव है ताकों देव मानै

---

* देवागम, युक्त्यानुशासन, अष्टसहस्री, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय कुमुदचन्द्रादि दार्शनिक ग्रन्थों से जानना चाहिये।

हैं। सो याके स्वरूपका अन्यथापना पूर्वोक्त प्रकार जानना। बहुरि जहाँ भस्मी, कोपीन, जटा, जनेऊ इत्यादि चिन्हसहित भेष हो हैं सो आचारादि भेदतें च्यारि प्रकार हैं—शैव, पाशुपत, महाव्रती, कालमुख। सो ए रागादि सहित हैं तातें सुलिंग नाहीं। ऐसें शिवमत का निरूपण किया।

मीमांसकमत निराकरण

अब मीमांसक मतका स्वरूप कहिए हैं। मीमांसक दोय प्रकार हैं— ब्रह्मवादी, कर्मवादी। तहां ब्रह्मवादी तो सर्व यहु ब्रह्म है, दूसरा कोई नाहीं ऐसा वेदान्तविषें अद्वैत ब्रह्मकों निरूपैं हैं। बहुरि आत्माविषें लय होना सो मुक्ति कहै हैं। सो इनिका मिथ्यापना पूर्वे दिखाया है सो विचारना। बहुरि कर्मवादी क्रिया आचार यज्ञादिक कार्यनिका कर्तव्यपना प्ररूपै हैं सो इन क्रियानिविषें रागादिकका सद्भाव पाइए है, तातें ए कार्य किछू कार्यकारी हैं नाहीं। बहुरि तहाँ 'भट्ट' अर 'प्रभाकर' करि करी हुई दोय पद्धति हैं। तहाँ भट्ट तो छह प्रमाण मानै हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, वेद, उपमा, अर्थापत्ति, अभाव। बहुरि प्रभाकर अभाव बिना पांच ही प्रमाण मानें हैं। सो इनिका सत्यासत्यपना जैनशास्त्रनितें जानना। बहुरि तहां षट्कर्मसहित ब्रह्मसूत्रके धारक शूद्रका अन्नादिके त्यागि ते ग्रहस्थाश्रम है नाम जिनिका ऐसे भट्ट हैं। बहुरि वेदान्तविषै यज्ञोपवीतरहित विप्र अन्नादिकके ग्राही, भगवत् है नाम जिनका ऐसे च्यारि प्रकार के हैं--कुटीचर, बहूदक, हंस, परमहंस। सो ए किछू त्यागकरि सन्तुष्ट भए हैं परन्तु ज्ञान श्रद्धानका मिथ्यापना अर रागादिकका सद्भाव इनकैं पाइए है। तातें ए भेष कार्यकारी नाहीं।

जैमिनीयमत निराकरण

बहुरि यहाँ ही जैमिनीयमत सम्भवै है, सो ऐसें कहैं हैं—

सर्वज्ञदेव कोई है नाहीं । नित्य वेद वचन हैं, तिनितें यथार्थ निर्णय हो है । तातें पहले वेदपाठकरि क्रियाप्रति प्रवर्त्तना सो तो नोदना (प्रेरणा) सोई है लक्षण जाका ऐसा धर्म,ताका साधन करना। जैसें कहैं हैं "स्वःकामोऽग्निं यजेत्" स्वर्ग अभिलाषी अग्निकों पूजै, इत्यादि निरूपण करे हैं।

यहाँ पूछिए है—शैव, सांख्य, नैयायिकादिक सब ही वेदकों मानें हैं, तुम भी मानो हो। तुम्हारे वा उन सबनिकै तत्त्वादि निरूपणविषै परस्पर विरुद्धता पाईए है सो है कहा ? जो वेदही विषै कहीं किछू कहीं किछू निरूपण किया है, तो वाकी प्रमाणता कैसें रही ? अर जो मतवाले ही कहीं किछू कहीं किछू निरूपण करें हैं तो तुम परस्पर झगरिनिर्णय करि एककों वेदका अनुसारो अन्यकों वेदतें पराङ्मुख ठहरावो। सो हमकों तो यहु भासै है,वेदहीविषैं पूर्वापर विरुद्धतालिए निरूपण है। तिसतें ताका अपनी अपनी इच्छानुसारि अर्थ ग्रहण करि जुदे जुदे मतके अधिकारी भए हैं। सो ऐसे वेदकों प्रमाण कैसें कीजिए है। बहुरि अग्नि पूजें स्वर्ग होय, सो अग्नि मनुष्यतें उत्तम कैसें मानिए? प्रत्यक्षविरुद्ध है। बहुरि वह स्वर्गदाता कैसें होय। ऐसेंही अन्य वेदवचन प्रमाण विरुद्ध हैं। बहुरि वेदविषें ब्रह्मा कह्या है, सर्वज्ञ कैसे न मानें हैं। इत्यादि प्रकारकरि जैमिनीयमत कल्पित जानना।

बौद्धमत निराकरण

अब बौद्ध मतका स्वरूप कहिए है—

बौद्धमतविषें च्यारिआर्यसत्य+प्ररूपे हैं। दुःख, आयतन, समुदय, मार्ग। तहाँ संसारीके स्कंधरूप सो दुःख है। सो पांच प्रकार× है—विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार, रूप। तहां रूपादिकका जानना सो विज्ञान है, सुख दुःखका अनुभवना सो वेदना है, सूताका जागना सो संज्ञा है, पढ़या था सो याद करना सो संस्कार है, रूपका धारन सो रूप है॥। सो यहां विज्ञानादिकों दुःख कह्या सो मिथ्या है। दुःख तो काम क्रोधादिक हैं,ज्ञान दुःख नाहीं। यह तो प्रत्यक्ष देखिए है। काहूके ज्ञान थोरा है अर क्रोध लोभादिक बहुत है सो दुःखी है। काहूकै ज्ञान बहुत है,काम क्रोधादि स्तोक है वा नाही हैं सो सुखी है। तातै विज्ञानादिक दुःख नाहीं हैं। बहुरि आयतन बारह कहे हैं। पांच तो इन्द्रिय अर तिनिके शब्दादिक पांच विषय अर एक मन, एक धर्मायतन। सो ये आयतन किस अर्थि कहे। क्षणिक सबकों कहै, इनिका कहा प्रयो-

---

+ दु.खमायतनं चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः॥ ३६॥

× दुखं ससारिणः स्कन्धास्ते च पञ्चप्रकीतिताः।
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारोरूपमेव च॥ ३७॥ —वि० वि०

॥ रूप पंचेन्द्रियाण्यर्थाः पंचाविज्ञाप्तिरेव च।
तद्विज्ञानाश्रया रूपप्रसादाश्चक्षुरादयाः॥ ७॥
वेदनानुभवः संज्ञा निमित्तोद्ग्रहणात्मिका।
संस्कारस्कंधश्चतुर्भ्योन्ये सस्कारास्त इमे त्रयः॥१५॥
विज्ञान प्रति विज्ञप्ति...।

कहा है? बहुरि जातैं रागादिकका गण निपजै ऐसा आत्मा अर आत्मीय है नाम जाका सो समुदाय है। तहां अहंरूप आत्मा अर ममरूप आत्मीय जानना, सो क्षणिक मानें इनिका भी कहनेका किछू प्रयोजन नाहीं। बहुरि सर्व संस्कार क्षणिक हैं, ऐसी वासना सो मार्ग है सो प्रत्यक्ष बहुत काल स्थायी केई वस्तु अवलोकिए हैं। तू कहैगा एक अवस्था न रहै है तो यहु हम भी मानें हैं। सूक्ष्मपर्याय क्षणस्थायी है। बहुरि तिस वस्तु ही का नाश मानै, यहु तो होता न दीसै है, हम कैसें मानै? बहुरि बाल वृद्धादि अवस्थाविषैं एक आत्मा का अस्तित्व भासै है। जो एक नाही है तो पूर्व उत्तर कार्यका एक कर्त्ता कैसें मानै है। जो तू कहैगा संस्कारतें है तो संस्कार कौनके हैं। जाके हैं सो नित्य है कि क्षणिक है। नित्य है तो सर्व क्षणिक कैसें कहै है। क्षणिक है तो जाका आधार ही क्षणिक तिस संस्कारकी परम्परा कैसें कहै है। बहुरि सर्व क्षणिक भया तब आप भी क्षणिक भया। तू ऐसी वासनाकों मार्ग कहै है सो इस मार्गका फलकों आप तो पावै ही नाहीं, काहेकों इस मार्ग विषै प्रवर्त्तै। बहुरि तेरे मत विषैं निरर्थक शास्त्र काहेकों किए। उपदेश तो किछू कर्त्तव्यकरि फल पावै तिसके अर्थ दीजिए है। ऐसे यहु मार्ग मिथ्या है। बहुरि रागादिक ज्ञानसन्तान वासनाका उच्छेद जो निरोध, ताकों मोक्ष कहै है। सो क्षणिक भया तब मोक्ष कौनकै कहै है। अर रागादिकका अभाव होना तो हम भी मानैं हैं। अर ज्ञानादिक अपने स्वरूपका अभाव भए तो आपका अभाव होय ताका उपाय करना कैसें हितकारी होय। हिताहितका विचार करनेवाला तो ज्ञान ही है। सो आपका अभावकों ज्ञान हित

कैसे मानें। बहुरि बौद्धमतविषैं दोय प्रमाण मानै हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिके सत्यासत्यका निरूपण जैनशास्त्रनितै जानना। बहुरि जो ए दोय ही प्रमाण हैं, तो इनिके शास्त्र अप्रमाण भए, तिनिका निरूपण किस अर्थि किया। प्रत्यक्ष अनुमान तो जीव आप ही करि लेंगे, तुम शास्त्र काहेकों किए। बहुरि तहां सुगतकों देव मानै है सो ताका स्वरूप नग्न वा विक्रियारूप स्थापै है सो विडम्बनारूपहै। बहुरि कमंडल रक्तांबर के धारी पूर्वान्ह विषैं भोजन करै इत्यादि लिंगरूप बौद्धमतके भिक्षुक हैं सो क्षणिककों भेष धरनेका कहा प्रयोजन? परन्तु महतताके अर्थि कल्पित निरूपण करना अर भेष धरना हो है। ऐसैं बौद्ध हैं ते च्यारि प्रकार हैं— वैभाषिक, सौत्रांतिक, योगाचार, मध्यम। तहां वैभाषिक तो ज्ञानसहित पदार्थकों मानै हैं। सौत्रांतिक प्रत्यक्ष यहु देखिए है सोई है, परै किछू नाहीं ऐसा मानै हैं। योगाचारनिकै आचारसहित बुद्धि पाईए है। मध्यम है ते पदार्थका आश्रय बिना ज्ञानहीकों मानै है। सो अपनी अपनी कल्पना करै हैं। विचार किए किछू ठिकानाकी बात नाहीं। ऐसे बौद्धमतका निरूपण किया।

चार्वाकमत निराकरण

अब चार्वाकमतका स्वरूप कहिये है—

कोई सर्वज्ञदेव धर्म अधर्म मोक्ष है नाहीं वा पुण्य पाप का फल है नाहीं वा परलोक नाहीं, यह इन्द्रियगोचर जितना है सो ही लोक है, ऐसैं चार्वाक कहै है सो तहां वाकों पूछिए है—सर्वज्ञदेव इस कालक्षेत्र विषैं नाहीं कि सर्वदा सर्वत्र नाहीं। इस कालक्षेत्र-

विषें तो हम भी नाहीं मानें हैं। अर सर्वकालक्षेत्रविषें नाहीं ऐसा सर्वज्ञ बिना जानना किसकै भया। जो सर्व क्षेत्रकालकी जानै सो ही सर्वज्ञ अर न जानै है तो निषेध कैसें करै है। बहुरि धर्म अधर्म लोक विषें प्रसिद्ध हैं। जो ए कल्पित होय तो सर्वजन सुप्रसिद्ध कैसे होय। बहुरि धर्म अधर्मरूप परणति होती देखिए है, ताकरि वर्तमान ही में सुखी दुःखी हो हैं। इनिकों कैसें न मानिए। अर मोक्षका होना अनुमानविषें आवै है। क्रोधादिक दोष काहूकै हीन हैं, काहूकै अधिक हैं तो जानिए है काहूकै इनिकी नास्ति भी होती होसी। अर ज्ञानादि गुण काहूकै हीन काहूकै अधिक भासै है, तातै जानिए है काहूकै सम्पूर्ण भी होते होसी। ऐसें जाकै समस्तदोषकी हानि गुणनिकी प्राप्ति होय सोई मोक्ष अवस्था है। बहुरि पुण्य पाप का फल भी देखिए है। कोऊ उद्यम करै तो भी दरिद्री रहै, कोऊकै स्वयमेव लक्ष्मी होय। कोऊ शरीरका यत्न करै तो भी रोगी रहै, काहूके बिना ही यत्न निरोगता रहै। इत्यादि प्रत्यक्ष देखिए है सो याका कारण कोई तो होगा। जो याका कारण सोई पुण्य पाप है। बहुरि परलोकभी प्रत्यक्ष अनुमानतें भासै है। व्यंतरादिक है ते अवलोकिए हैं। मैं अमुक था सो देव भया हूं। बहुरि तू कहैगा यहु तो पवन है सो हम तो 'मैं हूँ' इत्यादि चेतनाभाव जाकै आश्रय पाईए ताहीकों आत्मा कहै हैं सो तू वाका नाम पवन कहि परन्तु पवन तो भीति आदिकरि अटकै है, आत्मा मूंद्या (बंद) हुआ भी अटकै नाहीं, तातै पवन कैसे मानिए है। बहुरि जितना इन्द्रियगोचर है तितना ही लोक कहै है। सो तेरी इन्द्रियगोचर तो थोरेसे भी योजन दूरिवर्ती क्षेत्र अर थोरासा अतीत अनागत काल

ऐसा क्षेत्र कालवर्ती भी पदार्थ नाहीं होय सकै। अर दूरि देशकी वा बहुतकालको बातें परम्परातैं सुनिए ही हैं, तातैं सबका जानना तेरै नाहीं, तू इतना ही लोक कैसें कहै है?

बहुरि चार्वाकमतविषै कहै हैं कि पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश मिलें चेतना होय आवै है। सो मरते पृथ्वी आदि यहाँ रही। चेतनावान् पदार्थ गया सो व्यंतरादि भया, प्रत्यक्ष जुदे जुदे देखिए है। बहुरि एक शरीरविषैं पृथ्वी आदि तो भिन्न भिन्न भासै है, चेतना एक भासै है। जो पृथ्वी आदि के आधार चेतना होय तो हाड लोहूउश्वासादिकके जुदी जुदी चेतना होय। बहुरि हस्तादिक काटें जैसें वाकी साथि वर्णादिक रहैं तैसे चेतना भी रहै है। बहुरि अहंकार, बुद्धि तो चेतनाके है सो पृथ्वी आदि रूप शरीर तो यहाँ ही रह्या, व्यंतरादि पर्यायविषैं पूर्वपर्याय का अहपना मानना देखिए है सो कैसें हो है। बहुरि पूर्वपर्यायके गुह्य समाचार प्रगट करै सो यहु जानना किसकी साथि गया, जाकी साथि जानना गया सोई आत्मा है।

बहुरि चार्वाकमतविषै खाना पीना भोग विलास करना इत्यादि स्वच्छंद वृत्तिका उपदेश है सो ऐसैं तो जगत् स्वयमेव ही प्रवर्त्तै हैं। तहाँ शास्त्रादि बनाय कहा भला होनेका उपदेश दिया। बहुरि तू कहैगा, तपश्चरण शील संयमादि छुड़ावनेके अर्थि उपदेश दिया तो इनि कार्यनि विषैं तो कषाय घटनेतैं आकुलता घटै है तातैं यहाँ ही सुखी होना हो है, बहुरि यश आदि हो है, तू इनिको छुड़ाय कहा भला करै है। विषयासक्त जीवनिको सुहावती बातें कहि करना

वा औरनिका बुरा करनेका भय नाहीं, स्वछन्द होय विषय सेवने के अर्थि ऐसी झूठी युक्ति बनावे हैं। ऐसें चार्वाकमतका निरूपण किया।

अन्य मत निराकरण उपसंहार

इस ही प्रकार अन्य अनेक मत हैं ते झूठी कल्पित युक्ति बनाय विषय-कषायासक्त पापी जीवनिकरि प्रगट किए हैं। तिनिका श्रद्धानादिकरि जीवनिका बुरा हो है। बहुरि एक जिनमत है सो ही सत्यार्थ का प्ररूपक है, सर्वज्ञ वीतरागदेवकरि भाषित है। तिसका श्रद्धानादिक करि ही जीवनिका भला हो है। सो जिनमतविषै जीवादि तत्त्व निरूपण किए हैं। प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण कहे हैं। सर्वज्ञ वीतराग अर्हंत देव हैं। बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रंथ गुरु हैं। सो इनिका वर्णन इस ग्रन्थविषै आगे विशेष लिखेंगे सो जानना।

यहाँ कोऊ कहै—तुम्हारे राग-द्वेष है, तातैं तुम अन्यमतका निषेध करि अपने मतकों स्थापो हो, ताकों कहिए हैं—

यथार्थ वस्तु के प्ररूपण करनेविषै राग-द्वेष नाहीं। किछू अपना प्रयोजन विचारि अन्यथा प्ररूपण करै तो रागद्वेष नाम पावै।

बहुरि वह कहै है—जो रागद्वेष नाहीं है तो अन्यमत बुरे जैनमत भला ऐसा कैसें कहो हो। साम्यभाव होय तो सर्वकों समान जानों, मतपक्ष काहेकों करो हो।

याकों कहिए है—बुराकों बुरा कहैं हैं, भलाकों भला कहैं हैं, यामैं रागद्वेष कहा किया? बहुरि बुरा भलाकों समान जानना तो अज्ञान-भाव है, साम्यभाव नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जो सर्वमतनिका प्रयोजन तो एक ही है तातैं

सर्वकों समान जानना।

ताकों कहिए है—जो प्रयोजन एक होय तो नानामत काहेकों कहिए। एक मतविषैं तो एक प्रयोजन लिए अनेक प्रकार व्याख्यान हो है, ताको जुदा मत कौन कहै है। परन्तु प्रयोजन ही भिन्न भिन्न है सो दिखाईए है—

अन्य मतों से जैनमतकी तुलना

जैनमतविषै एक वीतरागभाव पोषने का प्रयोजन है सो कथानिविषैं वा लोकादिका निरूपण विषै वा आचरणविषै वा तत्त्वनिविषैं जहाँ तहाँ वीतरागताकी ही पुष्टता करी है। बहुरि अन्य मतनिविषैं सरागभाव पोषने का प्रयोजन है। जातै कल्पित रचना कषायी जीव ही करै सो अनेक युक्ति बनाय कषायभाव ही को पोषै। जैसे अद्वैत ब्रह्मवादी सर्वको ब्रह्म माननेकरि अर सांख्यमति सर्व कार्य प्रकृतिका मानि आपकों शुद्ध अकर्त्ता माननेंकरि अर शिवमति तत्त्व जाननेहीतै सिद्धि होनी माननेंकरि, मीमासक कषायजनित आचरणकों धर्म माननेंकरि, बौद्ध क्षणिक माननेंकरि, चार्वाक परलोकादि न माननेकरि विषयभोगादिरूप कषायकार्यनिविषै स्वच्छन्द होना ही पोषै हैं। यद्यपि कोई ठिकानै कोई कषाय घटावनेका भी निरूपण करै, तो उस छलकरि अन्य कोई कषायका पोषण करै है। जैसे गृह कार्य छोड़ि परमेश्वरका भजन करना ठहराया अर परमेश्वरका स्वरूप सरागी ठहराय उनके आश्रय अपने विषय कषाय पोषै। बहुरि जैनधर्मविषैं देव गुरु धर्मादिकका स्वरूप वीतराग ही निरूपणकरि केवल वीतराग ताहीकों पोषै हैं सो यहु प्रगट है। हम कहा कहैं, अन्यमति भर्तृहरि

ताहूने वैराग्यप्रकरण विषै* ऐसा कह्या है—

एको* रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धधारी हरो,
नीरोगेषु जिनो विमुक्तललनासङ्गो न यस्मात्परः ।
दुर्वारस्मरबाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः,
शेषःकामविडम्बितो हि विषयान् भोक्तुं न मोक्तुं क्षमः ॥१

या विषै सरागीनिविषै महादेवको प्रधान कह्या अर वीतरागीनिविषै जिनदेवको प्रधान कह्या है। बहुरि सरागभाव वीतरागभावनिविषै परस्पर प्रतिपक्षीपना है सो ये दोऊ भले नाहीं। इनिविषै एक ही हितकारी है सो वीतराग भाव ही हितकारी है, जाके होतें तत्काल आकुलता मिटै, स्तुतियोग्य होय। आगामी भला होना सब कहैं। सरागभाव होते तत्काल आकुलता होय निदनीक होय, आगामी बुरा होना भासै तातै जामे वीतरागभावका प्रयोजन ऐसा जैनमत सो ही इष्ट है। जिनमें सरागभावके प्रयोजन प्रगट किए है ऐसे अन्यमत अनिष्ट है। इनिको समान कैसे मानिए। बहुरि वह कहै है—जो यहु तो सांच परन्तु अन्यमतकी निन्दा किएं अन्यमती दुःख पावैं, विरोध उपजै, तातैं काहेको निन्दा करिए। तहाँ कहिए है – जो हम

* रागी पुरुषो मे तो एक महादेव शोभित होता है, जिसने अपनी प्रियतमा पार्वतीको आधे शरीरमे धारण कर रक्खा है और वीतरागियोमे जिनदेव शोभित होते हैं, जिनके समान स्त्रियोका सग छोडनेवाला दूसरा कोई नही है। शेष लोग तो दुर्निवार कामदेवके बाणरूप सर्पोके विषसे मूर्च्छितहुए हैं जो कामकी विडम्बनासे न तो विषयो को भली भाँति भोग ही सकते है और न छोड़ ही सकते हैं।

कषायकरि निन्दा करें वा औरनिकों दुःख उपजावें तो हम पापी ही हैं। अन्यमतके श्रद्धानादिककरि जीवनिकै अतत्त्वश्रद्धान दृढ़ होय, तातें संसारविषै जीव दुःखी होय, तातें करुणा भावकरि यथार्थ निरूपण किया है। कोई बिनादोष दुःख पावै, विरोध उपजावै तो हम कहा करें। जैसे मदिराकी निन्दाकरते कलाल दुःख पावै, कुशीलकी निन्दा करते वेश्यादिक दुःख पावै, खोटा खरा पहचाननेकी परीक्षा बतावतें ठग दुःख पावै तो कहा करिए। ऐसे जो पापीनिके भयकरि धर्मोपदेश न दीजिए तो जीवनिका भला कैसे होय? ऐसा तो कोई उपदेश नाहीं, जाकरि सर्व ही चैन पावे। बहुरि वह विरोध उपजावै सो विरोध तो परस्पर हो है। हम लरें नाहीं, वे आप ही उपशांत होय जांयगे। हमकों तो हमारे परिणामोंका फल होगा।

बहुरि कोऊ कहै—प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्वनिका अन्यथा श्रद्धान किए मिथ्यादर्शनादिक हो हैं, अन्यमतनिका श्रद्धान किए कैसें मिथ्यादर्शनादिक होय ?

ताका समाधान—अन्यमतनिविषैं विपरीत युक्ति बनाय जीवादिक तत्त्वनिका स्वरूप यथार्थ न भासै यहु ही उपाय किया है सो किस अर्थि किया है। जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ स्वरूप भासै तो वीतरागभाव भए ही महतपनो भासै। बहुरि जे जीव वीतरागी नाहीं अर अपनी महंतता चाहैं, तिनि सरागभाव होतें महंतता मनावनेके अर्थि कल्पित युक्तिकर अन्यथा निरूपण किया है। सो अद्वैतब्रह्मादिकका निरूपणकरि जीव अजीवका अर स्वच्छन्दवृत्ति पोषनेकरि आस्रव संवरादिकका अर सकषायीवत् वा अचेतनवत् मोक्षकहनेकरि मोक्षका

अयथार्थ श्रद्धानकों पोषै हैं। तातैं अन्यमतनिका अन्यथापना प्रगट किया है। इनिका अन्यथापना भासै तो तत्त्वश्रद्धानविषै रुचिवंत होय, उनकी युक्तिकर भ्रम न उपजै। ऐसे अन्यमतनिका निरूपण किया।

अन्यमत के ग्रन्थोद्धरणोंसे जैनधर्मकी प्राचीनता और समीचीनता

अब अन्यमतनिके शास्त्रनिकीही साखिकरि जिनमतकी समीचीनता वा प्राचीनता प्रगट कीजिए है —

बड़ा योगवाशिष्ट छत्तीस हजार श्लोक प्रमाण ताका प्रथम वैराग्यप्रकरण तहाँ अहंकार निषेध अध्यायविषै वशिष्ट अर रामका संवादविषैं ऐसा कह्या है—

रामोवाच—

"नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शांतिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा* ॥१॥"

या विषैं रामजी जिनसमान होनेकी इच्छा करी तातैं रामजीतैं जिनदेवका उत्तमपना प्रगट भया अर प्राचीनपना प्रगट भया। बहुरि 'दक्षिणामूर्ति—सहस्रनाम' विषैं कह्या है—

शिवोवाच—

"जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः।"

---

* अर्थात् मैं राम नाही हूँ, मेरी कुछ इच्छा नही है और भावों वा पदार्थों में मेरा मन नहीं है। मैं तो जिनदेवके समान अपनी आत्मामे ही शान्ति स्थापना करना चाहता हूँ।

यहाँ भगवत का नाम जैनमार्गनिषें रत अर जैन कह्या, सो यामें जैनमार्गको प्रधानता व प्राचीनता प्रगट भई। बहुरि 'वैशपायनसहस्र नाम' विषैं कह्या है —

"कालनेमिर्म्महा वीरः शूरः शौरिर्जिनेश्वरः।"

यहाँ भगवान्का नाम जिनेश्वर कह्या, तातें जिनेश्वर भगवान हैं। बहुरि दुर्वासाऋषिकृत 'महिम्निस्तोत्र' विषै ऐसा कह्या है—

तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिरिति च त्वं ब्रह्मकर्मेश्वरी।

कर्त्तार्हन् पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धःशिवस्त्वं गुरुः॥१॥

यहाँ 'अरहंत तुमहो' ऐसें भगवन की स्तुति करी, तातें अरहन्तकै भगवतपनो प्रगट भयो। बहुरि हनुमन्नाटकविषै ऐसे कह्या है—

"यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनः

बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः।

अर्हन्नित्यथ जैनशासनरतः कर्मेति मीमांसकाः

सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथःप्रभुः* ॥१॥'

यहाँ छहों मतनिविषै एक ईश्वर कह्या तहाँ अरहंतदेव कै भी ईश्वरपना प्रगट किया।

---

* यह हनुमन्नाटकके मंगलाचरणका तीसरा श्लोक है। इसमें बताया है कि जिसको शैव लोग शिव कहकर, वेदान्ती ब्रह्म कहकर, बौद्ध बुद्धदेव कहकर, नैयायिक कर्त्ता कहकर, जैनी अर्हन् कहकर और मीमांसक कर्म कह कर उपासना करते हैं, वह त्रैलोक्यनाथ प्रभु तुम्हारे मनोरथोंको सफल करें।

यहाँ कोऊ कहै, जैसे यहाँ सर्वमतविषै एक ईश्वर कह्या तैसें तुम भी मानो।

ताकों कहिए है-- तुमने यह कह्या है, हम तो न कह्या। तातें तुम्हारे मतविषैं अरहतकै ईश्वरपना सिद्ध भया। हमारे मतविषै भी ऐसै ही कहैं तो हम भी शिवादिककों ईश्वर मानें। जैसें कोई व्यापारी सांचा रत्न दिखावै, कोई झूंठा रत्न दिखावै। तहाँ झूठा रत्नवाला तो रत्ननिको समान मोल लेने के अर्थि समान कहै। सांचा रत्न-वाला कैसें समान मानै ? तैसें जैनी सांचा देवादिकों निरूपै, अन्यमती झूठा निरूपै। तहाँ अन्यमती अपनो समान महिमाके अर्थि सर्वकों समान कहै-- जैनी कैसे मानै ? बहुरि 'रुद्रयामलतन्त्र' विषै भवानी-सहस्रनामविषै ऐसे कह्या है--

"कुण्डासना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी।
जिनमाता जिनेन्द्रा च शारदा हंसवाहिनी ॥१॥"

यहाँ भवानीके नाम जिनेश्वरी इत्यादि कहे, तातै जिनका उत्तम-पना प्रगट किया। बहुरि 'गणेशपुराण' विषै ऐसे कह्या है--

"जैनं पशुपतं सांख्यं।"

बहुरि व्यासकृत सूत्रविषै ऐसा कह्या है--

"जैना एकस्मिन्नेव वस्तुनि उभयं प्ररूपयन्ति स्याद्वादिनः१।"

इत्यादि तिनिके शास्त्रनिविषै जैन निरूपण है, तातै जैनमतका प्राचीनपना भासै है। बहुरि भागवतका पंचमस्कंधविषै ऋषभावतार

१--प्ररूपयन्ति 'स्याद्वादिनः' इति खरडा प्रतौ पाठः।

का कथन ❀ है। तहां ब्रहु करुणामय, तृष्णादिरहित ध्यानमुद्राधारी सर्वाश्रम करि पूजित कह्या है, ताके अनुसारि अरहत राजा प्रवृत्ति करी ऐसा कहैं हैं। सो जैसे राम कृष्णादि अवतारनिके अनुसारि अन्यमत तैसें ऋषभावतारके अनुसारि जैनमत, ऐसें तुम्हारे मतहीकरि जैन प्रमाण भया। यहां इतना विचार और किया चाहिये—कृष्णादि अवतारनिके अनुसारि विषयकषायनिकी प्रवृत्तिहो है। ऋषभावतारके अनुसारि वीतराग साम्यभावकी प्रवृत्ति हो है। यहां दोऊ प्रवृत्ति समान माने धर्म अधर्मका विशेष न रहै अर विशेष माने भली होय सो अंगीकार करनी। बहुरि दशावतारचरित्र विषै— "बद्ध्वा-पद्मासनं यो नयनयुगमिदं न्यस्य नासाग्रदेशे" इत्यादि बुद्धावतारका स्वरूप अरहत देव सारिखा लिख्या है, सो ऐसा स्वरूप पूज्य है तो अरहंतदेव पूज्य सहज ही भया।

बहुरि काशीखडविषै देवदास राजाने सम्बोधि राज्य छुड़ायो। तहाँ नारायण तो विनयकीर्त्ति यती भया, लक्ष्मीकों विनयश्री आर्यिका करी, गरुड़कों श्रावक किया, ऐसा कथन है। सो जहां सम्बोधन करना भया तहां जैनी भेष बनाया। तातैं जैन हितकारी प्राचीन प्रतिभासै है। बहुरि 'प्रभासपुराण' विषै ऐसा कह्या है--

भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपःकृतम्।
तेनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः ॥१॥

❀ भागवत स्कंध ५ अ० ५, २९

"पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगम्बरः ।
नेमिनाथः शिवेत्येवं नाम चक्रेऽस्य वामनः ॥२॥
कलिकाले महाघोरे सर्व पापप्रणाशकः ।
दर्शनात्स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदः ॥३॥"

यहाँ वामनकों पद्मासन दिगम्बर नेमिनाथका दर्शन भया कह्या। वाहीका नाम शिव कह्या। बहुरि ताके दर्शनादिकतें कोटीयज्ञका फल कह्या सो ऐसा नेमिनाथका स्वरूप तो जैनी प्रत्यक्ष मानै हैं, सो प्रमाण ठहरचा। बहुरि प्रभासपुराणविषै कह्या है—

"रैवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले ।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥१॥"

यहाँ नेमिनाथकों जिनसंज्ञा कही, ताके स्थानकों ऋषिका आश्रम मुक्तिका कारण कह्या अर युगादिके स्थानकों भी ऐसाही कह्या, तातें उत्तम पूज्य ठहरे। बहुरि 'नगरपुराण' विषै भवावताररहस्यविषै ऐसा कह्या है—

"अकारादिहकारन्तमूर्द्धाधोरेफसंयुतम् ।
नादविन्दुकलाक्रान्तं चन्द्रमण्डलसन्निभम् ॥१॥
एतद्देवि परं तत्त्वं यो विजानातितत्त्वतः ।
संसारबन्धनं छित्वा स गच्छेत्परमां गतिम् ॥२॥"

यहाँ 'अर्हं' ऐसे पदकों परमतत्त्व कह्या। याके जाने परमगतिकी प्राप्ति कही सो 'अर्हं' पद जैनमत उक्त है। बहुरि नगरपुराणविषैं कह्या है—

"दशभिर्भोजितैर्विप्रैः यत्फलं जायते कृते ।
मुनेरर्हत्सुभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ ॥१॥"

यहाँ कृतयुगविषै दश ब्राह्मणों कों भोजन कराएका जेता फल कह्या,तेता फल कलियुगविषै अर्हतभक्तमुनिके भोजन कराएका कह्या तातै जैनीमुनि उत्तम ठहरे। बहुरि 'मनुस्मृति' विषै ऐसा कह्या है—

"कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः ।
चक्षुष्मान् यशस्वी वाभिचन्द्रोऽथ प्रसेनजित् ॥१॥
मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुल सत्तमाः ।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरक्रम. ॥२॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृत ।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः ॥३॥"

यहाँ विमलवाहनादिक मनु कहे, सो जैनविषै कुलकरनिके नाम कहे हैं अर यहा प्रथमजिन युगकी आदिविषै मार्गका दर्शक अर सुरासुरकरि पूजित कह्या. सो ऐसे ही है तो जैनमत युगकी आदिहीतैं है अर प्रमाणभूत कैसे न कहिए। बहुरि ऋगवेदविषै ऐसा कह्या है—

"ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान चतुर्विंशतितीर्थकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये । ॐ पवित्रं नग्नमुपविस्पृसामहे एषां नग्नं येषां जातं येषां वीरं सुवीरं इत्यादि ।

बहुरि यजुर्वेदविषै ऐसा कह्या है-

ॐ नमो अर्हंतो ऋषभाय । बहुरि ऐसा कह्या है—

ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहुसंस्तुतं वरं शत्रुं जयंतं पशुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा। ॐ त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदन्ति । अमृतारमिंद्रं हवे सुगतं सुपार्श्वमिंद्रं हवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमानपुरुहूतमिंद्रमाहुरिति स्वाहा। ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हंतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात स्वाहा। ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्तिनो वृहस्पतिर्दधातु । दीर्घायुस्त्वायुवलायुर्वा शुभजाताय । ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमिः स्वाहा । वामदेव शान्त्यर्थमनुविधीयते सोऽस्माकं अरिष्टनेमिः स्वाहा *।

सो यहाँ जैनतीर्थंकरनिके जे नाम हैं तिनका पूजनादि कह्या। बहुरि यहाँ यहु भास्या, जो इनके पीछे वेद रचना भई है। ऐसें अन्यमत के ग्रंथनिकी साक्षीतें भी जिनमतकी उत्तमता अर प्राचीनता दृढ़ भई। अर जिनमतकों देखें वे मत कल्पित ही भासें। तातें जो अपना हित का इच्छुक होय सो पक्षपात छोरि सांचा जैनधर्मकों अंगीकार करो। बहुरि अन्यमतनिविषै पूर्वापर विरोध भासै है। पहले अवतार वेदका उद्धार किया। तहाँ यज्ञादिकविषै हिंसादिक पोषे अर बुद्धावतार यज्ञ का निंदक होय हिंसादिक निषेधे। वृषभावतार वीतराग संयम का मार्ग दिखाया। कृष्णावतार परस्त्री रमणादि विषय कषायादिकनिका मार्ग दिखाया । सो अब यह संसारी कौनका कह्या करै, कौनके

* यजुर्वेद अ० २५ म० १९ अष्ठ १९ अ० ६ वर्ग १

अनुसारि प्रवर्त्ते अर इन सब अवतारनिकों एक बतावें सो एक ही कदाचित् कैसें कदाचित् कैसे कहै वा प्रवर्त्तै तो याकै उनके कहने की वा प्रवर्त्तने की प्रतीति कैसे आवै ? बहुरि कही क्रोधादिकषायनिका वा विषयनिका निषेध करे, कही लरनेका वा विषयादिसेवनका उपदेश दें। तहाँ प्रारब्ध बतावें सो बिना क्रोधादि भए आपही तें लरना आदि कार्य होंय तो यहु भी मानिए सो तो होय नाही। बहुरि लरना आदि कार्य करते क्रोधादि भए न मानिए तो जुदे ही क्रोधादि कौन हैं जिनका निषेध किया। तातें बनें नाही, पूर्वापर विरोध है। गीतानिविषै वीतरागता दिखाय लरनेका उपदेश दिया सो यहु प्रत्यक्ष विरोध भासै है। बहुरि ऋषीश्वरादिकनिकरि श्राप दिया बतावें, सो ऐसा क्रोध किएं निन्द्यपना कैसें न भया ? इत्यादि जानना। बहुरि "अपुत्रस्य गतिनास्ति" ऐसा भी कहैं अर भारत विषै ऐसा भी कह्या है—

अनेकानि सहस्राणि कुमार ब्रह्मचारिणाम्।
दिवं गतानि राजेन्द्र अकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥१॥

यहां कुमार ब्रह्मचारीनिकों स्वर्ग गए बताए, सो यहु परस्पर विरोध है। बहुरि ऋषीश्वर भारतविषै ऐसा कह्या है—

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्।
ये कुर्वन्तिवृथास्तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥१॥
वृथा एकादशी-प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः।
वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्नं चान्द्रायणं वृथा ॥२॥

चातुर्मास्ये तु सम्प्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति यः ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत् चान्द्रायणशतैरपि ।।३।।

इन विषें मद्य मांसादिकका वा रात्रिभोजन का वा चौमासे में विशेषपने रात्रिभोजनका वा कंदफलभक्षणका निषेध किया । बहुरि बड़े पुरुषनिकै मद्यमांसादिकका सेवन करना कहैं, व्रतादि विषें रात्रि-भोजन स्थापें वा कंदादि भक्षण स्थापे, ऐसे विरुद्ध निरूपै हैं। ऐसे ही अनेक पूर्वापर विरुद्ध वचन अन्यमत के शास्त्र विषे हैं। सो करें कहा। कहीं तो पूर्वपरम्परा जानि विश्वास अनावनेके अर्थि यथार्थ कह्या अर कहीं विषयकषाय पोषनेके अर्थि अन्यथा कह्या । सो जहाँ पूर्वापर विरोध होय, तिनिका वचन प्रमाण कैसे करिए । इहा जो अन्यमत-निविषें क्षमा शील सन्तोषादिककों पोषते वचन हैं सो तो जैनमत-विषे पाइए हैं अर विपरीत वचन है सो उनका कल्पित है । जिनमत अनुसारि वचननिका विश्वासतें उनका विपरीतवचनका श्रद्धानादिक होय जाय, तातें अन्यमतका कोऊ अग भला देखि भी तहां श्रद्धाना-दिक न करना । जैसे विषमिश्रित भोजन हितकारी नाहीं तैसें जानना। बहुरि जो कोई उत्तम धर्मका अंग जिनमतविषे न पाईए अर अन्यमत में पाईए, अथवा कोई निषिद्ध धर्मका अंग जैनमत विषे पाईए अर अन्यत्र न पाईए, तो अन्यमतकों आदरो सो सर्वथा होय नाहीं। जातें सर्वज्ञका ज्ञानतें किछू छिपा नाहीं है । तातें अन्यमतनिका श्रद्धानादिक छोरि जिनमतका दृढ़ श्रद्धानादिक करना । बहुरि कालदोषतें कषायी जीवनिकरि जिनमतविषै भी कल्पितरचना करी है, सो ही दिखाईए है—

श्वेताम्बर मत निराकरण

श्वेताम्बरमतवाले काहूने सूत्र बनाए,तिनिकों गणधरके किए कहैं हैं। सो उनकों पूछिए है–गणधरने आचारांगादिक बनाए हैं सो तुम्हारै अबार पाईए है सो इतने प्रमाण लिए ही किए थ कि घना प्रमाण लिए किए थे। जो इतने प्रमाण लिए ही किए थे, तो तुम्हारे शास्त्रनि विषै आचारांगादिकनिके पदनिका प्रमाण अठारह हजार आदि कह्या है, सो तिनकी विधि मिलाय द्यो। पदका प्रमाण कहा ? जो विभक्ति का अंतको पद कहोगे, तो कहे प्रमाणतें बहुत पद होय जांयगे अर जो प्रमाणपद कहोगे, तो तिस एकपद के साधिक इक्यावन कोड़ि श्लोक हैं। सो ए तो बहुत छोटे शास्त्र है, सो बनै नाहीं। बहुरि आचारांगादिकतें दशवैकालिकादिकका प्रमाण घाटि कह्या है। तुम्हारै बधता है सो कैसे बनै ? बहुरि कहोगे, आचारांगादिक बड़े थे, कालदोष जानि तिनहीमेंसों केतेक सूत्र काढि ए शास्त्र बनाए हैं। तो प्रथम तो टूटकग्रन्थ प्रमाण नाही। बहुरि यह प्रबन्ध है, जो बडा ग्रंथ बनावै तो वा विषै सर्व वर्णन विस्तार लिएं करै अर छोटा ग्रन्थ बनावै तो तहाँ संक्षेप वर्णन करै परन्तु सम्बन्ध टूटै नाही। अर कोई बडा ग्रन्थ में थोरासा कथन काढ़ि लीजिए, तो तहाँ सम्बन्ध मिलै नाहीं–कथनका अनुक्रम टूटि जाय। सो तुम्हारे सूत्रनिविषै तो कथादिकका भी सम्बन्ध मिलता भासै है–टूटकपना भासै नाही। बहुरि अन्य कवीनितें गणधरकी तो बुद्धि अधिक होसी, ताके किए ग्रन्थनिमें थोरे शब्द में बहुत अर्थ चाहिए सो तो अन्य कवीनिकीसी भी गम्भीरता नाहीं। बहुरि जो ग्रन्थ बनावै सो अपना नाम ऐसै धरैं नाहीं 'जो

अमुक कहै है', 'मैं कहूँ हूँ' ऐसा कहै । सो तुम्हारे सूत्रनिविषै 'हे गौतम' वा 'गौतम कहै है' ऐसे वचन हैं। सो ऐसे वचन तो तब ही सम्भवें जब और कोई कर्त्ता होय। तातें यह सूत्र गणधरकृत नाहीं, और के किए हैं। गणधर का नामकरि कल्पितरचना को प्रमाण कराया चाहै हैं। सो विवेकी तो परीक्षाकरि मानें, कह्या ही तो न मानें।

बहुरि वह ऐसा भी कहै हैं—जो गणधरसूत्रनिके अनुसार कोई दशपूर्वधारी भया है। ताने ए सूत्र बनाए हैं । तहाँ पूछिए है—जो नए ग्रन्थ बनाए हैं तो नवा नाम धरना था, अगादिकके नाम काहेकों धरे। जैसें कोई बड़ा साहूकारकी कोठीका नामकरि अपना साहूकारा प्रगट करै, तैसे यह कार्य भया। सांचेको तो जैसे दिगम्बर-विषैग्रन्थनिके और नाम धरे अर अनुसारी पूर्व ग्रन्थनिका कह्या, तैसें कहना योग्य था। अगादिकका नाम धरि गणधर कृत का भ्रम काहे कौं उपजाया। तातै गणधर के पूर्वधारी के वचन नाही। बहुरि इन सूत्रनि विषै जो विश्वास अनावनेके अर्थि जिनमत अनुसार कथन है सो तो सांच है ही, दिगम्बर भी तैसें ही कहैं हैं । बहुरि जो कल्पित रचना करी है, तामें पूर्वापर विरुद्धपनो वा प्रत्यक्षादि प्रमाणमें विरुद्ध-पनो भासै है, सो ही दिखाईए है—

अन्य लिंग से मुक्ति का निषेध

अन्य लिंगीकै वा गृहस्थकै वा स्त्रीकै वा चाडालादि शूद्रनिकै साक्षात् मुक्तिको प्राप्ति होनी मानै हैं सो बनै नाहीं । सम्यग्दर्शन

ज्ञान चारित्रकी एकता मोक्षमार्ग है । सो वे सम्यग्दर्शनका स्वरूप तो ऐसा कहै हैं—

अरहंतो महादेवो जावज्जीवं सुसाहणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्तं तत्तं ए सम्मत्तं मए गहियं ॥१॥

सो अन्य लिंगीकै अरहंतदेव, साधु, गुरु, जिन प्रणीततत्त्व का मानना कैसें सम्भवै तब सम्यक्त्व भी न होय, तो मोक्ष कैसें होय । जो कहोगे अंतरंग विषै श्रद्धान होनेतें सम्यक्त्व तिनकै हो है, सो विपरीत लिंगधारकको प्रशंसादिक किए भी सम्यक्त्वको अतीचार कह्या है सो साचा श्रद्धान भए पीछे आप विपरीत लिंगका धारक कैसें रहै । श्रद्धान भए पीछे महाव्रतादि अंगीकार किए सम्यक्चारित्र होय सो अन्यलिंगविषै कैसें बनै? जो अन्यलिंगविषै भी सम्यक्चारित्र हो है तो जैन लिंग अन्य लिंग समान भया तातैं अन्य लिंगीकों मोक्ष कहना मिथ्या है। बहुरि गृहस्थको मोक्ष कहै सो हिंसादिक सर्व सावद्ययोगका त्याग किए सामायिकचारित्र होय सो सर्वसावद्ययोगका त्याग किए गृहस्थपनों कैसें सम्भवै ? जो कहोगे—अंतरंग त्याग भया है तो यहाँ तो तीनों योगकरि त्याग करै है,कायकरि त्याग कैसें भया ? बहुरि बाह्य परिग्रहादिक राखे भी महाव्रत हो है, सो महाव्रतनिविषैं तो बाह्य त्याग करनेकी ही प्रतिज्ञा करिए है, त्याग किए बिना महाव्रत न होय । महाव्रत बिना छठा आदि गुणस्थान न हो है, तो तब मोक्ष कैसे होय ? तातें गृहस्थकों मोक्ष कहना मिथ्या वचन है ।

स्त्री मुक्ति का निषेध

बहुरि स्त्रीको मोक्ष कहै,सो जाकरि सप्तम नरक गमन योग्य पाप

न होय सकै, ताकरि मोक्ष का कारण शुद्ध भाव कैसें होय ? जातैं जाके भाव दृढ होंय,सोही उत्कृष्ट पाप वा धर्म उपजाय सकै है। बहुरि स्त्रीकै निशंक एकातविषैं ध्यान धरना अर सर्व परिग्रहादिकका त्याग करना सम्भवै नाही। जो कहोगे,एक समयविषैं पुरुषवेदी वा स्त्रीवेदी वा नपुंसकवेदीकों सिद्धि होनी सिद्धान्तविषै कही है, तातें स्त्रीकों मोक्ष मानिए है। सो यहां ए भाववेदी है कि द्रव्यवेदी है, जो भाव वेदी है तो हम मानै ही हैं। द्रव्यवेदी है तो पुरुषस्त्रीवेदी तो लोकविषैं प्रचुर दोसै है, नपुंसक तो कोई विरला दीसै है। एक समयविषैं मोक्ष जानेवाले इतने नपुंसक कैसे सम्भवैं ? तातैं द्रव्यवेद अपेक्षा कथन बनें नाहीं। बहुरि जो कहोगे, नवम गुणस्थानतांई वेद कहे हैं, सो भी भाववेद अपेक्षा ही कथन है। द्रव्यवेद अपेक्षा होय तो चौदहवां गुण-स्थान पर्यन्त वेदका सद्भाव कहना सम्भवै। तातैं स्त्रीकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

शूद्र मुक्ति का निषेध

बहुरि शूद्रनिकों मोक्ष कहै। सो चांडालादिककों गृहस्थ सन्माना-दिककरि दानादिक कैसे दे, लोकविरुद्ध होय। बहुरि नीचकुलवालोंकै उत्तम परिणाम न होय सकै। बहुरि नीचगोत्रकर्मका उदय तो पंचम गुणस्थान पर्यन्त ही है। ऊपरिके गुणस्थान चढ़े बिना मोक्ष कैसें होय। जो कहोगे-सयम धारे पीछे वाकै उच्चगोत्रही का उदय कहिए, तो सयम धारने न धारने की अपेक्षातैं नीच उच्च गोत्र का उदय ठहरया। ऐसे होते असंयमी मनुष्य तीर्थंकर क्षत्रियादिक तिनकै भी नीच गोत्रका उदय ठहरै। जो उनकै कुल अपेक्षा उच्चगोत्रका उदय

कहोगे तो चांडालादिकके भी कुल अपेक्षा ही नीच गोत्र का उदय कह्यो। ताका सद्‍भाव तुम्हारे सूत्रनिविषै भी पचम गुणस्थान पर्यंत ही कह्या है। सो कल्पित कहनेमें पूर्वापर विरुद्ध होय ही होय। तातैं शूद्रनिकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

ऐसैं तिनहूने सर्वकै मोक्षकी प्राप्ति कही,सो ताका प्रयोजन यहु है जो सर्वका भला मनावना, मोक्षका लालच देना अर अपना कल्पित-मतकी प्रवृत्ति करनी। परन्तु विचार किए मिथ्या भासै है।

अछेरों का निराकरण

बहुरि तिनके शास्त्रनिविषै 'अछेरा' कहै है। सो कहै हैं—हुण्डावसर्पिणीके निमित्ततै भए है, इनको छेड़ने नाही। सो काल-दोषतै केई बात होय परन्तु प्रमाणविरुद्ध तो न होय। जो प्रमाण विरुद्ध भी होय, तो आकाशके फूल, गधे के सीग इत्यादिका होना भी बनै सो सम्भवै नाही। वे अछेरा कहै हैं सो प्रमाण विरुद्ध है। काहेतें सो कहिए है—

वर्द्धमानजिन केतेककालि ब्राह्मणीके गर्भविषै रहे,पीछै क्षत्रियाणी के गर्भ विषै बधे,ऐसा कहै हैं। सो काहूका गर्भ काहूकै धरचा प्रत्यक्ष भासै नाहीं, उन्मानादिकमें आवै नाहीं। बहुरि तीर्थंकरके भया कहिए, तो गर्भकल्याणक काहू के घरि भया, जन्मकल्याणक काहूके घरि भया। केतेक दिन रत्नवृष्टयादिक काहूके घर भए, केतेक दिन काहूके घरि भए। सोलह स्वप्न किसीको आए, पुत्र काहूकै भया इत्यादि असम्भव भासै। बहुरि माता तो दोय भई अर पिता तो एक ब्राह्मण ही रह्या। जन्म कल्याणादिविषै वाका सन्मान न किया,अन्य

कल्पित पिताका सन्मान किया । सो तीर्थंकरकै दोय पिताका कहना महाविपरीत भासै है । सर्वोत्कृष्टपद के धारककै ऐसे बचन सुनने भी योग्य नाहीं । बहुरि तीर्थंकरकै भी ऐसी अवस्था भई तो सर्वत्र ही अन्य स्त्रीका गर्भ अन्यस्त्रीकै धरि देना ठहरै । तो वैष्णव जैसें अनेक प्रकार पुत्र पुत्रीका उपजना बतावै हैं, तैसे यहु कार्य भया । सो ऐसे निकृष्ट काल विषै तो ऐसें होय ही नाहीं, तहाँ होना कैसे सम्भवै ? तातै यहु मिथ्या है ।

बहुरि मल्लि तीर्थंकरकों कन्या कहै हैं । सो मुनि देवादिककी सभा विषै स्त्रीका स्थिति करना उपदेश देना न सम्भव, वा स्त्रीपर्याय हीन है सो उत्कृष्ट तीर्थंकरपदधारककै न बनै । बहुरि तीर्थंकरकै नग्न लिंग ही कहै हैं सो स्त्रीकै नग्नपनो न सम्भवै । इत्यादि विचार किएं असम्भव भासै है ।

बहुरि हरिक्षेत्रका भोगभूमियांकों नरक गया कहैं । सो बंध वर्णन विषै तो भोगभूमियांकै देवगति देवायुहीका बंध कहै, नरक कैसे गया । सिद्धान्त विषै तो अनन्तकाल विषै जो बात होय, सो भी कहैं । जैसे तीसरे नरक पर्यन्त तीर्थंकर प्रकृतिका सत्व कह्या, भोगभूमियांकै नरक आयु गतिका बंध न कह्या, सो केवली भूले तो नाहीं । तातै यहु मिथ्या है । ऐसें सर्व अछेरे असम्भव जाननें । बहुरि वे कहै हैं इनकों छेड़ने नाहीं सो झूठ कहनेवाला ऐसें ही कहै ।

बहुरि जो कहोगे—दिगम्बरविषैं जैसे तीर्थंकरकै पुत्री, चक्रवर्तिका मान भंग इत्यादि कार्य कालदोषतै भया कहै हैं, तैसे ए भी भए । सो ये कार्य तो प्रमाण विरुद्ध नाहीं । अन्यकै होते थे सो महंतनिकै भए

तातैं काल दोष कह्या है । गर्भहरणादि कार्य प्रत्यक्ष अनुमानादितैं विरुद्ध, तिनका होना कैसें सम्भवै ? बहुरि अन्य भी घने ही कथन प्रमाणविरुद्ध कहे हैं। जैसें कहे हैं, सर्वार्थसिद्धिके देव मन ही तैं प्रश्न करैं हैं, केवली मनहीतै उत्तर दे है। सो सामान्य जीव के मन की बात मनःपर्ययज्ञानी बिना जानि सकै नाही । केवलीके मन की सर्वार्थसिद्धिके देव कैसे जानै? बहुरि केवलीकै भावमनका तो अभाव है, द्रव्यमन जड आकारमात्र है, उत्तर कौन दिया। तातै मिथ्या है। ऐसै अनेक प्रमाणविरुद्ध कथन किए है, तातै तिनके आगम कल्पित जानने ।

केवली के आहार नीहारका निराकरण

बहुरि ते श्वेताम्बर मतवाले देव गुरु धर्मका स्वरूप अन्यथा निरूपै है । तहाँ केवलीकै क्षुधादिक दोष कहै । सो यहु देवका स्वरूप अन्यथा है। काहेतै, क्षुधादिक दोष होतै आकुलता होय, तब अनन्त सुख कैसै बनै ? बहुरि जो कहोगे, शरीरको क्षुधा लागै है, आत्मा तद्रूप न हो है, तो क्षुधादिकका उपाय आहारादिक काहेकों ग्रहण किया कहो हो । क्षुधादिकरि पीडित होय, तब ही आहार ग्रहण करै। बहुरि कहोगे, जैसे कर्मोदयतै विहार हो है, तैसे ही आहार ग्रहण हो है। सो विहार तो विहायोगति प्रकृतिका उदय ते हो है अर पीड़ाका उपाय नाही अर बिना इच्छा भी किसी जीवकै होता देखिए है। बहुरि आहार है सो प्रकृतिका उदयतै नाहीं, क्षुधाकरि पीडित भए ही ग्रहण करै है । बहुरि आत्मा पवनादिककों प्रेरै तब ही निगलना हो है, तातै विहारवत् आहार नाहीं। जो कहोगे—

सातावेदनीयके उदयतें आहार ग्रहण हो है, सो बनै नाहीं । जो जीव क्षुधादिकरि पीड़ित होय, पीछें आहारादिक ग्रहणतें सुख मानें, ताकै आहारादिक साताके उदयतै कहिए । आहारादिकका ग्रहण साता वेदनीयका उदयतै स्वयमेव होय,ऐसे तो है नाहीं । जो ऐसें होय तो सातावेदनीयका मुख्यउदय देवनिकै है,ते निरन्तर आहार क्यों न करें। बहुरि महामुनि उपवासादि करे, तिनकै साताका भी उदय अर निरन्तर भोजन करनेवालों कै असाताका भी उदय सम्भवै । तातै जैसें बिना इच्छा विहायोगतिके उदयतै विहार सम्भवै, तैसे बिना इच्छा केवल सातावेदनीय ही के उदयतें आहारका ग्रहण सम्भवै नाही ।

बहुरि वे कहै हैं सिद्धान्त विषै केवलीकै क्षुधादिक ग्यारह परीषह कहै है, तातै तिनकै क्षुधाका सद्भाव सम्भवै है । बहुरि आहारादिक बिना तिनकी उपशातता कैसै होय,तातै तिनकै आहारादिक मानै हैं।

ताका समाधान—कर्मप्रकृतिनिका उदय मद तीव्र भेद लिए हो है । तहां अतिमद उदय होते तिस उदयजनित कार्यकी व्यक्तता भासै नाहीं। तातै मुख्यपने अभाव कहिए, तारतम्यविषै सद्भाव कहिए । जैसें नवम गुणस्थान विषै वेदादिकका उदय मन्द है, तहां मैथुनादि क्रिया व्यक्त नाही, तातै तहां ब्रह्मचर्य्य हो कह्या । तारतम्य विषैं मैथुनादिकका सद्भाव कहिए है । तैसे केवलीकै असाताका उदय अति मंद है । जातैं एक एक कांडकविषै अनन्तवें भाग अनुभाग रहै, ऐसे बहुत अनुभागकांडकनि करि वा गुणसंक्रमणादिककरि सत्ता विषै असातावेदनीयका अनुभाग अत्यन्त मंद भया, ताका उदय विषैं क्षुधा ऐसी व्यक्त होती नाहीं जो शरीरको क्षीण करै । अर मोहके अभावतैं

क्षुधादिक जनित दुःख भी नाहीं, तातें क्षुधादिकका अभाव कहिए । तारतम्यविषें तिनका सद्भाव कहिए है । बहुरि तें कह्या—आहारादिक बिना तिनकी उपशांतता कैसे होय, सो आहारादिकरि उपशांत होने योग्य क्षुधा लागै तो मन्द उदय काहेका रह्या ? देव भोगभूमियां आदिकक किंचित् मद उदय होतें ही बहुत काल पीछे किंचित् आहार ग्रहण हो है तो इनकै तो अतिमंद उदय भया है, तातें इनकै आहारका अभाव सम्भवै है ।

बहुरि वह कहै है, देव भोगभूमियोका तो शरीर ही वैसा है जाकों भूख थोरी वा घनें काल पीछे लागै, इनिका तो शरीर कर्मभूमिका औदारिक है । तातें इनिका शरीर आहार बिना देशोनकोडि पूर्व-पर्यन्त उत्कृष्टपने कैसे रहै ?

ताका समाधान—देवादिकका भी शरीर वैसा है, सो कर्मके ही निमित्तें है । यहां केवलज्ञान भए ऐसा ही कर्म उदय भया, जाकरि शरीर ऐसा भया, जाकी भूख प्रगट होती ही नाही । जैसें केवलज्ञान भए पहलें केश नख बधें थे, अब बधे (बढे) नाहीं । छाया होती थी सो होती नाहीं । शरीर विषै निगोद थी, ताका अभाव भया । बहुत प्रकारकरि जैसे शरीरकी अवस्था अन्यथा भई, तैसें आहार बिना ही शरीर जैसाका तैसा रहै ऐसी भी अवस्था भई । प्रत्यक्ष देखो, औरनिकों जरा व्यापै तब शरीर शिथिल होय जाय, इनिका आयुका अन्तपर्यन्त शरीर शिथिल न होय । तातें अन्य मनुष्यनिका अर इनिका शरीर की समानता सम्भवै नाही । बहुरि जो तू कहैगा—देवादिकके आहार ही ऐसा है जाकरि बहुत कालकी भूख मिटै, इनिकै

भूख काहे तें मिटी अर शरीर पुष्ट कैसें रह्या ? तो सुनि, असाताका उदय मंद होनेतें मिटी अर समय समय परम औदारिक शरीर वर्गणा का ग्रहण हो है सो वह नो कर्म आहार है सो ऐसी ऐसी वर्गणाका ग्रहण हो है जाकरि क्षुधादिक व्यापै नाही वा शरीर शिथिल होय नाहीं। सिद्धान्तविषै याहीकी अपेक्षा केवलीको आहार कह्या है। अर अन्नादिकका आहार तो शरीरकी पुष्टताका मुख्य कारण नाहीं। प्रत्यक्ष देखो, कोऊ थोरा आहार ग्रहै, शरीर पुष्ट बहुत होय, कोऊ बहुत आहार ग्रहै, शरीर क्षीण रहै। बहुरि पवनादि साधनेवाले बहुत काल ताईं आहार न ले, शरीर पुष्ट रह्या करै वा ऋद्धिधारी मुनि उपवासादि करै, शरीर पुष्ट बन्या रहै। सो केवलीकै तो सर्वोत्कृष्टपना है, उनकै अन्नादिक बिना शरीर पुष्ट बन्या रहै तो कहा आश्चर्य भया। बहुरि केवली कैसें आहारकों जांय, कैसें याचैं।

बहुरि वे आहारकों जांय, तब समवशरण खाली कैसें रहै। अथवा अन्यका ल्याय देना ठहरावोगे तो कौन ल्याय दें, उनके मन की कौन जानै। पूर्व उपवासादिकको प्रतिज्ञा करी थी, ताका कैसें निर्वाह होय। जोव अन्तराय सर्वप्रतिभासै, कैसें आहार ग्रहै? इत्यादि विरुद्धता भासै है। बहुरि वे कहै हैं—आहार ग्रहै हैं, परन्तु काहूकों दीसै नाहीं। सो आहार ग्रहणकों निंद्य जान्या, तब ताका न देखना अतिशयविषै लिख्या। सो उनकै निंद्यपना रह्या अर और न देखें हैं तो कहा भया। ऐसें अनेक प्रकार विरुद्धता उपजै है।

बहुरि अन्य अविवेकताकी बातें सुनो—केवलीकै नीहार कहै हैं, रोगादिक भया कहै हैं अर कहैं, काहूने तेजो लेश्या छोरो, ताकरि

वर्द्धमानस्वामीकै पेठूंगाका (पेचिसका) रोग भया, ताकरि बहुत बार निहार होने लागा । सो तीर्थंकर केवलीकै भी ऐसा कर्मका उदय रह्या अर अतिशय न भया, तो इन्द्रादिकरि पूज्यपना कैसें शोभै । बहुरि नीहार कैसे करै, कहाँ करै, कोऊ संभवती बातें नाहीं। बहुरि जैसे रागादि युक्त छद्मस्थकै क्रिया होय, तैसे केवलीकै क्रिया ठहरावें हैं । वर्द्धमान स्वामीका उपदेश विषै 'हे गौतम' ऐसा बारंबार कहना ठहरावे है, सो उनकै तो अपना कालविषै सहज दिव्यध्वनि हो है, तहाँ सर्वकों उपदेश हो है, गौतमकों संबोधन कैसे बनै ? बहुरि केवलीकै नमस्कारादिक क्रिया ठहरावें हैं, सो अनुराग बिना वंदना संभवै नाही । बहुरि गुणाधिककों वदना सभवै, उन सेती कोई गुणाधिक रह्या नाही ।सो कैसे बनै ? बहुरि हाटिविषै समवसरण उतरचा कहैं,सो इन्द्रकृत समवसरण हाटिविषै कैसे रहै ? इतनी रचना तहाँ कैसें समावै । बहुरि हाटि विषै काहेको रहै ? कहा इन्द्र हाटि सारिखी रचना करनेकों भी समर्थ नाही,जातें हाटिका आश्रय लीजिए। बहुरि कहै–केवलो उपदेश देनेकों गए । सो घरि जाय उपदेश देना अति रागतें होय, सो मुनिकै भी सभवै नाही । केवलीकै कैसे बनै ? ऐसे ही अनेक विपरीतिता तहा प्ररूपै है। केवली शुद्ध केवलज्ञानदर्शनमय रागादि रहित भए है, तिनकै अघातिनिके उदयतें संभवती क्रिया कोई हो है । केवलीकै मोहादिकका अभाव भया है तातैं उपयोग मिले जो क्रिया होय सकै, सो सभवै नाही । पाप प्रकृतिका अनुभाग अत्यत मद भया है । ऐसा मद अनुभाग अन्य कोईकै नाहीं । तातें अन्यजीवनिकै पापउदयतें जो क्रिया होती देखिए है,सो केवलीकै

न होय । ऐसें केवली भगवानकै सामान्य मनुष्यकीसी क्रिया का सद्भाव कहि देवका स्वरूपकों अन्यथा प्ररूपै हैं ।

मुनि के वस्त्रादि उपकरणों का प्रतिषेध

बहुरि गुरुका स्वरूपकों अन्यथा प्ररूपै हैं । मुनिके वस्त्रादिक चौदह उपकरण ❀ कहै हैं । सो हम पूछै है, मुनिकों निर्ग्रंथ कहै अर मुनिपद लेते नवप्रकार सर्वपरिग्रहका त्यागकरि महाव्रत अंगीकार करै, सो ए वस्त्रादिक परिग्रह हैं कि नाही । जो हैं तो त्याग किए पीछे काहेको राखे अर नाही हैं तो वस्त्रादिक गृहस्थ राखे ताको भी परिग्रह मति कहो । सुवर्णादिकहीकों परिग्रह कहो । बहुरि जो कहोगे, जैसे क्षुधाके अर्थि आहार ग्रहण कीजिए है, तैसै शीत उष्णादिकके अर्थि वस्त्रादिक ग्रहण कीजिए है । सो मुनिपद अंगीकार करतें आहारका त्याग किया नाही, परिग्रह का त्याग किया है । बहुरि अन्नादिकका तो संग्रह करना परिग्रह है, भोजन करने जाइये सो परिग्रह नाही । अर वस्त्रादिकका संग्रह करना वा पहरना सर्व ही परिग्रह है, सो लोकविषै प्रसिद्ध है । बहुरि कहोगे, शरीरकी स्थितिके अर्थि वस्त्रादिक राखिए है—ममत्व नाही है, ताते इनिको परिग्रह न कहिए है । सो श्रद्धानविषैं तो जब सम्यग्दृष्टि भया तबही समस्त परद्रव्यविषै ममत्वका अभाव भया । तिस अपेक्षाते चौथा गुणस्थान ही परिग्रह

❀ पात्र १ पात्रबन्ध २ पात्र केसरिकर ३ पटलिकाएँ ४–५ रजस्त्राण ६ गोच्छक ७ रजोहरण ८ मुखवस्त्रिका ९ दो सूती कपड़े १०–११ एक ऊनी कपड़ा १२ मात्रक १३ चोलपट्ट १४ देखो वृहत्क० सू० उ० ३ भा० गा० ३९६२ से ३९६५ तक ।

रहित कहो। अर प्रवृत्तिविषैं ममत्व नाहीं तो कैसे ग्रहण करे है। तातें वस्त्रादिक ग्रहण धारण छूटेगा, तब ही निःपरिग्रह होगा। बहुरि कहोगे — वस्त्रादिककों कोई लेय जाय तो क्रोध न करैं वा क्षुधादिक लागै तो वे बेचैं नाहीं वा वस्त्रादिक पहरि प्रमाद करैं नाहीं, परिणामनिकी थिरताकरि धर्म ही साधै हैं तातें ममत्व नाहीं। सो बाह्य क्रोध मति करो परन्तु जाका ग्रहण विषै इष्ट बुद्धि होय तो ताका वियोगविषै अनिष्टबुद्धि होय ही होय। जो अनिष्टबुद्धि न भई तो ताके अर्थि याचना काहेकों करिए है? बहुरि बेचते नाहीं, सो धातु राखनेते अपनी हीनता जानि नाही बेचिए है। जैसे धनादि राखने तैसें ही वस्त्रादि राखने। लोकविषै परिग्रहके चाहक जीवनिकै दोउनिकी इच्छा है। तातें चोरादिकके भयादिकके कारन दोऊ समान हैं। बहुरि परिणामनिकी स्थिरताकरि धर्मसाधनही तै परिग्रहपना न होय। जो काहूको बहुत शीत लागेगा सो सोड़ि राखि परिणामनिकी थिरता करेगा अर धर्मसाधेगा तो वाकों भी निःपरिग्रह कहो। ऐसें गृहस्थधर्म मुनिधर्म विषै विशेष कहा रहेगा। जाकै परीषह सहनेकी शक्ति न होय सो परिग्रह राखि धर्म साधै ताका नाम गृहस्थधर्म अर जाकै परिणाम निर्मल भए परीषहकरि व्याकुल न होय सो परिग्रह न राखै अर धर्म साधै ताका नाम मुनिधर्म, इतना ही विशेष है। बहुरि कहोगे, शीतादिकी परीषहकरि व्याकुल कैसे न होय। सो व्याकुलता तो मोहके उदयके निमित्ततें है। सो मुनिकै षष्ठादि गुणस्थाननिविषैं तीन चौकड़ीका उदय नाही अर संज्वलनके सर्वघाती स्पर्द्धकनिका उदय नाहीं, देशघाती स्पर्द्धकनिका उदय है सो तिनका किछू बल नाहीं।

जैसे वेदक सम्यग्दृष्टिके सम्यक्मोहनीय का उदय हैं सो सम्यक्त्वकों घात न करि सके तैसे देशघाती संज्वलनका उदय परिणामनिकों व्याकुल करि सके नाही । अहो मुनिनिकै अर औरनिके परिणामनिकी समानता है नाहीं। और सबनिकै सर्वघातीका उदय है, इनिकै देशघाती का उदय है । तातैं औरनिकै जैसे परिणाम होंय तैसे उनकै कदाचित् न होंय। तातैं जिनकै सर्वघातीकषायनिका उदय होय ते गृहस्थ ही रहैं अर जिनकै देशघाती का उदय होय ते मुनिधर्म अंगीकार करें। ताकै शीतादिककरि परिणाम व्याकुल न होय तातैं वस्त्रादिक राखै नाही। बहुरि कहोगे—जैन शास्त्रनिविषें चौदह उपकरणमुनि राखैं, ऐसा कह्या है। सो तुम्हारेही शास्त्रनिविषै कह्या है, दिगम्बर जैनशास्त्रनिविषै तो कहे नाही। तहाँ तो लंगोटमात्र परिग्रह रहें भी ग्यारही प्रतिमा का धारकको श्रावक ही कह्या। सो अब यहा विचारो, दोऊनिमें कल्पित वचन कौन है? प्रथम तो कल्पित रचना कषायी होय सो करै। बहुरि कषायी होय सोही नीचापदविषै उच्चपनों प्रगट करै। सो यहाँ दिगम्बरविषै वस्त्रादि राखें धर्म होय ही नाहीं, ऐसा तो न कह्या परन्तु तहाँ श्रावकधर्म कह्या। श्वेताम्बर विषै मुनिधर्म कह्या। सो यहाँ जाने नीची क्रिया होतें उच्चत्व पद प्रगट किया सो ही कषायी है। इस कल्पित कहनेकरि आपकों वस्त्रादि राखतें भी लोक मुनि मानने लागै, तातैं मानकषाय पोष्या गया। अर औरनिको सुगमक्रियाविषै उच्चपद का होना दिखाया, तातैं घनें लोक लगि गए। जे कल्पित मत भए हैं, ते ऐसैं ही भए हैं। तातै कषायी होइ वस्त्रादि होतें मुनिपना कह्या है, सो पूर्वोक्त

युक्तिकरि विरुद्ध भासै है। तातैं ए कल्पितवचन हैं, ऐसा जानना।

बहुरि कहोगे—दिगम्बरविषैं भी शास्त्र पीछी आदि उपकरण मुनिके कहे हैं, तैसें हमारै चौदह उपकरण कहे हैं।

ताका समाधान—जाकरि उपकार होय ताका नाम उपकरण है। सो यहां शीतादिककी वेदना दूरि करनेतैं उपकरण ठहराईए, तो सर्व-परिग्रह सामग्री उपकरण नाम पावै। सो धर्मविषैं इनिका कहा प्रयोजन? ए तो पापके कारण है। धर्मविषै तो धर्मका उपकारी जे होंय तिनका नाम उपकरण है। सो शास्त्र ज्ञानकौ कारण, पीछी दयाकौं कारण, कमंडलु शौचकौं कारण,सो ए तो धर्मके उपकारी भए, वस्त्रादिक कैसे धर्मके उपकारी होंय? वे तो शरीरका सुखहीके अर्थि धारिए है। बहुरि सुनो जो शास्त्र राखि महतता दिखावैं, पीछोकरि बुहारी दें, कमडलुकरि जलादिक पीवैं वा मैल उतारैं,तो शास्त्रादिक भी परिग्रह ही है। सो मुनि ऐसे कार्य करै नाही। तातै धर्मके साधनकों परिग्रह संज्ञा नाही। भोगके साधनकों परिग्रह सज्ञा हो है, ऐसा जानना। बहुरि कहोगे—कमडलुतै तो शरीरहीका मल दूरि करिए है, सो मुनि मल दूरि करनेकी इच्छाकरि कमंडलु नाही राखै है। शास्त्र बांचना आदि कार्य करैं अर मललिप्त होंय तो तिनका अविनय होय, लोकनिंद्य होय, तातें इस धर्मके अर्थि कमंडलु राखिए हैं। ऐसैं पीछी आदि उपकरण सम्भवै, वस्त्रादिकों उपकरण संज्ञा सम्भवै नाहीं। काम अरति आदि मोहका उदयतै विकार बाह्य प्रगट होय अर शीतादिक सहे न जांय तातै विकार ढांकनेकों वा शीतादि मिटावनेकों वस्त्रादिक राखैं अर मानके उदयतें अपनी महंतता भी चाहैं तातैं

कल्पित युक्तिकरि उपकरण ठहराए हैं। बहुरि घरि घरि याचनाकरि आहार ल्यावना ठहरावें हैं। सो प्रथम तो यह पूछिए है, याचना धर्म का अंग है कि पापका अंग है। जो धर्मका अंग है तो मांगने वाले सर्व धर्मात्मा भए। अर पापका अंग है तो मुनिकें कैसे सम्भवै ?

बहुरि जो तू कहेगा, लोभकरि किछू धनादिक याचें तो पाप होय, यहु तो धर्म साधनके अर्थि शरीरकी स्थिरता किया चाहै है तातैं आहारादिक याचै है।

ताका समाधान–आहारादिककरि धर्म होता नाहीं, शरीरका सुख हो है। सो शरीरका सुखके अर्थि अति लोभ भए याचना करिए है। जो अति लोभ न होता, तो आप काहेका मांगता। वे ही देते तो देते, न देते तो न देते। बहुरि अतिलोभ भए इहाँ हो पाप भया, तब मुनि-धर्म नष्ट भया, और धर्म कहा साधेगा। अब वह कहै है—मनविषें तो आहारकी इच्छा होय अर याचै नाही तो मायाकषाय भया अर याचनेमे हीनता आवै है सो गर्वकरि याचै नाही तब मानकषाय भया। आहार लेना था सो मागि लिया। यामे अति लोभ कहा भया अर यातैं मुनिधर्म कैसे नष्ट भया सो कहो। याको कहिए है—

जैसे काहू व्यापारीकैं कुमावनेकी इच्छा मन्द है सो हाटि (दुकान) ऊपरि तो बैठे अर मनविषै व्यापारकरनेकी इच्छा भी है परन्तु काहू-कों वस्तु लेनेदेनेरूप व्यापारके अर्थि प्रार्थना नाही करै है। स्वयमेव कोई आवै तो अपनी विधि मिले व्यापार करै है तो ताकै लोभकी मंदता है, माया वा मान नाही है। माया मानकषाय तो तब होय, जब छलकरनेके अर्थि वा अपनी महंतताके अर्थि ऐसा स्वांग करै। सो

भले व्यापारीकै ऐसा प्रयोजन नाहीं तातैं वाकै माया मान न कहिए। तैसें मुनिनकै आहारदिककी इच्छा मन्द है सो आहार लेनेको आवैं अर मनविषैं आहार लेनेकी इच्छा भी है परन्तु आहारके अर्थि प्रार्थना नाहीं करैं हैं। स्वयमेव कोई दे तो अपनी विधि मिले आहार ले हैं तो उनकै लोभकी मंदता है, माया वा मान नाही है। माया मान तो तब होय जब छल करनेके अर्थि वा महंतताके अर्थि ऐसा स्वांग करें। सो मुनिनकै ऐसे प्रयोजन है नाही तातैं इनिकै माया मान नाहीं है। जो ऐसे ही माया मान होय तो जे मनहीकरि पाप करैं वचनकायकरि न करें, तिन सबनिकै माया ठहरै। अर जे उच्चपदवीके धारक नीचवृत्ति अंगीकार नाही करैं हैं, तिन सबनिकै मान ठहरै। ऐसें अनर्थ होय! बहुरि तैं कह्या—"आहार मांगनेमें अतिलोभ कहा भया? सो अतिकषाय होय तब लोकनिद्य कार्य अंगीकारकरिकै भी मनोरथ पूर्ण किया चाहै। सो मागना लोकनिद्य है, ताकों भी अंगीकारकरि आहारकी इच्छा पूर्ण करनेकी चाहि भई। तातै यहाँ अति लोभ भया। बहुरि तैं कह्या–"मुनि धर्म कैसें नष्ट भया" सो मुनि धर्म विषैं ऐसी तीव्र कषाय सम्भवै नाहीं। बहुरि काहूका आहार देनेंका परिणाम न था, याने वाका घर में जाय याचना करी। तहाँ वाकै सकुचना भया वा न दिए लोकनिंद्य होनेका भय भया तातैं वाकों आहार दिया। सो वाका अन्तरंग प्राण पीड़नेतैं हिंसाका सद्भाव आया। जो आप वाका घरमें न जाते, उसही कै देने का उपाय होता तो देता, वाकै हर्ष होता। यहु तो दबाव करि कार्य करावना भया। बहुरि अपना कार्यके अर्थि याचनारूप वचन है सो

पापरूप है । सो यहाँ असत्य वचन भी भया । बहुरि वाकै देनेकी इच्छा न थी, यानै याच्या, तब वानै अपनी इच्छातें दिया नाहीं— सकुचिकरि दिया । तातै अदत्त-ग्रहण भी भया । बहुरि गृहस्थके घर में स्त्री जैसे तैसें तिष्ठै थी, यहु चल्या गया । तहाँ ब्रह्मचर्यको बाड़िका भंग भया । बहुरि आहार ल्याय केतेक काल राख्या । आहारादि के राखनेकों पात्रादिक राखे सो परिग्रह भया । ऐसे पाँच महाव्रतनिका भंग होनेतै मुनिधर्म नष्ट हो है तातै याचनाकरि आहार लेना मुनिका युक्त नाहीं ।

बहुरि वह कहै है—मुनिकै बाईस परीषहनिविषै याचना परीषह कह्या है, सो मांगे विना तिस परीषहका सहना कैसें होय ?

ताका समाधान—याचना करनेका नाम याचना परीषह नाहीं है । याचना न करनी, ताका नाम याचनापरीषह है । जातें अरति करनेका नाम अरति परीषह नाहीं, अरति न करनेका नाम अरति परीषह है, तैसें जानना । जो याचना करना परीषह ठहरै, तो रंकादि घनी याचना करें हैं, तिनकै घना धर्म होय । अर कहोगे, मान घटावनेतैं याकों परीषह कहैं हैं तो कोई कषायी कार्यके अर्थि कोई कषाय छोरे भी पापी ही होय । जैसें कोई लोभके अर्थि अपना अपमानकों भी न गिनै, तो वाकै लोभकी तीव्रता है । उस अपमान करावनेतै भी महा-पाप होय है । अर आपकै इच्छा किछू नाहीं, कोई स्वयमेव अपमान करै है तो वाकै महाधर्म है । सो यहाँ तो भोजनका लोभकै अर्थि याचना करि अपमान कराया तातै पाप ही है, धर्म नाहीं । बहुरि वस्त्रादिकके भी अर्थि याचना करै है सो वस्त्रादिक कोई धर्मका अंग

नाहीं है, शरीर सुखका कारण है । तातैं पूर्वोक्त प्रकार ताका निषेध जानना । देखो अपना धर्मरूप उच्चपदकों याचना करि नीचा करे हैं सो यामें धर्मकी हीनता हो है । इत्यादि अनेक प्रकार करि मुनि धर्म विषें याचना आदि नाहीं सम्भवै है । सो ऐसी असम्भवती क्रियाके धारक साधु गुरू कहै हैं। तातैं गुरूका स्वरूप अन्यथा कहै हैं।

धर्म का अन्यथा स्वरूप

बहुरि धर्मका स्वरूप अन्यथा कहै है । सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इनकी एकता मोक्षमार्ग है, सो ही धर्म है, सो इनिका स्वरूप अन्यथा प्ररूपैं हैं । सो ही कहिए है—

तत्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है, ताकी तो प्रधानता नाहीं । आप जैसे अरहंत देव साधु गुरू दया धर्मकों निरूपै हैं, तिनका श्रद्धानकों सम्यग्दर्शन कहै हैं । सो प्रथम तो अरहंतादिकका स्वरूप अन्यथा कहैं । बहुरि इतने ही श्रद्धानतै तत्त्व श्रद्धान भए बिना सम्यक्त्व कैसें होय, तातै मिथ्या कहै है । बहुरि तत्त्वनिका भी श्रद्धानकों सम्यक्त्व कहै हैं तो प्रयोजन लिए तत्त्वनिका श्रद्धान नाहीं कहै हैं । गुणस्थान मार्गणादिरूप जीव का, अणुस्कधादिरूप अजीवका, पाप पुण्यके स्थाननिका, अविरति आदि आश्रवनिका, व्रतादिरूप संवरका, तपश्चरणादिरूप निर्जराका, सिद्ध होने के लिंगादिके भेदनिकरि मोक्षका स्वरूप जैसें उनके शास्त्र विषैं कह्या है, तैसें सीखि लीजिए अर केवलीका वचन प्रमाण है, ऐसें तत्त्वार्थश्रद्धानकरि सम्यक्त्व भया मानै हैं । सो हम पूछें हैं, ग्रैवेयिक जानेवाला द्रव्यलिंगी मुनिकै ऐसा श्रद्धान हो है कि नाहीं। जो हो है, तो वाकों

मिथ्यादृष्टी काहेको कहिए। अर न हो है, तो वानै तो जैनलिंग धर्म बुद्धि करि धरघा है, ताकै देवादिकी प्रतीति कैसें नाहीं भई ? अर वाकै बहुत शास्त्राभ्यास है,सो वानै जीवादिके भेद कैसें न जानें। अर अन्यमतका लवलेश भी अभिप्रायमें नाहीं, ताकै अरहंत वचनकी कैसें प्रतीति नाहीं भई। तातैं वाकै ऐसा श्रद्धान तो होय परन्तु सम्यक्त्व न भया। बहुरि नारकी भोगभूमियां तियँच आदिकै ऐसा श्रद्धान होनेका निमित्त नाही अर तिनिकै बहुत कालपर्यंत सम्यक्त्व रहै है। तातैं वाकै ऐसा श्रद्धान नाहीं हो है, तौ भी सम्यक्त्व भया। तातैं सम्यक्श्रद्धानका स्वरूप यहु नाहीं। साँचा स्वरूप है, सो आगें वर्णन करेंगे, सो जानना।

बहुरि जो उनके शास्त्रनिका अभ्यास करना ताकों सम्यग्ज्ञान कहै हैं। सो द्रव्यलिंगी मुनिकै शास्त्राभ्यास होतें भी मिथ्याज्ञान कह्या, असयत सम्यग्दृष्टिकै विषयादिरूप जानना ताकों सम्यग्ज्ञान कह्या। तातै यहु स्वरूप नाहीं, सांचा स्वरूप आगे कहेंगे सो जानना। बहुरि उनकरि निरूपित अणुव्रत महाव्रतादिरूप श्रावक यतीका धर्म धारने करि सम्यक्चारित्र भया मानै। सो प्रथम तो व्रतादिका स्वरूप अन्यथा कहैं, सो किछू पूर्वें गुरू वर्णन विषै कह्या है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै महाव्रत होते भी सम्यक्चारित्र न हो है। अर उनका मतके अनुसारि गृहस्थादिककै महाव्रत आदि बिना अंगीकार किए भी सम्यक्चारित्र हो है,तातैं यह स्वरूप नाही। सांचा स्वरूप अन्य है,सो आगे कहेंगे।

यहा वे कहै हैं—द्रव्यलिंगीकै अंतरंग विषैं पूर्वोक्त श्रद्धानादिक

न भए, बाह्य ही भए, तातें सम्यक्त्वादि न भए।

ताका उत्तर—जो अंतरंग नाही अर बाह्य धारै,सो तो कपटकरि धारै। सो वाकै कपट होय तो ग्रैवेयक कैसे जाय, नरकादि विषें जाय। बंध तो अंतरंग परिणामनितै हो है। सो अंतरंग जिनधर्मरूप परिणाम भए बिना ग्रैवेयक जाना सम्भवै नाही। बहुरि व्रतादिरूप शुभोपयोगहीतें देवका बंध मानें अर याहीको मोक्षमार्ग मानै,सो बंध-मार्ग मोक्षमार्गकों एक किया, सो यहु मिथ्या है। बहुरि व्यवहार धर्म विषें अनेक विपरीति निरूपै है। निदकको मारनेमै पाप नाही, ऐसा कहै हैं। सो अन्यमती निदक तीर्थंकरादिकके होते भी भए, तिनकों इन्द्रादिक मारे नाही। सो पाप न होता, तो इन्द्रादिक क्यों न मारे। बहुरि प्रतिमाजीकै आभरणादि बनावै हैं, सो प्रतिबिम्ब तो वीतराग भाव बधावनेकों कारण स्थापन किया था। आभरणादि बनाए, अन्य मतकी मूर्तिवत् यहु भी भए। इत्यादि कहाँ ताँई कहिए, अनेक अन्यथा निरूपण करें हैं। या प्रकार श्वेताम्बर मत कल्पित जानना। यहाँ सम्यग्दर्शन आदिकका अन्यथा निरूपणतै मिथ्यादर्शनादिकहीकी पुष्टता हो है तातें याका श्रद्धानादि न करना।

ढूंढक मत निराकरण

बहुरि इन श्वेताम्बरनिविषै ही ढूंढिए प्रगट भए हैं, ते आपकों साँचे धर्मात्मा मानै हैं, सो भ्रम है। काहेतै सो कहिए है–

केई तो भेष धारि साधु कहावै है, सो उनके ग्रन्थनिके अनुसार भी व्रत समिति गुप्ति आदिका साधन नाहीं भासै है। बहुरि देखो मन बचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि सर्व सावद्ययोग त्याग

करनेकी प्रतिज्ञा करें, पीछें पालें नाहीं । बालककों वा भोलाकों वा शूद्रादिककों ही दीक्षा दें । सो ऐसे त्याग करें अर त्याग करतें ही किछू विचार न करें, जो कहा त्याग करूं हूं । पीछे पालै भी नाहीं अर ताकों सर्व साधु मानें । बहुरि यह कहै—पीछे धर्म बुद्धि हो जाय, तब तो याका भला हो है । सो पहले ही दीक्षा देनेवालेने प्रतिज्ञा भंग होती जानि प्रतिज्ञा कराई, बहुरि यानें प्रतिज्ञा अंगीकार करि भंग करी, सो यहु पाप कौनकों लाग्या । पीछे धर्मात्मा होनेका निश्चय कहा । बहुरि जो साधुका धर्म अंगीकार करि यथार्थ न पालै, ताकों साधु मानिए कै न मानिए। जो मानिए,तो जे साधु मुनि नाम धरावें हैं अर भ्रष्ट है,तिन सबनिकों साधु मानों । न मानिए,तो इनकै साधु-पना न रह्या । तुम जैसे आचरणते साधु मानो हो, ताका भी पालना कोऊ बिरलाकै पाईए है । सबनिकों साधु काहेको मानो हो ।

यहां कोऊ कहै—हम तो जाकै यथार्थ आचरण देखेंगे, ताकों साधु मानेंगे, औरको न मानेंगे । ताकों पूछिए है—

एक संघ विषै बहुत भेषी हैं । तहां जाकै यथार्थ आचरण मानो हो सो वह औरनिकों साधु मानै है कि न मानै है । जो मानै है, तो तुमतें भी अश्रद्धानी भया, ताकों पूज्य कैसे मानों हो । अर न मानै है, तो उन सेती साधुका व्यवहार काहेकों वर्त्तै है । बहुरि आप तो उनकों साधु न मानै अर अपने संघविषै राखि औरनि पासि साधु मनाय औरनिकों अश्रद्धानी करै, ऐसा कपट काहेकों करै । बहुरि तुम जाकों साधु न मानोगे तब अन्य जीवनिकों भी ऐसा ही उपदेश

करोगे, इनकों साधु मति मानों, ऐसें धर्मपद्धति विषें विरुद्ध होय। अर जाकों तुम साधु मानो हो तिसतै भी तुम्हारा विरुद्ध भया, जातैं वह वाकों साधु मानै है। बहुरि तुम जाकै यथार्थ श्राचरण मानो हो, सो विचारकरि देखो, वह भी यथार्थ मुनि धर्म्म नाही पालै है।

कोऊ कहै–अन्य भेषधारीनितै तो घनें अच्छे हैं तातै हम मानैं हैं। सो अन्यमतीनि विषै तो नाना प्रकार भेष सम्भवै, जातै तहां रागभावका निषेध नाही। इस जैनमतविषै तो जैसा कह्या, तैसा ही भए साधु सज्ञा होय।

यहाँ कोऊ कहै–शील संयमादि पालै हैं,तपश्चरणादि करै हैं, सो जेता करै तितना ही भला है।

ताका समाधान–यहु सत्य है, धर्म थोरा भी पाल्या हुआ भला ही है। परन्तु प्रतिज्ञा तो बड़े धर्मकी करिए अर पालिए थोरा, तो तहाँ प्रतिज्ञाभगतै महापाप हो है। जैसे कोऊ उपवासकी प्रतिज्ञाकरि एकबार भोजन करै तो वाकै बहुत बार भोजनका सयम होते भी प्रतिज्ञाभगतै पापी कहिए। तैसे मुनिधर्मकी प्रतिज्ञाकरि कोई किंचित् धर्म्म न पालै,तो वाकों शीलसंयमादि होतें भी पापी ही कहिए। अर जैसे एकंतकी (एकासनकी) प्रतिज्ञाकरि एक बार भोजन करै, तो धर्मात्मा ही है तैसे अपना श्रावकपद धारि थोरा भी धर्म साधन करें तो धर्मात्मा ही है। यहाँ तो ऊँचा नाम धराय नीची क्रिया करनेतें पापीपना सम्भवै है। यथायोग्य नाम धराय धर्मक्रिया करतें तो पापीपना होता नाही। जेता धर्म्म साधै, तितना ही भला है।

यहां कोऊ कहै–पंचमकालका अन्तर्यपन्त चतुर्विधि संघका सद्भाव

कह्या है। इनिकों साधु न मानिए, तो किसको मानिए ?

ताका उत्तर—जैसें इस कालविषें हंसका सद्भाव कह्या है अर गम्यक्षेत्रविषें हंस नाही दोसै हैं, तो औरनिकों तो हंस माने जाते नाहीं, हंसका लक्षण मिलें ही हंस माने जांय। तैसें इस कालविषें साधुका सद्भाव है अर गम्यक्षेत्रविषे साधु न दोसै हैं, तो औरनिकों तो साधु माने जाते नाही, साधु लक्षण मिले ही साधु माने जांय। बहुरि इनका भी प्रचार थोरे ही क्षेत्रविषे दोसै है, तहाँते परे क्षेत्रविषें साधुका सद्भाव कैसें मानें ? जो लक्षण मिले मानें, तो यहां भी ऐसें ही मानों। अर बिना लक्षण मिले ही मानें, तो तहाँ अन्य कुलिंगी हैं तिनहीकों साधु मानों। ऐसें विपरीति होय, तातें बनें नाहीं। कोऊ कहै—इस पंचमकालमे ऐसें भी साधुपद हो है, तो ऐसा सिद्धांतका वचन बताओ। बिना ही सिद्धांत तुम मानो हो, तो पापी होगा। ऐसे अनेक युक्तिकरि इनिकैं साधुपना बनै नाहीं है। अर साधुपना बिना साधु मानि गुरु मानें मिथ्यादर्शन हो है, जातैं भले साधुकों गुरू मानें ही सम्यग्दर्शन हो है।

प्रतिमाधारी श्रावक न होनेकी मान्यता का निषेध

बहुरि श्रावक धर्मकी अन्यथा प्रवृत्ति करावें हैं। त्रसकी हिंसा स्थूल मृषादिक होतें भी जाका किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा किंचित् त्याग कराय वाकों देशव्रती भया कहै। सो वह त्रसघातादिक जामें होय ऐसा कार्य करै। सो देशव्रत गुणस्थानविषें तो ग्यारह अविरति कहे हैं,तहाँ त्रसघात कैसे सम्भवै ? बहुरि ग्यारह प्रतिमा भेद श्रावकके हैं, तिन विषें दशमी ग्यारमी प्रतिमाधारक श्रावक तो कोई होता ही

नाहीं अर साधु होय। पूछे, तब कहैं—पडिमाधारी श्रावक अबार होय सकता नाहीं। सो देखो, श्रावकधर्म्म तो कठिन अर मुनिधर्म्म सुगम—ऐसा विरुद्ध भाषै हैं। बहुरि ग्यारमी प्रतिमा धारकके थोरा परिग्रह, मुनिकै बहुतपरिग्रह बतावै, सो सम्भवता बचन नाही। बहुरि कहैं, ए प्रतिमा तो थोरे ही काल पालि छोड़ि दीजिए है। सो ए कार्य उत्तम हैं तो धर्म्म बुद्धि ऊँची क्रियाकों काहेको छोरै अर नीचे कार्य हैं तो काहेकों अंगीकार करै। यहु सम्भवं ही नाहीं। बहुरि कुदेव कुगुरुकों नमस्कारादिक करतें भी श्रावकपना बतावै। कहै, धर्म्मबुद्धि-करि तो नाही बंदे है,लौकिक व्यवहार है। सो सिद्धांतविषै तो तिनि-की प्रशसा स्तवनकों भी सम्यक्त्वका अतिचार कहै अर गृहस्थनिका भला मनावनेके अर्थि बदना करतें भी किछू न कहैं। बहुरि कहोगे—भय लज्जा कुतूहलादिकरि बंदे हैं; तो इनिही कारणनिकरि कुशीलादि सेवन करतें भी पाप मति कहो, अतरंग विषै पापजान्या चाहिए। ऐसें सर्व आचारनविषैविरुद्ध होगा। देखो मिथ्यात्वसारिखे महापाप की प्रवृत्ति छुड़ावनेकी तो मुख्यता नाही अर पवनकायकी हिंसा ठह-राय उघारे मुख बोलना छुड़ावनेकी मुख्यता पाईए। सो क्रमभग उपदेश है। बहुरि धर्म्मके अंग अनेक है, तिनविषै एक परजोवकी दया ताकों मुख्य कहैं है, ताका भी विवेक नाही। जलका छानना, अन्नका शोधना, सदोष वस्तुका भक्षण न करना, हिंसादिकरूप व्यापार न करना इत्यादि याके अंगनिकी तो मुख्यता नाही।

मुंहपत्तिका निषेध

बहुरि पाटीका बांधना, शौचादिक थोरा करना, इत्यादि कार्यनि

की मुख्यता करैं हैं। सो मैलयुक्त पाटीकैथूकका सम्बन्धतैं जीव उपजैं तिनका तौ यत्न नाहीं अर पवनकी हिंसाका यत्न बतावैं। सो नासिकाकरि बहुत पवन निकसै, ताका तौ यत्न करते ही नाहीं। बहुरि जो उनका शास्त्रके अनुसारि बोलनेहीका यत्न किया, तौ सर्वदा काहेको राखिए। बोलिए, तब यत्न कर लीजिए। बहुरि जो कहैं— भूलि जाइए। तौ इतनी भी याद न रहै, तौ अन्य धर्मसाधन कैसें होगा ? बहुरि शौचादिक थोरे करिए, सो सम्भवता शौच तौ मुनि भी करै है। तातै गृहस्थकों अपने योग्य शौच करना। स्त्रीसंगमादिकरि शौच किए बिना सामायिकादि क्रिया करनेतैं अविनय, विक्षिप्तता-आदि करि पाप उपजै। ऐसें जिनकी मुख्यता करैं, तिनका भी ठिकाना नाहीं अर केई दयाके अग योग्य पालै हैं, हरितकायका त्याग आदि करै, जल थोरा नाखै, इनका हम निषेध करते नाहीं।

मूर्तिपूजा निषेध का निराकरण

बहुरि इस अहिंसाका एकांत पकड़ि प्रतिमा चैत्यालयपूजनादि क्रियाका उत्थापन करै है। सो उनहीके शास्त्रनिविषें प्रतिमाआदिका निरूपण है, ताकों आग्रहकरि लोपै हैं। भगवतीसूत्रविषें ऋद्धिधारी मुनिका निरूपण है तहां मेरुगिरि आदिविषें जाय **"तत्थ चेययाइं वंदई"** ऐसा पाठ है। याका अर्थ यहु—तहां चैत्यनिकों वंदे हैं। सो चैत्य नाम प्रतिमाका प्रसिद्ध है। बहुरि वे हठकरि कहै हैं—चैत्य शब्दके ज्ञानादिक अनेक अर्थ निपजै हैं, सो अन्य अर्थ हैं, प्रतिमाका अर्थ नाहीं। याकों पूछिए है—मेरुगिरि नन्दीश्वरद्वीपविषें जाय जाय तहां चैत्यवंदना करी, सो वहां ज्ञानादिकको वंदना करने का अर्थ कैसे

सम्भवै ? ज्ञानादिक की बंदना तो सर्वत्र सम्भवै । जो वंदने योग्य चैत्य वहाँ सम्भवै अर सर्वत्र न सम्भवै, ताकों तहाँ बंदनाकरनेका विशेष सम्भवै, सो ऐसा सम्भवता अर्थ प्रतिमा ही है अर चैत्यशब्दका मुख्य अर्थप्रतिमा ही है, सो प्रसिद्ध है। इस ही अर्थकरि चैत्यालय नाम सभवै है। याको हठकरि काहेकों लोपिए ।

बहुरि नन्दीश्वर द्वीपादिकविषै जाय, देवादिक पूजनादि क्रिया करै हैं, ताका व्याख्यान उनकै जहाँ तहाँ पाइए है । बहुरि लोकविषै जहां तहां अकृत्रिम प्रतिमाका निरूपण है । सो या रचना अनादि है सो यह रचना भोग कुतूहलादिकके अर्थ तो है नाही। अर इन्द्रादिकनिके स्थाननिविषै निःप्रयोजन रचना सम्भवै नाही। सो इन्द्रादिक तिनको देखि कहा करै है । कै तो अपने मदिरनिविषै निःप्रयोजन रचना देखि उसतै उदासीन होते होंगे, तहा दुःखी होते होंगे, सो सम्भवै नाही । कै आछी रचना देखि विषय पोषते होंगे, सो अर्हंत मूर्त्तिकरि सम्यग्दृष्टी अपना विषय पोषै, यह भी सम्भवै नाहीं । तातै तहां तिनको भक्तिआदिक ही करै है, यह ही सम्भवै है । सो उनकै सूर्याभदेवका व्याख्यान है । तहा प्रतिमाजीके पूजनेका विशेष वर्णन किया है। याको गोपनेके अर्थि कहै है, देवनिका ऐसा ही कर्त्तव्य है। सो सांच, परन्तु कर्तव्यका तो फल होय ही होय । सो तहाँ धर्म हो है कि पाप हो है। जो धर्म हो है, तो अन्यत्र पाप होता था, यहां धर्म भया । याकों औरनिके सदृश कैसें कहिए ? यहु तो योग्य कार्य भया । अर पाप हो है तो तहां 'णमोत्थुणं'का पाठ पढ़्या, सो पापके ठिकानें ऐसा पाठ काहेकों पढ़्या । बहुरि एक विचार यहाँ यहु आया, जो

'णमोत्थुणं' के पाठ विषें तो अरहंतकी भक्ति है । सो प्रतिमाजीके आगें जाय यहु पाठ पढ्या,तातै प्रतिमाजीके आगै जो अरहंतभक्तिकी क्रिया है सो करनी युक्त भई। बहुरि जो वे ऐसा कहै—देवनिकै ऐसा कार्य है, मनुष्यनिकै नाहीं; जाते मनुष्यनिकै प्रतिमा आदि बनावने विषें हिंसा हो है । ता उनहीके शास्त्रनिविषें ऐसा कथन है, द्रोपदी राणी प्रतिमाजीका पूजनादिक जैसे सूर्याभदेव किया,तैसे करती भई। तातै मनुष्यनिकै भी ऐसा कार्य कर्त्तव्य है । यहां एक यहु विचार आया—चैत्यालय प्रतिमा बनावनेकी प्रवृत्ति न थी, तो द्रोपदी कैसै प्रतिमाका पूजन किया। बहुरि प्रवृत्ति था,तो बनावनेवाले धर्मात्मा थे कि पापी थे । जो धर्मात्मा थे तो गृहस्थनिको एसा कार्य करना योग्य भया अर पापी थे तो तहां भोगादिकका प्रयोजन तो था नाहीं, काहेकों बनाया। बहुरि द्रोपदी तहां 'णमोत्थुणं' का पाठ किया वा पूजनादि किया, सो कुतूहल किया कि धर्म किया। जो कुतूहल किया तो महापापिणी भई। धर्मविषै कुतूहल कहा । अर धर्म किया तो औरनिको भी प्रतिमाजीकी स्तुति पूजा करनी युक्त है । बहुरि वे ऐसी मिथ्यायुक्ति बनावै है—जैसे इन्द्रकी स्थापनातै इन्द्रका कार्य सिद्ध नाहीं, तैसे अरहंत प्रतिमा करि कार्य सिद्ध नाहीं। सो अरहंत आप काहूको भक्त मानि भला करते होय तौ तो ऐसै भी मानै । सो तो वे वीतराग हैं । यहु जीव भक्ति रूप अपने भावनितै शुभफल पावै है। जैसे स्त्री का आकार रूप काष्ठ पाषाणकी मूर्ति देखि, तहां विकाररूप होय अनुराग करै, तो ताकै पाप बंध होय । तैसें अरहंत का आकाररूप धातु पाषाणादिक की मूर्ति देखि धर्म बुद्धितें तहां

अनुराग करैं, तौ शुभकी प्राप्ति कैसें न होइ। तहां वे कहैं हैं, बिना प्रतिमा ही हम अरहंत विषें अनुरागकरि शुभ उपजावेंगे। तौ इनिकौं कहिए है—आकार देखें जैसा भाव होय, तैसा परोक्ष स्मरण किए होय नाही। याहीतें लोकविषें भी स्त्रीका अनुरागी स्त्रीका चित्र बनावे है। तातें प्रतिमाका आलंबनिकरि भक्ति विशेष होनेतें विशेष शुभकी प्राप्ति हो है।

बहुरि कोऊ कहै—प्रतिमाकों देखो, परन्तु पूजनादिक करने का कहा प्रयोजन है?

ताका उत्तर—जैसें कोऊ किसी जीव का आकार बनाय घात करै तो वाकै उस जीवकी हिंसा किए कासा पाप निपजै वा कोऊ काहूका आकार बनाय द्वेष बुद्धितै वाकी बुरी अवस्था करै तो जाका आकार बनाया वाकी बुरी अवस्था किए का सा फल निपजै। तैसें अरहंतका आकार बनाय राग बुद्धितै पूजनादि करै तो अरहंतके पूजनादि किए का सा शुभ (भाव) निपजै वा तैसा ही फल होय। अति अनुराग भए प्रत्यक्ष दर्शन न होतें आकार बनाय पूजनादि करिए है। इस धर्मानुरागतै महापुण्य उपजै है।

बहुरि ऐसी कुतर्क करै हैं—जो जाकै जिस वस्तुका त्याग होय ताके आगे तिस वस्तुका धरना हास्य करना है। तातें बंदनादिकरि अरहंतका पूजन युक्त नाहीं।

ताका समाधान—मुनिपद लेतें ही सर्व परिग्रहका त्याग किया था, केवलज्ञान भए पीछें तीर्थंकरदेवकै समवशरणादि बनाए, छत्र चामरादि किए, सो हास्य करी कि भक्ति करी। हास्य करी तो इन्द्र

महापापी भया, सो बनै नाहीं । भक्ति करी तो पूजनादिकविषै भी भक्ति ही करिए है। छद्मस्थके आगें त्याग करी वस्तुका धरना हास्य करना है, जातें वाकै विक्षिप्तता होय आवै है। केवलीकै वा प्रतिमाके आगें अनुरागकरि उत्तम वस्तु धरने का दोष नाहीं। उनकै विक्षिप्तता होय नाहीं। धर्मानुरागतें जीवका भला होय।

बहुरि वे कहै हैं—प्रतिमा बनावने विषें, चैत्यालयादि करावने विषें, पूजनादि करावने विषें हिंसा होय अर धर्म अहिंसा है । तातें हिंसाकरि धर्म माननेतें महापाप हो है, तातें हम इन कार्यनिकों निषेधें हैं।

ताका उत्तर—उनही के शास्त्रविषै ऐसा वचन है—

सुच्चा जाणइ कल्लाणं सुच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणए सुच्चा जं सेय तं समायर ॥१॥

यहाँ कल्याण पाप उभय ए तीन शास्त्र सुनिकरि जाणै, ऐसा कह्या। सो उभय तो पाप अर कल्याण मिलें होय सो ऐसा कार्यका भी होना ठहरचा। तहां पूछिए है—केवल धर्म्मतें तो उभय घाटि है ही अर केवल पापतें उभय बुरा है कि भला है। जो बुरा है तो यामें तो किछू कल्याणका अंश मिल्या, पापतें बुरा कैसे कहिए। भला है तो केवल पाप छोड़ ऐसा कार्य करना ठहरचा । बहुरि युक्तिकरि भी ऐसें ही सम्भवै है । कोऊ त्यागी होय, मन्दिरादिक नाहीं करावै है वा सामायिकादिक निरवद्य कार्यनिविषै प्रवर्त्तै है । ताकों तो छोरि प्रतिमादि करावना वा पूजनादि करना उचित नाहीं । परन्तु कोई अपने रहनेके वास्ते मन्दिर बनावै, तिसतें तो चैत्यालयादि

करावनेवाला हीन नाहीं। हिंसा तो भई परन्तु वाकै तो लोभ पापानुरागकी वृद्धि भई; याकै लोभ छूटया, धर्म्मानुराग भया। बहुरि कोई व्यापारादि कार्य करै, तिसतै तो पूजनादि कार्य करना हीन नाहीं। वहां तो हिंसादि बहुत हो है, लोभादि बधै है, पापहीकी प्रवृत्ति है। यहाँ हिंसादिक भी किंचित् हो है, लोभादिक घटै है, धर्म्मानुराग बधै है। ऐसे जे त्यागी न होंय, अपने धनकों पापविषैं खरचते होंय तिनकों चैत्यालयादि करावना। अर जे निरवद्य सामायिकादि कार्यनिविषैं उपयोगकों नाही लगाय सकै, तिनकों पूजनादि करना निषेध नाही।

बहुरि तुम कहोगे, निरवद्य सामायिक आदि कार्य ही क्यों न करै, धर्म विषैं काल गमावना तहाँ ऐसे कार्य काहेकों करै ?

ताका उत्तर—जो शरीरकरि पाप छोरे ही निरवद्यपना होय, तो ऐसें ही करै परन्तु परिणामनिविषै पाप छूटे निरवद्यपना हो है। सो बिना अवलम्बन सामायिकादिविषैं जाका परिणाम लागै नाहीं सो पूजनादिकरि तहाँ अपना उपयोग लगावै है। तहाँ नानाप्रकार आलम्बनकरि उपयोग लगि जाय है। जो तहां उपयोग को न लगावै, तो पापकार्यनिविषै उपयोग भटकै तब बुरा होय। तातै तहां प्रवृत्ति करनी युक्त है। बहुरि तुम कहो हो-धर्म्मके अर्थ हिंसा किए तो महा पाप हो है, अन्यत्र हिंसा किए थोरा पाप हो है। सो यह प्रथम तो सिद्धान्तका वचन नाहीं अर युक्तितै भी मिलै नाहीं। जातैं ऐसें मानें इन्द्र जन्मकल्याणकविषैं बहुत जलकरि अभिषेक करै है, समवसरणविषैं देव पुष्पवृष्टि चमर ढालना इत्यादि कार्य करै हैं,सो ये महापापी

होंय। जो तुम कहोगे, उनका ऐसा ही व्यवहार है, तो क्रियाका फल तो भए बिना रहता नाही। जो पाप है तो इन्द्रादिक तो सम्यग्दृष्टी हैं, ऐसा कार्य काहेकों करै अर धर्म्म है तो काहेकों निषेध करो हो। बहुरि भला तुमहीकों पूछे हैं—तीर्थंकर की वंदनाकों राजादिक गए, साधुकी वंदनाकों दूरि भी जाईए है, सिद्धान्त सुनने आदि कार्य करने कों गमनादि करिये है, तहां मार्गविषें हिंसा भई। बहुरि साधर्मी जिमाइए है, साधुका मरण भये ताका सस्कार करिये है, साधु होते उत्सव करिये है, इत्यादि प्रवृत्ति अब भी दीसै है। सो यहा भी हिंसा हो है। सो ये कार्य्य तो धर्म्महीके अर्थ हैं, अन्य कोई प्रयोजन नाही। जो यहां महापाप उपजै है, तो पूर्वे ऐसे कार्य किये तिनका निषेध करो। अर अब भी गृहस्थ ऐसा कार्य करैं हैं, तिनका त्याग करो। बहुरि जो धर्म्म उपजै है तो धर्मके अर्थि हिंसाविषै महापाप बताय काहेकों भ्रमावो हो। तातैं ऐसें मानना युक्त है—जैसे थोरा धन ठिगाएं बहुत धनका लाभ होय तो वह कार्य करना, तैसें थोरा हिंसादिक पाप भये बहुत धर्म्म निपजै तो वह कार्य्य करना। जो थोरा धनका लोभकरि कार्य बिगारै तो मूर्ख है। तैसे थोरी हिंसाका भयतैं बड़ा धर्म्म छोरै तो पापी ही होय। बहुरि कोऊ बहुत धन ठिगावै अर स्तोक धन उपजावै वा न उपजावै तो वह मूर्ख ही है। तैसें बहुत हिंसादिकरि बहुतपाप उपजावै अर भक्ति आदि धर्मविषें थोरा प्रवर्त्तै वा न प्रवर्त्तै तो वह पापी ही है। बहुरि जैसैं बिना ठिगाए ही धनका लाभ होतें ठिगावै तो मूर्ख है। तैसें निरवद्य धर्म्मरूप उपयोग होतें सावद्य धर्मविषैं उपयोग लगावना युक्त नाहीं। ऐसें अपने परिणाम-

निकी अवस्था देखि भला होय सो करना । एकांतपक्ष कार्यकारी नाहीं। बहुरि अहिंसा ही केवल धर्म्मका अंग नाहीं है। रागादिकनिका घटना धर्म्मका अंग मुख्य है। तातैं जैसें परिणामनिविषें रागादिक घटैं सो कार्य करना।

बहुरि गृहस्थनिकों अणुव्रतादिकका साधन भए बिना ही सामायिक, पडिकमणो, पोसह आदि क्रियानिका मुख्य आचरन करावैं हैं। सो सामायिक तो रागद्वेषरहित साम्यभाव भए होय, पाठ मात्र पढ़े वा उठना बैठना किए ही तो होइ नाहीं। बहुरि कहोगे—अन्य कार्य करता तातैं तो भला है। सो सत्य, परन्तु सामायिकपाठ विषें प्रतिज्ञा तो ऐसी करै, जो मनवचनकायकरि सावद्यकों न करूँगा, न कराऊँगा अर मनविषें तो विकल्प हुआ ही करै। अर वचनकायविषें भी कदाचित् अन्यथा प्रवृत्ति होय तहां प्रतिज्ञाभंग होय। सो प्रतिज्ञाभंग करनेतै न करनी भलो। जातै प्रतिज्ञाभंगका महापाप है।

बहुरि हम पूछे हैं—कोऊ प्रतिज्ञा भी न करै है अर भाषापाठ पढै है, ताका अर्थ जानि तिसविषै उपयोग राखै है। कोऊ प्रतिज्ञा करै, ताकों तो नीके पालै नाही अर प्राकृतादिकका पाठ पढै, ताके अर्थका आपकों ज्ञान नाहीं, बिना अर्थ जाने तहां उपयोग रहै नाहीं, तब उपयोग अन्यत्र भटकै। ऐसें इन दोऊनिविषै विशेष धर्मात्मा कौन ? जो पहलेकों कहोगे, तो ऐसा ही उपदेश क्यों न दीजिए। दूसरेकों कहोगे, तो प्रतिज्ञा भंगका पाप भया वा परिणामनिके अनुसार धर्मात्मापना न ठहरया। पाठादि करनेके अनुसारि ठहरया। तातैं अपना उपयोग जैसें निर्मल होय सो कार्य करना। सधै सो प्रतिज्ञा

करनी । जाका अर्थ जानिए सो पाठ पढ़ना । पद्धति करि नाम धरावनेमें नफ़ा नाहीं । बहुरि पडिकमणो नाम पूर्वदोष निराकरण करनेका है । सो **'मिच्छामि दुक्कडं'** इतना कहे ही तो दुष्कृत मिथ्या न होय, किया दुःकृत मिथ्या होने योग्य परिणाम भए दुःकृत मिथ्या हाय । तातैं पाठ ही कार्यकारो नाहीं । बहुरि पडिकमणांका पाठ विषें ऐसा अर्थ है,जो बारह व्रतादिकविषें जो दुष्कृत लाग्या होय सो मिथ्या होय । सो व्रत धारें बिना हो तिनका पडिकमणा करना कैसें सम्भवै ? जाकै उपवास न होय, सो उपवासविषैं लाग्या दोषका निराकरण करै तो असम्भवपना होय । तातें यह पाठ पढ़ना कौन प्रकार बनै? बहुरि पोसहविषै भी सामायिकवत् प्रतिज्ञाकरि नाहीं पालै है । तातै पूर्वोक्त ही दोष है । बहुरि पोसह नाम तो पर्वका है । सो पर्वके दिन भी केतायक कालपर्यंत पापक्रिया करै, पीछें पोसहधारी होय । सो जेतें काल बनै तेते काल साधन करनेका तो दोष नाही । परन्तु पोसहका नाम करिए सो युक्त नाही । सम्पूर्ण पर्वविषै निरवद्य रहें ही पोसह होय । जो थोरा भो कालतें पोसह नाम होय तो सामायिककों भी पोसह कहो, नाहीं शास्त्र विषें प्रमाण बतावो, जघन्य पोसहका इतना काल है । सो बड़ा नाम धराय लोगनिकों भ्रमावना, यहु प्रयोजन भासै है । बहुरि आखड़ी लेनेका पाठ तो और पढै, अंगोकार और करै । सो पाठविषै तो "मेरे त्याग है" ऐसा वचन है, तातैं जो त्याग करै सो ही पाठ पढै, यह चाहिए । जो पाठ न आवै तो भाषा हीतें कहै । परन्तु पद्धतिके अर्थ यह रीति है । बहुरि प्रतिज्ञा ग्रहण करनें करावनेकी तो मुख्यता अर यथाविधि पालनेकी शिथिलता वा

भाव निर्मल होने का विवेक नाही। आर्त्तपरिणामनिकरि वा लोभादिककरि भी उपवासादि करै, तहाँ धर्म्म मानै। सो फल तो परिणामनितें हो है। इत्यादि अनेक कल्पित बातें करै हैं, सो जैनधर्म्म विषैं सम्भवै नाहीं। ऐसें यहु जैनविषै श्वेताम्बरमत है, सो भी देवादिकका वा तत्त्वनिका वा मोक्षमार्गादिकका अन्यथा निरूपण करै है। तातैं मिथ्यादर्शनादिकका पोषक है, सो त्याज्य है। सांचा जिनधर्म्म का स्वरूप आगे कहैं है। ताकरि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तना योग्य है। तहाँ प्रवर्त्तें तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रविषै अन्यमत निरूपण पांचवाँ अधिकार समाप्त भया ॥ ५ ॥

ॐ नमः

छठा अधिकार

कुदेव, कुगुरु और कुधर्म का प्रतिषेध

दोहा

मिथ्या देवादिक भजें, हो है मिथ्याभाव।
तज तिनकों सांचे भजो, यह हितहेतु उपाव ॥१॥

अर्थ—अनादितें जीवनिकै मिथ्यादर्शनादिक भाव पाईए है, तिनिकी पुष्टताकों कारण कुदेव कुगुरु कुधर्म्म सेवन है। ताका त्याग भए मोक्षमार्गविषै प्रवृत्ति होय। तातैं इनका निरूपण कीजिए है।

कुदेव का निरूपण और उसके श्रद्धानादिक का निषेध

तहाँ जे हितका कर्त्ता नाही अर तिनकों भ्रमतें हितका कर्त्ता जानि सेइए सो कुदेव हैं। तिनका सेवन तीन प्रकार प्रयोजन लिए करिए है। कही तो मोक्षका प्रयोजन है। कहीं परलोकका प्रयोजन है। कहीं इस लोकका प्रयोजन है। सो ये प्रयोजन तो सिद्ध होंय नाहीं। किछू विशेष हानि होय। तातैं तिनका सेवन मिथ्याभाव है। सोई दिखाईए है—

अन्यमतनिविषैं जिनके सेवनतें मुक्ति होनी कही है, तिनकों केई जीव मोक्षके अर्थ सेवन करें हैं, सो मोक्ष होय नाही। तिनका वर्णन पूर्वें अन्यमत अधिकारविषै कह्या ही है, बहुरि अन्यमत विषैं कहे देव, तिनकों केई परलोकविषैं सुख होय, दुःख न होय ऐसे प्रयोजन लिए

सेवें हैं। सो ऐसी सिद्धि तो पुण्य उपजाए अर पाप न उपजाए हो है। सो आप तो पाप उपजावे है अर कहै ईश्वर हमारा भला करेगा, तो तहां अन्याय ठहरचा। काहूकों पापका फल दे, काहूकों न दे, सो ऐसें तो है नाहीं। जैसा अपना परिणाम करेगा,तैसा ही फल पावेगा। काहूका बुरा भला करने वाला ईश्वर है नाहीं। बहुरि तिन देवनिका सेवन करतें तिन देवनिका तो नाम करै अर अन्य जीवनिकी हिंसा करें वा भोजन नृत्यादिकरि अपनी इन्द्रियनिका विषय पोषें, सो पाप परिणामनिका फल तो लागे बिना रहने का नाहीं। हिंसा विषय कषायनिकों सर्व पाप कहैं हैं। अर पाप का फल भी खोटा ही सर्व मानै हैं। बहुरि कुदेवनिका सेवन विषैं हिंसा विषयादिकही का अधिकार है। तातैं कुदेवनिका सेवनतें परलोकविषै भला न हो है।

बहुरि घने जीव इस पर्याय सम्बन्धी शत्रुनाशादिक वा रोगादिक मिटवाना वा धनादिककी प्राप्ति वा पुत्रादिककी प्राप्ति इत्यादि दुःख मेटने का वा सुख पावनेका अनेक प्रयोजन लिएं कुदेवनिका सेवन करैं हैं। बहुरि हनुमानादिकों पूजै हैं। बहुरि देवीनिकों पूजे हैं। बहुरि गणगौर सांझी आदि बनाय पूजे है। चौथि शीतला दिहाड़ी आदिकों पूजें है। बहुरि अऊत पितर व्यंतरादिककों पूजे हैं। बहुरि सूर्य चन्द्रमा शनिश्चरादि ज्योतिषीनिकों पूजें है। बहुरि पीर पैगम्बरादिकनिकों पूजे हैं। बहुरि गऊ घोटकादि तिर्यंचनिकों पूजें हैं। अग्नि जलादिककों पूजें हैं। शस्त्रादिककों पूजें हैं। बहुत कहा कहिए, रोड़ी इत्यादिककों भी पूजें हैं। सो ऐसें कुदेवनिका सेवन मिथ्यादृष्टितें हो है। काहेतें, प्रथम तो जिनका सेवन करै सो केइ तो कल्पना

मात्र ही देव हैं। सो तिनका सेवन कार्यकारी कैसें होय। बहुरि केई व्यंतरादिक हैं, सो ए काहूका भला बुरा करनेकों समर्थ नाही। जो वे ही समर्थ होंय, तो वे ही कर्त्ता ठहरै। सो तो उनका किया किछ होता दीसता नाहीं। प्रसन्न होय धनादिक देय सकें नाहीं। द्वेषी होय बुरा कर सकते नाहीं।

इहां कोऊ कहै—दुःख तो देते देखिए है, मानेतै दुःख देते रहि जाय हैं।

ताका उत्तर—याकै पापका उदय होय, तब ऐसी ही उनकै कुतूहल बुद्धि होय, ताकरि वे चेस्टा करें, चेष्टा करतें यहु दुःखी होय। बहुरि वे कुतूहलतें किछू कहैं, यहु कह्या करै तब वे चेष्टा करनेत रहि जांय। बहुरि याकों शिथिल जानि कुतूहल किया करें। बहुरि जो याकै पुण्यका उदय होय तो किछू कर सकते नाही। सो भी देखिए है—कोऊ जीव उनकों पूजे नाही वा उनकी निन्दा करै वा वे भी उसतै द्वेष करें परन्तु ताकों दुःख देई सके नाहीं। वा ऐसे भी कहते देखिए है, जो फलाना हमकों मानै नाही परन्तु उसतें किछू हमारा वश नाही। तातें व्यन्तरादिक किछू करनेकों समर्थ नाहीं। याका पुण्य पापहीतै सुख दुःख हो है। उनके माने पूजे उलटा रोग लागै है, किछू कार्य सिद्धि नाहीं। बहुरि ऐसा जानना—जे कल्पित देव हैं, तिनका भी कहीं अतिशय चमत्कार होता देखिए है सो व्यंतरादिक करि किया हो है। कोई पूर्व पर्यायविषें उनका सेवक था, पीछे मरि व्यन्तरादि भया, तहां ही कोई निमित्ततें ऐसी बुद्धि भई, तब वह लोकविषें तिनिके सेवनें की प्रवृत्ति करावनेके अर्थि कोई चमत्कार

दिखावै है । जगत् भोला, किंचित् चमत्कार देखि तिस कार्य विषैं लग जाय है। जैसें जिन प्रतिमादिकका भी अतिशय होता सुनिए वा देखिए है सो जिनकृत नाहीं, जैनी व्यंतरादिकृत हो है : तैसें ही कुदेवनिका कोई चमत्कार होय, सो उनके अनुचरी व्यंतरादिकनिकरि किया हो है, ऐसा जानना । बहुरि अन्यमतविषें भक्तनिकी सहाय परमेश्वर करी वा प्रत्यक्ष दर्शन दिए इत्यादि कहै हैं । तहां केई तो कल्पित बातें कही हैं । केई उनके अनुचरी व्यन्तरादिककरि किए कार्यनिकों परमेश्वरके किए कहै है । जो परमेश्वरके किए होंय तो परमेश्वर तो त्रिकालज्ञ छै । सर्व प्रकार समर्थ छै । भक्तको दु.ख काहेकों होने दे । बहुरि अबहू देखिए है । म्लेच्छ आय भक्तनिकों उपद्रव करें है, धर्म विध्वंस करें है, मूर्तिको विघ्न करै है, सो परमेश्वरकों ऐसे कार्यका ज्ञान न होय तो सर्वज्ञपनों रहै नाही। जाने पीछे सहाय न करै तो भक्त वत्सलता गई वा सामर्थ्यहीन भया । बहुरि साक्षीभूत रहै है तो आगे भक्तनिकी सहाय करी कहिए है सो झूंठ है। उनकी तो एकसी वृत्ति है। बहुरि जो कहोगे– वैसी भक्ति नाही है । तो म्लेच्छनितें तो भले हैं वा मूर्ति आदि तो उनही की स्थापना थी, तिनिका विघ्न तो न होने देना था । बहुरि म्लेच्छपापीनिका उदय हो है, सो परमेश्वर का किया है कि नाही । जो परमेश्वरका किया है, तो निंदकनिकों सुखी करै, भक्तनिकों दुखदायक करै, तहाँ भक्तवत्सलपना कैसे रह्या ? अर परमेश्वरका किया न हो है, तो परमेश्वर सामर्थ्यहीन भया । तातै परमेश्वरकृत कार्य नाहीं। कोई अनुचरी व्यंतरादिक ही चमत्कार दिखावै है। ऐसा ही

निश्चय करना।

बहुरि इहाँ कोऊ पूछै कि कोई व्यतर अपना प्रभुत्व कहै वा अप्रत्यक्षकों बताय दे, कोऊ कुस्थानवासादिक बताय अपनी हीनता कहै, पूछिए सो न बतावै, भ्रमरूप बचन कहै वा औरनिकों अन्यथा परिणमावै, औरनिकों दु:खदे, इत्यादि विचित्रता कैसे है ?

ताका उत्तर—व्यंतरनिविषें प्रभुत्व की अधिक हीनता तो है परन्तु जो कुस्थान विषे वासादिक बताय हीनता दिखावै हैं सो तो कुतूहलतें वचन कहै हैं। व्यतर बालकवत् कुतूहल किया करें। सो जैसें बालक कुतूहलकरि आपकों हीन दिखावै, चिडावै, गाली सुनै, बार पाडै (ऊचे स्वरसे रोवै) पोछे हँसने लगि जाय, तैसे ही व्यंतर चेष्टा करें हैं। जो कुस्थानहीके वासी होंय, तो उत्तम स्थानविषे आवैं हैं तहाँ कौनके ल्याए आवे हैं । आपहीतें आवै हैं, तो अपनी शक्ति होतें कुस्थानविषे काहेकों रहैं ? तातें इनिका ठिकाना तो जहाँ उपजै हैं, तहां इस पृथ्वीके नीचे वा ऊपरि है सो मनोज्ञ है। कुतूहलके लिये चाहै सो कहै है। बहुरि जो इनकों पीड़ा होती होय तो रोवते-रोवते हंसने कैसें लगि जाँय हैं। इतना है, मन्त्रादिककी अचिंत्यशक्ति है सो कोई सांचा मन्त्रके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होय तो वाकें किंचित् गमनादि न होय सकै वा किंचित् दु:ख उपजै वा कोई प्रबल वाकों मनै करै तब रहि जाय वा आप ही रहि जाय। इत्यादि मन्त्रकी शक्ति है परन्तु जलावना आदि नहो है । मन्त्र वाला जलाया कहै; बहुरि वह प्रगट होय जाय, जातें वैक्रियिक शरीरका जलावना आदि सम्भवै नाही। बहुरि व्यतरनिकै अवधिज्ञान काहूकै स्तोक क्षेत्र

काल जाननेंका है, काहूकै बहुत है। तहाँ वाकै इच्छा होय अर आपकै बहुत ज्ञान होय तो अप्रत्यक्षकों पूछे ताका उत्तर दें तथा आपकै स्तोक ज्ञान होय तो अन्य महत्ज्ञानीकों पूछि आय करि जवाब दें। बहुरि आपकै स्तोक ज्ञान होय वा इच्छा न होय, तो पूछे ताका उत्तर न दे, ऐसा जानना। बहुरि स्तोकज्ञानवाला व्यतरादिककै उपजता केतेक काल ही पूर्व जन्मका ज्ञान होय सकै, पीछें ताका स्मरण मात्र रहै है तातें तहाँ कोई इच्छाकरि आप किछू चेष्टा करै तो करै। बहुरि पूर्व-जन्मकी बातें कहै। कोऊ अन्य वार्ता पूछै तो अवधि तो थोरा, बिना जाने कैसे कहै। बहुरि जाका उत्तर आप न देय सकैं वा इच्छा न होय, तहाँ मान कुतूहलादिकतै उत्तर न दे वा झूंठ बोलै, ऐसा जानना। बहुरि देवनिमे ऐसी शक्ति है, जो अपने वा अन्यके शरीरकों वा पुद्गल स्कंधकों जैसी इच्छा होय तैसैं परिणमावै। तातें नाना आकारादिरूप आप होय वा अन्य नाना चरित्र दिखावै। बहुरि अन्य जीवके शरीर कों रोगादियुक्त करै। यहां इतना है— अपने शरीरकों वा अन्य पुद्गल स्कंधनिकों तो जेती शक्ति होय तितने ही परिणमाय सकै, तातै सर्व कार्य करने की शक्ति नाहीं। बहुरि अन्य जीवके शरीरादिकको वाका पुण्य पापके अनुसारि परिणमाय सकै। वाकै पुण्य उदय होय तो आप रोगादिरूप न परिणमाय सकै अर पाप उदय होय तो वाका इष्टकार्य न करि सकै। ऐसैं व्यंतरादिकनिकी शक्ति जाननी।

यहाँ कोऊ कहै—इतनी जिनकी शक्ति पाईए, तिनके माननें पूजनें में दोष कहा ?

ताका उत्तर—आपकै पाप उदय होतें सुख न देय सकै, पुण्य उदय होतें दुःख न देय सकै; बहुरि तिनके पूजनेतें कोई पुण्यबंध होय नाहीं, रागादिककी वृद्धि होतें पाप ही हो है। तातें तिनका मानना पूजना कार्यकारी नाहीं—बुरा करने वाला है। बहुरि व्यंतरादिक मनावै हैं, पुजावै हैं, सो कुतूहल करें हैं, किछू विशेष प्रयोजन नाहीं राखे हैं। जो उनकों मानै पूजै, तिस सेती कोतूहल किया करें। जो न मानै पूजै, तासों किछू न कहैं। जो उनकै प्रयोजन ही होय, तो न मानने पूजनेवालेकों घना दुःखी करें। सो तो जिनकै न मानने पूजनेका अवगाढ़ है, तासों किछू भी कहते दीसते नाहीं। बहुरि प्रयोजन तो क्षुधादिककी पीड़ा होय तो होय, सो उनकै व्यक्त होय नाहीं। जो होय, तो उनके अर्थि नैवेद्यादिक दीजिए ताकों भी ग्रहण क्यों न करें वा औरनिके जिमावने आदि करनेहीकों काहेकों कहैं। तातें उनकै कुतूहल मात्र क्रिया है। सो आपकों उनके कुतूहलका ठिकाना भए दुःख होय, हीनता होय तातै उनको मानना पूजना योग्य नाहीं।

बहुरि कोऊ पूछै कि व्यंतर ऐसें कहैं हैं—गया आदि विषै पिंड-प्रदान करो तो हमारी गति होय, हम बहुरि न आवै, सो कहा है।

ताका उत्तर—जीवनिकै पूर्वभवका संस्कार तो रहै ही है। व्यंतरनिकै पूर्व-भवका स्मरणादिकतें विशेष संस्कार है। तातै पूर्व-भवके विषैं ऐसी ही वासना थी, गयादिकविषैं पिंडप्रदानादि किए गति हो है तातें ऐसे कार्य करनेको कहैं हैं। जो मुसलमान आदि मरि व्यंतर हो हैं, ते तो ऐसें कहैं नाहीं, वे तो अपने संस्कार रूप ही वचन

कहैं। तातैं सर्व व्यंतरनिकी गति तैसें ही होती होय तो सर्व ही समान प्रार्थना करें सो है नाही, ऐसे जानना। ऐसे व्यतरादिकनिका स्वरूप जानना।

सूर्य चन्द्रमादि ग्रह पूजा प्रतिषेध

बहुरि सूर्य चन्द्रमा ग्रहादिक ज्योतिषी है, तिनकों पूजे हैं सो भी भ्रम है। सूर्यादिककों परमेश्वरका अश मानि पूजे है। सो वाके तो एक प्रकाशका हो आधिक्य भासं है। सो प्रकाशवान् अन्यरत्नादिकभी हो हैं। अन्य कोई ऐसा लक्षण नाही, जाते वाको परमेश्वरका अंश मानिए। बहुरि चन्द्रमादिककों धनादिककी प्राप्तिके अर्थ पूजें है। सो उसके पूजनेतें हो धन होता होय, तो सर्व दरिद्री इस कार्यको करे। तातै ए मिथ्याभाव है। बहुरि ज्योतिषके विचारतै खोटा ग्रहादिक आए तिनिका पूजनादि करै है, वाके अर्थ दानादिक दे हैं। सो जैसे हिरणादिक स्वयमेव गमनादि करै है, पुरुषके दाहिणे बावें आए सुख दुःख होनेका आगामी ज्ञानकों कारण हो है, किछू सुख दुःख देनेकों समर्थ नाही। तैसे ग्रहादिक स्वयमेव गमनादि करै हैं। प्राणोकै यथासम्भव योगकों प्राप्त होतै सुख दु.ख होने का आगामी ज्ञानकों कारण हो है, किछू सुख दुख देनेको समर्थ नाही। कोई तो उनका पूजनादि करै, ताकै भी इष्ट न होय, कोई न करै ताकै भी इष्ट होय, तातैं तिनिका पूजनादि करना मिथ्याभाव है।

यहाँ कोऊ कहै—देना तो पुण्य है, सो भला हो है।

ताका उत्तर—धर्म्मके अर्थिदेना पुण्य है। यहु तो दुःखका भयकरि वा सुखका लोभकरि दे हैं, तातै पाप ही है। इत्यादि अनेक प्रकार

ज्योतिषी देवनिकों पूजै हैं, सो मिथ्या है।

बहुरि देवी दिहाड़ी आदि हैं, ते केई तो व्यंतरी वा ज्योतिषिणी हैं, तिनका अन्यथा स्वरूप मानि पूजनादि करें है। केई कल्पित हैं, सो तिनकी कल्पनाकरि पूजनादि करें हैं। ऐसें व्यंतरादिकके पूजनेका निषेध किया।

यहाँ कोऊ कहै—क्षेत्रपाल दिहाड़ी पद्मावती आदि देवी यक्ष यक्षिणी आदि जे जिनमतकों अनुसरें हैं, तिनके पूजनादि करने में तो दोष नाही।

ताका उत्तर—जिनमतविषै संयम धारे पूज्यपनों हो है। सो देवनिकै संयम होता ही नाही। बहुरि इनको सम्यक्त्वी मानि पूजिए है, सो भवनत्रिकमें सम्यक्त्वकी भी मुख्यता नाहीं। जो सम्यक्त्वकरि ही पूजिए तो सर्वार्थसिद्धिके देव, लौकांतिकदेव तिनकोंही क्यों न पूजिए। बहुरि कहोगे—इनकै जिनभक्ति विशेष है। सो भक्ति की विशेषता भी सौधर्म्म इन्द्रके है, वह सम्यग्दृष्टी भी है। वाकों छोरि इनको काहेकों पूजिए। बहुरि जो कहोगे, जैसें राजाकै प्रतीहारादिक हैं, तैसें तीर्थंकरकै क्षेत्रपालादिक हैं। सो समवसरणादिविषें इनिका अधिकार नाही। यह झूंठी मानि है। बहुरि जैसें प्रतीहारादिकका मिलाया राजास्यों मिलिए, तैसें ये तीर्थंकरकों मिलावते नाहीं। वहाँ तो जाकै भक्ति होय सोई तीर्थंकरका दर्शनादिक करो, किछू किसीके आधीन नाहीं। बहुरि देखो अज्ञानता, आयुधादिक लिएं रौद्रस्वरूप जिनका, तिनकी गाय गाय भक्ति करें। सो जिनमतविषें भी रौद्ररूप पूज्य भया, तो यहु भी अन्यमत ही के समान भया। तीव्र

मिथ्यात्वभावकरि जिनमतविषै ऐसी ही विपरीत प्रवृत्तिका मानना हो है। ऐसैं क्षेत्रपालादिककों भी पूजना योग्य नाहीं।

गौ सर्पादिककी पूजा का निराकरण

बहुरि गऊ सर्प्पादि तिर्यंच हैं, ते प्रत्यक्ष ही आपतैं हीन भासैं हैं। इनिका तिरस्कारादिक करि सकिए हैं। इनकी निद्यदशा प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि वृक्ष अग्नि जलादिक स्थावर हैं, ते तिर्यंचनिहूतैं अत्यन्त हीन अवस्थाकों प्राप्त देखिये हैं। बहुरि शस्त्र दवात आदि अचेतन हैं, सो सर्वशक्तिकरि हीन प्रत्यक्ष भासै हैं; पूज्यपनेका उपचार भी सम्भवै नाही। तातैं इनका पूजना महा मिथ्याभाव है। इनकों पूजें प्रत्यक्ष वा अनुमानकरि किछू भी फल प्राप्ति नाही भासै है तातैं इनकों पूजना योग्य नाही। या प्रकार सर्व ही कुदेवनिका पूजना मानना निषेध है। देखो मिथ्यात्व की महिमा, लोक विषै तो आपतै नीचेकों नमते आपको निद्य मानै अर मोहित होय रोड़ी पर्यंतकों पूजता भी निद्यपनों न मानै। बहुरि लोकविषै तो जातै प्रयोजन सिद्ध होता जानै, ताहीकी सेवा करै अर मोहित होय कुदेवनितै मेरा प्रयोजन कैसे सिद्ध होगा; ऐसा बिना विचारे ही कुदेवनिका सेवन करैं। बहुरि कुदेवनिका सेवन करते हजारों विघ्न होंय ताकों तो गिनैं नाहीं अर कोई पुण्यके उदयतैं इष्ट कार्य होय जाय ताकों कहैं,इसके सेवनतै यहु कार्य भया। बहुरि कुदेवादिकका सेवन किए बिना जे इष्ट कार्य होंय, तिनकों तो गिनैं नाहीं अर कोई अनिष्ट होय तो कहैं, याका सेवन न किया तातै अनिष्ट भया। इतना नाहीं विचारै है,जो इनिही के आधीन इष्ट अनिष्ट करना होय, तो जे पूजैं तिनकें इष्ट होइ, न

पूजें तिनकै अनिष्ट होय। सो तो दीसता नाहीं। जैसें काहूकै शीतलाकों बहुत मानें भी पुत्रादि मरते देखिए है। काहूकै बिना माने भी जीवते देखिए है। तातैं शीतला का मानना किछू कार्यकारी नाहीं। ऐसें ही सर्व कुदेवनिका मानना किछू कार्यकारी नाहीं।

इहां कोऊ कहै—कार्यकारी नाही तो मति होहु, किछू तिनके माननेतें बिगार भी तो होता नाही।

ताका उत्तर—जो बिगार न होय, तो हम काहेको निषेध करें। परन्तु एक तो मिथ्यात्वादि दृढ होनेतें मोक्षमार्ग दुर्लभ होय जाय है, सो यहु बड़ा बिगार है। एक पापबध होनेतें आगामी दुःख पाईए है, यहु बिगार है।

यहाँ पूछे कि मिथ्यात्वादिभाव तो अतत्त्व श्रद्धानादि भए होय है अर पापबध खोटे कार्य किए होय है, सो तिनके माननेतें मिथ्यात्वादिक वा पापबंध कैसे होय?

ताका उत्तर— प्रथम तो परद्रव्यनिकों इष्ट अनिष्ट मानना ही मिथ्या है, जाते कोऊ द्रव्य काहूका मित्र शत्रु है नाहीं। बहुरि जो इष्ट अनिष्ट बुद्धि पाईए है, तो ताका कारण पुण्य पाप है। तातें जैसें पुण्यबध होय, पापबध न होय सो करै। बहुरि जो कर्मउदयका भी निश्चय न होय, इष्ट अनिष्टके बाह्य कारण तिनके संयोग वियोगका उपाय करै; सो कुदेवके माननेतें इष्ट अनिष्ट बुद्धि दूरि होती नाहीं, केवल वृद्धिकों प्राप्त हो है। बहुरि पुण्यबध भी होता नाहीं, पाप बंध हो है। बहुरि कुदेवकाहूकों धनादिक देते खोसते देखे नाहीं। तातें ए बाह्य कारण भी नाहीं। इनका मानना किसै अर्थि कीजिए है। जब

अत्यन्त अल्पबुद्धि होय, जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञानका अंश भी न होय अर रागद्वेषकी अति तीव्रता होय तब जे कारण नाहीं तिनकौं भी इष्ट अनिष्टका कारण मानैं। तब कुदेवनिका मानना हो है। ऐसा तीव्र मिथ्यात्वादि भाव भए मोक्षमार्ग अति दुर्लभ हो है।

कुगुरु का निरूपण और उसके श्रद्धानादिक का निषेध

आगे कुगुरुके श्रद्धानादिककौं निषेधिए है—

जे जीव विषयकषायादि अधर्म्मरूप तो परिणमैं अर मानादिकतैं आपकौं धर्म्मात्मा मनावैं, धर्मात्मा योग्य नमस्कारादि क्रिया करावैं अथवा किंचित् धर्म्मका कोई अंग धारि बड़े धर्मात्मा कहावैं, बड़े धर्म्मात्मा योग्य क्रिया करावैं; ऐसैं धर्म्म का आश्रयकरि आपकौं बडा मनावैं, ते सर्व कुगुरु जानने। जातैं धर्म्मपद्धतिविषैं तो विषयकषायादि छूटैं जैसा धर्म्मकौं धारैं तैसा ही अपना पद मानना योग्य है।

कुल अपेक्षा गुरुपनेका निषेध

तहाँ केई तो कुलकरि आपको गुरु मानै हैं। तिनविषै केई ब्राह्मणादिक तो कहै हैं, हमारा कुल ही ऊँचा है तातैं हम सर्वके गुरु हैं। सो उस कुलकी उच्चता तो धर्म्म साधनतैं है। जो उच्च कुलविषै उपजि हीन आचरन करै, तो वाकौं उच्च कैसैं मानिए। जो कुलविषैं उपजनेहीतैं उच्चपना रहै, तौ मासभक्षणादि किए भी वाकौं उच्च ही मानौं सो बनैं नाहीं। भारतविषैं भी अनेक प्रकार ब्राह्मण कहे है। तहाँ "जो ब्राह्मण होय चांडाल कार्य करै, ताकौं चाडाल ब्राह्मण कहिए" ऐसा कह्या है। सो कुलहीतैं उच्चपना होय तो ऐसी हीनसंज्ञा काहेकौं दई है।

बहुरि वैष्णवशास्त्रनिविषै ऐसा भी कहैं—वेदव्यासादिक मछली आदिकतैं उपजे। तहाँ कुलका अनुक्रम कैसें रह्या? बहुरि मूलउत्पत्ति तो ब्रह्मातैं कहै हैं। तातैं सर्वका एक कुल है, भिन्न कुल कैसें रह्या? बहुरि उच्चकुलकी स्त्रीकै नीचकुलके पुरुषतैं वा नीचकुलकी स्त्रीकै उच्चकुलके पुरुषतै सगम होतैं सतति होती देखिए है। तहाँ कुलका प्रमाण कैसे रह्या? जो कदाचित् कहोगे, ऐसें है, तो उच्च नीच कुलका विभाग काहेकों मानो हो। सो लौकिक कार्यनिविषै असत्य भी प्रवृत्तिसंभवै, धर्म्मकार्य्यविषै तो असत्यता संभवै नाही। तातै धर्म्मपद्धतिविषै कुलअपेक्षा महतपना नाही संभवै है। धर्म्मसाधनहीतै महंतपना होय। ब्राह्मणादि कुलनिविषै महतता है, सो धर्म्मप्रवृत्तितै है। सो धर्म्मकी प्रवृत्ति को छोड़ि हिसादिक पापविषै प्रवर्त्तै महतपना कैसें रहै? बहुरि केई कहै – जो हमारे बड़े भक्त भए है, सिद्ध भए हैं, धर्म्मात्मा भए है। हम उनकी संततिविषै हैं, तातै हम गुरु हैं। सो उन बड़ेनिके बड़े तो ऐसे उत्तम थे नाही। तिनकी सततिविषै उत्तमकार्य किये उत्तम मानो हो तो उत्तमपुरुषकी संततिविषै जो उत्तमकार्य न करै, ताकों उत्तम काहेकों मानो हो। बहुरि शास्त्रनिविषै वा लोकविषै यहु प्रसिद्ध है कि पिता शुभ कार्यकरि उच्चपदकों पावै, पुत्र अशुभकार्यकरि नीच पदकों पावै वा पिता अशुभ कार्यकरि नीच पदको पावै, पुत्र शुभ कार्यकरि उच्चपदकों पावै। तातै बड़ेनिकी अपेक्षा महंत मानना योग्य नाहीं। ऐसें कुलकरि गुरुपना मानना मिथ्याभाव जानना। बहुरि केई पट्टकरि गुरुपनों मानें हैं। कोई पूर्वै महंत पुरुष भया होय, ताके पाटि जे शिष्य प्रतिशिष्य होते आए, तहां तिन विषैं

तिस महतपुरुष केसे गुण न होते भी गुरुपनों मानिए, सो जो ऐसें ही होय तो उस पाटविषें कोई परस्त्रीगमनादि महापापकार्य करैगा, सो भी धर्मात्मा होगा, सुगतिकों प्राप्त होगा, सो संभवै नाहीं। अर वह पापी है, तो पाटका अधिकार कहाँ रह्या ? जो गुरुपद योग्य कार्य करै सो ही गुरु है। बहुरि केई पहलै तो स्त्री आदिके त्यागी थे,पीछै भ्रष्ट होय विवाहादिक कार्यकरि गृहस्थ भए, तिनकी संतति आपकों गुरु मानै है। सो भ्रष्ट भए पीछै गुरुपना कैसे रह्या ? और गृहस्थवत् ए भी भए। इतना विशेष भया, जो ए भ्रष्ट होय गृहस्थ भए। इनकों मूल गृहस्थधर्मी गुरु कैसें मानै ? बहुरि केई अन्य तो सर्व पाप कार्य करै, एक स्त्री परणै नाही, इसही अंगकरि गुरुपनो मानै है। सो एक अब्रह्म ही तो पाप नाही, हिंसा परिग्रहादिक भी पाप है, तिनिकों करते धर्मात्मा गुरु कैसें मानिए। बहुरि वह धर्मबुद्धितै विवाहादिकका त्यागी नाही भयाहै। कोई,आजीविका वा लज्जा आदि प्रयोजनकों लिए विवाह न करै है। जो धर्म्म बुद्धि होती, तो हिंसादिककों काहे कों बधावता। बहुरि जाकै धर्म्मबुद्धि नाही, ताकै शीलकी भी दृढ़ता रहै नाही। अर विवाह करै नाही, तब परस्त्रीगमनादि महापापकों उपजावै। ऐसी क्रिया होतें गुरुपना मानना महा भ्रष्टबुद्धि है। बहुरि केई काहूप्रकार का भेषधारनेतै गुरुपनो मानै हैं। सो भेष धारे कौन धर्म्म भया, जातैं धर्म्मात्मा गुरु मानै। तहा केई टोपी दे है,केई गूदरी राखै हैं, केई चोला पहरै हैं, केई चादर ओढै है, केई लाल वस्त्र राखै हैं, केई श्वेतवस्त्र राखै हैं, केई भगवां राखै है, केई टाट पहरै हैं, केई मृगछाला राखै हैं, केई राख लगावै हैं, इत्यादि अनेक स्वांग बनावै हैं।

सो जो शीत उष्णादिक सहे न जाते थे, लज्जा न छूटे थी, तो पाग-जामा इत्यादि प्रवृत्तिरूप वस्त्रादिक त्याग काहेकों किया ? उनको छोरि ऐसे स्वाँग बनावने मे कौन धर्मका अंग भया । गृहस्थनिकों ठिगनेके अर्थि ऐसे भेष जानने । जो गृहस्थ सारिखा अपना स्वांग राखै, तो गृहस्थ कैसे ठिगावें । अर याको उनकरि आजीविका वा धनादिक वा मानादिकका प्रयोजन साधना, तातै ऐसे स्वांग बनावै हैं। जगत भोला, तिस स्वांगको देखि ठिगावै अर धर्म्म भया मानै, सो यहु भ्रम है । सोई कह्या है—

जह कुवि वेस्सारत्तो मुसिज्जमाणो विमण्णए हरिसं ।
तह मिच्छवेसमुसिया गयं पि ण मुणंति धम्म-णिहि ।।१।।

(उपदेश सि० र० ५)

याका अर्थ—जैसे कोई वेश्यासक्त पुरुष धनादिककों मुसावता हुवा भी हर्ष मानै है, तैसे मिथ्याभेषकरि ठिगे गए जीव ते नष्ट होता धर्म धन कों नाही जानै है । भावार्थ–यहु मिथ्या भेष वाले जीवनिकी शुश्रुषा आदितै अपना धर्म धन नष्ट हो ताका विषाद नाहीं, मिथ्याबुद्धि तै हर्ष करै है । तहाँ केई तो मिथ्याशास्त्रनिविषै भेष निरूपण किये हैं, तिनकों धारै है । सो उन शास्त्रनिका करणहारा पापी सुगम क्रिया कियेतै उच्चपद प्ररूपणतै मेरी मानि होइ वा अन्य जीव इस मार्ग विषै बहुत लागै, इस अभिप्रायतै मिथ्या उपदेश दिया । ताकी परंपराकरि विचार रहित जीव इतना तो विचारै नाही, जो सुगम क्रियातै उच्चपद होना बतावैं है, सो इहां किछू दगा है, भ्रमकरि तिनिका कह्या मार्गविषै प्रवर्त्तै है । बहुरि केई शास्त्रनिविषै तो मार्ग

कठिन निरूपण किया सो तो सधै नाहीं अर अपना ऊँचा नाम धराए बिना लोक मानैं नाहीं, इस अभिप्रायतैं यति मुनि आचार्य उपाध्याय साधु भट्टारक सन्यासी योगी तपस्वी नग्न इत्यादि नाम तौ ऊँचा धरावैं हैं अर इनिका आचारनिकों नाहीं साधि सकैं हैं तातैं इच्छानुसारि नाना भेष बनावै हैं । बहुरि केई अपनी इच्छा अनुसारि ही तो नवीन नाम धरावैं हैं अर इच्छानुसारि ही भेष बनावै हैं । ऐसैं अनेक भेष धारनेतैं गुरुपनों मानै हैं, सो यहु मिथ्या है ।

इहां कोऊ पूछै कि भेष तो बहुत प्रकारके दीसैं, तिन विषैं सांचे झूठे भेषकी पहचानि कैसैं होय ?

ताका समाधान—जिन भेषनिविषै विषयकषायका किछू लगाव नाहीं, ते भेष साचे है। सो सांचे भेष तीन प्रकार हैं, अन्य सर्व भेष मिथ्या हैं। सो ही षट्पाहुडविषैं कुन्दकुन्दाचार्य करि कह्या है—

एगं जिणस्स रूवं बिदियं उक्किट्ठ सावयाणं तु ।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुण लिंग दंसणं णत्थि ।।
(द० पा० १८)

याका अर्थ—एक तो जिनका स्वरूप निर्ग्रंथ दिगंबर मुनिलिंग अर दूसरा उत्कृष्ट श्रावकनिका रूप दसईं ग्यारही प्रतिमाका धारक श्रावकका लिंग अर तीसरा आर्यकानिका रूप यहु स्त्रीनिकालिंग, ऐसें ए तीन लिंग तो श्रद्धानपूर्वक हैं । बहुरि चौथा लिंग सम्यग्दर्शन स्वरूप नाही है । भावार्थ—यहु इन तीनलिंग बिना अन्यलिंगकों मानैं सो श्रद्धानी नाहीं, मिथ्यादृष्टी है । बहुरि इन भेषीनिविषैं केई भेषी अपनें भेष की प्रतीति करावनेके अर्थि किंचित् धर्मका अंगकों भी

पालैं हैं। जैसें खोटा रुपैया चलावनेंवाला तिस विषैं किछू रूपा का भी अंश राखै है, तैसे धर्मका कोऊ अंग दिखाय अपना उच्चपद मनावै हैं।

इहाँ कोऊ कहै कि जो धर्म्म साधन किया, ताका तो फल होगा।

ताका उत्तर—जैसें उपवासका नाम धराय कणमात्र भी भक्षण करै तो पापी है अर एकंत का (एकासनका) नाम धराय किंचित् ऊन भोजन करै तो भी धर्म्मात्मा है। तैसे उच्चपदवीका नाम धराय तामें किंचित् भी अन्यथा प्रवर्त्तै, तो महापापी है। अर नीचोपदवीका नाम धराय किछू भी धर्म्म साधन करै, तो धर्म्मात्मा है। तातैं धर्म्मसाधन तो जेता बनै तेता ही कीजिए, किछू दोष नाहीं। परन्तु ऊंचा धर्म्मात्मा नाम धराय नीची क्रिया किएं महापाप ही हो है। सोई षट्पाहुड़विषै कुन्दकुन्दाचार्यकरि कह्या है—

जह जायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु।
जइ लेइ अप्प-बहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥१॥
—(सूत्र पा० १८)

याका अर्थ—मुनि पद है, सो यथाजातरूप सदृश है। जैसा जन्म होतें था, तैसा नग्न है। सो वह मुनि अर्थ जे धन वस्त्रादिक वस्तु तिनविषै तिलका तुषमात्र भी ग्रहण न करै। बहुरि जो कदाचित् अल्प वा बहुत वस्तु ग्रहै, तो तिसतै निगोद जाय। सो इहां देखो, गृहस्थपनेमें बहुत परिग्रह राखि किछू प्रमाण करै तो भी स्वर्ग मोक्षका अधिकारी हो है अर मुनिपनेमें किंचित् परिग्रह अंगीकार किएं भी निगोद जाने वाला हो है। तातैं ऊंचा नाम धराय नीची प्रवृत्ति युक्त नाहीं।

देखो, हुंडावसर्प्पिणी कालविषे यहु कलिकाल प्रवर्त्ते है । ताका दोष-करि जिनमतविषे मुनिका स्वरूप तौ ऐसा जहां बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहका लगाव नाहीं, केवल अपने आत्माको आपो अनुभवते शुभा-शुभभावनितै उदासीन रहै हैं अर अब विषय कषायासक्त जीव मुनिपद धारै, तहां सर्वसावद्यका त्यागी होय पंचमहाव्रतादि अंगी-कार करै । बहुरि श्वेत रक्तादि वस्त्रनिकों ग्रहै वा भोजनादिविषै लोलुपी होय वा अपनी पद्धति बधावनेके उद्यमी होय वा केई धनादिक भी राखै वा हिंसादिक करै वा नाना आरम्भ करै । सो स्तोक परिग्रह ग्रहणेका फल निगोद कह्या है, तौ ऐसें पापनिका फल तो अनंत संसार होय ही होय । बहुरि लोकनिकी अज्ञानता देखो, कोई एक छोटी भी प्रतिज्ञा भंग करै, ताकों तो पापी कहै अर ऐसी बड़ी प्रतिज्ञाभंग करते देखें बहुरि तिनको गुरु मानै, मुनिवत् तिनका सन्मानादि करै । सो शास्त्रविषे कृतकारित अनुमोदनाका फल कह्या है तातें इनको भी वैसा ही फल लागै है । मुनिपद लेनेका तौ क्रम यह है—पहलें तत्त्वज्ञान होय, पीछें उदासीन परिणाम होय, परिष-हादि सहने की शक्ति होय, तब वह स्वयमेव मुनि भया चाहै । तब श्रीगुरु मुनिधर्म्म अंगीकार करावै । यहु कौन विपरीत जे तत्त्वज्ञान-रहित विषयकषायासक्त जीव तिनको मायाकरि वा लोभ दिखाय मुनिपद देना, पीछें अन्यथा प्रवृत्ति करावनी, सो यहु बडा अन्याय है। ऐसें कुगुरुका वा तिनके सेवनका निषेध किया । अब इस कथन के दृढ करनेकों शास्त्रनिकी साखि दीजिए है । तहाँ उपदेशसिद्धान्त रत्नमाला विषें ऐसा कह्या है—

गुरुणो भट्टा जाया सद्दे थुणिऊण लिंति दाणाइं ।
दोण्णवि अमुणियसारा दूसमिसमयम्मि बुड्ढंति ।।३१।।

कालदोषतें गुरु जे है, ते भाट भए। भाटवत् शब्दकरि दातारकी स्तुति करिकै दानादि ग्रहै है। सो इस दुखमा कालविषै दोऊ ही दातार वा पात्र संसारविषै डूबै हैं। बहुरि तहाँ कह्या है—

सप्पे दिट्ठे णासइ लोओ णहि कोवि किंपि अक्खेइ ।
जो चयइ कुगुरु सप्पं हा मूढा भणइ तं दुट्ठं ।।३६।।

याका अर्थ—सर्पकों देखि कोऊ भागै, ताको तो लोक किछू भी कहै नाही। हाय हाय देखो, जो कुगुरु सर्पको छोरै है, ताहि मूढ दुष्ट कहैं, बुरा बोलै।

सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइं ।
तो वर सप्पं गहियं मा कुगुरुसेवणं भद्दं ।।३७।।

अहो सर्पकरि तो एक ही बार मरण होय अर कुगुरु अनतमरण दे है—अनतबार जन्ममरण करावै है। तातै हे भद्र, सांपका ग्रहण तो भला अर कुगुरुका सेवन भला नाही। और भी गाथा तहाँ इस श्रद्धान दृढ़ करनेकों कारण बहुत कही है सो तिस ग्रन्थतै जानि लेनी। बहुरि संघपट्टविषै ऐसा कह्या है—

क्षुत्क्षामः किल कोपि रंकशिशुकः प्रव्रज्य चैत्ये क्वचित्
कृत्वा किंचनपक्षमक्षतकलिः प्राप्तस्तदाचार्यकम् ।
चित्रं चैत्यगृहे गृहीयति निजे गच्छे कुटुम्बीयति
स्वं शक्रीयति बालिशीयति बुधान् विश्व वराकीयति ।।

याका अर्थ – देखो, क्षुधाकरि कृश कोई रंकका बालक सो कहीं चैत्यालयादिविषें दीक्षा धारि कोई पक्षकरि पापरहित न होता संता आचार्य पदकों प्राप्त भया। बहुरि वह चैत्यालयविषें अपने गृहवत् प्रवर्त्तै है, निजगच्छविषें कुटुम्बवत् प्रवर्त्तै है, आपकों इन्द्रवत् महान् मानै है, ज्ञानीनिको बालकवत् अज्ञानी मानै है,सर्वगृहस्थनिकों रंकवत् मानै है सो यहु बड़ा आश्चर्य भया है। बहुरि '**येर्जातो न च वर्द्धितो न च न च क्रीतो**' इत्यादि काव्य है। ताका अर्थ ऐसा हैं – जिनकरि जन्म न भया, वध्या नाही, मोल लिया नाहीं, देणदार भया नाहीं, इत्यादि कोई प्रकार सम्बन्ध नाही अर गृहस्थनिकों वृषभवत् बहावें, जोरावरी दानादिक ले, सो हाय हाय यहु जगत् राजाकरि रहित है, कोई न्याय पूछनेवाला नाही। ऐसे ही इस श्रद्धान के पोषक तहां काव्य हैं सो तिस ग्रंथ तें जानना।

यहा कोऊ कहै, ए तो श्वेतांबरविरचित उपदेश है तिनकी साक्षी काहेकों दई ?

ताका उत्तर—जैसे नीचा पुरुष जाका निषेध करै, ताका उत्तमपुरुषकै तो सहज ही निषेध भया। तैसे जिनकै वस्त्रादि उपकरण कहे, वे हू जाका निषेध करै, तो दिगम्बरधर्म्म विषे तो ऐसी विपरीतिका सहज ही निषेध भया। बहुरि दिगम्बर ग्रन्थनिविषे भी इस श्रद्धान के पोषक वचन है। तहा श्रीकुन्दकुन्दाचायकृत षट्पाहुड़विषें (दर्शनपाहुडमें) ऐसा कह्या है—

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठं जिणवरेंहि सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो ॥२॥

याका अर्थ—जिनवरकरि सम्यग्दर्शन है मूल जाका ऐसा धर्म्म उपदेश्या है। ताकों सुनकरि हे कर्णसहित हो, यहु मानों—सम्यक्त्व-रहित जीव वंदनेयोग्य नाहीं। जे आप कुगुरु ते कुगुरुका श्रद्धानसहित सम्यक्ती कैसें होंय? बिना सम्यक्त अन्य धर्म्म भी न होय। धर्म्म बिना वंदने योग्य कैसें होंय। बहुरि कहै हैं—

जे दंसणेसु भट्टा णाणे भट्टा चरित्तभट्टाय ।
एदे भट्टविभट्टा सेसंपि जणं विणासंति ।। ८ ।।

जे दर्शनविषै भ्रष्ट हैं, ज्ञानविषै भ्रष्ट हैं, चारित्रभ्रष्ट हैं, ते जीव भ्रष्टतें भ्रष्ट हैं; और भी जीव जो उनका उपदेश माने हैं, तिस जीव का नाश करें है, बुरा करे हैं। बहुरि कहै हैं—

जे दंसणेसु भट्टा पाए पाडंति दंसणधराणं ।
ते हुंति लुल्लमूया बोही पुण दुल्लहा तेसिं ।।१२।।

जे आप तो सम्यक्ततै भ्रष्ट हैं अर सम्यक्त्वधारकनिकों अपने पगों पडाया चाहै हैं, ते लूले गूंगे हो हैं; भाव यहु—स्थावर हो हैं। बहुरि तिनकै बोधि की प्राप्ति महादुर्लभ हो है।

जेवि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जगारवभएण ।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ।।१३।।
—(द० पा०)

जो जानता हुवा भी लज्जागारव भयकरि तिनके पगां पड़ै हैं, तिनकै भी बोधी जो सम्यक्त सो नाहीं है। कैसे हैं ए जीव, पापकी अनुमोदना करते हैं। पापीनिका सन्मानादि किएं तिस पापकी अनुमोदनाका फल लागै है। बहुरि (सूत्र पाहुड में) कहैं हैं—

जस्स परिग्गहग्गहणं अप्प बहुयं च हवइ लिंगस्स ।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो ॥१६॥
—(सूत्र पा०)

जिस लिंगके थोरा वा बहुत परिग्रहका अंगीकार होय सो जिन वचनविषै निंदा योग्य है। परिग्रहरहित ही अनगार हो है। बहुरि (भावपाहुड़मे) कहै है—

धम्मम्मि णिप्पिवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो ।
णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण ॥७१॥
(भाव पा०)

याका अर्थ—जो धर्म्मविषै निरुद्यमी है, दोषनिका घर है, इक्षुफूल समान निष्फल है, गुणका आचरणकरि रहित है, सो नग्नरूपकरि नट श्रमण है, भांडवत् भेषधारी है। सो नग्न भए भाडका दृष्टाँत सभवै है। परिग्रह राखै तो यह भी दृष्टात बनै नाही।

जे पावमोहियमई लिंगं घत्तूण जिणवरिंदाणं ।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७८॥
—(मो० पा०)

याका अर्थ—पापकरि मोहित भई है बुद्धि जिनकी ऐसे जे जीव जिनवरनिका लिग धारि पाप करै है, ते पापमूर्ति मोक्षमार्गविषै भ्रष्ट जानने। बहुरि ऐसा कह्या है—

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाहीय जायणासीला ।
आधाकम्मम्मिरया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७९॥
—(मो० पा०)

याका अर्थ--जे पंचप्रकार वस्त्रविषैं आसक्त हैं, परिग्रहके ग्रहणहारे हैं, याचनासहित हैं, अधःकर्म्म दोषनिविषैं रत हैं, ते मोक्षमार्गविषैं भ्रष्ट जानने। और भी गाथा सूत्र तहाँ तिस श्रद्धानके दृढ़ करनेकों कारण कहे है ते तहाते जानने। बहुरि कुन्दकुन्दाचार्यकृत लिंगपाहुड़ है, तिसविषै मुनिलिंगधारि जो हिंसा आरंभ यंत्रमंत्रादि करै हैं, ताका निषेध बहुत किया है। बहुरि गुणभद्राचार्यकृत आत्मानुशासन विषै ऐसा कह्या है—

इतस्ततश्च त्रस्यन्तो विभावर्य्यां यथा मृगा. ।
वनाद्वसन्त्युग्रामं कलौ कष्टं तपस्विनः ॥१९७॥

याका अर्थ--कलिकालविषै तपस्वी मृगवत् इधर उधरतैं भयवान् होय वनतें नगरके समीप बसै है, यहु महाखेदकारी कार्य भया है। यहाँ नगर-समीप ही रहना निषेध्या, तो नगरविषैं रहना तो निषिद्ध भया ही।

वरं गार्हस्थ्यमेवाद्य तपसो भाविजन्मनः ।
सुस्त्रीकटाक्षलुण्टाकलुप्तवैराग्यसम्पदः ॥ २०० ॥

याका अर्थ—अबार होनहार है अनंतसंसार जातैं ऐसे तपतैं गृहस्थपना ही भला है। कैसा है वह तप, प्रभात ही स्त्रीनिके कटाक्षरूपी लुटेरेनिकरि लूटी है वैराग्य संपदा जाकी, ऐसा है। बहुरि योगीन्द्रदेवकृत परमात्मप्रकाशविषै ऐसा कह्या है—

दोहा—

चिल्ला चिल्लो पुत्थर्याहि, तूसइ मूढ णिभंतु ।
एयहिं लज्जइ णाणियउ, बंधहहेउ मुणंतु ॥२१४॥

चेला चेली पुस्तकनिकरि मूढ संतुष्ट हो है। भ्रान्ति रहित ऐसा ज्ञानी इसे बंधका कारण जानता संता इनिकरि लज्जायमान हो है।

केणवि अप्पउ वंचियउ, सिर लुँचि वि छारेण।
सयलु वि संग ण परहरिय, जिणवरलिंगधरेण ॥२१६॥

किसी जीवकरि अपना आत्मा ठिग्या। सो कौन ? जिहिं जीव जिनवरका लिंग धारचा अर राखकरि माथाका लोंचकरि समस्तपरिग्रह छांड्या नाही।

जे जिणलिंग धरेवि मुणि इट्ठपरिग्गह लिंति।
छद्दिकरेविणु ते वि जिय, सो पुण छद्दि गिलंति ॥२१७॥

याका अर्थ—हे जीव ! जे मुनि जिनलिंग धारि इष्ट परिग्रहकों ग्रहै हैं, ते छर्दि करि तिस ही छर्दिकू बहुरि भखे है। भाव यह—निदनीय हैं इत्यादि तहाँ कहे हैं। ऐसे शास्त्रनिविषै कुगुरुका वा तिनके आचरनका वा तिनकी सुश्रूषाका निषेध किया है, सो जानना। बहुरि जहाँ मुनिकै धात्रीदूतआदि छयालीस दोष आहारादिविषै कहे हैं, तहां गृहस्थनिके बालकनिकों प्रसन्न करना, समाचार कहना, मंत्र औषधि ज्योतिषादि कार्य बतावना इत्यादि, बहुरि किया कराया अनुमोद्या भोजन लेना इत्यादि क्रिया का निषेध किया है। सो अब काल दोषतें इनही दोषनिकों लगाय आहारादि ग्रहै हैं। बहुरि पार्श्वस्थ कुशीलादि भ्रष्टाचारी मुनिनका निषेध किया है, तिन हीका लक्षणनिकों धरै हैं। इतना विशेष—वे द्रव्यां तो नग्न रहै हैं, ए नाना परिग्रह राखे हैं। बहुरि तहाँ मुनिनकै भ्रमरी आदि आहार

लेनेकी विधि कही है। ए आसक्त होय दातारके प्राण पीड़ि आहारादि ग्रहैं हैं। बहुरि ग्रहस्थधर्मविषें भी उचित नाहीं वा अन्याय लोकनिंद्य पापरूप कार्य तिनको करते प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि जिनबिम्ब शास्त्रादिक सर्वोत्कृष्ट पूज्य तिनका तो अविनय करै हैं। बहुरि आप तिनतें भी महंतता राखि ऊंचा बैठना आदि प्रवृत्तिकों धारै हैं। इत्यादि अनेक विपरीतता प्रत्यक्ष भासै अर आपकों मुनि मानैं, मूल-गुणादिकके धारक कहावै। ऐसैं ही अपनी महिमा करावै। बहुरि गृहस्थ भोले उनकरि प्रशंसादिककरि ठिगे हुए धर्मका विचार करैं नाही। उनकी भक्ति विषें तत्पर हो हैं। सो बड़े पापकों बडा धर्म मानना, इस मिथ्यात्वका फल कैसें अनंतसंसार न होय। एक जिनवचन को अन्यथा मानैं महापापी होना शास्त्रविषै कह्या है। यहां तो जिन-वचनकी किछू बात ही राखी नाही। इस समान और पाप कौन है?

अब यहाँ कुयुक्तिकरि जे तिनि कुगुरुनिका स्थापन करै है, तिनका निराकरण कीजिए है। तहाँ वह कहै है, –गुरू विना तो निगुरा होय अर वैसे गुरु अबार दीसैं नाही। तातैं इनहींकों गुरु मानना।

ताका उत्तर—निगुरा तो वाका नाम है, जो गुरु मानै ही नाही। बहुरि जो गुरु को तो मानै अर इस क्षेत्रविषें गुरुका लक्षण न देखि काहूकों गुरु न मानै, तो इस श्रद्धानतै तो निगुरा होता नाही। जैसैं नास्तिक्य तो वाका नाम है, जो परमेश्वरको मानैं ही नाही। बहुरि जो परमेश्वरको तो मानै अर इस क्षेत्रविषै परमेश्वरका लक्षण न देखि काहू को परमेश्वर न मानै, तो नास्तिक्य तो होता नाही। तैसैं ही यहु जानना।

बहुरि वह कहै है, जैनशास्त्रनिविषै अबार केवलीका तो अभाव कह्या है, मुनिका तो अभाव कह्या नाहीं।

ताका उत्तर—ऐसा तो कह्या नाही, इनि देशनिविषै सद्भाव रहेगा। भरत क्षेत्रविषै कहै है, सो भरतक्षेत्र तो बहुत बड़ा है। कहीं सद्भाव होगा, तातैं अभाव न कह्या है। जो तुम रहो हो तिस ही क्षेत्र विषै सद्भाव मानोगे, तो जहां ऐसे भी गुरु न पावोगे,तहां जावोगे तब किसको गुरु मानोगे। जैसैं हंसनिका सदभाव अबार कह्या है अर हंस दीसते नाहीं, तो और पक्षीनिको तो हंस मान्या जाता नाहीं। तैसे मुनिनिका सद्भाव अबार कह्या है अर मुनि दीसते नाहीं, तो औरनिको तो मुनि मान्या जाय नाहीं।

बहुरि वह कहै है, एकअक्षर के दाता को गुरु मानै है। जे शास्त्र सिखावैं वा सुनावैं, तिनको गुरु कैसे न मानिए ?

ताका उत्तर—गुरु नाम बडेका है। सो जिस प्रकार की महतता जाकै संभवै, तिस प्रकार ताको गुरुसंज्ञा संभवै। जैसें कुल अपेक्षा मातापिताको गुरु संज्ञा है, तैसें ही विद्या पढावनेवालेको विद्या अपेक्षा गुरु संज्ञा है। यहाँ तो धर्मका अधिकार है। तातैं जाकै धर्म्म अपेक्षा महतता संभवै, सो गुरु जानना। सो धर्म्म नाम चारित्रका है। 'चारित्तं खलु धम्मो' ऐसा शास्त्रविषै कह्या है। तातैं चारित्रका धारकहीको गुरु संज्ञा है। बहुरि जैसे भूतादिका भी नाम देव है, तथापि यहाँ देवका श्रद्धानविषै अरहंतदेवहीका ग्रहण है तैसें और-निका भी नाम गुरु है, तथापि इहां श्रद्धानविषैं निर्ग्रंथही का ग्रहण

❀ प्रवचनसार १—७

है। सो जिनधर्म्म विषें अरहंत देव निर्ग्रंथ गुरु ऐसा प्रसिद्ध वचन है।

यहाँ प्रश्न—जो निर्ग्रंथ बिना और गुरु न मानिए सो कारण कहा ?

ताका उत्तर – निर्ग्रंथबिना अन्य जीव सर्वप्रकारकरि महंतता नाहीं धरै हैं। जैसें लोभी शास्त्रव्याख्यान करै, तहाँ वह वाकों शास्त्र सुनावनेतें महंत भया। वह वाकों धनवस्त्रादि देनेतें महंत भया। यद्यपि बाह्य शास्त्र सुनावनेवाला महंत रहै तथापि अन्तरग लोभी होय सो सर्वथा महंतता न भई।

यहाँ कोऊ कहै, निर्ग्रंथ भी तो आहार ले हैं।

ताका उत्तर – लोभी होय दातारकी सुश्रूषाकरि दीनतातें आहार न ले हैं। तातें महंतता घटै नाही। जो लोभी होय सो ही हीनता पावै है। ऐसें ही अन्य जीव जाननें। तातें निर्ग्रंथ ही सर्वप्रकार महंततायुक्त हैं। बहुरि निर्ग्रंथ बिना अन्य जीव सर्वप्रकार गुणवान नाहीं। तातें गुरुनिकी अपेक्षा महतता अर दोषनिकी अपेक्षा हीनता भासै, तब निःशक स्तुति करी जाय नाही। बहुरि निर्ग्रंथ बिना अन्य जीव जैसा धर्म्म साधन करै, तैसा वा तिसतें अधिक गृहस्थ भी धर्म्म साधन करि सकै। तहाँ गुरु सज्ञा किसको होय ? तातैं बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ मुनि हैं, सोई गुरु जानना।

यहाँ कोऊ कहै, ऐसे गुरु तो अबार यहाँ नाहीं, तातैं जैसे अरहंत की स्थापना प्रतिमा है, तैसे गुरुनिकी स्थापना ए भेषधारी है—

ताका उत्तर—जैसें राजाकी स्थापना चित्रामादिककरि करै तो राजा का प्रतिपक्षी नाही अर कोई सामान्य मनुष्य आपकों राजा मनावै तो राजाका प्रतिपक्षी हो है। तैसें अरहंतादिककी पाषाणादि विषें स्थापना बनावै तो तिनका प्रतिपक्षी नाही अर कोई सामान्य

मनुष्य आपकों मुनि मनावै तो वह मुनिनका प्रतिपक्षी भया । ऐसें भी स्थापना होती होय तो आपकों अरहत भी मनावो । बहुरि जो उनको स्थापना भए है तो बाह्य तो वैसे ही भए चाहिए। वे निर्ग्रंथ, ए बहुत परिग्रहके धारी, यह कसे बने ?

बहुरि कोई कहै—अब श्रावक भी तो जैसे सम्भवै तैसे नाहीं। तातैं जैसे श्रावक तसे मुनि।

ताका उत्तर–श्रावकसंज्ञा तो शास्त्रविषें सर्व गृहस्थ जैनीकों है। श्रेणिक भी असंयमी था, ताकों उत्तरपुराणविषें श्रावकोत्तम कह्या। बारहसभाविषै श्रावक कहे, तहां सर्व व्रतधारी न थे। जो सर्वव्रतधार होते, तो असंयत मनुष्यनिकी जुदी सख्या कहते, सो कही नाहीं। तातैं गृहस्थ जैनी श्रावक नाम पावै है। अर मुनिसंज्ञा तो निर्ग्रन्थ बिना कहीं कही नाहीं। बहुरि श्रावककै तो आठ मूलगुण कहे हैं। सो मद्य मांस मधु पंचउदंबरादि फलनिका भक्षण श्रावकनिकै है नाहीं, तातैं काहू प्रकारकरि श्रावकपना तो सम्भवै भी है। अर मुनिकै अट्ठाईस मूलगुण हैं, सो भेषीनिकै दीसते ही नाही। तातैं मुनिपनों काहू प्रकार सम्भवै नाहीं। बहुरि गृहस्थ अवस्थाविषें तो पूर्वे जम्बूकुमारादिक बहुत हिंसादि कार्य किए सुनिए हैं। मुनि होयकरि तो काहूने हिंसादिक कार्य किए नाहीं, परिग्रह राखे नाहीं, तातैं ऐसी युक्ति कारजकारी नाहीं। बहुरि देखो, आदिनाथजीके साथ च्यारि हजार राजा दीक्षा लेय बहुरि भ्रष्ट भए, तब देव उनकों कहते भए, जिनलिंगी होय अन्यथा प्रवर्त्तोगे तो हम दंड देंगे। जिनलिंग छोरि तुम्हारी इच्छा होय, सो तुम जानो। तातैं जिनलिंगी कहाय अन्यथा प्रवर्तै, ते तो दंड योग्य हैं। वंदनादि योग्य कैसें होय ? अब बहुत कहा कहिए, जिन-

मत विषें कुभेष धारें हैं ते महापाप उपजावें हैं। अन्य जीव उनकी सुश्रूषा आदि करें हैं, ते भी पापी हो हैं। पद्मपुराणविषें यह कथा है— जो श्रेष्ठी धर्मात्मा चारण मुनिनिकों भ्रमतें भ्रष्ट जानि आहार न दिया, तो प्रत्यक्ष भ्रष्ट तिनकों दानादिक देना कैसे सम्भवै ?

यहां कोऊ कहै, हमारै अंतरंग विषें श्रद्धान तो सत्य है परन्तु बाह्य लज्जादिकरि शिष्टाचार करें हैं, सो फल तो अंतरंग का होगा?

ताका उत्तर—षट्पाहुडविषै लज्जादिकरि वन्दनादिकका निषेध दिखाया था, सो पूर्वं ही कह्या था। बहुरि कोऊ जोरावरी मस्तक नमाय हाथ जुडावै, तब तो यह सम्भवै जो हमारा अन्तरंग न था। अर आप ही मानादिकतै नमस्कारादि करै, तहाँ अन्तरंग कैसें न कहिए। जैसे कोई अंतरग विषें तो मांसकों बुरा जानै अर राजादिकके भला मनावनेकों मांस भक्षण करै, तो वाकों व्रती कैसें मानिए ? तैसें अंतरंगविषै तो कुगुरुसेवनकों बुरा जानै अर तिनका वा लोकनिका भला मनावनेकों सेवन करै, तो श्रद्धानी कैसे कहिए। तातैं बाह्यत्याग किए ही अंतरंग त्याग सम्भवै है। तातें जे श्रद्धानी जीव हैं, तिनकों काहू प्रकारकरि भी कुगुरुनिकी सुश्रूषाआदि करनी योग्य नाहीं। या प्रकार कुगुरुसेवनका निषेध किया।

यहा कोऊ कहै—काहू तत्त्वश्रद्धानीकों कुगुरु सेवनतें मिथ्यात्व कसैं भया ?

ताका उत्तर—जैसे शीलवती स्त्री परपुरुषसहित भर्तारवत रमण क्रिया सर्वथा करै नाही, तैसें तत्त्व श्रद्धानी पुरुष कुगुरु सहित सुगुरुवत् नमस्कारादिक्रिया सर्वथा करै नाही। काहेतें, यह तो जीवादि तत्त्व-निका श्रद्धानी भया है। तहां रागादिककों निषिद्ध श्रद्है है, वीतराग

भाव को श्रेष्ठ मानै है। तातैं जिनकैं वीतरागता पाईए, वैसेही गुरुको उत्तम जानि नमस्कारादि करै है। जिनकैं रागादिक पाईए, तिनकों निषिद्ध जानि नमस्कारादि कदाचित् करै नाही।

कोऊ कहै—जैसैं राजादिककों करै, तैसे इनकों भी करै है।

ताका उत्तर—राजादिक धर्मपद्धति विषै नाहीं। गुरुका सेवन धर्म्म पद्धतिविषैं है। सो राजादिकका सेवन तो लोभादिकतैं हो है। तहाँ चारित्रमोह ही का उदय सम्भवै है। अर गुरुनिकी जायगा कुगुरुनिकों सेए, वहाँ तत्त्वश्रद्धान के कारण गुरु थे, तिनतैं प्रतिकूली भया। सो लज्जादिकतैं जानै कारणविषै विपरीतता निपजाई, ताकै कार्यभूत तत्त्व श्रद्धानविषैं दृढ़ता कैसें सम्भवै ? तातैं तहाँ दर्शनमोहका उदय सम्भवै है। ऐसें कुगुरुनिका निरूपण किया।

कुधर्म का निरूपण और उसके श्रद्धानादिकका निषेध

अब कुधर्म्मका निरूपण कीजिए है--

जहाँ हिंसादि पाप उपजै वा विषयकषायनिकी वृद्धि होय, तहाँ धर्म मानिए, सो कुधर्म जानना। तहाँ यज्ञादिक क्रियानिविषैं महा हिंसादिक उपजावै, बड़े जीवनिका घात करै अर तहाँ इन्द्रियनिके विषय पोषै। तिन जीवनिविषै दुष्ट बुद्धिकरि रौद्रध्यानी होय तीव्रलोभतैं औरनिका बुरा करि अपना कोई प्रयोजन साध्या चाहै, ऐसा कार्य करि तहाँ धर्म मानै सो कुधर्म है। बहुरि तीर्थनिविषै वा अन्यत्र स्नानादि कार्य करै, तहां बड़े छोटे घनें जीवनिकी हिंसा होय,शरीरकों चैन उपजै, तातैं विषयपोषण होय, तातैं कामादिक बधैं, कुतूहलादिक करि तहाँ कषाय भाव बधावै, बहुरि तहां धर्म मानै सो यह कुधर्म है।

बहुरि संक्रांति, ग्रहण, व्यतीपातादिक विषै दान दे वा खोटा ग्रहादिक के अर्थि दान दे, बहुरि पात्र जानि लोभी पुरुषनिकों दान दे, बहुरि दान देनेविषै सुवर्ण हस्ती घोड़ा तिल आदि वस्तुनिकों दे, सो संक्रांति आदि पर्व धर्मरूप नाहीं। ज्योतिषी संचारादिककरि संक्रांतिआदि हो है। बहुरि दुष्टग्रहादिकके अर्थि दिया,तहाँ भय लोभादिकका आधिक्य भया। तातैं तहाँ दान देनेमें धर्म नाहीं। बहुरि लोभी पुरुष देने योग्य पात्र नाहीं। जातैं लोभी नाना असत्ययुक्ति करि ठिगै हैं। किछू भला करते नाही। भला तो तब होय, जब याका दान का सहाय करि वह धर्म साधै। सो वह तो उलटा पापरूप प्रवर्त्तै। पापका सहाईका भला कैसें होय ? सो ही रयणसार शास्त्रविषै कह्या है—

सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणं फलाणं सोहं वा।
लोहीणं दाणं जइ विमाणसोहा सवस्स जाणेह ॥२६॥

याका अर्थ—सत्पुरुषनिकों दान देना कल्पवृक्षनिके फलनिकी शोभा समान है, शोभा भी है अर सुखदायक भी है बहुरि लोभी पुरुषनिकों दान देना जो होय, सो शव जो मरया ताका विमान जो चकडोल ताकी शोभा समान जानहु। शोभा तो होय परन्तु धनीकों परम दुःखदायक हो है। तातै लोभी पुरुषनिकों दान देनेमें धर्म नाहीं बहुरि द्रव्य तो ऐसा दीजिए,जाकरि वाकै धर्म बधै। सुवर्ण हस्तीआदि दीजिए, तिनिकरि हिंसादिक उपजै वा मान लोभादि बधै। ताकरि महापाप होय। ऐसी वस्तुनिका देने वाला कों पुन्य कैसें होय। बहुरि विषयासक्त जीव रतिदानादिकविषैं पुन्य ठहरावैं हैं। सो प्रत्यक्ष कुशी-लादिक पाप जहाँ होय,तहाँ पुण्य कैसे होय। अर युक्ति मिलावनेकों कहै

जो वह स्त्री सन्तोष पावं है। तो स्त्री तो विषय सेवन किए सुख पावै ही पावै, शीलका उपदेश काहेकों दिया। रतिसमय बिना भी वाका मनोरथ अनुसार न प्रवर्त्तै दुःख पावै। सो ऐसी असत्य युक्ति बनाय विषयपोषनेका उपदेश दे हैं। ऐसे ही दयादान वा पात्रदान विना अन्य दान देय धर्म मानना सर्व कुधर्म है।

बहुरि व्रतादिककरिकै तहाँ हिंसादिक वा विषयादिक बधावै है। सो व्रतादिक तो तिनकों घटावनेके अर्थि कोजिए है। बहुरि जहाँ अन्नका तो त्याग करै अर कंदमूलादिकनिका भक्षण करै, तहां हिंसा विशेष भई—स्वादादिकविषय विशेष भए। बहुरि दिवस विषै तो भोजन करै नाहीं अर रात्रिविषैं करै। सो प्रत्यक्ष दिवस भोजनतैं रात्रि भोजनविषैं हिंसा विशेष भासै, प्रमाद विशेष होय। बहुरि व्रतादिकरि नाना शृङ्गार बनावै, कुतूहल करै, जूवा आदि रूप प्रवर्तै, इत्यादि पापक्रिया करै। बहुरि व्रतादिकका फल लौकिक इष्टकी प्राप्ति अनिष्टका नाशकों चाहै, तहां कषायनिकी तीव्रता विशेष भई। ऐसे व्रतादिकरि धर्म मानैं हैं, सो कुधर्म है।

बहुरि भक्त्यादिकार्यनिविषै हिंसादिक पाप बधावैं वा गीत नृत्यगानादिक वा इष्ट भोजनादिक वा अन्य सामग्रोनिकरि विषयनिकों पोषैं, कुतूहल प्रमादादिरूप प्रवर्तै। तहाँ पाप तो बहुत उपजावै अर धर्मका किछू साधन नाहीं, तहां धर्म मानैं सो सब कुधर्म है।

बहुरि केई शरीरकों तो क्लेश उपजावैं अर तहां हिंसादिक निपजावैं वा कषायादिरूप प्रवर्त्तैं। जैसें पंचाग्नि तापैं, सो अग्निकरि बड़े छोटे जीव जलैं, हिंसादिक बधै, यामैं धर्म कहा भया। बहुरि औंधेमुख झूलैं, ऊर्ध्व बाहु राखैं, इत्यादि साधन करैं तहां क्लेश ही

होय; किछू ए धर्म के अंग नाहीं । बहुरि पवन साधन करें, तहां नेती धोती इत्यादि कार्यनिविषें जलादिक करि हिंसादिक उपजै, चमत्कार कोई उपजै, तातैं मानादिक बधै, किछू तहां धर्मसाधन नाहीं। इत्यादि क्लेश करें, विषयकषाय घटावनेका कोई साधन करै नाहीं । अंतरंग विषैं क्रोध मान माया लोभ का अभिप्राय है, वृथा क्लेशकरि धर्म मानै हैं, सो कुधर्म है ।

बहुरि केई इस लोक विषै दुःख सह्या न जाय वा परलोकविषैं इष्ट की इच्छा वा अपनी पूजा बढावने के अर्थि वा कोई क्रोधादिकरि अपघात करै । जैसे पतिवियोगतैं अग्निविषैं जलकरि सती कहावै है वा हिमालय गलै है, काशीकरोत ले है, जीवित माही ले है, इत्यादि कार्यकरि धर्म मानै हैं । सो अपघातका तो बडा पाप है । जो शरीरादिकतै अनुराग घटचा था तो तपश्चरणादि किया होता, मरि जानें में कौन धर्म का अंग भया । तातैं अपघात करना कुधर्म है । ऐसें ही अन्य भी घने कुधर्मके अंग है । कहां ताईं कहिए, जहां विषय कषाय बधै अर धर्म मानिए, सो सर्व कुधर्म जानने ।

देखो कालका दोष, जैनधर्म विषै भी कुधर्मकी प्रवृत्ति भई । जैनमतविषैं जे धर्मपर्व कहे है, तहां तो विषय कषाय छोरि संयमरूप प्रवर्त्तना योग्य है । ताको तो आदरै नाही अर व्रतादिकका नाम धराय तहां नाना शृङ्गार बनावे वा इष्ट भोजनादि करै वा कुतूहलादि करैं वा कषाय बधावनेके कार्य करें, जूवा इत्यादि महापापरूप प्रवर्त्तैं ।

बहुरि पूजनादि कार्यनिविषै उपदेश तो यहु था--'सावद्यलेशो

बहुपुण्यराशौ दोषाय नालं'❀ पापका अंश बहुत पुण्य समूहविषैं दोषके अर्थ नाहीं। इस छलकरि पूजाप्रभावनादि कार्यनिविषैं रात्रि विषैं दीपकादिकरि वा अनन्तकायादिकका संग्रहकरि वा अयत्नाचार प्रवृत्तिकरि हिंसादिकरूप पाप तो बहुत उपजावैं अर स्तुति भक्ति आदि शुभ परिणामनिविषैं प्रवर्त्तें नाहीं वा थोरे प्रवर्त्तें, सो टोटा घना नफ़ा थोरा वा नफा किछू नाहीं। ऐसा कार्य करनेमें तो बुरा ही दीखना होय।

बहुरि जिनमंदिर तो धर्मका ठिकाना है। तहाँ नाना कुकथा करनी, सोवना इत्यादिक प्रमाद रूप प्रवर्त्तें वा तहाँ बाग बाड़ी इत्यादि बनाय विषयकषाय पोषैं। बहुरि लोभी पुरुषनिकों गुरु मानि दानादिक दें वा तिनकी असत्य स्तुनिकरि महंतपनों मानें, इत्यादि प्रकार करि विषयकषायनिकों तो बधावै अर धर्म मानैं। सो जिन-धर्म तो वीतरागभावरूप है। तिस विषै ऐसी विपरीत प्रवृत्ति काल दोषतैं ही देखिए है। या प्रकार कुधर्म सेवन का निषेध किया।

कुधर्म सेवनसे मिथ्यात्वभाव–

अब इस विषै मिथ्यात्वभाव कैसें भया, सो कहिए है—

तत्वश्रद्धान करनेविषै प्रयोजनभूत एक यह है,रागादिक छोड़ना। इस ही भाव का नाम धर्म्म है। जो रागादिक भावनिकों बधाय धर्म्म माने, तहाँ तत्त्व श्रद्धान कैसे रह्या ? बहुरि जिन आज्ञातैं प्रतिकूली भया। बहुरि रागादिक भाव तो पाप है तिनकों धर्म्म मान्या, सो

❀ "पूज्यं जिनं त्वार्चयतोजनस्य, सावद्यलेशोबहुपुण्यराशौ।
दोषायनालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ"
—बृहत्स्वयंभूस्तोत्र ॥५८॥

यह झूंठ श्रद्धान भया । तातैं कुधर्म्म सेवनविषैं मिथ्यात्व भाव है। ऐसें कुदेव कुगुरु कुशास्त्र सेवन विषै मिथ्यात्व भावकी पुष्टता होती जानि याका निरूपण किया। सोई षट्पाहुड़(मोक्षपा०)विषैं कह्या है–

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च वंदए जो दु ।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो दु ॥ ९२ ॥

याका अर्थ—जो लज्जातैं वा भयतैं वा बडाईतैं भी कुत्सित् देवकों वा कुत्सित् धर्म्मकों वा कुत्सित् लिंगकों वदे हैं सो मिथ्यादृष्टी हो हैं। ताते जो मिथ्यात्वका त्याग किया चाहैं, सो पहले कुदेव कुगुरु कुधर्मका त्यागी होय। सम्यक्त्व के पच्चीस मलनिके त्याग विषैं भी अमूढदृष्टि विषे वा षडायतनविषैं इनहीका त्याग कराया है । तातैं इनका अवश्य त्याग करना। बहुरि कुदेवादिकके सेवनतै जो मिथ्यात्वभाव हो है, सो यह हिंसादिक पापनितै बडा पाप है। याके फलतैं निगोद नरकादि पर्याय पाईए है । तहाँ अनतकाल पर्यंत महासंकट पाईए है। सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति महादुर्लभ होय जाय है। सो ही षट्पाहुड़विषै (भाव पाहुडमें) कह्या है—

कुच्छियधम्मम्मि-रम्रो,कुच्छिय पासंडि भत्तिसंजुत्तो ।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छिय गइभायणो होइ ॥१४०॥

याका अर्थ–जो कुत्सितधर्म्म विषै रत है, कुत्सित पाखंडीनिकी भक्तिकरि सयुक्त है, कुत्सित तपको करता है, सो जीव कुत्सित जो खोटी गति ताकों भोगनहारा हो है । सो हे भव्य हो, किंचिन्मात्र लोभतैं वा भयतै कुदेवादिकका सेवनकरि जातैं अनन्तकालपर्यंत महादु:ख सहना होय ऐसा मिथ्यात्वभाव करना योग्य नाहीं । जिनधर्म्म

विषैं यह तो आम्नाय है, पहलें बडा पाप छुडाय पीछैं छोटा पाप छुड़ाया। सो इस मिथ्यात्वकों सप्तव्यसनादिकतें भी बड़ा पाप जानि पहलें छुड़ाया है। तातें जे पापके फलतें डरें हैं, अपने आत्माकों दुःख समुद्रमें न डुबाया चाहैं हैं, ते जीव इस मिथ्यात्वकों अवश्य छोड़ो। निन्दा प्रशंसादिकके विचारतें शिथिल होना योग्य नाहीं। जातें नीति विषें भी ऐसा कह्या है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वास्तु मरणं तु युगान्तरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा ॥१॥ (नीतिशतक ८४)

जे निन्दे हैं ते निन्दो अर स्तवें हैं तो स्तवो, बहुरि लक्ष्मी आवो वा जहाँ तहां जावो, बहुरि अब ही मरण होहु वा युगांतर विषें होहु परन्तु नीतिविषें निपुण पुरुष न्यायमार्गतें पैडहू चलें नाही। ऐसा न्याय विचारि निन्दा प्रशंसादिकका भयतें लोभादिकतें अन्यायरूप मिथ्यात्व प्रवृत्ति करनी युक्त नाही। अहो! देव गुरु धर्म्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं। इनके आधारि धर्म है। इन विषें शिथिलता राखें अन्य धर्म कैसे होइ तातें बहुत कहनेकरि कहा, सर्वथा प्रकार कुदेव कुगुरु कुधर्म्मका त्यागी होना योग्य है। कुदेवादिकका त्याग न किए मिथ्यात्व भाव बहुत पुष्ट हो हे। अर अबार इहां इनकी प्रवृत्ति विशेष पाईए है। तातें इनिका निषेधरूप निरूपण किया है। ताकों जानि मिथ्यात्वभाव छोड़ि अपना कल्याण करो।

इति मोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रविषें कुदेव कुगुरु कुधर्म-निषेध वर्णन रूप छठा अधिकार समाप्त भया ॥ ६ ॥

ॐ नमः

सातवां अधिकार

जैन मतानुयायी मिथ्यादृष्टिका स्वरूप

दोहा।

इस भव तरुका मूल इक, जानहु मिथ्या भाव।
ताकों करि निर्मूल अब, करिए मोक्ष उपाव ॥१॥

अर्थ—जे जीव जैनी हैं, जिन आज्ञाकों मानें हैं अर तिनकै भी मिथ्यात्व रहै है ताका वर्णन कीजिए है - जातै इस मिथ्यात्व वैरी का अंश भी बुरा है, तातै सूक्ष्ममिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है। तहां जिन आगम विषै निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है। तिन विषै यथार्थका नाम निश्चय है, उपचार का नाम व्यवहार है। सो इनका स्वरूपकों न जानते अन्यथा प्रवर्तै है, सोई कहिए है—

केवल निश्चयनयावलम्बी जैनाभासका निरूपण

केई जीव निश्चयकों न जानते निश्चयाभासके श्रद्धानी होइ आपकों मोक्षमार्गी मानै हैं। अपने आत्माकों सिद्ध समान अनुभवै हैं। सो आप प्रत्यक्ष संसारी हैं। भ्रमकरि आपकों सिद्ध मानै सोई मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रनिविषें जो सिद्ध समान आत्माकों कह्या है सो द्रव्यदृष्टि करि कह्या है, पर्याय अपेक्षा समान नाहीं हैं। जैसें राजा अर रंक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं, राजापना रंकपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं। तैसें सिद्ध अर संसारी जीवत्वपनेकी अपेक्षा समान हैं, सिद्धपना

संसारीपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं। यहु जैसें सिद्ध शुद्ध हैं,तैसें ही आपकों शुद्ध मानें। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्था पर्याय है। इस पर्याय अपेक्षा समानता मानिए,सो यहु मिथ्यादृष्टि है। बहुरि आपकै केवलज्ञानादिकका सद्भाव मानै सो आपकै तो क्षयोपशमरूप मतिश्रुतादि ज्ञानका सद्भाव है। क्षायिकभाव तो कर्म्मका क्षय भए होइ है। यह भ्रमतें कर्म्मका क्षय भए विना ही क्षायिकभाव मानै। सो यहु मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रविषें सर्वजीवनिका केवलज्ञानस्वभाव कह्या है,सो शक्ति अपेक्षा कह्या है। सर्वजीवनिविषें केवलज्ञानादिरूप होनेकी शक्ति है। वर्तमान व्यक्तता तो व्यक्त भए ही कहिए।

कोऊ ऐसा मानै है–आत्माके प्रदेशनिविषें तो केवलज्ञान ही है, ऊपरि आवरणतें प्रगट न हो है सो यहु भ्रम है। जो केवलज्ञान होइ तो बज्रपटलादि आड़े होतें भी वस्तुकों जानें। कर्मको आड़े आए कैसें अटकै। तातैं कर्मके निमित्ततै केवलज्ञानका अभाव ही है। जो याका सर्वदा सद्भाव रहै है तो याकों पारिणामिकभाव कहते, सो यहु तो क्षायिकभाव है। जो सर्वभेद जामैं गर्भित ऐसा चेतन्यभाव सो पारिणामिक भाव है। याकी अनेक अवस्था मतिज्ञानादिरूप वा केवलज्ञानादिरूप हैं, सो ए पारिणामिकभाव नाही। तातै केवलज्ञानका सर्वदा सद्भाव न मानना। बहुरि जो शास्त्रनिविषै सूर्यका दृष्टान्त दिया है, ताका इतना ही भाव लेना,जैसें मेघपटल होतें सूर्य प्रकाश प्रगट न हो है, तैसें कर्मउदय होतें केवलज्ञान न हो है। बहुरि ऐसा भाव न लेना, जैसे सूर्यविषें प्रकाश रहै है, तैसे आत्म विषे केवलज्ञान रहै है। जातैं दृष्टांत सर्व प्रकार मिलै नाही। जैसें पुद्गल विषे वर्ण गुण है, ताकी

हरित पीतादि अवस्था हैं । सो वर्तमान विषैं कोई अवस्था होतें अन्य अवस्थाका अभाव ही है। तैसें आत्मा विषे चैतन्यगुण है, ताकी मतिज्ञानादिरूप अवस्था हैं। सो वर्तमान कोई अवस्था होतें अन्य अवस्थाका अभाव ही है।

बहुरि कोऊ कहै कि आवरण नाम तो वस्तु के आच्छादनेका है, केवलज्ञानका सद्‌भाव नाही है तो केवलज्ञानावरण काहेकों कहो हो ?

ताका उत्तर—यहां शक्ति है ताकों व्यक्त न होने दे, इस अपेक्षा आवरण कह्या है। जैसें देशचारित्रका अभाव होतें शक्ति घातनेकी अपेक्षा अप्रत्याख्यानावरण कषाय कह्या तैसे जानना । बहुरि ऐसे जानों–वस्तु विषै जो परनिमित्ततै भाव होय ताका नाम औपाधिक-भाव है अर परनिमित्त बिना जो भाव होय ताका नाम स्वभाव भाव है । सो जैसे जलकै अग्निका निमित्त होते उष्णपनों भयो, तहां शीतलपनाका अभाव ही है । परन्तु अग्निका निमित्त मिटे शीतलता ही होय जाय तातै सदाकाल जलका स्वभाव शीतल कहिए,जातै ऐसी शक्ति सदा पाइए है। बहुरि व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए । कदाचित् व्यक्तरूप हो है। तैसे आत्माकै कर्म्मका निमित्त होतें अन्य रूप भयो, तहाँ केवलज्ञानका अभाव ही है। परन्तु कर्म का निमित्त मिटें सर्वदा केवलज्ञान होय जाय। तातै सदा काल आत्माका स्वभाव केवलज्ञान कहिए है। जातै ऐसी शक्ति सदा पाईए है । व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए । बहुरि जैसें शीतल स्वभावकरि उष्णजल कों शीतल मानि पानादि करै, तो दाझना ही होय । तैसें केवल

ज्ञानस्वभावकरि अशुद्ध आत्माकों केवलज्ञानी मानि अनुभवै, तो दुःखी ही होय। ऐसें जे केवलज्ञानादिकरूप आत्माकों अनुभवै हैं, ते मिथ्यादृष्टी हैं। बहुरि रागादिक भाव आपकै प्रत्यक्ष होत भ्रमकरि आत्माकों रागादिरहित मानै। सो पूछिए है—ए रागादिक तो होते देखिए हैं, ए किस द्रव्य के अस्तित्वविषै हैं। जो शरीर वा कर्मरूप-पुद्गलके अस्तित्वविषैं होंय तो ए भाव अचेतन वा मूर्तीक होय। सो तो ए रागादिक प्रत्यक्ष चेतनता लिए अमूर्त्तीक भाव भासै हैं। तातैं ए भाव आत्माहीके हैं। सोई समयसारके कलशविषै कह्या है—

कार्यत्वादकृतं न कर्म्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो–
रज्ञायाः प्रकृतेःस्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात् कृतिः।

नैकस्याः प्रकृतेरचित्वलसनाज्जीवऽस्य कर्त्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत् पुद्गलः॥

(सर्ववि० अधिकार कलश २०३)

याका अर्थ यहु—रागादिरूप भावकर्म है, सो काहूकरि न किया, ऐसा नहीं है, जातै यह कार्यभूत है। बहुरि जीव अर कर्म्मप्रकृति इन दोऊनिका भी कर्तव्य नाही जातै ऐसें होय तो अचेतन कर्म्मप्रकृतिकै भी तिस भावकर्मका फल सुख दुःख ताका भोगना होइ, सो असंभव है। बहुरि एकली कर्म्मप्रकृतिका भी यहु कर्त्तव्य नाहीं, जातैं वाकै अचेतनपनो प्रगट है। तातै इस रागादिकका जीवही कर्त्ता है अर सो रागादिक जीवहीका कर्म है। जातैं भावकर्म्म तो चेतना का अनुसारी है, चेतना बिना न होइ। अर पुद्गल ज्ञाता है नाहीं।

ऐसें रागादिकभाव जीव के अस्तित्वविषें हैं। अब जो रागादिक भावनिका निमित्त कर्म्महीको मानि आपकों रागादिकका अकर्त्ता मानें हैं, सो कर्त्ता तो आप अर आपकों निरुद्यमी होय प्रमादी रहना, तातें कर्म्म हीका दोष ठहरावै हैं। सो यहु दुःखदायक भ्रम है। सोई समयसारका कलशा विषै कह्या है—

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनींशुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः॥
(सर्व वि० अधिकार कलश २२१)

याका अर्थ—जे जीव रागादिककी उत्पत्तिविषै परद्रव्यहीकों निमित्तपनो मानै है, ते जीव शुद्ध ज्ञानकरि रहित है अंधबुद्धि जिनकी ऐसे होत संते मोहनदीकों नाही उतरें हैं। बहुरि समयसारका 'सर्वविशुद्धिअधिकार' विषै जो आत्मा कों अकर्त्ता मानै है अरयहु कहै है—कर्म ही जगावै सुवावै है, परघात कर्मतें हिंसा है, वेदकर्मतें अब्रह्म है, तातें कर्म ही कर्त्ता है; तिस जैनीको सांख्यमती कह्या है। जैसें सांख्यमती आत्माकों शुद्ध मानि स्वच्छन्द हो है, तैसें ही यहु भया। बहुरि इस श्रद्धानतें यहु दोष भया, जो रागादिक अपने न जानें आपकों अकर्त्ता मान्या, तब रागादिक होने का भय रह्या नाहीं वा रागादिक मेटने का उपाय करना रह्या नाहीं, तब स्वच्छन्द होय खोटे कर्म बांधि अनंतसंसारविषै रुलै है।

यहाँ प्रश्न—जो समयसारविषें ही ऐसा कह्या है—

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा

भिन्नाभावाः सर्व्वे एवास्य पुंसः*।

याका अर्थ—वर्णादिक वा रागादिकभाव हैं, ते सर्व ही इस आत्मातें भिन्न हैं। बहुरि तहाँ ही रागादिककों पुद्गलमय कहे हैं। बहुरि अन्य शास्त्रनिविषै भी रागादिकतें भिन्न आत्माकों कह्या है, सो यहु कैसे है ?

ताका उत्तर—रागादिकभाव परद्रव्य के निमित्ततें औपाधिकभाव हो हैं अर यहु जीव तिनिकों स्वभाव जानै है। जाकों स्वभाव जानै, ताकों बुरा कैसे मानैं वा ताके नाशका उद्यम काहेकों करै। सो यहु श्रद्धान भी विपरीत है। ताके छुडावनेको स्वभावकी अपेक्षा रागादिक कों भिन्न कहे है अर निमित्तकी मुख्यताकरि पुद्गलमय कहे हैं। जैसे वैद्य रोग मेटचा चाहै है, जो शीतका आधिक्य देखै तो उष्ण औषधि बतावै अर आतापका आधिक्य देखै तो शीतल औषधि बतावै। तैसे श्रीगुरु रागादिक छुडाया चाहै हैं। जो रागादिक परका मानि स्वच्छन्द होय निरुद्यमी होय, ताकों उपादान कारणकी मुख्यताकरि रागादिक आत्माका है, ऐसा श्रद्धान कराया। बहुरि जो रागादिक आपका स्वभावमानि तिनिका नाशका उद्यम नाही करै है ताकों निमित्तकारण की मुख्यताकरि रागादिक परभाव है, ऐसा श्रद्धान कराया है। दोऊ विपरीत श्रद्धानतें रहित भए सत्य श्रद्धान होय तब ऐसा मानैं—ए रागादिक भाव आत्मा का स्वभाव तो नाही हैं, कर्म के निमित्ततें

---

* वर्णाद्यावा राग मोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमीनो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात्॥
(जीवाजी० कलश ३७)

आत्मा के अस्तित्वविषै विभावपर्याय निपजै हैं। निमित्त मिटे इनका नाश होतें स्वभावभाव रहि जाय है। तातै इनिके नाशका उद्यम करना।

यहाँ प्रश्न—जो कर्मका निमित्त तैं ए हो हैं, तो कर्मका उदय रहै तावत् ए विभाव दूरि कैसे होंय ? तातैं याका उद्यम करना तो निरर्थक है।

ताका उत्तर—एक कार्य होनेविषैं अनेक कारण चाहिए हैं। तिनविषैं जे कारण बुद्धिपूर्वक होय, तिनकों तो उद्यम करि मिलावै अर अबुद्धिपूर्वक कारण स्वयमेव मिलै तब कार्यसिद्धि होय। जैसैं पुत्र होनेका कारण बुद्धिपूर्वक तो विवाहादिक करना है अर अबुद्धिपूर्वक भवितव्य है। तहाँ पुत्रका अर्थी विवाहादिकका तो उद्यम करै अर भवितव्य स्वयमेव होय, तब पुत्र होय। तैसै विभाव दूरि करनेके कारण बुद्धि पूर्वक तो तत्त्वविचारादिक है अर अबुद्धिपूर्वक मोहकर्मका उपशमादिक है। सो ताका अर्थी तत्त्वविचारादिकका तो उद्यम करै अर मोहकर्मका उपशमादिक स्वयमेव होय, तब रागादिक दूरि होय।

यहां ऐसा कहै है कि जैसै विवाहादिक भी भवितव्य आधीन हैं तैसै तत्त्वविचारादिक भी कर्मका क्षयोपशमादिकके आधीन हैं, तातैं उद्यम करना निरर्थक है।

ताका उत्तर—ज्ञानावरणका तो क्षयोपशम तत्त्वविचारादिक करने योग्य तेरे भया है। याहीतैं उपयोगकों यहां लगावनेका उद्यम कराइए हैं। असंज्ञी जीवनिकै क्षयोपशम नाही है, तो उनकों काहेकों

उपदेश दीजिए है।

बहुरि वह कहै है—होनहार होय तो तहाँ उपयोग लागै, बिना होनहार कैसे लागै ?

ताका उत्तर—जो ऐसा श्रद्धान है तो सर्वत्र कोई ही कार्य का उद्यम मति करै। तू खान पान व्यापारादिकका तो उद्यम करै अर यहां होनहार बतावै। सो जानिए है, तेरा अनुराग यहां नाही। मानादिक करि ऐसी झूंठी बातें बनावै है। या प्रकार जे रागादिक होते तिन करि रहित आत्माकों मानै हैं, ते मिथ्यादृष्टी जाननें।

बहुरि कर्म नोकर्मका सम्बन्ध होते आत्माकों निर्बन्ध मानै, सो प्रत्यक्ष इनिका बंधन देखिए है। ज्ञानावरणादिकतै ज्ञानादिकका घात देखिए है। शरीरकरि ताके अनुसारि अवस्था होती देखिए है। बधन कैसें नाहीं। जो बंधन न होय तो मोक्षमार्गी इनके नाशका उद्यम काहेकों करै।

यहां कोऊ कहै—शास्त्रनिविषै आत्माकों कर्म नोकर्मतै भिन्न अबद्धस्पष्ट कैसें कह्या है ?

ताका उत्तर—सम्बन्ध अनेक प्रकार है। तहाँ तादात्म्य संबध अपेक्षा आत्माकों कर्म नोकर्मतै भिन्न कह्या है। जातै द्रव्य पलटकरि एक नाहीं होय जाय है अर इस ही अपेक्षा अबद्ध स्पष्ट कह्या है। बहुरि निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध अपेक्षा बन्धन है ही। उनके निमित्ततैं आत्मा अनेक अवस्था धरै ही है। तातैं सर्वथा निर्बन्ध आपकों मानना मिथ्यादृष्टि है।

यहां कोऊ कहै—हमकों तो बंध मुक्तिका विकल्प करना नाहीं,

जाते शास्त्रविषें ऐसा कह्या है—

"जो बंधउ मुक्कउ मुणइ, सो बंधइ णिभंतु ।"

याका अर्थ—जो जीव बंध्या अर मुक्त भया मानै है,सा निःसन्देह बंधै है ताकों कहिए है—

जे जीव केवल पर्यायदृष्टि होय बंध मुक्त अवस्था ही कों मानें हैं, द्रव्य स्वभावका ग्रहण नाहीं करे हैं, तिनकों ऐसा उपदेश दिया है; जो द्रव्य स्वभावकों न जानता जीव बंध्या मुक्त भया मानैं, सो बंधै है। बहुरि जो सर्वथा ही बन्ध मुक्ति न होय, तो सो जीव बंधै है, ऐसा काहेकों कहै । अर बन्ध के नाश का, मुक्त होने का उद्यम काहेकों करिए है। काहेकों आत्मानुभव करिये है। तातैं द्रव्यदृष्टि करि एक दशा है, पर्यायदृष्टिकरि अनेक अवस्था हो है, ऐसा मानना योग्य है।

ऐसे ही अनेक प्रकारकरि केवल निश्चयनयका अभिप्रायतें विरुद्ध श्रद्धानादिक करे है। जिनवाणीविषै तो नाना नय अपेक्षा कहीं कैसा कहीं कैसा निरूपण किया है । यह अपने अभिप्रायतें निश्चयनय की मुख्यताकरि जो कथन किया होय, ताहीकों ग्रहिकरि मिथ्यादृष्टिकों धारै है। बहुरि जिनवाणीविषें तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए मोक्षमार्ग कह्या है। सो याकै सम्यग्दर्शन ज्ञान विषें सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान वा जानना भया चाहिए, सो तिनका विचार नाहीं। अर चारित्रविषै रागादिक दूरि किया चाहिए, ताका उद्यम नाही । एक अपने आत्माकों शुद्ध अनुभवना इसहीको मोक्षमार्ग जानि सन्तुष्ट भया है । ताका अभ्यास करनेकों अंतरंगविषें ऐसा चिंतवन किया करै है—मैं सिद्ध समान शुद्ध हूँ, केवलज्ञानादि सहित हूँ, द्रव्यकर्म

नोकर्म रहित हूँ, परमानन्दमय हूँ, जन्म मरणादि दुःख मेरै नाहीं, इत्यादि चितवन करै है। सो यहाँ पूछिए है—यहु चितवन जो द्रव्य-दृष्टिकरि करो हो, तो द्रव्य तो शुद्ध अशुद्ध सर्वपर्यायनिका समुदाय है। तुम शुद्ध ही अनुभवन काहेकौं करो हो। अर पर्यायदृष्टि करि करो हो, तो तुम्हारै तो वर्त्तमान अशुद्ध पर्याय है। तुम आपाकौं शुद्ध कैसे मानो हो? बहुरि जो शक्ति अपेक्षा शुद्ध मानो हो, तो मैं ऐसा होने योग्य हूँ ऐसा मानो। मै ऐसा हूँ ऐसे काहेको मानों हो। तातैं आपकों शुद्धरूप चितवन करना भ्रम है। काहेतै–तुम आपकों सिद्ध-समान मान्या, तो यहु ससार अवस्था कौनकी है। अर तुम्हारै केवल-ज्ञानादिक हैं, तो ये मतिज्ञानादिक कौनके है। अर द्रव्यकर्म नोकर्म-रहित हो, तो ज्ञानादिककी व्यक्तता क्यो नही? परमानन्दमय हो, तो अब कर्त्तव्य कहा रह्या? जन्म मरणादि दुख ही नाही, तो दुःखी कैसे होते हो? तातै अन्य अवस्थाविषै अन्य अवस्था मानना भ्रम है।

यहा कोऊ कहै–शास्त्रविषै शुद्ध चितवन करनेका उपदेश कैसें दिया है।

ताका उत्तर–एक तो द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्याय अपेक्षा शुद्धपना है। तहाँ द्रव्यअपेक्षा तो परद्रव्यतै भिन्नपनों वा अपने भाव-नितैं अभिन्नपनों ताका नाम शुद्धपना है। अर पर्याय अपेक्षा औपा-धिकभावनिका अभाव होना, ताका नाम शुद्धपना है। सो शुद्ध चितवनविषैं द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना ग्रहण किया है। सोई समयसारव्याख्या-विषैं कह्या है–

एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते । (समयसार आत्मख्याति टीका गाथा० ६)

याका अर्थ–जो आत्मा प्रमत्त अप्रमत्त नाहीं है । सो यहु ही समस्त परद्रव्यनिके भावनितै भिन्नपनेकरि सेया हुआ शुद्ध ऐसा कहिए है । बहुरि तहाँ ही ऐसा कह्या है ।

सकलकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूतिमात्रत्वाच्छुद्धः ।
(समयसार आत्मख्याति टीका गाथा८७३)

याका अर्थ—समस्त ही कर्त्ता कर्म आदि कारकनिका समूहकी प्रक्रियातै पारंगत ऐसी जो निर्मल अनुभूति जो अभेद ज्ञान तन्मात्र है, तातै शुद्ध है । तातै ऐसै शुद्ध शब्द का अर्थ जानना । बहुरि ऐसै ही केवल शब्द का अर्थ जानना । जो परभावतै भिन्न निःकेवल आप ही ताका नाम केवल है । ऐसै हो अन्य यथार्थ अर्थ अवधारना । पर्याय अपेक्षा शुद्धपनों माने वा केवली आपकों माने महाविपरीत होय । तातै आपको द्रव्यपर्यायरूप अवलोकना । द्रव्यकरि सामान्य-स्वरूप अवलोकना, पर्यायकरि अवस्था विशेष अवधारना । ऐसै ही चितवन किए सम्यग्दृष्टी हो है । जातै साँचा अवलोके बिना सम्य-ग्दृष्टी कैसै नाम पावै ।

बहुरि मोक्षमार्गविषै तो रागादिक मेटनेका श्रद्धान ज्ञान आचरण करना है सो तो विचार ही नाही । आपका शुद्ध अनुभवनतै ही आपकों सम्यग्दृष्टी मानि अन्य सर्व साधननिका निषेध करै है; शास्त्र अभ्यास करना निरर्थक बतावै है, द्रव्यादिकका गुणस्थान मार्गणा त्रिलोकादिका विचारको विकल्प ठहरावै है, तपश्चरण

करना वृथा क्लेश करना मानै है, व्रतादिकका धारना बंधनमें परना ठहरावै है, पूजनादि कार्यनिकों शुभास्रव जानि हेय प्ररूपै है: इत्यादि सर्व साधनकों उठाय प्रमादी होय परिणमैं है। सो शास्त्राभ्यास निरर्थक होय तो मुनिनकै भी तो ध्यान अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं। ध्यानविषे उपयोग न लागै, तब अध्ययनहीविषैं उपयोगकूं लगावै है, अन्य ठिकाना बीच में उपयोग लगावने योग्य है नाहीं। बहुरि शास्त्र अभ्यासकरि तत्त्वनिका विशेष जाननेतैं सम्यग्दर्शन ज्ञान निर्मल होय है। बहुरि तहाँ यावत् उपयोग रहै, तावत् कषाय मन्द रहै। बहुरि आगामी वीतरागभावनिकी वृद्धि होय। ऐसें कार्यकों निरर्थक कैसें मानिए?

बहुरि वह कहै—जो जिनशास्त्रनिविषें अध्यात्म उपदेश है, तिनि का अभ्यास करना, अन्य शास्त्रनिका अभ्यासकरि किछू सिद्धि नाही।

ताकों कहिए है—जो तेरै साची दृष्टि भई है, तो सर्व ही जैन शास्त्र कार्यकारी है। तहा भी मुख्यपनें अध्यात्म शास्त्रनिविषै तो आत्मस्वरूपका मुख्य कथन है सो सम्यग्दृष्टी भए आत्मस्वरूपका तो निर्णय होय चुकै, तब तो ज्ञान की निर्मलता के अर्थि वा उपयोग को मंद-कषायरूप राखनेके अर्थि अन्य शास्त्रनिका अभ्यास मुख्य चाहिए। अर आत्मस्वरूपका निर्णय भया है, ताका स्पष्ट राखनेके अर्थि अध्यात्मशास्त्रनिका भी अभ्यास चाहिए परन्तु अन्य शास्त्रनिविषैं अरुचि तो न चाहिए। जाकै अन्य शास्त्रनिकै अरुचि है, ताकै अध्यात्मकी रुचि सांची नाही। जैसे जाकै विषयासक्तपना होय, सो

विषयासक्त पुरुषनिकी कथा भी रुचितैं सुनै वा विषयके विशेषकों भी जानै वा विषयके आचरनविषैं जो साधन होय ताकौं भी हितरूप मानै वा विषका स्वरूपकों भी पहिचानै। तैसें जाकै आत्मरुचिभई होय, सो आत्मरुचिके धारक तीर्थंकरादिक तिनका पुराण भी जानैं। बहुरि आत्माके विशेष जाननेकों गुणस्थानादिककों भी जानै। बहुरि आत्मा-चरणविषै जे व्रतादिक साधन हैं, तिनकों भी हितरूप मानें। बहुरि आत्माके स्वरूपकों भी पहिचानें। तातैं च्यारघों ही अनुयोग कार्य-कारी हैं। बहुरि तिनका नोका ज्ञान होनेके अर्थि शब्द न्यायशास्त्रा-दिककों भो जानना चाहिए। सो अपनी शक्तिके अनुसार सबनिका थोरा वा बहुत अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि वह कहै है, 'पद्मनन्दिपच्चीसी' विषैं ऐसा कह्या है—जो आत्मस्वरूपतै निकसि बाह्य शास्त्रनिविषै बुद्धि विचरै है, सो वह बुद्धि व्यभिचारिणी है।

ताका उत्तर—यहु सत्य कह्या है। बुद्धि तो आत्माकी है, ताकौं छोरि परद्रव्य शास्त्रनिविषै अनुरागिणी भई, ताकौं व्यभिचारिणी ही कहिए। परन्तु जैसें स्त्री शीलवती रहै तो योग्य ही है अर न रह्या जाय तो उत्तम पुरुषकों छोरि चांडालादिकका सेवन किए तो अत्यन्त निंदनीक होइ। तैसें बुद्धि आत्मस्वरूपविषैं प्रवर्त्ते तो योग्य ही है अर न रह्या जाय तो प्रशस्त शास्त्रादि परद्रव्यकों छोरि अप्रशस्त विषयादिविषैं लगै तो महानिंदनीक ही होइ। सो मुनिनिकै भी स्वरूपविषैं बहुत काल बुद्धि रहै नाहीं तो तेरी कैसें रह्या करै? तातैं शास्त्राभ्यासविषैं उपयोग लगावना युक्त है। बहुरि जो द्रव्यादिक-

का वा गुणस्थानादिकका विचारको विकल्प ठहरावै है,सो विकल्प तो है परंतु निर्विकल्प उपयोग न रहै तब इनि विकल्पनिकों न करै तो अन्य विकल्प होइ, ते बहुत रागादि गर्भित हो है। बहुरि निर्विकल्प दशा सदा रहै नाहीं। जातै छद्मस्थका उपयोग एक रूप उत्कृष्ट रहै तो अन्तर्मुहूर्त रहै। बहुरि तू कहैगा—मैं आत्मस्वरूपही का चितवन अनेक प्रकार किया करूँगा, सो सामान्य चितवनविषै तो अनेक प्रकार बनैं नाही। अर विशेष करेगा, तब द्रव्य गुण पर्याय गुणस्थान मार्गणा शुद्ध अशुद्ध अवस्था इत्यादि विचार होयगा। बहुरि सुनि, केवल आत्मज्ञानहीतै तो मोक्षमार्ग होइ नाही। सप्ततत्वनिका श्रद्धान ज्ञान भए वा रागादिक दूरि किए मोक्षमार्ग होगा। सो सप्त तत्व-निका विशेष जाननेको जीव अजीवके विशेष वा कर्मके आस्रव बंधादिकका विशेष अवश्य जानना योग्य है, जातैं सम्यग्दर्शन ज्ञानकी प्राप्ति होय। बहुरि तहाँ पीछे रागादिक दूरि करने। सो जे रागादिक बधावने के कारण तिनको छोड़ि जे रागादिक घटावनेके कारण होंय तहां उपयोगकों लगावना। सो द्रव्यादिकका गुणस्थानादिकका विचार रागादिक घटावनेको कारण है। इन विषै कोई रागादिकका निमित्त नाही। तातै सम्यग्दृष्टी भए पीछेभी इहांही उपयोग लगावना।

बहुरि वह कहै है— रागादि मिटावनेकों कारण होंय तिनविषै तो उपयोग लगावना परन्तु त्रिलोकवर्ती जीवनिका गति आदि विचार करना वा कर्मका बध उदयसत्तादिकका घणा विशेष जानना वा त्रिलोकका आकार प्रमाणादिक जानना इत्यादि विचार कौन कार्य-कारी है।

ताका उत्तर—इनिकों भी विचारतें रागादिक बधते नाही। जातैं ए ज्ञेय याकै इष्ट अनिष्टरूप हैं नाहीं। तातैं वर्तमान रागादिककों कारण नाही। बहुरि इनको विशेष जानें तत्त्वज्ञान निर्मल होय, तातैं आगामी रागादिक घटावनेकों ही कारण हैं। तातैं कार्यकारी हैं।

बहुरि वह कहै है—स्वर्ग नरकादिकको जानें तहां रागद्वेष हो है।

ताका समाधान—ज्ञानीकैं तो ऐसी बुद्धि होइ नाही, अज्ञानीकैं होय। तहां पाप छोरि पुण्यकार्यविषै लागै तहां किछू रागादिक घटै ही है।

बहुरि वह कहै है-शास्त्रविषै ऐसा उपदेश है, प्रयोजनभूत थोरा ही जानना कार्यकारी है तातैं बहुत विकल्प काहेको कीजिए।

ताका उत्तर— जे जीव अन्य बहुत जानैं अर प्रयोजनभूतकों न जानैं अथवा जिनकी बहुत जानने की शक्ति नाही, तिनको यहु उपदेश दिया है। बहुरि जाकी बहुत जाननेकी शक्ति होय, ताकों तो यहु कह्या नाही जो बहुत जाने बुरा होगा। जेता बहुत जानैगा, तितना प्रयोजनभूत जानना निर्मल होगा। जातैंशास्त्रविषै ऐसा कह्या है—

सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्।

याका अर्थ यहु—सामान्य शास्त्रतें विशेष बलवान है। विशेषहीतैं नीके निर्णय हो है। तातैं विशेष जानना योग्य है। बहुरि वह तपश्चरणकों वृथा क्लेश ठहरावै है। सो मोक्षमार्गी भए तो संसारी जीवनितैं उलटी परणति चाहिए। संसारीनिकै इष्ट अनिष्ट सामग्रीतैं रागद्वेष हो है, याकै रागद्वेष न चाहिए। तहां राग छोड़नेके अर्थि इष्ट सामग्री भोजनादिकका त्यागी हो है अर द्वेष छोड़नेके अर्थि अनिष्ट

सामग्री अनशनादिक ताका अंगीकार करै है। स्वाधीनपनें ऐसा साधन होय तो पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिलें भी राग द्वेष न होय। सो चाहिए तो ऐसे अर तेरै अनशनादितें द्वेष भया, तातैं ताकों क्लेश ठहराया। जब यहु क्लेश भया, तब भोजन करना सुख स्वयमेव ठहर्या, तहां राग आया; तो ऐसी परिणति तो ससारीनिकै पाईएही है, तैं मोक्षमार्गी होय कहा किया।

बहुरि जो तू कहेगा, केई सम्यग्दृष्टी भी तपश्चरण नाहीं करें हैं।

ताका उत्तर--यहु कारण विशेषतै तप न होय सकै है परन्तु श्रद्धानविषै तो तपकों भला जानै हैं। ताके साधनका उद्यम राखै हैं। तेरै तो श्रद्धान यहु है, तप करना क्लेश है। बहुरि तपका तेरै उद्यम नाहीं, तातैं तेरै सम्यग्दृष्टी कैसे होय ?

बहुरि वह कहै है--शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है-तप आदिका क्लेश करै है तो करो, ज्ञान बिना सिद्धि नाही।

ताका उत्तर--यहु जे जीव तत्त्वज्ञानतै तो परान्मुख हैं, तपहीतैं मोक्ष मानै हैं, तिनकों ऐसा उपदेश दिया है, तत्त्वज्ञान बिना केवल तपहीतैं मोक्षमार्ग न होय। बहुरि तत्त्वज्ञान भए रागादिक मेटनेके अर्थि तपकरनेका तो निषेध है नाही। जो निषेध होय तो गणधरादिक तप काहेकों करै। तातै अपनी शक्ति अनुसारि तप करना योग्य है। बहुरि वह व्रतादिककों बधन मानै है। सो स्वच्छन्दवृत्तितो अज्ञान-अवस्थाही विषैं थी, ज्ञान पाएं तो परिणतिकों रोकै ही है। बहुरि तिस परिणति रोकनेके अर्थि बाह्य हिसादिक कारणनिका त्यागी अवश्य भया चाहिए।

बहुरि वह कहै है–हमारे परिणाम तो शुद्ध हैं, बाह्य त्याग न किया तो न किया।

ताका उत्तर–जे ए हिंसादि कार्य तेरे परिणाम बिना स्वयमेव होते|होंय,|तो हम ऐसें मानें। बहुरि जो तू अपना परिणामकरि कार्य करै, तहां तेरे परिणाम शुद्ध कैसे कहिए। विषय सेवनादि क्रिया वा प्रमादरूप गमनादि क्रिया परिणाम बिना कैसे होय। सो क्रिया तो आपउद्यमी होय तू करै अर तहाँ हिंसादिक होय ताकों तू गिनै नाही, परिणाम शुद्ध मानै। सो ऐसी मानितै तेरे परिणाम अशुद्ध ही रहेंगे।

बहुरि वह कहै है–परिणामनिकों रोकिए वा बाह्य हिंसादिक भी घटाईए परन्तु प्रतिज्ञा करने में बन्धन हो है, तातैं प्रतिज्ञारूप व्रत नाही अंगीकार करना।

ताका समाधान—जिस कार्य करनेकी आशा रहै है, ताकी प्रतिज्ञा न लीजिए है। अर आशा रहै तिसतै राग रहै है। तिस रागभावतै बिना कार्य किए भी अविरतितैं कर्मका बन्ध हुवा करै। तातै प्रतिज्ञा अवश्य करनी युक्त है। अर कार्य करनेका बंधन भए बिना परिणाम कैसे रुकेंगे, प्रयोजन पड़े तद्रूप परिणाम होंय ही होंय वा बिना प्रयोजन पड़े ताकी आशा रहै। तातै प्रतिज्ञा करनी युक्त है।

बहुरि वह कहै है—न जानिए कैसा उदय आवै, पीछें प्रतिज्ञाभंग होय तो महापाप लागै। तातैं प्रारब्ध अनुसारि कार्य बनैं सो बनों, प्रतिज्ञाका विकल्प न करना।

ताका समाधान—प्रतिज्ञा ग्रहण करतें जाका निर्वाह होता न

जानें, तिस प्रतिज्ञाको तो करै नाहीं। प्रतिज्ञा लेतें हो यहु अभिप्राय रहै, प्रयोजन पड़े छोड़िदूंगा, तो वह प्रतिज्ञा कौन कार्यकारी भई। अर प्रतिज्ञा ग्रहण करते तो यहु परिणाम है, मरणांत भए भी न छोड़ूंगा तो ऐसी प्रतिज्ञा करनी युक्त ही है। बिना प्रतिज्ञा किए अविरत सम्बन्धी बध मिटै नाहीं। बहुरि आगामी उदयका भयकरि प्रतिज्ञा न लीजिए सो उदयको विचारे सर्व ही कर्त्तव्यका नाश होय। जैसे आपकों पचाता जानै, तितना भोजन करै, कदाचित् काहूकै भोजनतै अजीर्ण भया होय तो तिस भयतै भोजन करना छांडै तो मरण ही होय। तैसे आपकै निर्वाह होता जानै तितनी प्रतिज्ञा करै, कदाचित् काहूकै प्रतिज्ञातै भ्रष्टपना भया होय,तो तिस भयतै प्रतिज्ञा करनी छाड़ै तो असयम ही होय। तातै बनैं सो प्रतिज्ञा लेनी युक्त है। बहुरि प्रारब्ध अनुसारि तो कार्य बनै ही है, तू उद्यमी होय भोजनादि काहेकों करै है। जो तहा उद्यम करै है, तो त्याग करने का भी उद्यम करना युक्त ही है। जब प्रतिमावत् तेरी दशा होय जायगी, तब हम प्रारब्ध ही मानेंगे, तेरा कर्त्तव्य न मानेंगे। तातै काहेकों स्वछन्द होनेकी युक्ति बनावै है। बनै सो प्रतिज्ञाकरि व्रत धारना योग्य ही है।

बहुरि वह पूजनादि कार्यकों शुभास्रव जानि हेय मानै है सो यहु सत्य ही है। परन्तु जो इनि कार्यनिकों छोरि शुद्धोपयोगरूप होय तो भले ही है अर विषय कषायरूप अशुभरूप प्रवर्तै तो अपना बुरा ही किया। शुभोपयोगतै स्वर्गादि होय वा भली वासनातै वा भला निमित्ततै कर्मका स्थिति अनुभाग घटि जाय तो सम्यक्त्वादिकको भी प्राप्ति

होय जाय। बहुरि अशुभोपयोगतै नरक निगोदादि होय वा बुरी वासनातै वा बुरा निमित्ततै कर्मका स्थिति अनुभाग बधि जाय, तो सम्यक्तादिक महा दुर्लभ होय जाय। बहुरि शुभोपयोग होतै कषाय मंद हो है, अशुभोपयोगहोतै तीव्र हो है। सो मदकषायका कार्य छोरि तीव्रकषाय का कार्य करना तो ऐसा है, जैसे कडवी वस्तु न खानी अर विष खाना। सो यहु अज्ञानता है।

बहुरि वह कहै है—शास्त्र विषै शुभ अशुभकों समान कह्या है, तातै हमकों तो विशेष जानना युक्त नाहीं।

ताका समाधान—जे जीव शुभोपयोगकों मोक्षका कारण मानि उपादेय मानै है, शुद्धोपयोगकों नाही पहिचानैं हैं, तिनकों शुभ अशुभ दोऊनिकों अशुद्धताकी अपेक्षा वा बधकारणकी अपेक्षा समान दिखाए है। बहुरि शुभ अशुभनिका परस्पर विचार कीजिए, तो शुभ भावनि विषै कषायमद हो है, तातै बध हीन हो है। अशुभभावनिविषै कषायतीव्र हो है, तातै वध बहुत हो है। ऐसै विचार किएं अशुभकी अपेक्षा सिद्धान्तविषै शुभको भला भी कहिए है। जैसे रोग तो थोरा वा बहुत बुरा ही है परन्तु बहुत रोगकी अपेक्षा थोरा रोगकों भला भी कहिए है। तातैं शुद्धोपयोग नाहीं होय, तब अशुभतै छूटि शुभविषै प्रवर्त्तनायुक्त है। शुभकों छोरि अशुभविषैं प्रवर्त्तना युक्त नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जो कामादिक वा क्षुधादिक मिटावनेकों अशुभरूप प्रवृत्ति तो भए विना रहती नाही अर शुभप्रवृत्ति चाहिकरि करनी परै है, ज्ञानीकै चाह चाहिए नाहीं; तातैं शुभका उद्यम नाहीं

करना।

ताका उतर—शुभप्रवृत्तिविषै उपयोग लागनेकरि वा ताके निमित्ततें विरागता बधनेकरि कामादिक हीन हो हैं अर क्षुधादिकविषैं भी संक्लेश थोरा हो है। तातैं शुभोपयोगका अभ्यास करना। उद्यम किए भी जो कामादिक वा क्षुधादिक पीडैं हैं तो ताके अर्थि जैसें थोरा पाप लागै सो करना। बहुरि शुभोपयोगकों छोड़ि निश्शंक पापरूप प्रवर्त्तना तो युक्त नाहीं। बहुरि तू कहै—ज्ञानीकै चाहि नाहीं अर शुभोपयोग चाहि किए हो है सो जैसे पुरुष किंचिन्मात्र भी अपना धन दिया चाहै नाहो परन्तु जहाँ बहुत द्रव्य जाता जानै, तहाँ चाहिकरि स्तोक द्रव्य देनेका उपाय करै है। तैसे ज्ञानी किंचिन्मात्र भी कषायरूप कार्य किया चाहै नाही परन्तु जहाँ बहुत कषायरूप अशुभ कार्य होता जानै तहाँ चाहिकरि स्तोक कषायरूप शुभ कार्य करनेका उद्यम करै है। ऐसे यहु बात सिद्ध भई—जहाँ शुद्धोपयोग होता जानैं, तहाँ तो शुभ कार्यका निषेध ही है अर जहा अशुभोपयोग होता जानैं, तहाँ शुभकों उपायकरि अंगोकार करना युक्त है। या प्रकार अनेक व्यवहारकार्यकों उथापि स्वच्छन्दपनाकों स्थापैं हैं, ताका निषेध किया।

अब तिस ही केवल निश्चयावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति दिखाइए है—

एक शुद्धात्माकों जानें ज्ञानी हो है, अन्य किछू चाहिए नाहीं। ऐसा जानि कबहूं एकांत तिष्ठिकरि ध्यान मुद्रा धारि मैं सर्वकर्म उपाधिरहित सिद्ध समान आत्मा हूँ, इत्यादि विचारकरि सन्तुष्ट हो है। सो ए विशेषण कैसें संभवैं, ऐसा विचार नाहीं। अथवा अच ल

अखंड अनौपम्यादि विशेषण करि आत्माकों ध्यावै है, सो ए विशेषण अन्य द्रव्यनिविषैं भी सम्भवैं हैं । बहुरि ए विशेषण किस अपेक्षा हैं, सो विचार नाहीं । बहुरि कदाचित् सूता बैठ्या जिस तिस अवस्थाविषैं ऐसा विचार राखि आपको ज्ञानी मानैं है। बहुरि ज्ञानी के आस्रव बंध नाही ऐसा आगमविषै कह्या है तातै कदाचित् विषय-कषायरूप हो है। तहाँ बध होनेका भय नाहीं है, स्वच्छन्द भया रागादिरूप प्रवर्त्तै है । सो आपा परकों जाननेका तो चिन्ह वैराग्य-भाव है सो समयसारविषै कह्या है—

"सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः ।"*

याका अर्थ—यहु सम्यग्दृष्टीकै निश्चयसों ज्ञानवैराग्य शक्ति होय। बहुरि कह्या है—

सम्यग्दृष्टि स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या—
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु ।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्व रिक्ताः॥१३७॥

याका अर्थ—स्वयमेव यहु मै सम्यग्दृष्टी हूँ, मेरै कदाचित् बंध नाहीं, ऐसैं ऊँचा फुलाया है मुख जिनने ऐसे रागी वैराग्य शक्ति रहित भी आचरण करै हैं तो करो, बहुरि पंचसमितिकी सावधानीकों

* सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः, स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्य रूपाप्तिमुक्त्या । यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च, स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ॥ निर्जरा० कलश १३६ ॥

अवलम्बे है तो अवलम्बो, जातैं वे ज्ञान शक्ति बिना अजहूं पापी ही हैं। ए दोऊ आत्मा अनात्माका ज्ञानरहितपनातै सम्यक्त्वरहित ही हैं।

बहुरि पूछिए है—परकों पर जान्या, तो परद्रव्यविषै रागादि करनेका कहा प्रयोजन रहा ? तहां वह कहै है–मोहके उदयतै रागादि हो हैं। पूर्वै भरतादिक ज्ञानी भए, तिनकै भी विषय कषाय रूप कार्य भया सुनिये है।

ताका उत्तर—ज्ञानीकै भी मोहके उदयतै रागादिक हो हैं—यहु सत्य परन्तु बुद्धि पूर्वक रागादिक होते नाही। सो विशेष वर्णन आगें करेंगे। बहुरि जाकै रागादिक होनेका किछू विषाद नाही, तिनके नाशका उपाय नाही, ताकै रागादिक बुरे है ऐसा श्रद्धान भी नाही सम्भवै है। ऐसे श्रद्धान बिना सम्यग्दृष्टी कैसे होय ? जीवाजीवादि तत्त्वनिके श्रद्धान करनेका प्रयोजन तो इतना ही श्रद्धान है। बहुरि भरतादिक सम्यग्दृष्टीनिकै [विषय कषायकी प्रवृत्ति जैसै हो है, सो भी विशेष आगे कहेंगे। तू उनका उदाहरणकरि स्वच्छन्द होगा तो तेरै तीव्र आस्रव बंध होगा। सोई कह्या है—

मग्ना ज्ञाननयैषिणोपि यदि ते स्वच्छन्दोद्यमाः*।

---

* मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति यन्।
मग्नाः ज्ञाननयैषिणोपि यदिति स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः॥
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं।
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च॥

—समयसार कलश १११

याका अर्थ—यहु ज्ञाननयके अवलोकनहारे भी जे स्वच्छन्द मद उद्यमी हो है, ते ससारविषै डूबे और भी तहां **"ज्ञानिन कर्म्म न जातु कर्तु मुचितं"** —इत्यादि कलशाविषै वा **"तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनः"**—इत्यादि कलशा विषें स्वच्छन्द होना निषेध्या है। बिना चाहि जो कार्य होय सो कर्मबन्धका कारण नाहीं। अभिप्रायतै कर्त्ता होय करै अर ज्ञाता रहै, यहु तो बनै नाहीं; इत्यादि निरूपण किया है। तातैं रागादिक बुरे अहितकारी जानि तिनका नाशके अर्थि उद्यम राखना। तहाँ अनुक्रमविषैं पहलें तीव्ररागादि छोडनेके अर्थि अशुभ कार्य छोरि शुभ विषें लागना, पीछै मंदरागादि भी छोड़नेके अर्थि शुभकों भी छोरि शुद्धोपयोग रूप होना।

बहुरि केई जीव अशुभविषैं क्लेश मानि व्यापारादि कार्य वा स्त्रीसेवनादि कार्यनिकों भी घटावै हैं। बहुरि शुभकों हेय जानि शास्त्राभ्यासादि कार्यनिविषै नाही प्रवर्त्तै हैं। वीतराग भावरूप शुद्धोपयोगकों प्राप्त भए नाही, ते जीव अर्थ काम धर्म्म मोक्षरूप पुरुषार्थतै रहित होते सते आलसी निरुद्यमी हो है। तिनकी निन्दा पंचास्तिकायकी व्याख्या विषै कीनी है। तिनकों दृष्टांत दिया है—जैसें बहुत खीर खाड खाय पुरुष आलसी हो है वा जैसे वृक्ष निरुद्यमी है, तैसें ते जीव आलसी निरुद्यमी भए है।

अब इनको पूछिए है—तुम बाह्य तो शुभ अशुभकार्यनिकों घटाया परन्तु उपयोग तो आलम्बन बिना रहता नाही, सो तुम्हारा उपयोग कहाँ रहै है, सो कहो। जो वह कहै—आत्माका चिंतवन करै है, तो

शास्त्रादि करि अनेक प्रकारके आत्माका विचारकों तो तुम विकल्प ठहराया अर कोई विशेषण आत्माका जाननेमें बहुतकाल लागै नाहीं बारम्बार एकरूप चितवनविषै छद्मस्थका उपयोग लगता नाहीं। गणधरादिकका भी उपयोग ऐसै न रहि सकै, तातैं वे भी शास्त्रादि कार्यनिविषै प्रवर्त्तै हैं। तेरा उपयोग गणधरादिकतै भी कैसे शुद्ध भया मानिए। तातैं तेरा कहना प्रमाण नाही। जैसे कोऊ व्यापारादिविषै निरुद्यमी होय ठाला जैसें तैसें काल गुमावै, तैसें तू धर्म्म विषै निरुद्यमी होइ प्रमादी यूँही काल गमावै है। कबहू किछू चितवनसा करै, कबहूँ बाते बनावै, कबहूँ भोजनादि करै, अपना उपयोग निर्मल करनेकों शास्त्राभ्यास तपश्चरण भक्ति आदि कार्यनिविषै प्रवर्त्तता नाही। सूनासा होय प्रमादी होनेका नाम शुद्धोपयोग ठहराय, तहा क्लेश थोरा होनेते जैसें कोई आलसी होय परचा रहने मे सुख मानै, तैसे आनन्द मानै है। अथवा जैसें सुपने विषै आपको राजा मानि सुखी होय, तसे आपको भ्रमतै सिद्ध समान शुद्ध मानि आप ही आनन्दित हो है। अथवा जैसें कही रति मानि सुखी हो है, तैसें किछू विचार करने विषै रति मानि सुखी होय, ताकों अनुभवजनित आनद कहै है। बहुरि जैसें कही अरति मानि उदास होय, तैसे व्यापारादिक पुत्रादिककों खेदका कारण जानि तिनतै उदास रहै है, ताको वैराग्य मानै है। सो ऐसा ज्ञान वैराग्य तो कषायगर्भित है। जो वीतरागरूप उदासीन दशाविषै निराकुलता होय, सो साचा आनन्द ज्ञान वैराग्य ज्ञानी जीवनिकै चारित्र मोहकी हीनता भए प्रगट हो है। बहुरि वह व्यापारादि क्लेश छोडि यथेष्ट भोजनादिकरि सुखी हुवा

प्रवर्त्तै है । आपको तहाँ कषायरहित मानै है, सो ऐसै आनन्दरूप भए तो रौद्रध्यान हो है । जहा सुख सामग्री छोड़ि दुख सामग्री का सयोग भए संक्लेश न होय, रागद्वेष न उपजै, तब निःकषाय भाव हो है। ऐसै भ्रमरूप तिनको प्रवृत्ति पाईए है । या प्रकार जे जीव केवल निश्चयाभासके अवलम्बी है, ते मिथ्यादृष्टी जानने । जैसें वेदांती वा सांख्यमतवाले जीव केवल शुद्धात्माके श्रद्धानी है, तैसे ए भी जानने । जातै श्रद्धानकी समानताकरि उनका उपदेश इनकों इष्ट लागै है, इनका उपदेश उनको इष्ट लागै है ।

बहुरि तिन जीवनिकै ऐसा श्रद्धान है–जो केवल शुद्धात्मा का चितवनतै तो संवर निर्जरा हो है वा मुक्तात्माका सुखका अंश तहाँ प्रगट हो है । बहुरि जीवके गुणस्थानादि अशुद्ध भावनिका वा आप बिना अन्य जीव पुद्गलादिकका चितवन किए आस्रव बन्ध हो है । तातै अन्य विचारतै पराङ्मुख रहै हैं । सो यहु भी सत्य श्रद्धान नाही, जातै शुद्ध स्वद्रव्यका चितवन करो वा अन्य चितवन करो; जो वीतरागता लिए भाव होय, तो तहाँ संवर निर्जरा ही है अर जहाँ रागादिरूप भाव होय, तहाँ आस्रव बंध ही है । जो परद्रव्यके जानने-हीतै आस्रव बन्ध होय तो केवली तो समस्त परद्रव्यको जानै हैं, तिनकै भी आस्रव बन्ध होय । बहुरि वह कहै है—जो छद्मस्थकै पर-द्रव्य चितवन होतै आस्रव बन्ध हो है । सो भी नाही, जातै शुक्ल ध्यानविषैं भी मुनिनिकै छहों द्रव्यनिका द्रव्यगुण पर्यायका चितवन होना निरूपण किया है वा अवधिमनः पर्ययादिविषैं परद्रव्यके जाननेहीं को विशेषता हो है । बहुरि चौथा गुणस्थानविषैं कोई अपने

स्वरूपका चितवन करै है, ताकै भी आस्रव बन्ध अधिक है वा गुण श्रेणी निर्जरा नाहीं है। पंचम षष्टम गुणस्थानविषै आहार विहारादि क्रिया होतें परद्रव्य चितवनतें भी आस्रव बन्ध थोरा हो है वा गुण-श्रेणी निर्जरा हुवा करै है। तातैं स्वद्रव्य परद्रव्यका चितवनतें निर्जरा बंध नाहीं। रागादिकके घटे निर्जरा है, रागादिक भए बन्ध है। ताकों रागादिकके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नाही, तातें अन्यथा मानै है।

तहाँ वह पूछै है कि ऐसैं है तो निर्विकल्प अनुभव दशा विषैं नयप्रमाण निक्षेपादिकका वा दर्शन ज्ञानादिकका भी विकल्प का निषेध किया है, सो कैसे है ?

ताका उत्तर—जे जीव इनही विकल्पनिविषै लगि रहे है, अभेद-रूप एक आपकों अनुभवै नाही है, तिनको ऐसा उपदेश दिया है, जो ए सर्व विकल्प वस्तुका निश्चय करनेकों कारण हैं। वस्तु का निश्चय भये इनका प्रयोजन किछू रहता नाहीं। तातें इन विकल्पनिकों भी छोड़ि अभेदरूप एक आत्माका अनुभवन करना। इनिके विचाररूप विकल्पनिही विषै फँसि रहना योग्य नाही। बहुरि वस्तुका निश्चय भए पीछें ऐसा नाही, जो सामान्यरूप स्वद्रव्यहीका चितवन रह्या करै। स्वद्रव्यका वा परद्रव्यका सामान्यरूप वा विशेषरूप जानना होय परन्तु वीतरागता लिएं होय, तिसहीका नाम निर्विकल्प दशा है।

तहाँ वह पूछै है-यहाँ तो बहुत विकल्प भए, निर्विकल्पसंज्ञा कैसें सम्भवै ?

ताका उत्तर—निर्विचार होनेका नाम निर्विकल्प नाही है। जातैं छद्मस्थकै जानना विचार लिए है। ताका अभाव मानें ज्ञानका अभाव

होय, तब जड़पना भया सो आत्माकै होता नाहीं। तातैं विचार तो रहै। बहुरि जो कहिए, एक सामान्यका ही विचार रहता है, विशेषका नाही। तो सामान्यका विचार तो बहुत काल रहता नाहीं वा विशेष की अपेक्षा बिना सामान्यका स्वरूप भासता नाही। बहुरि कहिए— आपहीका विचार रहता है परका नाही, तो परविषै पर बुद्धि भए बिना आपविषै निजबुद्धि कैसै आवै? तहाँ वह कहै है, समयसारविषैं ऐसा कह्या है—

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं॥

(कलश १३०–संवर अधिकार)

याका अर्थ यहु–भेद विज्ञान तावत् निरन्तर भावना, यावत् परतै छूटै ज्ञान है सो ज्ञानविषै स्थित होय। तातै भेद विज्ञान छूट पर का जानना मिटि जाय है। केवल आपहीको आप जान्या करै है।

सो यहाँ तो यहु कह्या है—पूर्वे आपा परको एक जान था, पीछे जुदा जाननेको भेद विज्ञानको तावत् भावना ही योग्य है, यावत् ज्ञान पररूपकों भिन्न जानि अपना ज्ञानस्वरूपही विषैं निश्चित होय। पीछे भेदविज्ञान करनेका प्रयोजन रह्या नाही। स्वयमेव परकों पररूप आपकों आपरूप जान्या करै है। ऐसा नाहीं, जो परद्रव्यका जानना ही मिटि जाय है। तातै परद्रव्यका जानना वा स्वद्रव्यका विशेष जाननेका नाम विकल्प नाही है। तो कैसे है? सो कहिए है–राग द्वेषके वशतै किसी ज्ञेयके जानने विषै उपयोग लगावना, किसी ज्ञेयके

जाननेतैं छुड़ावना, ऐसैं बार बार उपयोगको भ्रमावना, ताका नाम विकल्प है । बहुरि जहाँ वीतरागरूप होय जाकों जानै है, ताकों यथार्थ जानै है । अन्य अन्य ज्ञेयके जाननेके अर्थि उपयोगकों नाहीं भ्रमावै है, तहाँ निर्विकल्पदशा जाननी ।

यहां कोऊ कहै—छद्मस्थका उपयोग तो नाना ज्ञेय विषैं भ्रमै ही भ्रमै । तहाँ निर्विकल्पता कैसे सम्भवै है ?

ताका उत्तर–जेते काल एक जानने रूप रहै, तावत् निर्विकल्प नाम पावै । सिद्धान्तविषै ध्यानका लक्षण ऐसा ही किया है–
"एकाग्रचितानिरोधो ध्यानम् ।" *

एकका मुख्य चितवन होय अर अन्य चिंता रुकै,ताका नाम ध्यान है । **सर्वार्थसिद्धि** सूत्रकी टीका विषै यहु विशेष कह्या है–जो सर्व चिंता रुकनेका नाम ध्यान होय तो अचेतनपनो होय जाय । बहुरि ऐसी भी विविक्षा है जो संतान अपेक्षा नाना ज्ञेयका भी जानना होय । परन्तु यावत् वीतरागता रहै, रागादिककरि आप उपयोगकों भ्रमावै नाहीं, तावत् निर्विकल्पदशा कहिए है ।

बहुरि वह कहै–ऐसैं है तो परद्रव्यतैं छुड़ाय स्वरूपविषै उपयोग लगावने का उपदेश काहेकों दिया है ?

ताका समाधान—जो शुभ अशुभ भावनिकों कारण पर द्रव्य है, तिनविषै उपयोग लगे जिनकै राग द्वेष होइ आवै है अर स्वरूप-

* "उत्तम संहननस्यैकाग्रचिन्ता निरोधो ध्यानमान्तमुहूर्त्तात् ।"
(तत्त्वार्थसूत्र ९-२७)

चिंतवन करै तो राग द्वेष घटै हैं, ऐसें नीचली अवस्थावारे जीवनिकों पूर्वोक्त उपदेश है । जैसे कोऊ स्त्री विकारभावकरि पर घर जाती थी, ताको मनै करी–पर घर मति जाय, घर में बैठि रहो । बहुरि जो स्त्री निर्विकार भावकरि काहूके घर जाय यथायोग्य प्रवर्त्ते तो किछू दोष है नाहीं । तैसें उपयोगरूप परणति राग-द्वेष भावकरि पर द्रव्यनिविषैं प्रवर्त्ते थी, ताकों मनै करी–परद्रव्यनिविषैं मति प्रवर्त्ते, स्वरूपविषै मग्न रहो । बहुरि जो उपयोगरूप परणति वीतरागभावकरि परद्रव्यको जानि यथायोग्य प्रवर्त्ते, तो किछू दोष है नाहीं।

बहुरि वह कहै है—ऐसै है तो महामुनि परिग्रहादिक चिंतवनका त्याग काहेकों करै है।

ताका समाधान—जैसें विकाररहित स्त्री कुशीलके कारण परघरनिका त्याग करै, तैसें वीतराग परणति रागद्वेषके कारण परद्रव्यनिका त्याग करै है। बहुरि जे व्यभिचारके कारण नाहीं, ऐसे परघर जानेका त्याग है नाहीं । तैसें जे राग द्वेषको कारण नाहीं,ऐसे परद्रव्य जाननेका त्याग है नाहीं ।

बहुरि वह कहै है–जैसे जो स्त्री प्रयोजन जानि पितादिकके घरि जाय तो जावो, बिना प्रयोजन जिस तिसके घर जाना तो योग्य नाहीं । तैसें परणतिकों प्रयोजन जानि सप्ततत्त्वनिका विचार करना, बिना प्रयोजन गुणस्थानादिकका विचार करना योग्य नाहीं ।

ताका समाधान–जैसें स्त्री प्रयोजन जानि पितादिक वा मित्रादिकके भी घर जाय तैसें परणति तत्त्वनिका विशेष जाननेंकों कारण

गुणस्थानादिक वा कर्मादिककों भी जानै। बहुरि तहाँ ऐसा जानना— जैसे शीलवती स्त्री उद्यमकरि तो विटपुरुषनिके स्थान न जाय, जो परवश तहाँ जाना बनि जाय, तहाँ कुशील न सेवै तो स्त्री शीलवती ही है। तैसें वीतराग परणति उपायकरि तो रागादिकके कारण परद्रव्यनिविषे न लागै, जो स्वयमेव तिनका जानना होय जाय, तहा रागादिक न कर तो परणति शुद्ध ही है। तातै स्त्री आदिकी परीषह मुनिनकै होय, तिनिको जानै ही नाही, अपने स्वरूप ही का जानना रहै है, ऐसा मानना मिथ्या है। उनको जानै तो है परन्तु रागादिक नाही करै है। या प्रकार परद्रव्यकों जानते भी वीतरागभाव हो है, ऐसा श्रद्धान करना।

बहुरि वह कहै—ऐसे है तो शास्त्रविषै, ऐसें कैसे कह्या है, जो आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है।

ताका समाधान—अनादितै परद्रव्यविषै आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण था, ताके छुड़ावनेकों यहु उपदेश है। आपही विषै आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण भए परद्रव्यविषै रागद्वेषादि परणति करनेका श्रद्धान वा ज्ञान वा आचरन मिटि जाय, तब सम्यग्दर्शनादि हो है। जो परद्रव्यका परद्रव्यरूप श्रद्धानादि करनेतें सम्यग्दर्शनादि न होते होय, तो केवलीकै भी तिनका अभाव होय। जहा परद्रव्यकों बुरा जानना, निज द्रव्यकों भला जानना, तहाँ तो रागद्वेष सहज ही भया। जहाँ आपकों आपरूप परकों पररूप यथार्थ जान्या करै, तैसें ही श्रद्धानादिरूप प्रवर्तै, तब ही सम्यग्दर्शनादि हो हैं, ऐसें जानना। तातें बहुत कहा कहिए, जसै रागादि मिटावनेका श्रद्धान होय सो ही

श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसे रागादि मिटावनेका जानना होय सोही जानना सम्यग्ज्ञान है। बहुरि जैसे रागादि मिटै सोही आचरण सम्यक्चारित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है। या प्रकार निश्चयनयका आभास लिए एकान्तपक्षके धारी जैनाभास तिनके मिथ्यात्व का निरूपण किया।

केवल व्यवहारावलम्बी जैनाभास का निरूपण

अब व्यवहाराभास पक्षके धारक जैनाभासनिके मिथ्यात्वका निरूपण कीजिए है-जिनआगम विषै जहा व्यवहारको मुख्यताकरि उपदेश है, ताको मानि बाह्यसाधनादिकहीका श्रद्धानादिक करै है, तिनके सर्व धर्मके अग अन्यथारूप होय मिथ्याभावकों प्राप्त होय है सो विशेष कहिए हैं। यहा ऐसा जानि लेना: व्यवहारधर्मकी प्रवृतितै पुण्यबध होय है, तातै पापप्रवृत्ति अपेक्षा तो याका निषेध है नाही। परन्तु इहाँ जो जीव व्यवहार प्रवृत्ति ही करि सन्तुष्ट होय, साचा मोक्षमार्गविषे उद्यमी न होय है, ताकों मोक्षमार्गविषे सन्मुख करनेकों तिस शुभरूप मिथ्याप्रवृत्तिका भी निषेधरूप निरूपण कीजिए है। जो यहु कथन कीजिए है, ताको सुनि जो शुभ प्रवृत्ति छोडि अशुभविषैं प्रवृत्ति करोगे तो तो तुम्हारा बुरा होगा और जो यथार्थ श्रद्धान करि मोक्षमार्गविषै प्रवर्तोगे तो तुम्हारा भला होगा। जैसे कोऊ रोगी निर्गुण औषधिका निषेध सुनि औषधि साधन छोड़ि कुपथ्य करेगा तो वह मरेगा, वैद्यका किछु दोष नाही। तैसे कोउ संसारी पुण्यरूप-धर्मका निषेध सुनि धर्मसाधन छोड़ि विषयकषायरूप प्रवर्त्तेगा, ता वह ही नरकादिविषैं दुःख पावेगा। उपदेश दाताका तो दोष है

नाहीं। उपदेश देनेवालेका तो अभिप्राय असत्य श्रद्धानादि छुड़ाय मोक्षमार्गविषे लगावनेका जानना। सो ऐसा अभिप्रायतें इहाँ निरूपण कीजिए है।

कुल अपेक्षा धर्म मानने का निषेध

तहाँ कोई जीव तो कुलक्रमकरि ही जैनी है, जैनधर्मका स्वरूप जानते नाहीं। परन्तु कुलविषे जैसी प्रवृत्ति चली आई, तैसें प्रवर्त्तें हैं। सो जैसें अन्यमती अपने कुलधर्मविषे प्रवर्त्ते है, तैसे ही यहु प्रवर्त्ते है। जो कुलक्रमहीतें धर्म होय, तो मुसलमान आदि सर्व ही धर्मात्मा होंय। जैनधर्मका विशेष कहा रह्या ? सोई कह्या है।

> लोयम्मि रायणोई णायं ण कुलकम्मि कइयावि।
> किं पुण तिलोयपहुणो जिणंदधम्माहिगारम्मि ॥१॥
> (उप. सि. र. गा. ७)

याका अर्थ—लोकविषे यहु राजनीति है-कदाचित् कुलक्रमकरि न्याय नाही होय है। जाका कुल चोर होय, ताको चोरी करता पकरै तो वाका कुलक्रम जानि छोड़ै नाही, दंड ही दे। तो त्रिलोक प्रभु जिनेन्द्रदेवके धर्मका अधिकारविषे कहा कुलक्रम अनुसारि न्याय सम्भवै। बहुरि जो पिता दरिद्री होय आप धनवान् होय, तहाँ तो कुलक्रम विचारि आप दरिद्री रहता ही नाही, तो धर्मविषे कुलका कहा प्रयोजन है। बहुरि पिता नरक जाय पुत्र मोक्ष जाय, तहाँ कुलक्रम कैसे रह्या ? जो कुल ऊपरि दृष्टि होय, तो पुत्र भी नरकगामी होय। तातें धर्मविषें कुलक्रमका किछू प्रयोजन नाही। शास्त्रनिका अर्थ विचारि जो कालदोष तें जिनधर्म विषे भी पापी पुरुषनिकरि

कुदेव कुगुरु कुधर्म सेवनादिरूप वा विषय कषाय पोषणादिरूप विपरीत प्रवृत्ति चलाई होय, ताका त्यागकरि जिनआज्ञा अनुसारि प्रवर्त्तना योग्य है।

इहां कोऊ कहै—परम्परा छोडि नवीन मार्गविषै प्रवर्तना युक्त नाही। ताकों कहिए है—

जो अपनी बुद्धिकरि नवीन मार्ग पकर तो युक्त नाही। जो परम्परा अनादिनिधन जैनधर्मका स्वरूप शास्त्रनिविषै लिख्या है, ताकी प्रवृत्ति मेटि बीचिमे पापी पुरुषाँ अन्यथा प्रवृत्ति चलाई, तो ताकों परम्परा मार्ग कैसे कहिए। बहुरि ताको छोड़ि पुरातन जैनशास्त्रनिविषै जैसा धर्म लिख्या था तैसे प्रवत्त, तो ताको नवीन मार्ग कैसें कहिए। बहुरि जो कुलविषै जैसे जिनदेवकी आज्ञा है, तैसे ही धर्म्म की प्रवृत्ति है, तो आपको भी तैसे ही प्रवर्त्तना योग्य है। परन्तु ताकों कुलाचार न जानना, धर्म जानि ताके स्वरूप फलादिकका निश्चय करि अंगीकार करना। जो साचा भी धर्मको कुलाचार जानि प्रवर्त्तै है तो वाकों धर्मात्मा न कहिए, जाते सर्व कुलके उस आचरणको छाडै तो आप भी छोडि दे। बहुरि जो वह आचरण करै है सो कुल का भयकरि करै है, किछू धर्म बुद्धितैं नाही करै है; तातै वह धर्मात्मा नाही। तातै विवाहादि कुल सम्बन्धी कार्यनिविषै तो कुलक्रम का विचार करना अर धर्मसम्बन्धी कार्यविषै कुलका विचार न करना। जैसे धर्ममार्ग सांचा है, तैसें प्रवर्त्तना योग्य है।

परीक्षा रहित आज्ञानुसारी जैनत्व का प्रतिषेध

बहुरि केई आज्ञानुसारि जैनी हो हैं। जैसे शास्त्रविषैं आज्ञा है

तस मानें हैं परन्तु आज्ञाकी परीक्षा करते नाही । सो आज्ञा ही मानना धर्म होय तो सर्व मतवाले अपने अपने शास्त्रकी आज्ञा मानि धर्मात्मा होय । तातै परीक्षाकरि जिनवचननिको सत्यपनो पहिचानि जिन आज्ञा माननी योग्य है । बिना परीक्षा किए सत्य असत्य का निर्णय कैसे होय ? अर बिना निर्णय किए जैसे अन्यमती अपने शास्त्रनिकी आज्ञा मानै हैं, तैसे यान जैनशास्त्रनिकी आज्ञा मानी । यहु तो पक्षकरि आज्ञा मानना है।

कोउ कहै, शास्त्रविषै दश प्रकार सम्यक्त्वविषै आज्ञा सम्यक्त्व कह्या है वा आज्ञाविचय धर्म ध्यानका भेद कह्या है वा निःशंकित अंगविषै जिनवचनविषै सशय करना निषेध्या है, सो कैसे है ?

ताका समाधान–शास्त्रनिविषै कथन केई तो ऐसे है, जिनकी प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि परीक्षा करि सकिए है । बहुरि केई कथन ऐसे है, जो प्रत्यक्ष अनुमानादि गोचर नाही । तातै आज्ञा ही करि प्रमाण होय है । तहाँ नाना शास्त्रनिविषै जे कथन समान होंय, तिनकी तो परीक्षा करनेका प्रयोजन ही नाही । बहुरि जो कथन परस्पर विरुद्ध होइ, तिनिविषै जो कथन प्रत्यक्ष अनुमानादि गोचर होय, तिनको तो परीक्षा करनी । तहा जिनशास्त्र क कथन की प्रमाणता ठहरै, तिनि शास्त्रविषै जे प्रत्यक्ष अनुमान गोचर नाही ऐसे कथन किए होय, तिनको भी प्रमाणता करनी । बहुरि जिनशास्त्रनिके कथनकी प्रमाणता न ठहरै, तिनके सर्वहू कथनकी अप्रमणता माननी ।

इहां कोऊ कहै—परीक्षा किए कोई कथन कोई शास्त्रविषै प्रमाण भासै, कोई कथन कोई शास्त्रविषै अप्रमाण भासै तो कहा करिए ?

ताका समाधान–जे आप्तके भासे शास्त्र हैं, तिनिविषैं कोई ही कथन प्रमाण-विरुद्ध न होय। जातै कै तो जानपना ही न होय, कै राग द्वेष होय तो असत्य कहै। सो आप्त ऐसा होय नाही, तातैं परीक्षानी की नाही करी है, तातै भ्रम है।

बहुरि वह कहै है–छद्मस्थके अन्यथा परीक्षा होय जाय तो कहा करै ?

ताका समाधान—सांची झूठी दोऊ वस्तुनिकों मीड़े अर प्रमाद छोडि परीक्षा किए तो सांची ही परीक्षा होय। जहा पक्षपातकरि नीके परीक्षा न करै, तहा ही अन्यथा परीक्षा हो है।

बहुरि वह कहै है, जो शास्त्रनिविषै परस्पर विरुद्ध कथन तो घन, कौन-कौनकी परीक्षा करिए।

ताका समाधान—मोक्षमार्गविषै देव गुरू धम वा जीवादि तत्त्व वा बंधमोक्षमार्ग प्रयोजनभूत हैं, सो इनिकी परीक्षा करि लेनी। जिन शास्त्रनिविषै ए साचे कहे, तिनकी सर्व आज्ञा माननी। जिनविषै ए अन्यथा प्ररूपे, तिनकी आज्ञा न माननी। जैसे लोकविषै जो पुरुष प्रयोजनभूत कार्यनिविषै झूठ न बोलै, सो प्रयोजनरहित कार्यनिविषैं कैसै झूठ बोलेगा। तैसै जिस शास्त्रविषैं प्रयोजनभूत देवादिकका स्वरूप अन्यथा न कह्या, तिस विषै प्रयोजनरहित द्वीप समुद्रादिकका कथन अन्यथा कैसे होय ? जातै देवादिकका कथन अन्यथा किए वक्ताके विषय कषाय पोषे जांय हैं।

इहां प्रश्न—देवादिकका कथन तो अन्यथा विषयकषायतैं किया, तिनि ही शास्त्रनिविषैं अन्य कथन अन्यथा काहेकों किया।

ताका समाधान—जो एक ही कथन अन्यथा कहै, वाका अन्यथापना शीघ्र ही प्रगट होय जाय। जुदी पद्धति ठहरै नाही। तातै घने कथन अन्यथा करनेतै जुदी पद्धति ठहरै। तहां तुच्छ बुद्धि भ्रममे पड़ि जाय—यहु भी मत है। तातै प्रयोजनभूतका अन्यथापना का भेलनेके अर्थि अप्रयोजनभूत भी अन्यथा कथन घने किए। बहुरि प्रतीति अनावने के अर्थि कोई२ साचा भी कथन किया। परन्तु स्यान होय सो भ्रम में परै नाही। प्रयोजनभूत कथनकी परीक्षाकरि जहाँ सांच भासै, तिस मत की सर्व आज्ञा मानै, सो परीक्षा किए जैनमत ही साचा भासै है, अन्य नाही। जातै याका वक्ता सर्वज्ञ वीतराग है, सो झूठ काहेकों कहै। ऐसै जिन आज्ञा मानै जो सांचा श्रद्धान होय, ताका नाम आज्ञा सम्यक्त्व है। बहुरि तहा एकाग्र चिन्तवन होय, ताहीका नाम आज्ञाविचय धर्मध्यान है। जो ऐसै न मानिए अर बिना परीक्षा किए ही आज्ञा मानै सम्यक्त्व वा धर्म ध्यान होय जाय, तो जो द्रव्यलिंगी आज्ञा मानि मुनि भया, आज्ञा अनुसारि साधनकरि ग्रैवेयिक पर्यन्त प्राप्त होय, ताकै मिथ्यादृष्टिपना कैसे रह्या? तातै किछू परीक्षाकरि आज्ञा मानै ही सम्यक्त्व वा धर्म ध्यान होय है। लोकविषै भी कोई प्रकार परीक्षा भए ही पुरुषकी प्रतीति कीजिए है। बहुरि तै कह्या—जिनवचनविषै सशय करनेतै सम्यक्त्वका शका नामा दोष हो है, सो 'न जानै यह कैसे है', ऐसा मानि निर्णय न कीजिए, तहा शका नाम दोष हो है। बहुरि जो निर्णय करनेको विचार करते ही सम्यक्त्वको दोष लागै, तो अष्टसहस्रीविषै आज्ञाप्रधानतै परीक्षा प्रधानको उत्तम काहेको कह्या? पृच्छना आदि स्वाध्यायके अग कैसे

कहे । प्रमाण नयते पदार्थनिका निर्णय करनेका उपदेश काहेकों दिया । तातें परीक्षा करि आज्ञा मानना योग्य है । बहुरि केई पापी पुरुषां अपना कल्पित कथन किया है अर तिनकों जिनवचन ठहराया है, तिनकों जैनमतका शास्त्र जानि प्रमाण न करना । तहां भी प्रमाणादिकतै परीक्षाकरि वा परस्पर शास्त्रनितै विधि मिलाय वा ऐसै सम्भवै है कि नाही, ऐसा विचारकरि विरुद्ध अर्थकों मिथ्या ही जानना । जैसे ठिग आप पत्र लिखि तामे लिखनेवालेका नाम किसी साहूकार का धरचा, तिस नामके भ्रमत धनको ठिगावै तो दरिद्री ही होय । तैसें पापी आप ग्रन्थादि बनाय,तहा कर्त्ताका नाम जिन गणधर आचार्यनिका धरचा, तिस नामके भ्रमतें झूंठा श्रद्धान करै तो मिथ्यादृष्टी ही होय ।

बहुरि वब कहै है— **गोम्मटसार*** विषै ऐसा कह्या है— सम्यग्दृष्टि जीव अज्ञान गुरुके निमित्ततै झूठ भी श्रद्धान करै तो आज्ञा माननेतै सम्यग्दृष्टि ही है । सो यहु कथन कैसें किया है ?

ताका उत्तर–जे प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाही, सूक्ष्मपनेतै जिनका निर्णय न होय सकै, तिनिकी अपेक्षा यहु कथन है । मूलभूत देव गुरु धर्मादि वा तत्त्वादिकका अन्यथा श्रद्धान भए तो सर्वथा सम्यक्त्व रहै नाही, यहु निश्चय करना । तातै बिना परीक्षा किए केवल आज्ञा हो करि जैनी है, ते भो मिथ्यादृष्टि जानने । बहुरि केई परीक्षा भी करि जैनी हो हैं परन्तु मूल परीक्षा नाही करै है । दया

* सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥२७॥

शील तप संयमादि क्रियानिकरि वा पूजा प्रभावनादि कार्यनिकरि वा अतिशय चमत्कारादिकरि वा जिनधर्मतें इष्ट प्राप्ति होनेकरि जिन-मतकों उत्तम जानि प्रीतिवत होय जैनी होय हैं। सो अन्यमतविषैं भी ऐसा तो कार्य पाईए है,तातें इन लक्षणनिविषैं अतिव्याप्ति पाईए है।

कोऊ कहै–जैसे जिनधर्मविषै ए कार्य है, तैसे अन्यमतविषें नाहीं पाइए हैं। तातै अतिव्याप्ति नाही।

ताका समाधान–यहु तो सत्य है, ऐसें ही है । परन्तु जैसें तू दयादिक मानै है, तैसें तो वे भी निरूपै है । परजीवनिकी रक्षाकों दया तू कहै है, सोई वे कहैं है। ऐसे ही अन्य जानने।

बहुरि वह कहै है—उनकै ठीक नाही। कबहूँ दया प्ररूपै, कबहूँ हिंसा प्ररूपै।

ताका उत्तर– तहाँ दयादिकका अशमात्र तो आया। तातें अति-व्याप्तिपना इन लक्षणनिकै पाइए है । इनकरि साँची परीक्षा होय नाही। तो कैसे होय। जिनधर्म विषै सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र मोक्षमार्ग कह्या है । तहाँ साचे देवादिकका वा जीवादिकका श्रद्धान किए सम्यक्त्व होय वा तिनको जाने सम्यग्ज्ञान होय वा साचा रागादिक मिटे सम्यक्चारित्र होय, सो इनका स्वरूप जैसे जिनमत विषै निरू-पण किया है, तैसें कहो निरूपण किया नाही वा जैनी बिना अन्य-मती ऐसा कार्य करि सकते नाही । तातै यहु जिनमतका साचा लक्षण है। इस लक्षण कों पहचानि जे परीक्षा करें, तेई श्रद्धानी हैं। इस बिना अन्य प्रकार करि परीक्षा करें हैं, ते मिथ्यादृष्टी ही रहै है।

बहुरि केई संगतिकरि जैनधर्म धारै हैं । केई महान् पुरुषको जिनधर्मविषै प्रवर्तता देखि आप भी प्रवर्त्ते हैं । केई देखा देखी

जिनधर्मको शुद्ध वा अशुद्ध क्रियानिविषै प्रवर्त्तै हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके जीव आप विचारकरि जिनधर्मका रहस्य नाहीं पहिचानैं हैं अर जैनी नाम धरावैं हैं,ते सर्व मिथ्यादृष्टी ही जाननें। इतना तो है, जिनमतविषैं पापकी प्रवृत्तिविशेष नहीं होय सकै है अर पुण्यके निमित्त घने है अर साचा मोक्षमार्गके भी कारण तहाँ बनि रहे हैं। तातै जे कुलादिकरि भी जैनी है, ते भी औरनितै तो भले ही है।

आजीविकादि प्रयोजनार्थधर्मसाधनका प्रतिषेध

बहुरि जे जीव कपटकरि आजीविकाके अर्थि वा बडाईके अर्थि वा किछू विषयकषायसम्बन्धी प्रयोजनविचारि जैनी हो है, ते तो पापी ही हैं। अति तीव्रकषाय भए ऐसी बुद्धि आवै है। उनका सुलझना भी कठिन है। जैनधर्म तौ संसारका नाश के अर्थि सेइए है। ताकरि जो संसारीक प्रयोजन साध्या चाहै सो बडा अन्याय करै है। तातैं ते तो मिथ्यादृष्टि है ही।

इहाँ कोऊ कहै—हिंसादिकरि जिन कार्यकों करिए, ते कार्य धर्मसाधनकरि सिद्ध कीजिए तो बुरा कहा भया। दोऊ प्रयोजन सधे।

ताकों कहिए है—पापकार्य अर धर्मकार्यका एक साधन किए पाप ही होय। जैसे कोऊ धर्मका साधन चैत्यालय बनाय, तिसहीकों स्त्रीसेवनादि पापनिका भी साधन करै,ता पापी ही होय। हिंसादिकरि भोगादिकके अर्थि जुदा मन्दिर बनावै तो बनावो परन्तु चैत्यालयविषैं भोगादि करना युक्त नाहीं। तैसे धर्मका साधन पूजा शास्त्रादि कार्य हैं, तिनहीकों आजीविका आदि पाप का भी साधन करै, तो पापी ही होय। हिंसादि करि आजीविकादि के अर्थि व्यापारादि करै तो करो

परन्तु पूजादि कार्यनिविषैं तो आजीविका आदिका प्रयोजन विचारना युक्त नाहीं।

इहां प्रश्न—जो ऐसैं है तो मुनि भी धर्म साधि पर घर भोजन करैं हैं वा साधर्मी साधर्मी का उपकार करै करावै है, सो कैसैं बनै ?

ताका उत्तर—जो आप तो किछू आजीविका आदि का प्रयोजन विचारि धर्म नाही साधै है,आपकों धर्मात्मा जानि केई स्वयमेव भोजन उपकारादि करै है तौ तो किछू दोष है नाही। बहुरि जो आप ही भोजनादिका प्रयोजन विचारि धर्मसाधैहै,तो पापी है ही। जे विरागी होय मुनिपनो अंगीकार करै है, तिनिकै भोजनादिका प्रयोजन नाहीं, शरीरकी स्थिति के अर्थि स्वयमेव भोजनादि कोई दे तो ले, नाहीं समता राखै। संक्लेशरूप होय नाहीं। बहुरि आप हितके अर्थि धर्म साधै हैं, उपकार करवानेका अभिप्राय नाही है। अर आपकै जाका त्याग नाही, ऐसा उपकार करावै। कोई साधर्मी स्वयमेव उपकार करै तो करो अर न करै तो आपके किछू सक्लेश होता नाहीं। सो ऐसैं तो योग्य है। अर आपही आजीविका आदिका प्रयोजन विचारि बाह्य धर्मका साधन करै, जहाँ भोजनादि उपकार कोई न करै तहाँ सक्लेश करै, याचना करै,उपाय करै वा धर्मसाधनविषै शिथिल होय जाय सो पापी ही जानना। ऐसैं ससारीक प्रयोजन लिए जे धर्म साधै हैं ते पापी भी हैं अर मिथ्यादृष्टि है ही। या प्रकार जिनमतवाले भी मिथ्यादृष्टि जानने। अब इनकै धर्मका साधन कैसे पाइए है,सो विशेष दिखाइए है—

जैनाभाषी मिथ्यादृष्टि कौधर्म साधना

तहाँ केई जीव कुलप्रवृत्तिकरि वा देख्यां देखी लोभादिका

अभिप्रायकरि धर्म साधे हैं,तिनिके तो धर्मदृष्टि नाहीं । जो भक्ति करै है तो चित्त तो कहीं है, दृष्टि फिरचा करै है । अर मुखतें पाठादि कर है वा नमस्कारादि करै है परन्तु यहु ठीक नाहीं–मैं कौन हूँ,किसकी स्तुति करूं हूँ, किस प्रयोजनके अर्थि स्तुति करूं हूं, पाठविषै कहा अर्थ है, सो किछू ठीक नाही । बहुरि कदाचित कुदेवादिककी भी सेवा करने लगि जाय । तहां सुदेवसुगुरुसुशास्त्रादि वा कुदेवकुगुरुकुशास्त्रादि विषै विशेष पहिचान नाहीं । बहुरि जो दान दे है तो पात्र अपात्र का विचाररहित जैसै अपनी प्रशसा होय तैसैं दान दे है । बहुरि तप करै है तो भूखा रहनेकरि महतपनो होय सो कार्य करै है । परिणामनि-की पहिचान नाही । बहुरि व्रतादिक धारै है, तहां बाह्य क्रिया ऊपर दृष्टि है । सो भी कोई सांची क्रिया करै है, कोई झूठी करै है । अर अतरग रागादि भाव पाइए है, तिनिका विचार ही नाही वा बाह्य भी रागादि पाषने का साधन करै है । बहुरि पूजा प्रभावना आदि कार्य करै है, तहां जैसे लोकविषैं बड़ाई होय वा विषय कषाय पोषे जांय तैसे कार्य करै है । बहुरि बहुत हिंसादिक निपजावै है । सो ए कार्य तो अपना वा अन्य जीवनिका परिणाम सुधारनेके अर्थि कहे हैं । बहुरि तहां किंचित् हिंसादिक भी निपजै है तो थोरा अपराध होय, गुण बहुत होय सो कार्य करना कह्या है । सो परिणामनिकी पहचान नाही । अर यहाँ अपराध केता लागै है, गुण केता हो है सो नफ़ा टोटा का ज्ञान नाहीं वा विधि अविधिका ज्ञान नाहीं । बहुरि शास्त्राभ्यास करै है, तहाँ पद्धतिरूप प्रवर्त्तै है । जो वांचै है तो औरनिको सुनाय दे है । पढ़े है तो आप पढ़ि जाय है । सुने है तो कहे है

सो सुनि ले है। जो शास्त्राभ्यासका प्रयोजन है, ताको आप अंतरंग विषें नाहीं अवधारं है। इत्यादि धर्मकार्यनिका मर्मकों नाही पहिचानें। केई तो कुलविषें जैसें बड़े प्रवर्त्तें तैसें हमकों भी करना अथवा और करैं है तैसें हमको भी करना वा ऐसे किए हमारा लोभादिककी सिद्धि होसी, इत्यादि विचार लिए अभूतार्थ धर्म को साधै हैं। बहुरि केई जीव ऐसे हैं जिनकै किछू तो कुलादिरूप बुद्धि है, किछू धर्मबुद्धि भी है,तातै पूर्वोक्त प्रकार भी धर्मका साधन करै है अर किछू आगै कहिए है, तिस प्रकार करि अपने परिणामनिकों भी सुधारै है। मिश्रपनो पाइए है। बहुरि केई धर्म्मबुद्धिकरि धर्म साधै हैं परन्तु निश्चय धर्म्म-कों न जाने हैं। तातैं अभूतार्थ रूप धर्मकों साधै हैं। तहां व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रकों मोक्षमार्ग जानि तिनिका साधन करै हैं। तहा शास्त्रविषें देव गुरु धर्मकी प्रतीति किए सम्यक्त्व होना कह्या है। ऐसी आज्ञा मानि अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु, जैनशास्त्र बिना औरनिकों नमस्कारादि करने का त्याग किया हैं परन्तु तिनिका गुण अवगुणकी परीक्षा नाहीं करै है। अथवा परीक्षा भी करै है तो तत्वज्ञान पूर्वक साँची परीक्षा नाही करै है, बाह्यलक्षणनिकरि परीक्षा करै है। ऐसें प्रतीतिकरि सुदेव सुगुरु सुशास्त्रनिकी भक्तिविषें प्रवर्त्तें हैं।

अरहंतभक्तिका अन्यथा रूप

तहाँ अरहत देव हैं, सो इन्द्रादिकरि पूज्य हैं,अनेक अतिशयसहित हैं, क्षुधादि दोषरहित हैं, शरीरकी सुन्दरताको धरै हैं, स्त्रीसंगमादि रहित हैं, दिव्यध्वनिकरि उपदेश दे हैं, केवलज्ञानकरि लोकालोक जानै हैं, काम क्रोधादिक नष्ट किए हैं,इत्यादि विशेषण कहे हैं। तहां

इनविषैं केई विशेषण पुद्गलके आश्रय, केई जीवके आश्रय हैं, तिनकों भिन्न भिन्न नाहीं पहिचानै है। जैसें असमानजातीय मनुष्यादि पर्यायनिविषै जीव पुद्गलके विशेषणकों भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है तैसें यह असमान जातीय अरहन्तपर्यायविषै जीव पुद्गलके विशेषणनिकों भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है। बहुरि जे बाह्य विशेषण है,तिनकों तो जानि तिनकरि अरहन्तदेवकों महन्तपनो विशेष मानै है अर जे जीवके विशेषण हैं, तिनकों यथावत् न जानि तिन-करि अरहन्तदेवको महन्तपनो आज्ञा अनुसार मानै है अथवा अन्यथा मानै है। जातै यथावत् जीवका विशेषण जानै मिथ्यादृष्टी रहै नाही। बहुरि तिनि अरहन्तनिकों स्वर्गमोक्षका दाता दीनदयाल अधम उधा-रकपतितपावन मानै है सो अन्यमती कर्तृत्वबुद्धितें ईश्वरकों जैसे मानै है,तैसें ही यह अरहन्तको मानै है। ऐसा नाहीं जानै है—फलतो अपने परिणामनिका लागै है अरहन्त तिनिकों निमित्तमात्र है,तातैं उपचार-करि वे विशेषण सम्भवै है। अपने परिणाम शुद्ध भए बिना अरहन्त ही स्वर्गमोक्षादिका दाता नाहीं। बहुरि अरहन्तादिकके नामादिकतै श्वानादिक स्वर्ग पाया तहां नामादिकका ही अतिशय मानै है। बिना परिणाम नाम लेने वालोंके भी स्वर्गकी प्राप्ति न होय तो सुननेवालेकै कैसें होय। श्वानादिककैं नाम सुननेके निमित्ततें कोई मंदकषायरूप भाव भए हैं, तिनका फल स्वर्ग भया है। उपचारकरि नामहीकी मुख्यता करी है। बहुरि अरहन्तादिकके नाम पूजनादिकतैं अनिष्ट सामग्रीका नाश, इष्ट सामग्रीकी प्राप्ति मानि रोगादि मेटनेके अर्थि वा धनादिकी प्राप्तिके अर्थि नाम ले है वा पूजनादि करै है। सो इष्ट

अनिष्टका तो कारण पूर्वकर्मका उदय है। अरहन्त तो कर्त्ता है नाहीं। अरहन्तादिककी भक्तिरूप शुभोपयोग परिणामनितै पूर्व पापका सक्रमणादिक होय जाय है। तातै उपचारकरि अनिष्टका नाशको वा इष्टकी प्राप्तिकों कारण अरहतादिककी भक्ति कहिए है। अर जे जीव पहलेही ससारी प्रयोजन लिए भक्ति करै, ताके तो पापहीका अभिप्राय भया। कांक्षा विचिकित्सारूप भाव भए तिनिकरि पूर्वपापका संक्रमणादि कैसे होय ? बहुरि तिनिका कार्यसिद्ध न भया।

बहुरि केई जीव भक्तिको मुक्तिका कारण जानि तहां अति अनुरागी होय प्रवर्त्तै है सो अन्यमती जैसे भक्ति तै मुक्ति माने है तैसे याकै भी श्रद्धान भया। सो भक्ति तो रागरूप है। रागतै बंध है। तातै मोक्ष का कारण नाही। जब राग उदय आवै, तब भक्ति न करै तो पापानुराग होय। तातै अशुभ राग छोड़नेको ज्ञानी भक्ति विषै प्रवर्त्तै है वा मोक्षमार्ग कों बाह्य निमितमात्र भी जानै है। परन्तु यहां ही उपादेयपना मानि संतुष्ट न हो है, शुद्धोपयोगका उद्यमी रहै है। सो ही पंचास्तिकायव्याख्याविषै कह्या है *:—

इयं भक्ति केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। तीव्रराग ज्वरविनोदार्थमस्थानरागनिषेधार्थं क्वचित् ज्ञानिनोपि भवति।

याका अर्थ -- यहु भक्ति केवल भक्ति ही है प्रधान जाकै ऐसा अज्ञानी जीवकै हो है। बहुरि तीव्ररागज्वर मेटनेके अर्थि वा कुठिकानै

---

* अयं हि स्थूल लक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानराग निषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥ स० टीका गा० १३६ ॥

रागनिषेधनेके अर्थि कदाचित् ज्ञानिकै भी हो है।

तहाँ वह पूछै है, ऐसे है तो ज्ञानी तें अज्ञानीकै भक्तिकी अधिकता होती होगी।

ताका उत्तर—यथार्थपनेकी अपेक्षा तो ज्ञानीकै सांची भक्ति है अज्ञानीकै नाहीं है। अर रागभावकी अपेक्षा अज्ञानीकै श्रद्धानविषैं भी मुक्तिका कारण जाननेतै अति अनुराग है। ज्ञानीकै श्रद्धानविषैं शुभबंधका कारण जाननेतैं तैसा अनुराग नाहीं है। बाह्य कदाचित् ज्ञानीकै अनुराग घना हो है, कदाचित् अज्ञानीकै हो है,ऐसा जानना। ऐसैं देवभक्तिका स्वरूप दिखाया।

अब गुरुभक्तिका स्वरूप वाकै कैसे है, सो कहिए है:—

गुरुभक्तिका अन्यथा रूप

केई जीव आज्ञानुसारी है। ते तो ए जैनके साधु हैं, हमारे गुरु हैं, तातै इनिकी भक्ती करनी, ऐसैं विचारि तिनकी भक्ति करैं हैं। बहुरि केई जीव परीक्षा भी करैं है। तहां ए मुनि दया पालै हैं, शील पालै हैं, धनादि नाही राखै हैं, उपवासादि तप करै हैं,क्षुधादि परीषह सहै हैं, किसीसों क्रोधादि नाहीं करैं है,उपदेश देय औरनिकों धर्मविषैं लगावै है, इत्यादि गुण विचारि तिनविषै भक्तिभाव करै हैं। सो ऐसे गुण तो परमहंसादिक अन्यमती हैं, तिनविषै वा जैनी मिथ्यादृष्टीनिविषै भी पाईए हैं। तातै इनिविषै अतिव्याप्तपनो है। इनिकरि साँची परीक्षा होय नाही। बहुरि इनि गुणनिको विचारै है, तिनविषैं केई जीवाश्रित हैं, केई पुद्गलाश्रित हैं, तिनका विशेष न जानता असमानजातीय मुनिपर्यायविषै एकत्व बुद्धितैं मिथ्यादृष्टि ही रहै है।

बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रको एकतारूप मोक्षमार्ग सोई मुनिनका सांचा लक्षण है, ताकों पहिचाने नाही । जातै यहु पहिचानि भए मिथ्यादृष्टी रहता नाही। ऐसै मुनिनका सांचा स्वरूप ही न जानै तौ सांची भक्ति कैसे होय ? पुण्यबधकों कारणभूत शुभक्रियारूप गुणनिकों पहचानि तिनको सेवातै अपना भला होना जानि तिनविषै अनुरागी होय भक्ति करं है । ऐसै गुरुभक्तिका स्वरूप कह्या।

अब शास्त्रभक्तिका स्वरूप कहिए है :—

शास्त्र भक्तिका अन्यथा रूप

केई जीव तौ यहु केवली भगवान्की वाणी है, तातै केवलीके पूज्यपनातै यहु भी पूज्य है, ऐसा जानि भक्ति करै है । बहुरि केई ऐसै परीक्षा करैं है—इन शास्त्रनिविषै विरागता दया क्षमा शील संतोषादिकका निरूपण है तातै ए उत्कृष्ट है, ऐसा जानि भक्ति करै हैं । सो ऐसा कथन तो अन्य शास्त्र वेदांतादिक तिनविषै भी पाईए है । बहुरि इन शास्त्रनिविषै त्रिलोकादिकका गम्भीर निरूपण है, तातै उत्कृष्टता जानि भक्ति करै है । सो इहां अनुमानादिकका तो प्रवेश नाही । सत्य असत्यका निर्णयकरि महिमा कैसें जानिए । तातै ऐसैं साचो परीक्षा होय नाहीं । इहा अनेकान्तरूप सांचा जीवादितत्वनिका निरूपण है अर सांचा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग दिखाया है । ताकरि जैनशास्त्रनिकी उत्कृष्टता है, ताकों नाहीं पहिचानै हैं । जातें यहु पहचानि भए मिथ्यादृष्टि रहै नाही । ऐसै शास्त्रभक्तिका स्वरूप कह्या ।

या प्रकार याकैं देव गुरु शास्त्रकी प्रतीति भई, तातै व्यवहार-सम्यक्त्व भया मानै है । परन्तु उनका सांचा स्वरूप भास्या नाहीं । तातैं प्रतीति भी साची भई नाहीं । सांची प्रतीति बिना सम्यक्तकी

प्राप्ति नाहीं । तातैं मिथ्यादृष्टी ही है ।

तत्वार्थ श्रद्धानका अयथार्थपना

बहुरि शास्त्रविषें **'तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'** (तत्वा॰ सू०१-२) ऐसा वचन कह्या है । तातैं जैसैं शास्त्रनिविषें जीवादि तत्व लिखे हैं, तैसें आप सीखिले है । तहाँ उपयोग लगावै है । औरनिकों उपदेशै है परन्तु तिन तत्वनिका भाव भासता नाहीं। अर इहां तिस वस्तुके भावहीका नाम तत्व कह्या । सो भाव भासे बिना तत्वार्थ-श्रद्धान कैसे होय ? भावभासना कहा सो कहिए है:—

जैसें कोऊ पुरुष चतुर होनेके अर्थि शास्त्रकरि स्वर ग्राम मूर्छना रागनिका रूप ताल तानके भेद तिनिकों सीखै है परन्तु स्वरादिकका स्वरूप नाहीं पहिचानै है । स्वरूप पहिचान भए बिना अन्य स्वरा-दिकको अन्य स्वरादिकरूप मानै है वा सत्य भी मानै है तो निर्णय करि नाही मानै है। तातै वाक चतुरपनौं होय नाहीं । तैसें कोऊ जीव सम्यक्ती होनेंके अर्थि शास्त्रकरि जीवादिक तत्वनिका स्वरूपकों सीखै है परन्तु तिनके स्वरूपको नाही पहिचानै है । स्वरूप पहिचानें बिना अन्य तत्त्वनिकों अन्य तत्वरूप मानि ले है वा सत्य भी मानै है तो निर्णयकरि नाही मानै है। तातैं वाकै सम्यक्त्व होय नाहीं। बहुरि जैसे कोई शास्त्रादि पढ्या है वा न पढ्या है, जो स्वरादिकका स्वरूपकों पहिचानै है तो वह चतुर ही है । तैसें शास्त्र पढ्या है वा न पढ्या है, जो जीवादिकका स्वरूप पहिचानै है तो वह सम्यग्दृष्टी ही है। जैसें हिरण स्वर रागादिकका नाम न जानै है अर ताका स्वरूप कों पहिचानै है तैसें तुच्छ बुद्धि जीवादिकका नाम न जानै है अर तिनका स्वरूपकों पहिचानै है। यहु मैं हूं, ए पर हैं; ए भाव बुरे हैं, ए

भले है,ऐसें स्वरूप पहिचानै ताका नाम भावभासना है। शिवभूति* मुनि जीवादिकका नाम न जानै था अर "तुषमाषभिन्न" ऐसा घोषने लगा, सो यहु सिद्धान्तका शब्द था नाहीं परन्तु आपा परका भावरूप ध्यान किया, तातैं केवली भया। अर ग्यारह अंगके पाठी जीवादि तत्वनिका विशेषभेद जानै परन्तु भाव भासं नाहीं, तातैं मिथ्यादृष्टी ही रहै है। अब याकैं तत्वश्रद्धान किस प्रकार हो है सो कहिए है—

जीव अजीव तत्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

जिनशास्त्रनितैं जीवके त्रस स्थावरादिरूप वा गुणस्थान मार्गणादिरूप भेदनिकों जानं है, अजीवके पुद्गलादि भेदनिकों वा तिनके वर्णादि विशेषनिकों जानै है परन्तु अध्यात्मशास्त्रनिविषै भेदविज्ञानकों कारणभूत वा वीतरागदशा होनेको कारणभूत जैसे निरूपण किया है तैसें न जानै है। बहुरि किसी प्रसंगतै तैसैं भी जानना होय तो शास्त्र अनुसारि जानि तो ले है परन्तु आपकों आप जानि परका अंश भी आप विषै न मिलावना अर आपका अंश भी पर विषै न मिलावना, ऐसा साँचा श्रद्धान नाहीं करै है। जैसे अन्य मिथ्यादृष्टी निर्धार बिना पर्यायबुद्धिकरि जानपना विषै वा वर्णादिविषै अहंबुद्धि धारै है, तैसें यहु भी आत्माश्रित ज्ञानादिविषै वा शरीराश्रित उपदेश उपवासादि क्रियानिविषै आपो मान है। बहुरि शास्त्रके अनुसार कबहूँ साँची बात भी बनावै परन्तु अंतरंग निर्धाररूप श्रद्धान नाहीं। तातैं जैसें मतवाला माताकों माता भी कहै तो स्याना नाहीं तैसें याकों

* तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावोय।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडो जाओ ॥ —भावपा० ५३ ॥

सम्यक्ती न कहिए। बहुरि जैसे कोई औरहीकी बातें करता होय तैसें आत्माका कथन कहै परन्तु यहु आत्मा मैं हूँ, ऐसा भाव नाही भासै। बहुरि जैसे कोई औरकूं औरतें भिन्न बतावता होय तैसें आत्म शरीरकी भिन्नता प्ररूपै परन्तु मै इस शरीरादिकतें भिन्न हूँ, ऐसा भाव भासै नाही। बहुरि पर्यायविषै जीव पुद्गलके परस्पर निमित्ततें अनेक क्रिया हो है, तिनकों दोय द्रव्यका मिलापकरि निपजी जानै। यहु जीवकी क्रिया है ताका पुद्गल निमित्त है, यहु पुद्गलकी क्रिया है ताका जीव निमित्त है, ऐसा भिन्न-भिन्न भाव भासै नाही। इत्यादि भाव भासे बिना जीव अजीवका सांचा श्रद्धानी न कहिए। तातैं जीव अजीव जाननेका तो यह ही प्रयोजन था सो भया नाही।

आश्रव तत्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि आस्रवतत्वविषै जे हिंसादिरूप पापास्रव है, तिनकों हेय जानै है। अहिंसादिरूप पुण्य आस्रव है, तिनको उपादेय मानै है। सो ए तो दोऊ ही कर्मबधके कारण इन विषै उपादेयपनो माननों सोई मिथ्यादृष्टि है। सोही समयसारका बधाधिकारविषै कह्या है※—

सर्व जीवनिकै जीवन मरण सुख दुःख अपने कर्मके निमित्ततै हो हैं। जहाँ अन्य जीव अन्य जीवके इन कार्यनिका कर्त्ता होय सोई मिथ्याध्यवसाय बधका कारण है+। तहाँ अन्य जीवनिको जिवावनेका

※ समयसार गा० २५४ से २५६

+ सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय, कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परःपरस्य, कुर्यात्पुमान् मरणजीवितदुःख-सौख्यम्॥ १६८

वा सुखी करनेका अध्यवसाय होय सो तो पुण्यबंधका कारण है अर मारनेका वा दुःखी करने का अध्यवसाय होय सो पापबंधका कारण है। ऐसें अहिंसावत् सत्यादिक तो पुण्यबंधकों कारण हैं अर हिंसावत् असत्यादिक पापबंधकों कारण है। ए सर्व मिथ्याध्यवसाय हैं ते त्याज्य हैं। तातें हिंसादिवत् अहिंसादिककों भी बंधका कारण जानि हेय ही मानना। हिंसाविषें मारनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु पूरा हुवा बिना मर नाहीं, अपनी द्वेषपरणतिकरि आप ही पाप बांधे है। अहिंसाविषे रक्षा करनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु अवशेष बिना वह जीवे नाहीं, अपनी प्रशस्त रागपरणतिकरि आप ही पुण्य बांधे है। ऐसें ए दोऊ हेय हैं। जहां वीतराग होय दृष्टा ज्ञाता प्रवर्त्ते, तहाँ निर्बन्ध है सो उपादेय है। सो ऐसी दशा न होय, तावत् प्रशस्त राग-रूप प्रवर्त्तो परन्तु श्रद्धान तो ऐसा राखो—यहु भी बंधका कारण है, हेय है। श्रद्धानविषे याकों मोक्षमार्ग जाने मिथ्यादृष्टी ही हो है।

बहुरि मिथ्यात्व अविरति कषाय योग ए आस्रवके भेद हैं,तिनकों बाह्यरूप तो माने, अंतरंग इन भावनिकी जातिकों पहिचानै नाहीं। तहाँ अन्य देवादिकके सेवनेरूप गृहीतमिथ्यात्वकों मिथ्यात्व जानै अर अनादि अगृहीत मिथ्यात्व है ताकों न पहिचाने। बहुरि बाह्य त्रस-स्थावरकी हिंसा वा इन्द्रिय मनके विषयनिविषें प्रवृत्ति ताकों अविरति

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य,पश्यन्ति ये मरणजीवित दुःखसौख्यम्।
कर्माण्यहंकृति रसेन चिकीर्षवस्ते,मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ॥१६९.

—समयसार बंधाधिकार कलशा

जानै । हिंसाविषें प्रमादपरणति मूल है अर विषय सेवनविषें अभिलाषा मूल है ताकों न अवलोकै। बहुरि बाह्य क्रोधादि करना ताकों कषाय जानै, अभिप्रायविषै रागद्वेष बसै ताकों न पहिचानै। बहुरि बाह्य चेष्टा होय ताकों योग जानै, शक्तिभूत योगनिकों न जानै । ऐसें आस्रवनिका स्वरूप अन्यथा जानै ।

बहुरि रागद्वेष मोहरूप जे आस्रवभाव हैं, तिनका तो नाश करनेकी चिंता नाही अर बाह्यक्रिया वा बाह्य निमित्त मेटनेका उपाय राखै सो तिनके मेटे आश्रव मिटता नाही। द्रव्यलिंगी मुनि अन्य देवादिककी सेवा न करै है, हिंसा वा विषयनिविषै न प्रवर्त्तै है, क्रोधादि न करै है,मन वचन कायकों रोकै है,तो भी वाकै मिथ्यात्वादि च्यारों आस्रव पाईए हैं । बहुरि कपटकरि भी ए कार्य न करै है। कपटकरि करै तो ग्रैवेयक पर्यंत कैसे पहुँचै । तातै जो अंतरग अभिप्राय विषै मिथ्यात्वादिरूप रागादिभाव है सोही आस्रव है । ताको न पहिचानै, तातै याकै आस्रवतत्वका भी सत्य श्रद्धान नाही ।

बंध तत्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि बधतत्वविषै जे अशुभभावनिकरि नरकादिरूप पापका बंध होय, ताकों तो बुरा जानै अर शुभभावनिकरि देवादि रूप पुण्यका बंध होय, ताकों भला जानै। सो सर्व ही जीवनिकै दुःखसामग्रीविषै द्वेष सुख सामग्रीविषें राग पाईए है, सो ही याकै राग द्वेष करनेका श्रद्धान भया। जैसा इस पर्यायसबधी सुखदुःखसामग्रीविषै राग द्वेष करना तैसा ही आगामी पर्यायसबंधी सुख दुःख सामग्रीविषै राग द्वेष

करना। बहुरि शुभअशुभभावनिकरि पुण्यपापका विशेष तो अघाति कर्मनिविषें हो है। सो अघातिकर्म आत्मगुणके घातक नाही। बहुरि शुभ अशुभ भावनिविषें घातिकर्मनिका तो निरंतर बंध होय, ते सर्व पापरूप ही हैं अर तेई आत्मगुणके घातक हैं। तातैं अशुद्ध भावनिकरि कर्मवध होंय, तिसविषें भला बुरा जानना सोई मिथ्याश्रद्धान है। सो ऐसें श्रद्धानतें बंधका भी याकै सत्य श्रद्धान नाही।

संवर तत्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि संवरतत्वविषै अहिंसादिरूप शुभास्रव भाव तिनकों संवर जानें है। सो एक कारणतें पुण्यबध भी मानै अर संवर भी मानै, सो बनै नाही।

यहा प्रश्न—जो मुनिनकें एक काल एकभाव हो है, तहां उनक बध भी हो है अर संवर निर्जरा भी हो है, सो कैसे है?

ताका समाधान—वह भाव मिश्ररूप है। किछू वीतराग भया है, किछू सराग रह्या है। जे अंश वीतराग भए तिनकरि संवर है अर जे अंश सराग रहे तिनकरि बध है। सो एक भावतें तो दोय कार्य बनें परन्तु एक प्रशस्तरागहीतें पुण्यास्रव भी मानना अर संवर निर्जरा भी मानना सो भ्रम है। मिश्रभावविषै भी यहु सरागता है, यहु विरागता है; ऐसी पहिचान सम्यग्दृष्टीहीकै होय। तातें अवशेष सरागताकों हेय श्रद्धै है। मिथ्यादृष्टीकै ऐसी पहिचान नाहीं तातें सरागभाव विषें संवरका भ्रमकरि प्रशस्त रागरूप कार्यनिकों उपादेय श्रद्धै है।

बहुरि सिद्धांतविषै गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय,

चारित्र इनकरि संवर हो है, ऐसा कह्या है*, सो इनको भी यथार्थ न श्रद्धै है। कैसे सो कहिए है:—

बाह्य मन वचन कायकी चेष्टा मेटै, पापचितवन न करै, मौन धरै, गमनादि न करै सो गुप्ति मानै है। सो यहां तो मनविषै भक्ति आदि रूप प्रशस्त रागकरि नाना विकल्प हो हैं, वचन कायकी चेष्टा आप रोकि राखी है तहाँ शुभप्रवृत्ति है अर प्रवृत्तिविषैं गुप्तिपनो बनै नाहीं। तातैं वीतरागभाव भए जहाँ मन वचन कायकी चेष्टा न होय सो ही सांची गुप्ति है।

बहुरि परजीवनिकी रक्षाके अर्थ यत्नाचार प्रवृत्ति ताकों समिति मानै है। सो हिंसाके परिणामनितै तो पाप हो है अर रक्षाके परिणामनितै संवर कहोगे तो पुण्यबंधका कारण कौन ठहरेगा। बहुरि एषणासमितिविषै दोष टालै है। तहा रक्षाका प्रयोजन है नाहीं। तातै रक्षाहीके अर्थ समिति नाहीं है। तो समिति कैसे हो है—मुनिन के किंचित् राग भए गमनादि क्रिया हो है। तहाँ तिन क्रियानिविषै अति आसक्तताके अभावतै प्रमादरूप प्रवृत्ति न हो है। बहुरि और जीवनिकों दुःखीकरि अपना गमनादि प्रयोजन न साधै है तातै स्वयमेव ही दया पलै है। ऐसै सांची समिति है।

बहुरि बंधादिकके भयतैं स्वर्गमोक्षको चाहतैं क्रोधादि न करै है, सो यहाँ क्रोधादि करनेका अभिप्राय तो गया नाहीं। जैसे कोई राजादिकका भयतै वा महंतपनाका लोभतैं परस्त्री न सेवै है, तो वाकों त्यागी न कहिए। तैसे ही यहु क्रोधादिका त्यागी नाही। तो

* स गुप्ति समितिधर्मानुप्रेक्षा परीषहजयचारित्रैः। तत्वा० सू०९-२

कैसें त्यागी होय? पदार्थ अनिष्ट इष्ट भासें क्रोधादि हो है। जब तत्व-ज्ञानके अभ्यासतें कोई इष्ट अनिष्ट न भासै, तब स्वयमेव ही क्रोधादिक न उपजें, तब सांचा धर्म हो है।

बहुरि अनित्यादि चिंतवनतें शरीरादिककों बुरा जानि हितकारी न जानि तिनतै उदास होना ताका नाम अनुप्रेक्षा कहै है। सो यहु तो जैसें कोऊ मित्र था, तब उसतै राग था, पीछे वाका अवगुण देखि उदासीन भया। तैसें शरीरादिकतै राग था, पीछे अनित्यादि अवगुण अवलोकि उदासीन भया। सो ऐसी उदासीनता तो द्वेषरूप है। जहाँ जैसा अपना वा शरीरादिकका स्वभाव है, तैसा पहिचान भ्रमकों मेटि भला जानि राग न करना, बुरा जानि द्वेष न करना, ऐसी साची उदासीनताके अर्थि यथार्थ अनित्यत्वादिकका चितवन सोई साची अनुप्रेक्षा है।

बहुरि क्षुधादिक भए तिनके नाशका उपाय न करना, ताकों परीषह सहना कहै है। सो उपाय तो न किया अर अंतरग क्षुधादि अनिष्ट सामग्री मिले दुखी भया, रति आदिका कारण मिले सुखी भया तो सो दुःख-सुखरूप परिणाम है, सोई आर्त्तध्यान रौद्रध्यान हैं। ऐसे भावनितें संवर कैसे होय? तातें दुःखका कारण मिले दुःखी न होय, सुखका कारण मिले सुखी न होय, ज्ञेयरूपकरि तिनिका जाननहारा ही रहै, सोई सांचो परीषहका सहना है।

बहुरि हिंसादि सावद्ययोगका त्यागकों चारित्र मानै है। तहाँ महाव्रतादिरूप शुभयोगकों उपादेयपनेंकरि ग्रहणरूप मानै है। सो तत्वार्थसूत्रविषें आस्रव-पदार्थका निरूपण करतें महाव्रत अणुव्रत भी आस्रवरूप कहे हैं। ए उपादेय कैसें होय? अर आस्रव तो बंधका साधक

है, चारित्र मोक्षका साधक है तातैं महाव्रतादिरूप आस्रवभावनिकों चारित्रपनों सम्भवै नाही, सकल कषायरहित जो उदासीनभाव ताहीका नाम चारित्र है। जो चारित्रमोहके देशघाती स्पर्द्धकनिके उदयतै महा-मंद प्रशस्त राग हो है, सो चारित्रका मल है। याकों छूटता न जानि याका त्याग न करै है, सावद्ययोगहीका त्याग करै है। परन्तु जैसें कोई पुरुष कंदमूलादि बहुत दोषीक हरितकायका त्याग करै है अर केई हरितकायनिको भखे है परन्तु ताकों धर्म न मानै है। तैसें मुनि हिंसादि तीव्रकषायरूप भावनिका त्याग करै हैं अर केई मंदकषायरूप महाव्रतादिकों पालें हैं परन्तु ताकों मोक्षमार्ग न मानैं हैं।

यहां प्रश्न—जो ऐसैं है तो चारित्रके तेरह भेदनिविषै महाव्रतादि कैसें कहे हैं ?

ताका समाधान—यहु व्यवहारचारित्र कह्या है। व्यवहार नाम उपचारका है। सो महाव्रतादि भए ही वीतरागचारित्र हो है। ऐसा सम्बन्ध जानि महाव्रतादिविषै चारित्रका उपचार किया है। निश्चय-करि नि.कषाय भाव है सोई सांचा चारित्र है। या प्रकार संवरके कारणनिकों अन्यथा जानता संवरका सांचा श्रद्धानी न हो है।

निर्जरा तत्वके श्रद्धानकी अयथार्थता

बहुरि यहु अनशनादि तपतै निर्जरा मानै है। सो केवल बाह्यतप ही तो किए निर्जरा होय नाहीं। बाह्यतप तो शुद्धोपयोग बधावनेके अर्थि कीजिए है। शुद्धोपयोग निर्जराका कारण है तातैं उपचारकरि तपकों भी निर्जराका कारण कह्या है। जो बाह्य दुःख सहना ही निर्जराका कारण होय तो तिर्यंचादि भी भूख तृषादि सहैं हैं।

तब वह कहै है—वे तो पराधीन सहैं हैं, स्वाधीनपनें धर्मबुद्धितैं उपवासादिरूप तप करै, ताकै निर्जरा हो है ?

ताका समाधान—धर्मबुद्धितैं बाह्य उपवासादि तो किए, बहुरि तहाँ उपयोग अशुभ शुभ शुद्धरूप जैसे परिणमैं तैसे परिणमो। घनें उपवासादि किए घनी निर्जरा होय,थोरे किए थोरी निर्जरा होय; जो ऐसे नियम ठहरै तौ तो उपवासादिकही मुख्य निर्जराका कारण ठहरै, सो तो बनै नाही। परिणाम दुष्ट भए उपवासादिकतैं निर्जरा होनी कैसे सम्भवै ? बहुरि जो कहिए--जैसा अशुभ शुभ शुद्धरूप उपयोग परिणमै ताके अनुसार बंध निर्जरा है। तो उपवासादि तप मुख्य निर्जराका कारण कैसे रह्या? अशुभ शुभ परिणाम बंधके कारण ठहरे, शुद्ध परिणाम निर्जराके कारण ठहरे।

यहाँ प्रश्न--जो तत्त्वार्थसूत्रविषैं "तपसा निर्जरा च" [९-३] ऐसा कैसे कह्या है ?

ताका समाधान—शास्त्रविषैं "इच्छानिरोधस्तपः" ऐसा कह्या है। इच्छाका रोकना ताका नाम तप है। सो शुभ अशुभ इच्छा मिटै उपयोग शुद्ध होय, तहाँ निर्जरा हो है। तातैं तपकरि निर्जरा कही है।

यहाँ कोऊ कहै; आहारादिरूप अशुभकी तो इच्छा दूरि भए ही तप होय परन्तु उपवासादिक वा प्रायश्चित्तादि शुभ कार्य हैं तिनकी इच्छा तो रहै ?

ताका समाधान—ज्ञानी जननिकै उपवासादि की इच्छा नाहीं है, एक शुद्धोपयोगकी इच्छा है। उपवासादि किए शुद्धोपयोग बधै है, तातैं उपवासादि करै हैं। बहुरि जो उपवासादिकतैं शरीर वा परिणामनिकी शिथिलताकरि शुद्धोपयोग शिथिल होता जानै, तहाँ

आहारादिक ग्रहे हैं। जो उपवासादिकहीतें सिद्धि होय, तो अजित-नाथादिक तेईस तीर्थंकर दीक्षा लेय दोय उपवास ही कैसें धरते ? उनको तो शक्ति भी बहुत थी। परन्तु जैसें परिणाम भए तैसे बाह्य साधनकरि एक वीतराग शुद्धोपयोगका अभ्यास किया।

यहां प्रश्न--जो ऐसें है तो अनशनादिकको तपसंज्ञा कैसें भई ?

ताका समाधान--इनिको बाह्यतप कहे हैं। सो बाह्यका अर्थ यहु-जो बाह्य औरनिको दीसै यहु तपस्वी है। बहुरि आप तो फल जैसा अन्तरग परिणाम होगा तैसा ही पावेगा। जातैं परिणामशून्य शरीर की क्रिया फलदाता नाही है।

बहुरि इहां प्रश्न--जो शास्त्रविषै तो अकामनिर्जरा कही है। तहां बिना चाहि भूख तृषादि सहे निर्जरा हो है तो उपवासादिकरि कष्ट सहे कैसें निर्जरा न होय ?

ताका समाधान--अकामनिर्जराविषै भी बाह्य निमित्त तो बिना चाह भूख तृषाका सहना भया है। अर तहां मंद कषायरूप भाव होय तो पापकी निर्जरा होय, देवादि पुण्यका बंध होय। अर जो तीव्रकषाय भए भी कष्ट सहे पुण्यबंध होय, तो सर्व तिर्यंचादिक देव ही होंय सो बनै नाही। तैसे ही चाहकरि उपवासादि किए तहां भूख तृषादि कष्ट सहिए है। सो यहु बाह्य निमित्त है। यहां जैसा परिणाम होय तैसा फल पावै है। जैसे अन्नको प्राण कह्या। बहुरि ऐसें बाह्यसाधन भए अंतरंगतपकी वृद्धि हो है तातै उपचारकरि इनकों तप कहे हैं। जो बाह्य तप तो करै अर अंतरंग तप न होय तो उपचारतें भी वाको तपसंज्ञा नाही। सोई कह्या है--

कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः ॥

जहाँ कषाय विषय आहारका त्याग कीजिए सो उपवास जानना। अवशेषकों श्रीगुरु लंघन कहैं हैं।

यहाँ कहेगा– जो ऐसें है तो हम उपवासादि न करेंगे ?

ताकों कहिए है—उपदेश तो ऊँचा चढनेको दीजिए है। तू उलटा नीचा पड़ेगा तो हम कहा करेंगे। जो तू मानादिकतें उपवासादि करै है तो करि वा मति करै; किछू सिद्धि नाही। अर जो धर्मबुद्धितें आहारादिकका अनुराग छोड़ै है, तो जेता राग छूटया तेता ही छूटया परन्तु इसहीको तप जानि इसतें निर्जरामानि सन्तुष्ट मति होहु। बहुरि अंतरंग तपनिविषै प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, त्याग, ध्यानरूप जो क्रिया ताविषै बाह्य प्रवर्त्तन सो तो बाह्य तपवत् ही जानना। जैसें अनशनादि बाह्य क्रिया हैं, तैसे ए भी बाह्य क्रिया हैं। तातें प्रायश्चित्तादि बाह्य साधन अंतरंग तप नाहीं हैं। ऐसा बाह्य प्रवर्त्तन होते जो अंतरंग परिणामनिकी शुद्धता होय, ताका नाम अंतरंग तप जानना। तहां भी इतना विशेष है, बहुत शुद्धता भए शुद्धोपयोगरूप परणति होइ, तहां तो निर्जरा ही है, बंध नाहीं हो है। अर स्तोक शुद्धता भए शुभोपयोगका भी अंश रहै, तो जेती शुद्धता भई ताकरि तो निर्जरा है अर जेता शुभ भाव है ताकरि बंध है। ऐसा मिश्रभाव युगपत् हो है, तहां बंध वा निर्जरा दोऊ हो हैं।

यहाँ कोऊ कहै–शुभ भावनितें पापकी निर्जरा हो है, पुण्यका बंध हो है, शुद्ध भावनितें दोऊनिकी निर्जरा हो है, ऐसा क्यों न कहो ?

ताका उत्तर— मोक्षमार्गविषैं स्थितिका तो घटना सर्वही प्रकृतीनिका होय। तहाँ पुण्य पापका विशेष है ही नाहीं। अर अनुभागका घटना पुण्यप्रकृतीनिका शुद्धोपयोगतैं भी होता नाही। ऊपरि ऊपरि पुण्यप्रकृतीनिके अनुभागका तीव्रबध उदय हो है अर पापप्रकृतिके परमाणु पलटि शुभप्रकृतिरूप होंय, ऐसा संक्रमण शुभ व शुद्ध दोऊ भाव होतें होय। तातै पूर्वोक्त नियम सम्भवै नाही। विशुद्धताहीके अनुसारि नियम सम्भवै है। देखो, चतुर्थगुणस्थानवाला शास्त्राभ्यास आत्मचितवनादि कार्यकरै, तहाँ भी निर्जरा नाहीं, बंध भी घना होय। अर पचमगुणस्थानवाला विषय सेवनादि कार्य करै, तहाँ भी वाकै गुणश्रेणि निर्जरा हुआ करै, बंध भी थोरा होय। बहुरि पचम गुणस्थानवाला उपवासादि वा प्रायश्चित्तादि तप करै,तिस कालविषैं भी वाकै निर्जरा थोरी अर छठागुणस्थानवाला आहार विहारादि क्रिया करै,तिस कालविषैं भी वाकै निर्जरा घनी, उसतै भी बंध थोरा होय। तातै बाह्य प्रवृत्तिके अनुसारि निर्जरा नाहीं है। अंतरंग कषायशक्ति घटे विशुद्धता भए निर्जरा हो है। सो इसका प्रगट स्वरूप आगै निरूपण करेंगे, तहाँ जानना। ऐसैं अनशनादि क्रियाकों तपसज्ञा उपचारतैं जाननो। याहीतै इनकों व्यवहार तप कह्या है। व्यवहार उपचारका एक अर्थ है। बहुरि ऐसा साधनतै जो वीतरागभावरूप विशुद्धता होय सो सांचा तप निर्जराका कारण जानना। यहां दृष्टांत— जैसैं धनकों वा अन्नकों प्राण कह्या सो धनतै अन्न ल्याय भक्षण किए प्राण पोषे जांय, तातैं उपचार करि धन अन्नकों प्राण कह्या। कोई इन्द्रियादिक प्राणकों न जानैं अर इनहीकों प्राण जानि संग्रह करै, तो

मरणही पावै। तैसें अनशनादिककों वा प्रायश्चित्तादिककों तप कह्या, सो अनशनादि साधनतें प्रायश्चित्तादिरूप प्रवर्त्ते वीतरागभावरूप सत्य तप पोष्या जाय। तातें उपचारकरि अनशनादिकों वा प्रायश्चित्तादिकों तप कह्या। कोई वीतरागभावरूप तपकों न जानै अर इनिहीकों तप जानि संग्रह करै तो ससारहीमें भ्रमै। बहुत कहा, इतना समझि लेना, निश्चय धर्म्मतो वीतरागभाव है। अन्य नाना विशेष बाह्य साधन अपेक्षा उपचारतें किए है, तिनकों व्यवहारमात्र धर्मसंज्ञा जाननी। इस रहस्यकों न जानै, तातें वाकै निर्जराका भी सांचा श्रद्धान नाहीं है।

मोक्ष तत्वके श्रद्धानकी अयथार्थता

बहुरि सिद्ध होना ताको मोक्ष मानै है। बहुरि जन्म जरा मरण रोग क्लेशादि दुःख दूरि भए अनन्तज्ञान करि लोकालोकका जानना भया, त्रिलोकपूज्यपना भया, इत्यादि रूपकरि ताकी महिमा जानै है। सो सर्व जीवनिकै दुःख दूर करनेकी वा ज्ञेय जाननेकी वा पूज्य होनेकी चाहि है। इनिहीके अर्थ मोक्षकी चाह कीनी तो याकै और जीवनिका श्रद्धानतें कहा विशेषता भई।

बहुरि याकै ऐसा भी अभिप्राय है—स्वर्गविषै सुख है, तिनितें अनन्तगुणे मोक्षविषैं सुख है। सो इस गुणकारविषै स्वर्ग मोक्ष सुखको एक जाति जानै है। तहाँ स्वर्गविषै तो विषयादि सामग्रीजनित सुख हो है, ताकी जाति याकों भासै है अर मोक्षविषै विषयादि सामग्री है नाहीं, सो वहांका सुखकी जाति याको भासै तो नाही परन्तु स्वर्गतें भी मोक्षकों उत्तम महानपुरुष कहै हैं, तातैं यहु भी उत्तम ही मानै है। जैसे कोऊ गानका स्वरूप न पहिचानै परन्तु सर्व सभाके सराहैं, तातैं

आप भी सराहै है। तैसे यहु मोक्षको उत्तम मानैं है।

यहाँ वह कहै है—शास्त्रविषें भी तो इन्द्रादिकतें अनंत गुणा सुख सिद्धनिकै प्ररूपै हैं।

ताका उत्तर—जैसे तीर्थंकरके शरीरकी प्रभाको सूर्य प्रभातैं कोट्यां गुणी कही तहां तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषें सूर्यप्रभा की महिमा है, तातें भी बहुत महिमा जनावनेको उपमालकार कीजिए है। तैसे सिद्ध सुखको इन्द्रादिसुखतें अनन्त गुणा कह्या। तहाँ तिनकी एक जाति नाही। परन्तु लोकविषें इन्द्रादिसुखकी महिमा है, तातें भी बहुत महिमा जनावनेकों उपमालंकार कीजिए है।

बहुरि प्रश्न—जो सिद्ध सुख अर इन्द्रादिसुखकी एक जाति वह जानै है, ऐसा निश्चय तुम कैसे किया ?

ताका समाधान—जिस धर्मसाधनका फल स्वर्ग मानै है, तिस धर्मसाधनहीका फल मोक्ष मानै है। कोई जीव इन्द्रादिपद पावै, कोई मोक्ष पावै, तहां तिन दोऊनिकै एक जाति धर्मका फल भया मानैं। ऐसा तो मानै जो जाकै साधन थोरा हो है सो इन्द्रादिपद पावै है, जाकै सम्पूर्ण साधन होय सो मोक्ष पावै है परन्तु तहां धर्मकी जाति एक जानै है। सो जो कारणकी एक जाति जानै, ताकों कार्यकी भी एक जातिका श्रद्धान अवश्य होय। जातें कारणविशेष भए ही कार्य विशेष हो है। तातैं हम यहु निश्चय किया, वाकै अभिप्राय विषें इन्द्रादिसुख अर सिद्धसुखकी एक जातिका श्रद्धान है। बहुरि कर्मनिमित्ततें आत्माकै औपाधिक भाव थे, तिनका अभाव होतें शुद्ध स्वभावरूप केवल आत्मा आप भया। जसैं परमाणु स्कंधतें बिछुरें

शुद्ध हो है, तैसें यहु कर्मादिकतै भिन्न होय शुद्ध हो है। विशेष इतना-वह दोऊ अवस्थाविषै दुःखी सुखी नाहीं, आत्मा अशुद्ध अवस्थाविषैं दुःखी था, अब ताके अभाव होनेतै निराकुल लक्षण अनन्तसुखकी प्राप्ति भई। बहुरि इन्द्रादिकनिकै जो सुख है, सो कषायभावनिकरि आकुलता रूप है। सो वह परमार्थतै दुःख ही है। तातै वाकी याकी एक जाति नाहीं। बहुरि स्वर्गसुखका कारण प्रशस्तराग है, मोक्षसुखका कारण वीतरागभाव है, तातै कारणविषै भी विशेष है। सो ऐसा भाव याकों भासै नाहीं। तातै मोक्षका भी याकै साँचा श्रद्धान नाहीं है।

या प्रकार याकै साँचा तत्वश्रद्धान नाही है। इस ही वास्ते समयसारविषैं* कह्या है—"अभव्यकै तत्वश्रद्धान भए भी मिथ्यादर्शन ही रहै है।" वा प्रवचनसारविषै+ कह्या है—"आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थ-श्रद्धान कार्यकारी नाही।" बहुरि यहु व्यवहारदृष्टिकरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे हैं तिनिकों पाल है। पच्चीस दोष कहे हैं, तिनिको टालै है। संवेगादिक गुण कहे हैं, तिनिको धारै है। परन्तु जैसें बीज बोए बिना खेतका सब साधन किए भी अन्न होता नाही, तैसें साँचा तत्व-श्रद्धान भए बिना सम्यक्त होता नाही। सो पंचास्तिकाय व्याख्याविषैं जहाँ अन्तविषै व्यवहाराभासवालेका वर्णन किया है, तहाँ ऐसा ही कथन किया है। या प्रकार याकै सम्यग्दर्शनके अर्थि साधन करते भी

* सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥ गाथा २७५ ॥

+ अतः आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञान तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्वयौगपद्यमप्य-किंचित्करमेव ॥ सं० टीका अ० ३ गाथा ३९ ॥

सम्यग्दर्शन न हो है।

सम्यग्ज्ञानके अर्थि साधनमें अयथार्थता

अब यहु सम्यग्ज्ञानके अर्थि शास्त्रविषै शास्त्राभ्यास किए सम्यग्ज्ञान होना कह्या है, तातैं शास्त्राभ्यासविषैं तत्पर रहै है। तहाँ सीखना, सिखावना, याद करना, बांचना, पढ़ना आदि क्रियाविषैं तो उपयोगको रमावै है परन्तु वाके प्रयोजन ऊपरि दृष्टि नाहीं है। इस उपदेशविषै मुझको कार्यकारी कहा, सो अभिप्राय नाहीं। आप शास्त्राभ्यासकरि औरनिको सम्बोधन देनेका अभिप्राय राखै है। घने जीव उपदेश मानें तहाँ सन्तुष्ट हो है। सो ज्ञानाभ्यास तो आपके अर्थि कीजिए है, प्रसंग पाय परका भी भला होय तो परका भी भला करै। बहुरि कोई उपदेश न सुनै तो मति सुनो, आप काहेकों विषाद कीजिए। शास्त्रार्थका भाव जानि आपका भला करना। बहुरि शास्त्राभ्यासविषै भी केई तो व्याकरण न्याय काव्य आदि शास्त्रनिकों बहुत अभ्यासै हैं। सो ए तो लोकविषै पडितता प्रगट करनेके कारण हैं। इन विषै आत्महित निरूपण तो है नाही। इनका तो प्रयोजन इतना ही है, अपनी बुद्धि बहुत होय तो थोरा बहुत इनका अभ्यासकरि पीछें आत्महितके साधक शास्त्र तिनिका अभ्यास करना। जो बुद्धि थोरी होय, तो आत्महितके साधक सुगम शास्त्र तिनहीका अभ्यास करै। ऐसा न करना, जो व्याकरणादिकका ही अभ्यास करतें करतें आयु पूरी होय जाय अर तत्वज्ञानकी प्राप्ति न बनै।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसे है तो व्याकरणादिकका अभ्यास न करना।

ताकों कहिए है--

तिनका अभ्यास बिना महान् ग्रन्थनिका अर्थ खुले नाहीं । तातें तिनका भी अभ्यास करना योग्य है ।

बहुरि यहां प्रश्न--महान् ग्रन्थ ऐसे क्यों किए, जिनका अर्थ व्याकरणादि बिना न खुलै । भाषाकरि सुगमरूप हितोपदेश क्यों न लिख्या । उनकैं किछू प्रयोजन तो था नाही ?

ताका समाधान--भाषाविषै भी प्राकृत सस्कृतादिकके ही शब्द हैं परन्तु अपभ्रंश लिए हैं । बहुरि देश देशविषै भाषा अन्य अन्य प्रकार है सो महंत पुरुष शास्त्रनिविषैं अपभ्रंश शब्द कैसे लिखें । बालक तोतला बोलै तो बड़े तो न बोले । बहुरि एकदेशकी भाषारूप शास्त्र दूसरे देशविषै जाय तो तहाँ ताका अर्थ कैसे भासै । तातै प्राकृत संस्कृतादि शुद्ध शब्दरूप ग्रन्थ जोड़े । बहुरि व्याकरण बिना शब्दका अर्थ यथावत् न भासै । न्याय बिना लक्षण परीक्षा आदि यथावत् न होय सकै । इत्यादि वचनद्वारि वस्तुका स्वरूप निर्णय व्याकरणादि बिना नीके न होता जानि तिनकी आम्नाय अनुसार कथन किया । भाषाविषैं भी तिनकी थोरी बहुत आम्नाय आए ही उपदेश होय सकै है । तिनकी बहुत आम्नायतै नीके निर्णय होय सकै है ।

बहुरि जो कहोगे--ऐसे है, तो अब भाषारूप ग्रन्थ काहेकों बनाइए है ।

ताका समाधान--कालदोषतैंजीवनिकी मंद बुद्धि जानि केई जीवनिकै जेता ज्ञान होगा तेता ही होगा, ऐसा अभिप्राय विचारि

भाषाग्रन्थ कीजिए है। सो जे जीव व्याकरणादिका अभ्यास न करि सकें, तिनकों ऐसे ग्रंथनिकरि ही अभ्यास करना। बहुरि जे जीव शब्दनिको नाना युक्ति लिएं अर्थ करनेकों ही व्याकरण अवगाहैं हैं, वादादिकरि महंत होनेकों न्याय अवगाहैं हैं, चतुरपना प्रगट करनेके अर्थि काव्य अवगाहैं हैं, इत्यादि लौकिक प्रयोजन लिएं इनिका अभ्यास करें हैं ते धर्मात्मा नाहीं। बनें जेता थोरा बहुत अभ्यास इनका करि आत्महितके अर्थि तत्वादिकका निर्णय करै हैं, सोई धर्मात्मा पंडित जानना।

बहुरि केई जीव पुण्य पापादिक फलके निरूपक पुराणादि शास्त्र वा पुण्य पापक्रियाके निरूपक आचारादि शास्त्र वा गुणस्थान मार्गणा कर्मप्रकृति त्रिलोकादिकके निरूपक करणानुयोगके शास्त्र तिनका अभ्यास करै हैं। सो जो इनिका प्रयोजन आप न विचारै, तब तो सूवाकासा ही पढना भया। बहुरि जो इनका प्रयोजन विचारै है तहाँ पापकों बुरा जानना, पुण्यकों भला जानना, गुणस्थानादिकका स्वरूप जानि लेना, इनका अभ्यास करेंगे तितना हमारा भला है, इत्यादि प्रयोजन विचारचा सो इसतैं इतना तो होसी—नरकादिक न होसी, स्वर्गादिक होसी परन्तु मोक्षमार्गकी तो प्राप्ति होय नाहीं। पहलें साँचा तत्वज्ञान होय, तहाँ पीछें पुण्यपापका फलकों संसार जानें, शुद्धोपयोगतें मोक्ष मानै, गुणस्थानादिरूप जीवका व्यवहार निरूपण जानें, इत्यादि जैसाका तैसा श्रद्धान करता संता इनिका अभ्यास करै तो सम्यग्ज्ञान होय। सो तत्वज्ञानकों कारण अध्यात्मरूप द्रव्यानुयोगके शास्त्र हैं। बहुरि केई जीव तिन

शास्त्रनिका भी अभ्यास करै हैं। परन्तु जहां जैसें लिख्या है, तैसें आप निर्णय करि आपकों आपरूप, परकों पररूप, आस्रवादिक कों आस्रवादिरूप न श्रद्धान करै है। मुखतै तो यथावत् निरूपण ऐसा भी करै, जाके उपदेशतै और जीव सम्यग्दृष्टी होय जाय। परन्तु जैसें लड़का स्त्रीका स्वांगकरि ऐसा गान करै, जाकों सुनतें अन्य पुरुष स्त्री कामरूप होय जांय परन्तु वह जैसे सीख्या तैसें कहै है, वाकों किछू भाव भासै नाहीं, तातै आप कामासक्त न हो है। तैसे यहु जैसे लिख्या तैसें उपदेश दे परन्तु आप अनुभव नाहीं करै है। जो आपकै श्रद्धान भया होता तो और तत्वका अंश और तत्वविषै न मिलावता। सो याकै थल नाहीं, तातै सम्यग्ज्ञान होता नाही। ऐसें यहु ग्यारह अंग-पर्यंत पढ़ै तो भी सिद्धि होती नाहीं। सो समयसारादिविषै मिथ्या-दृष्टीकै ग्यारह अंगनिका ज्ञान होना लिख्या है।

यहां कोऊ कहै—ज्ञान तो इतना हो है परन्तु जैसें अभव्यसेनकै श्रद्धानरहित ज्ञान भया, तैसें हो है ?

ताका समाधान—वह तो पापी था, जाकै हिंसादिकी प्रवृत्तिका भय नाही। परन्तु जो जीव ग्रैवेयिक आदिविषै जाय है, ताकै ऐसा ज्ञान हो है सो तो श्रद्धानरहित नाही; वाकै तो ऐसा ही श्रद्धान है, ए ग्रन्थ साचे हैं परन्तु तत्वश्रद्धान सांचा न भया। समयसारविषै*एकही

* मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु॥ गाथा २७४॥

मोक्षंहि न तावदभव्यः श्रद्धत्ते शुद्धज्ञानमयात्मज्ञानशून्यत्वात्। ततो ज्ञानमपि नासौ श्रद्धत्ते। ज्ञानमश्रद्दधानश्चाचाराद्येकादशांगं श्रुतमधीयानोऽपि

जीवके धर्मका श्रद्धान, एकदशांगका ज्ञान, महाव्रतादिकका पालना लिख्या है। प्रवचनसारविषें* ऐसा लिख्या है—आगमज्ञान ऐसा भया जाकरि सर्वपदार्थनिको हस्तामलकवत् जानै है। यह भी जानै है, इनका जाननहारा मैं हूं। परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा आपकों परद्रव्यतें भिन्न केवल चैतन्यद्रव्य नाहीं अनुभवै है। तातैं आत्मज्ञान-शून्य आगमज्ञान भी कार्यकारी नाहीं। या प्रकार सम्यग्ज्ञानके अर्थि जैनशास्त्रनिका अभ्यास करै है, तो भी याकै सम्यग्ज्ञान नाहीं।

सम्यकचारित्रके अर्थि साधनमें अयथार्थता

बहुरि इनकै सम्यक्चारित्रके अर्थि कैसे प्रवृत्ति है सो कहिए है—बाह्यक्रिया ऊपरि तो इनकै दृष्टि है अर परिणाम सुधरने बिगरनेका विचार नाहीं। बहुरि जो परिणामनिका भी विचार होय, तो जैसा अपना परिणाम होता दीसै, तिनहीके ऊपरि दृष्टि रहै है। परन्तु उन परिणामनिकी परंपरा विचारे अभिप्रायविषें जो वासना है, ताकौं न विचारै है। अर फल लागै है सो अभिप्रायविषें वासना है ताका लागै है। सो इसका विशेष व्याख्यान आगै करेंगे, तहां स्वरूप नीके भासेगा। ऐसी पहिचान बिना बाह्य आचरणका ही उद्यम है।

श्रुताध्ययनगुणाभावान्न ज्ञानी स्यात्। स किल गुणः श्रुताध्ययनस्य यद्विविक्तवस्तुभूतज्ञानमयात्मज्ञानं, तच्च विविक्तवस्तुभूत ज्ञानमश्रद्दधानस्याभव्यस्य श्रुताध्ययनेन न विधातुं शक्येत ततस्तस्य तद्गुणाभावः। ततश्च ज्ञानश्रद्धानाभावात् सोऽज्ञानीति प्रतिनियतः।

* परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि ॥ अ० ३ गाथा३९॥

तहां केई जोव तो कुलक्रमकरि वा देखादेखी वा क्रोध मान माया लोभादिकतें आचरण आचरं है । सो इनकें तो धर्मबुद्धि ही नाहीं, सम्यक्चारित्र कहांतें होय । ए जीव कोईतो भोले हैं वा कषायी हैं, सो अज्ञानभाव वा कषाय होतें सम्यक्चारित्र होता नाही । बहुरि केई जीव ऐसा माने हैं, जो जाननेमे कहा है (अर माननेमे कहा है) किछू करेगा तो फल लागेगा । ऐसें विचारि व्रत तप आदि क्रियाहीके उद्यमी रहै हैं अर तत्वज्ञानका उपाय न करै हैं । सो तत्वज्ञान बिना महाव्रतादिका आचरण भी मिथ्याचारित्र ही नाम पावै है । अर तत्वज्ञान भए किछू भी व्रतादिक नाही हैं, तो भी असयतसम्यग्दृष्टी नाम पावै है । तातैं पहलै तत्वज्ञानका उपाय करना, पीछेंकषाय घटावनेकों बाह्य साधनकरना । सो ही **योगीन्द्रदेवकृत श्रावकाचारविषै** कह्या है–

"दंसणभूमिहं बाहिरा जिय वयरुक्ख ण हुंति ।"

याका अर्थ—यहु सम्यग्दर्शनभूमिका बिना हे जीव व्रतरूपी वृक्ष न होय । बहुरि जिन जीवनिकै तत्वज्ञान नाही, ते यथार्थ आचरण न आचरें हैं । सोई विशेष दिखाईए है –

केई जोव पहलै तो बडी प्रतिज्ञा धरि बैठे अर अंतरंग विषय कषायवासना मिटी नाहीं । तब जैसे तैसे प्रतिज्ञा पूरी किया चाहैं,तहा तिस प्रतिज्ञाकरि परिणाम दुःखी हो हैं । जैसे बहुत उपवासकरि बैठे, पीछें पीड़ातें दुःखी हुवा रोगीवत् काल गमावै, धर्मसाधन न करै । सो पहलें ही सधतो जानिए तितनी ही प्रतिज्ञा क्यों न लीजिए । दुःखी होनेमें आर्तध्यान होय, ताका फल भला कैसे लागेगा । अथवा

उस प्रतिज्ञाका दुःख न सह्या जाय, तब ताकी एवज विषय पोषनेकों अन्य उपाय करै। जैसें तृषा लागै तब पानी तो न पीवै अर अन्य शीतल उपचार अनेक प्रकार करै वा घृत तो छोड़ै अर अन्य स्निग्ध वस्तुकों उपायकरि भखै। ऐसे ही अन्य जानना। सो परीषह न सही जाय थी, विषयवासना न छूटै थी, तो ऐसी प्रतिज्ञा काहेकों करी। सुगम विषय छोड़ि पीछें विषम विषयनिका उपाय करना पड़ै, ऐसा कार्य काहेकों कीजिए। यहा तो उलटा रागभाव तीव्र हो है अथवा प्रतिज्ञाविषें दुःख होय तब परिणाम लगावनेकों कोई आलम्बन विचारै। जैसें उपवासकरि पीछे क्रीड़ा करै। केई पापी जूवा आदि कुविसनविषे लगै है अथवा सोय रह्या चाहै। यहु जानें, किसी प्रकारकरि काल पूरा करना। ऐसें ही अन्य प्रतिज्ञाविषै जानना। अथवा केई पापी ऐसे भी हैं, पहलें प्रतिज्ञा करै, पीछे तिसतै दुःखी होय तब प्रतिज्ञा छोड़िदें। प्रतिज्ञा लेना छोड़ना तिनके ख्याल-मात्र है। सो प्रतिज्ञा भग करनेका महापाप है। इसतै तो प्रतिज्ञा न लेनी ही भली है। या प्रकार पहलै तो निर्विचार होय प्रतिज्ञा करै, पीछे ऐसी दशा होय। सो जैनधर्मविषें प्रतिज्ञा न लेनेका दड तो है नाहीं। जैनधर्मविषैतो यहु उपदेश है, पहलें तो तत्वज्ञानी होय। पीछे जाका त्याग करै, ताका दोष पहिचानै। त्याग किए गुण होय, ताकों जानै। बहुरि अपने परिणामनिको ठीक करै। वर्त्तमान परिणामनिहीके भरोसे प्रतिज्ञा न करि बैठै। आगामी निर्वाह होता जानै, तो प्रतिज्ञा करै। बहुरि शरीरकी शक्ति वा द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका विचार करै। ऐसें विचारि पीछे प्रतिज्ञा करनी, सो भी ऐसी करनी,

जिस प्रतिज्ञातें निरादरपना न होय, परिणाम चढ़ते रहैं। ऐसी जैन-धर्मकी आम्नाय है।

यहां कोऊ कहै—चांडालादिकोने प्रतिज्ञा करी, तिनकै इतना विचार कहां हो है।

ताका समाधान—मरणपर्यन्त कष्ट होय तो होहु परन्तु प्रतिज्ञा न छोड़नी, ऐसा विचारिकरि प्रतिज्ञा करे है, प्रतिज्ञाविषै निरादरपना नाहीं। अर सम्यग्दृष्टी प्रतिज्ञा करे है, सो तत्वज्ञानादिपूर्वक ही करे हैं। बहुरि जिनकै अंतरंग विरक्तता न भई अर बाह्य प्रतिज्ञा धरे है, ते प्रतिज्ञाके पहलैं वा पीछें जाकी प्रतिज्ञा करे, ताविषै अति आसक्त होय लागै हैं। जैसे उपवासके धारने पारने भोजनविषै अति लोभी होय गरिष्ठादि भोजन करे, शीघ्रता घनी करे। सो जैसे जलको मूंदि राख्या था, छूटया तब ही बहुत प्रवाह चलने लागा। तैसे प्रतिज्ञाकरि विषय प्रवृत्ति मूंदि, अंतरंग आसक्तता बधती गई। प्रतिज्ञा पूरी होते ही अत्यंत विषयप्रवृत्ति होने लागी। सो प्रतिज्ञाका कालविषै विषयवासना मिटी नाहीं। आगै पीछै ताका एवज अधिक राग किया, तो फल तो रागभाव मिटे होगा। तातै जेती विरक्तता भई होय, तितनी ही प्रतिज्ञा करनी। महामुनि भी थोरी प्रतिज्ञा करें,पीछै आहारादिविषै उछटि करे। अर बडी प्रतिज्ञा करे हैं,सो अपनी शक्ति देखकरि करे हैं। जैसे परिणाम चढ़ते रहैं सो करे है, प्रमाद भी न होय अर आकुलता भी न उपजै। ऐसी प्रवृत्ति कार्यकारी जाननी।

बहुरि जिनकै धर्म ऊपरि दृष्टि नाहीं,ते कबहूँ तो बड़ा धर्म आचरै, कबहूं अधिक स्वच्छन्द होय प्रवर्त्तै। जैसे कोई धर्म पर्वविषै तो बहुत

उपवासादि करें, कोई धर्मपर्वविषें बारम्बार भोजनादि करें। सो धर्म बुद्धि होय तो यथायोग्य सर्व धर्मपर्वनिविषें यथायोग्य संयमादि धरें। बहुरि कबहूं तो कोई धर्मकार्यविषें बहुत धन खरचे, कबहूं कोई धर्मकार्यप्रानि प्राप्त भया होय, तो भी तहां थोरा भी धन न खरचें। सो धर्मबुद्धि होय, तो यथाशक्ति यथायोग्य सर्व ही धर्मकार्यनिविषें धन खरच्या करें। ऐसै ही अन्य जानना।

बहुरि जिनकै सांचा धमसाधन नाहीं, ते कोई क्रिया तो बहुत बड़ी अंगीकार करें अर कोई हीनक्रिया किया करें। जैसे धनादिकका तो त्याग किया अर चोखा भोजन चोखा वस्त्र इत्यादि विषयनिविषें विशेष प्रवर्त्तै। बहुरि कोई जामा पहरना, स्त्रीसेवन करना, इत्यादि कार्यनिका तो त्यागकरि धर्मात्मापना प्रगट करै अर पीछे खोटे व्यापारादि कार्य करै, लोकनिंद्य पापक्रियाविषै प्रवर्त्तै; ऐसै ही कोई क्रिया अति ऊंची, कोई क्रिया अति नीची करै। तहां लोकनिंद्य होय धर्मको हास्य करावै। देखो अमुक धर्मात्मा ऐसे कार्य करै है। जैसे कोई पुरुष एक वस्त्र तो अति उत्तम पहरै, एक वस्त्र अति हीन पहरै तो हास्य ही होय। तैसे यहु हास्य पावै है। सांचा धर्मको तो यहु आम्नाय है, जेता अपना रागादि दूर भया होय, ताके अनुसार जिस पदविषें जो धर्मक्रिया सम्भवै, सो सर्व अंगीकार करै। जो थोरा रागादि मिट्या होय तो नीचा ही पदविषें प्रवर्त्तै परन्तु ऊँचा पद धराय नीची क्रिया न करै।

यहां प्रश्न—जो स्त्रीसेवनादिकका त्याग ऊपरको प्रतिमाविषें कह्या है, सो नीचली अवस्थावाला तिनका त्याग करै कि न करै

ताका समाधान—सर्वथा तिनका त्याग नीचली अवस्थावाला कर सकता नाही। कोई दोष लागै है, तातै ऊपरकी प्रतिमाविषैं त्याग कह्या है। नीचली अवस्थाविषै जिसप्रकार त्याग सम्भवै,तैसा नीचली अवस्थावाला भी करै। परन्तु जिस नीचली अवस्थाविषै जो कार्य सम्भवै ही नाही ताका करना तो कषायभावनिहीतैं हो है, जैसै कोऊ सप्तव्यसन सेवै, स्वस्त्रीका त्याग करै, तो कैसे बनै? यद्यपि स्वस्त्रीका त्याग करना धर्म है, तथापि पहलै सप्तव्यसनका त्याग होय, तब ही स्वस्त्रीका त्याग करना योग्य है। ऐसै ही अन्य जानने।

बहुरि सर्व प्रकार धर्मकों न जाने, ऐसा जीव कोई धर्मका अंगकों मुख्यकरि अन्य धर्मनिको गौण करैहै। जैसै केई जीव दयाधर्मको मुख्य करि पूजा प्रभावनादि कार्यकों उथापै है,केई पूजा प्रभावनादि धर्मकों मुख्यकरि हिंसादिक का भय न राखै है, केई तपकी मुख्यताकरि आर्त्त ध्यानादिकरिक भी उपवासादि करै वा आपकों तपस्वी मानि निःशंक क्रोधादि करैं, केई दानकी मुख्यताकरि बहुत पाप करिके भी धन उपजाय दान दे हैं, केई आरम्भ त्यागकी मुख्यताकरि याचना आदि करै हैं※[केईजीव हिंसा मुख्यकरि स्नानशौचादि नाही करै है वा लौकिक कार्यआए धर्म छोड़ि तहाँ लगि जांय इत्यादि करै है।] इत्यादि प्रकार करि कोई धर्मको मुख्यकरि अन्य धर्मको न गिनै है वा वाके आसरै पापआचरै है। जैसे अविवेकी व्यापाराकी कोई व्यापारका नफाके अर्थि अन्य प्रकारकरि बहुत टोटा पाड़ै तैसे यहु कार्य भया। चाहिए

※ यहाँ खरडा प्रति में अन्य कुछ और लिखनेके लिये संकेत किया है। यह संकेत निम्न प्रकार है:-

'इहा स्नानादि शौच धर्म का कथन तथा लौकिक कार्य आए धर्म छोड़ि तहाँ लगि जाय है,तिनिका कथन लिखना है,किन्तु पं०जी लिख नही पाए।'

तो ऐसें, जैसें व्यापारीका प्रयोजन नफ़ा है, सर्व विचारकरि जैसें नफ़ा घना होय तैसें करे। तसे ज्ञानीका प्रयोजन वीतरागभाव है। सर्व विचारकरि जैसे वीतरागभाव घना होय तैसे करे। जाते मूलधर्म वीतरागभाव है। याही प्रकार अविवेकी जीव अन्यथा धर्म अंगीकार करे है, तिनकै तो सम्यक्चारित्रका आभास भी न होय।

बहुरि केई जीव अणुव्रत महाव्रतादि रूप यथार्थ आचरण करे हैं। बहुरि आचरणके अनुसार ही परिणाम है। कोई माया लोभादिकका अभिप्राय नाही है। इनिको धर्म जानि मोक्षके अर्थि इनिका साधन करै है। कोई स्वर्गादिक भोगनिकी भी इच्छा न राखे है परन्तु तत्त्वज्ञान पहले न भया, तातै आप तो जानै मैं मोक्षका साधन करू हूं अर मोक्षका साधन जो है ताकों जानै भी नाही। केवल स्वर्गादिकहीका साधन करै। सो मिश्रीको अमृत जानि भखे अमृतका गुण तो न होय। आपकी प्रतीतिके अनुसार फल होता नाहीं। फल जैसा साधन करै, तैसा ही लागे है। शास्त्रविषै ऐसा कह्या है—चारित्रविषै 'सम्यक्' पद है, सो अज्ञानपूर्वक आचरणकी निवृत्तिके अर्थि है। ताते पहलें तत्वज्ञान होय, तहां पीछे चारित्र होय सो सम्यक्चारित्र नाम पावै है। जैसे कोई खेतीवाला बीज तो बोवै नाही अर अन्य साधन करै तो अन्नप्राप्ति कैसे होय। घास फूस ही होय। तैसे अज्ञानी तत्त्वज्ञानका तो अभ्यास करै नाही अर अन्य साधन करै तो मोक्षप्राप्ति कैसें होय, देवपदादिक ही होय। तहां केई जीव तो ऐसे हैं, तत्वादिकका नीकें नाम भी न जाने,केवल व्रतादिकविषैं ही प्रवर्तें हैं। केई जीव ऐसे हैं, पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञानका अयथार्थ साधनकरि व्रतादि

विषैं प्रवर्त्ते हैं। सो यद्यपि व्रतादिक यथार्थ आचरैं तथापि यथार्थ श्रद्धान ज्ञान बिना सर्व आचरण मिथ्याचारित्र ही है। सोई समयसारका कलशाविषै कह्या है—

> क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
> क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।
> साक्षान्मोक्षइदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
> ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥
> —निर्जराधिकार ॥१४२॥

याका अर्थ—मोक्षतैं पराङ्मुख ऐसे अतिदुस्तर पचाग्नि तपनादि कार्य तिनकरि आपही क्लेश करै है तो करो। बहुरि अन्य केई जीव महाव्रत अर तपका भारकरि चिरकालपर्यन्त क्षीण होते क्लेश करै हैं तो करो। परन्तु यहु साक्षात् मोक्षस्वरूप सर्वरोगरहित पद जो आपै आप अनुभवमें आवै, ऐसा ज्ञान स्वभाव सो तो ज्ञानगुण बिना अन्य कोई भी प्रकारकरि पावनेको समर्थ नाहीं है। बहुरि पचास्तिकायविषें जहाँ अंतविषै व्यवहाराभास वालेका कथन किया है तहाँ तेरह प्रकार चारित्र होते भी ताका मोक्षमार्गविषै निषेध किया है। बहुरि प्रवचनसारविषें आत्मज्ञानशून्य संयमभाव अकार्यकारी कह्या है। बहुरि इनही ग्रन्थनिविषें वा अन्य परमात्मप्रकाशादि शास्त्रनिविषें इस प्रयोजन लिए जहां तहाँ निरूपण है। तातैं पहलैं तत्वज्ञान भए ही आचरण कार्यकारी है।

यहां कोऊ जानेगा, बाह्य तो अणुव्रत महाव्रतादि साधैं हैं, अंतरंग

परिणाम नाहीं वा स्वर्गादिककी वांछाकरि साधै हैं, सो ऐसें साधे तो पापबंध होय । द्रव्यलिंगी मुनि ऊपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय है । परावर्तनिविषं इकतीस सागर पर्यंन्त देवायुकी प्राप्ति अनन्तबार होनी लिखी है। सो ऐसे ऊंचेपद तो तब ही पावै जब अंतरंग परिणामपूर्वक महाव्रत पालै, महामंदकषायी होय, इस लोक परलोकके भोगादिककी चाह न होय, केवल धर्मबुद्धितैं मोक्षाभिलाषी हुवा साधन साधै। तातैं द्रव्यलिगीकै स्थूल तो अन्यथापनों है नाहीं, सूक्ष्म अन्यथापनों है सो सम्यग्दृष्टीको भासै है। अब इनकै धर्मसाधन कैसे है अर तामे अन्यथापनों कैस है ? सो कहिए है—

द्रव्य लिंगी के धर्म साधन में अन्यथापना

प्रथम तो संसारविषै नरकादिकका दुःख जानि वा स्वर्गादिविषै भी जन्म मरणादिकका दुःख जानि संसारतैं उदास होय मोक्षको चाहै हैं। सो इन दुःखनिको तो दुःख सब ही जानै है। इन्द्र अहमिन्द्रादिक विषयानुरागत इन्द्रियजनित सुख भोगवै है ताकौं भी दुःख जानि निराकुल सुख अवस्थाको पहचानि मोक्ष चाहै हैं, सोई सम्यग्दृष्टि जानना। बहुरि विषयसुखादिकका फल नरकादिक है, शरीर अशुचि विनाशीक है—पोषने योग्य नाहीं, कुटुम्बादिक स्वार्थके सगे हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका दोष विचारि तिनिका तो त्याग करै है। व्रतादिकका फल स्वर्गमोक्ष है,तपश्चरणादि पवित्र अविनाशी फलके दाताहै,तिन-करि शरीर सोखने योग्य है, देव गुरु शास्त्रादि हितकारी हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका गुण विचारि तिनहीकों अंगीकार करै है। इत्यादि प्रकारकरि कोई परद्रव्यकों बुरा जानि अनिष्ट श्रद्धै है, कोई परद्रव्य

कों भला जानि इष्ट श्रद्धै है। सो परद्रव्यविषै इष्ट अनिष्टरूप श्रद्धान सो मिथ्या है। बहुरि इसही श्रद्धानतै याकै उदासीनता भी द्वेषबुद्धि रूप हो है। जातै काहूको बुरा जानना, ताहीका नाम द्वेष है।

कोऊ कहैगा, सम्यग्दृष्टी भी तो बुरा जानि परद्रव्यकों त्यागै है।

ताका समाधान—सम्यग्दृष्टी परद्रव्यनिको बुरा न जानै है। अपना रागभावकों बुरा जानै है। आप रागभावकों छोरै, तातै ताका कारणका भी त्याग हो है। वस्तु विचारे कोई परद्रव्य तो बुरा भला है नाही।

कोऊ कहैगा, निमित्तमात्र तो है।

ताका उत्तर—परद्रव्य जोरावरी तो कोई बिगारता नाही। अपने भाव बिगरै तब वह भी बाह्यनिमित्त है। बहुरि वाका निमित्त बिना भी भाव बिगरै हैं। तातै नियमरूप निमित्त भी नाही। ऐसे परद्रव्यका तो दोष देखना मिथ्याभाव है। रागादिभाव ही बुरे है सो याकै ऐसी समझि नाही। यहु परद्रव्यनिका दोष देखि तिनविषै द्वेषरूप उदासीनता करै है। साचा उदासीनता तो ताका नाम है, कोई ही द्रव्यका दोष वा गुण न भासै, तातै काहूको बुरा भला न जानै। आपकों आप जानै, परकों पर जानै, परतै किछू भी प्रयोजन मेरा नाही ऐसा मानि साक्षीभूत रहै। सो ऐसी उदासीनता ज्ञानीहीकै होय। बहुरि यहु उदासीन होय शास्त्रविषै व्यवहारचारित्र अणुव्रत महाव्रतरूप कह्या है ताकों अंगीकार करै है, एकदेश वा सर्वदेश हिंसादि पापकों छाड़ै है, तिनकी जायगा अहिंसादि पुण्यरूप कार्यनिविषै प्रवर्त्तै है। बहुरि जैसें पर्यायाश्रित पापकार्यनिविषै कर्त्तापना अपना मानैं था तैसे ही

और पर्यायाश्रित पुण्यकार्यनिविषें कर्त्तापना अपना माननें लागा, ऐसें पर्यायाश्रित कार्यनिविषे अहंबुद्धि माननेकी समानता भई। जैसें मैं जीव मारू हूं, मैं परिग्रहधारी हूँ, इत्यादिरूप मानि थी, तैसें ही मैं जीवनिकी रक्षा करूं हूँ, मैं नग्न परिग्रह रहित हूँ, ऐसी मानि भई। सो पर्यायाश्रित कार्यविषे अहबुद्धि सो ही मिथ्यादृष्टि है। सोई समयसारविषे कह्या है—

ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसातताः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोपि मुमुक्षुतां ॥१॥
(सर्व वि०अधिकार १६६)

याका अर्थ—जे जीव मिथ्या अन्धकारव्याप्त होते संते आपकों पर्यायाश्रित क्रियाका कर्त्ता मानै हैं, ते जाव मोक्षाभिलाषी हैं, तोऊ तिनकै जैसे अन्यमती सामान्य मनुष्यनिकै मोक्ष न होय तैसें मोक्ष न हो है। जातें कर्त्तापनाका श्रद्धानकी समानता है। बहुरि ऐसें आप कर्त्ता होय श्रावकधर्म वा मुनिधर्मकी क्रियाविषैं मन वचन कायकी प्रवृत्ति निरन्तर राखै हैं। जैसें उन क्रियानिविषें भंग न होय तैसें प्रवर्त्तै हैं। सो ऐसे भाव तो सराग हैं। चारित्र है सो वीतरागभावरूप है। तातें ऐसे साधनकों मोक्षमार्ग मानना मिथ्याबुद्धि है।

यहाँ प्रश्न जो सराग वीतराग भेदकरि दोयप्रकार चारित्र कह्या है सो कैसे हैं ?

ताका उत्तर—जैसे तन्दुल दोय प्रकारके हैं—एक तुषसहित हैं एक तुषरहित हैं, तहाँ ऐसा जानना - तुष है सो तन्दुलका स्वरूप नाहीं, तन्दुलविषें दोष है। अर कोई स्याना तुषसहित तन्दुलका संग्रह करै

था, ताकों देखि कोई भोला तुषनिहीकों तन्दुल मानि संग्रह करै तो वृथा खेद खिन्न ही होय। तैसे चारित्र दोय प्रकारका है—एक सराग है एक वीतराग है। तहां ऐसा जानना—राग है सो चारित्रका स्वरूप नाही, चारित्रविषें दोष है। अर केई ज्ञानी प्रशस्तरागसहित चारित्र धरै हैं, तिनकों देखि कोई अज्ञानी प्रशस्तरागहीकों चारित्र मानि संग्रह करै तो वृथा खेदखिन्न ही होय।

यहाँ कोऊ कहेगा—पापक्रिया करतें तीव्ररागादिक होते थे, अब इनि क्रियानिकों करते मंदराग भया। तातै जेता अंश रागभाव घट्या, तितना अंश तो चारित्र कहो। जेता अंश राग रह्या, तेता अंश राग कहो। ऐसें याकै सरागचारित्र सम्भवै है।

ताका समाधान—जो तत्वज्ञानपूर्वक ऐसें होय तो कहो हो तैसें ही है। तत्वज्ञान बिना उत्कृष्ट आचरण होते भी असंयम ही नाम पावै है। जातै रागभाव करनेका अभिप्राय नाही मिटै है। सोई दिखाईए है—

द्रव्य लिंगी के अभिप्राय में अयथार्थपना

द्रव्यलिंगी मुनि राज्यादिकको छोडि निर्ग्रन्थ हो है, अठाईस मूल गुणनिको पालै है, उग्रोग्र अनशनादि घना तप करै है, क्षुधादिक बाईस परीषह सहै है, शरीरका खड खंड भए भी व्यग्र न हो है, व्रत भंगके कारण अनेक मिलें तो भी दृढ रहै है, कोई सेती क्रोध न करै है, ऐसा साधनका मान न करै है, ऐसे साधनविषै कोई कपटाई नाहीं है, इस साधनकरि इस लोक परलोकके विषय सुखकों न चाहै है, ऐसी याको दशा भई है। जो ऐसी दशा न होय तो ग्रैवेयकपर्यन्त कैसें पहुंचै परन्तु याकों मिथ्यादृष्टि असंयमी ही शास्त्रविषें कह्या। सो ताका

कारण यहु है—याके तत्वनिका श्रद्धान ज्ञान सांचा भया नाहीं । पूर्वे वर्णन किया,तैसें तत्वनिका श्रद्धान ज्ञान भया है । तिसही अभिप्रायतें सब साधन करे है । सो इन साधननिका अभिप्रायकी परम्पराकों विचारे कषायनिका अभिप्राय आवे है । कैसे ? सो सुनहु—यहु पापका कारण रागादिककों तो हेय जानि छोरे है परन्तु पुण्यका कारण प्रशस्तरागकों उपादेय माने है । ताके बधनेका उपाय करे है। सो प्रशस्तराग भी तो कषाय है। कषायकों उपादेय मान्या, तब कषाय करनेका हो श्रद्धान रह्या। अप्रशस्त परद्रव्यनिस्यों द्वेषकरि प्रशस्त परद्रव्यनिविषे राग करनेका अभिप्राय भया। किछू परद्रव्यनिविषें साम्यभावरूप अभिप्राय न भया।

यहां प्रश्न—जो सम्यग्दृष्टी भी तो प्रशस्तरागका उपाय राखै है।

ताका उत्तर यहु—जैसें काहूकै बहुत दंड होता था, सो वह थोरा दंड देनेका उपाय राखै है अर थोरा दंड दिए हर्ष भी मानें है परन्तु श्रद्धानविषै दंड देना अनिष्ट ही माने है। तैसे सम्यग्दृष्टीकै पापरूप बहुत कषाय होता था, सो यहु पुण्यरूप थोरा कषाय करनेका उपाय राखै है अर थोरा कषाय भए हर्ष भी माने है परन्तु श्रद्धान विषै कपायकौ हेय ही माने है। बहुरि जैसें कोऊ कमाईका कारण जानि व्यापारादिकका उपाय राखै है, उपाय बनि आए हर्ष माने है तैसें द्रव्यलिंगी मोक्षका कारण जानि प्रशस्त रागका उपाय राखे है, उपाय बनिआए हर्ष माने है। ऐसे प्रशस्तरागका उपायविषें वा हर्षविषें समानता होते भी सम्यग्दृष्टीकै तो दण्डसमान मिथ्यादृष्टिकै व्यापारसमान श्रद्धान पाईए है। तातें अभिप्रायविषें विशेष भया।

बहुरि याकै परीषह तपश्चरणादिकके निमित्ततें दुःख होय, ताका इलाज तो न करै है परन्तु दुःख वेदै है। सो दुःखका वेदना कषाय ही है। जहां वीतरागता हो है, तहां तो जैसे अन्य ज्ञेयकों जानैं है तैसें ही दुःखका कारण ज्ञेयकों जाने है। सो ऐसी दशा याकी न हो है। बहुरि उनकों सहै है, सो भी कषायका अभिप्रायरूप विचारतें सहै है। सो विचार ऐसा ही है--जो परवशपने नरकादिगतिविषै बहुत दुःख सहे, ये परीषहादिका दुःख तो थोरा है। याको स्ववश सहे स्वर्ग मोक्षसुखकी प्राप्ति हो है। जो इनको न सहिए अर विषयसुख सेइए तो नरकादिककी प्राप्ति होगी, तहा बहुत दुःख होगा। इत्यादि विचारविषै परीषहनिविषै अनिष्टबुद्धि रहै है। केवल नरकादिकके भयतै वा सुखके लोभतै तिनकों सहै है। सो ए सर्व कषायभाव ही है। बहुरि ऐसा विचार हो है--जे कर्म बांधे थे, ते भोगे बिना छूटते नाहीं, तातै मोकों सहनें आए। सो ऐसे विचारतें कर्मफल चेतना रूप प्रवर्त्तै है। बहुरि पर्यायदृष्टितैं जे परीषहादिकरूप अवस्था हो है ताकों आपकै भई मानै है। द्रव्यदृष्टितैं अपनी वा शरीरादिककी अवस्थाको भिन्न न पहिचानै है। ऐसे ही नाना प्रकार व्यवहार विचारतै परीषहादिक सहै है।

बहुरि यानें राज्यादि विषयसामग्रीका त्याग किया है वा इष्ट भोजनादिकका त्याग किया करै है। सो जैसे कोऊ दाहज्वरवाला वायु होनेके भयतैं शीतलवस्तु सेवनका त्याग करै है परन्तु यावत् शीतल वस्तुका सेवन रुचै तावत् वाकै दाहका अभाव न कहिए। तैसें राग सहित जीव नरकादिके भयतें विषयसेवनका त्याग करै है परन्तु यावत्

विषयसेवन रुचै तावत् रागका अभाव न कहिए। बहुरि जैसें अमृत का आस्वादी देवकों अन्य भोजन स्वयमेव न रुचै, तैसें स्वरसक आस्वादकरि विषयसेवनकी रुचि याकै न हो है। या प्रकार फलादिक की अपेक्षा परीषह सहनादिकों सुखका कारण जानें है अर विषय-सेवनादिको दुःखका कारण जानें है। बहुरि तत्कालविषे परीषह सहनादिकतें दुःख होना मानें है, विषयसेवनादिकतें सुख माने है। बहुरि जिनतें सुख दुःख होना मानिए, तिनविषै इष्ट अनिष्ट बुद्धितें रागद्वेष रूप अभिप्रायका अभाव होय नाहीं। बहुरि जहां रागद्वेष है, तहां चारित्र होय नाहीं। तातें यहु द्रव्यलिंगी विषयसेवन छोरि तप-श्चरणादि करै है तथापि असंयमी ही है। सिद्धांतविषें असंयत देश-संयतसम्यग्दृष्टीतें भी याकों हीन कह्या है। जातें उनकै चौथा पांचवां गुणस्थान है, याकै पहला ही गुणस्थान है।

यहाँ कोऊ कहै कि—असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति विशेष है अर द्रव्यलिंगी मुनिकै थोरी है, याहीतें असयत देशसंयत सम्यग्दृष्टि तो सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त ही जाय अर द्रव्यलिंगी उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय। तातें भावलिंगी मुनितें तो द्रव्यलिंगीकों हीन कहो, असयत देशसयत सम्यग्दृष्टीतें याकों हीन कैसे कहिए?

ताका समाधान—असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो है परन्तु श्रद्धानविषै किसी ही कषायके करनेका अभिप्राय नाहीं। बहुरि द्रव्यलिंगीकै शुभ कषाय करनेंका अभिप्राय पाइए है। श्रद्धानविषें तिनकों भले जानैं है। तातें श्रद्धान अपेक्षा असंयत सम्य-ग्दृष्टितें भी याकै अधिक कषाय है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै योगनिक

प्रवृत्ति तशुभ रूप घनी हो है अर अघातिकर्मनिविषें पुण्य पापबधका विशेष शुभ अशुभ योगनिके अनुसार है। तातें उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त पहुँचे है,सो किछू कार्यकारी नाही। जातें अघातिया कर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। इनके उदयतें ऊँचे नीचे पद पाए तो कहा भया। ए तो बाह्य संयोगमात्र ससार दशाके स्वांग हैं। आप तो आत्मा है, तातें आत्मगुणके घातक घातिया कर्म हैं तिनका हीनपना कार्यकारी है। सो घातियाकर्मनिका बध बाह्य प्रवृत्तिके अनुसार नाहीं। अंतरंग कषाय शक्तिके अनुसार है। याहीतें द्रव्यलिंगीतें असंयत देशसयत सम्यग्दृष्टिकै घातिकर्मनिका बध थोरा है। द्रव्यलिंगीकै तो सर्वघातिकर्मनिका बध बहुत स्थिति अनुभाग लिए होय अर असंयत देशसयत सम्यग्दृष्टिकै मिथ्यात्व अनन्तानुबधी आदि कर्मका तो बध है ही नाही, अवशेषनिका बंध हो है सो स्तोक स्थिति अनुभाग लिए हो है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै कदाचित् गुणश्रेणीनिर्जरा न होय, सम्यग्दृष्टिकै कदाचित् हो है अर देश सकल संयम भए निरन्तर हो है। याहीतें यहु मोक्षमार्गी भया है। तातें द्रव्य लिंगी मुनि असयत देशसंयतसम्यग्दृष्टीतें हीन शास्त्रविषें कह्या है। सो समयसार शास्त्रविषै द्रव्यलिंगी मुनिका हीनपना गाथा वा टीकाकलशानिविषै प्रगट किया है। बहुरि पचास्तिकायकी टीकाविषै जहा केवल व्यवहारावलम्बीका कथन किया है, तहां व्यवहार पचाचार होतें भी ताका हीनपना ही प्रगट किया है। बहुरि प्रवचनसारविषै ससार तत्व द्रव्यलिंगीकों कह्या। बहुरि परमात्म प्रकाशादि अन्य शास्त्रनिविषै भी इस व्याख्यानकों स्पष्ट किया है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै जप तप शील संयमादि क्रिया पाइए हैं,

तिनकों भी अकार्यकारी इन शास्त्रनिविषें जहां तहां दिखाई हैं, सो तहाँ देखि लेना। यहां ग्रन्थ बधनेके भयतें नाहीं लिखिए हैं। ऐसें केवल व्यवहाराभासके अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण किया।

अब निश्चय व्यवहार दोऊ नयनिके आभासको अवलम्बे हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टी तिनिका निरूपण कीजिए है—

निश्चय व्यवहारनयाभासावलम्बी मिथ्यादृष्टियोंका निरूपण

जे जीव ऐसा मानें हैं - जिनमतविषें निश्चय व्यवहार दोय नय कहे हैं, तातें हमको तिनि दोऊनिका अंगीकार करना। ऐसें विचारि जैसे केवल निश्चयाभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसें तो निश्चयका अंगीकार करें हैं अर जैसें केवल व्यवहाराभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसे व्यवहारका अंगीकार करें हैं। यद्यपि ऐसे अंगीकार करने विषें दोऊ नयनिके परस्पर विरोध है तथापि करें कहा, साँचा तो दोऊ नयनिका स्वरूप भास्या नाहि अर जिनमतविषें दोय नय कहे, तिनिविषै काहूकों छोडी भी जाती नाहीं। तातें भ्रम लिए दोऊनिका साधन साधैं हैं,ते भी जीव मिथ्यादृष्टी जानने।

अब इनकी प्रवृत्तिका विशेष दिखाईए है—अंतरंगविषै आप तो निर्द्धार करि यथावत् निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गकों पहिचान्या नाहीं जिनआज्ञा मानि निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दोय प्रकार मानें है सो मोक्षमार्ग दोय नाहीं, मोक्षमार्गका निरूपण दोय प्रकार है। जहां साचा मोक्षमार्गकों मोक्षमार्ग निरूपिए सो निश्चय मोक्षमार्ग है अर जहां जो मोक्षमार्ग तो है नाहीं परन्तु मोक्षमार्गका निमित्त है

वा सहचारी है, ताकों उपचारकरि मोक्षमार्ग कहिए सो व्यवहार मोक्षमार्ग है, जातैं निश्चय व्यवहारका सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। सांचा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार, तातैं निरूपण अपेक्षा दोय प्रकार मोक्षमार्ग जानना। एक निश्चयमोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है,ऐसैं दोय मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। बहुरि निश्चय व्यवहार दोऊनिकूं उपादेय मानै है, सो भी भ्रम है। जातैं निश्चय व्यवहारका स्वरूप तो परस्पर विरोध लिए है। जातैं समयसार विषै ऐसा कह्या है—

"ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ*।" गाथा ११

याका अर्थ—व्यवहार अभूतार्थ है। सत्य स्वरूपको न निरूपै है। किसी अपेक्षा उपचारकरि अन्यथा निरूपै है। बहुरि शुद्धनय जो निश्चय है सो भूतार्थ है। जैसा वस्तुका स्वरूप है तैसा निरूपै है। ऐसैं इन दोऊनिका स्वरूप तो विरुद्धता लिए है।

बहुरि तू ऐसैं मानै है, जो सिद्धसमान शुद्ध आत्माका अनुभवन सो निश्चय अर व्रत शील संयमादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार, सो ऐसा तेरे मानना ठीक नाहीं। जातैं कोई द्रव्यभावका नाम निश्चय, कोईका नाम व्यवहार ऐसैं है नाहीं। एक ही द्रव्यके भावकों तिस स्वरूप ही निरूपण करना, सो निश्चयनय है। उपचारकरि तिस द्रव्यके भावकों अन्य द्रव्यके भावस्वरूप निरूपण करना,सो व्यवहार है। जैसे माटीके

* ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ॥ गाथा ११ ॥

घड़ेकों माटीका घड़ा निरूपिए सो निश्चय अर घृत संयोगका उपचार करि वाकों ही घृतका घड़ा कहिए सो व्यवहार । ऐसें ही अन्यत्र जानना । तातें तू किसीकों निश्चय मानै, किसीकों व्यवहार मानें सो भ्रम है। बहुरि तेरे माननें विषै भी निश्चय व्यवहारके परस्पर विरोध आया । जो तू आपको सिद्धसमान शुद्ध मानै है, तो व्रतादिक काहेकों करै है। जो व्रतादिका साधनकरि सिद्ध भया चाहै है, तो वर्तमानविषै शुद्ध आत्माका अनुभवन मिथ्या भया। ऐसें दोऊ नयनिकै परस्पर विरोध है। तातै दोऊ नयनिका उपादेयपना बनै नाहीं ।

यहां प्रश्न--जो समयसारादिविषै शुद्ध आत्माका अनुभवकों निश्चय कह्या है, व्रत तप संयमादिककों व्यवहार कह्या है तैसे ही हम मानै हैं।

ताका समाधान—शुद्ध आत्माका अनुभव सांचा मोक्षमार्ग है तातें वाकों निश्चय कह्या । यहां स्वभावतें अभिन्न, परभावतें भिन्न ऐसा शुद्ध शब्दका अर्थ जानना । संसारीकों सिद्ध मानना ऐसा भ्रमरूप अर्थ शुद्ध शब्दका न जानना । बहुरि व्रत तप आदि मोक्षमार्ग हैं नाहीं, निमित्तादिककी अपेक्षा उपचारतें इनको मोक्षमार्ग कहिए है तातें इनको व्यवहार कह्या । ऐसें भूतार्थ अभूतार्थ मोक्षमार्गपनाकरि इनकों निश्चय व्यवहार कहे है। सो ऐसै ही मानना । बहुरि ए दोऊ ही सांचे मोक्षमार्ग हैं, इन दोऊनिको उपादेय मानना सो तो मिथ्याबुद्धि ही है। तहां वह कहै है—श्रद्धान तो निश्चयका राखै हैं अर प्रवृत्ति व्यवहार रूप राखै है, ऐसें हम दोऊनिकों अंगीकार करें हैं। सो ऐसै भी बनै नाहीं, जातें निश्चयका निश्चयरूप अर व्यवहारका

व्यवहार रूप श्रद्धान करना युक्त है। एक ही नयका श्रद्धान भए एकान्तमिथ्यात्व हो है। बहुरि प्रवृत्तिविषै नयका प्रयोजन ही नाही। प्रवृत्ति तो द्रव्यकी परणति है। तहाँ जिस द्रव्यकी परणति होय,ताकों तिसहीकी प्ररूपिए सो निश्चयनय अर तिसहीकों अन्य द्रव्यकी प्ररूपिए सो व्यहारनय, ऐसैं अभिप्राय अनुसार प्ररूपणतैं तिस प्रवृत्तिविषैं दोऊ नय बनै हैं। किछू प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नाही। तातै या प्रकार भी दोऊ नयका ग्रहण मानना मिथ्या है। तो कहा करिए, सो कहिए हैं— निश्चयनयकरि जो निरूपण किया होय, ताकों तो सत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान अंगीकार करना अर व्यवहारनयकरि जो निरूपण किया होय, ताकों असत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान छोडना। सो ही समयसार विषैं कह्या है —

> सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यंयदुक्तं जिनै-
> स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
> सम्यग्निश्चयमेकमेव तदयो निष्कम्पमाक्रम्य किं
> शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥१॥

समयसार कलश बंधाधिकार १७३

याका अर्थ– जातै सर्व ही हिंसादि वा अहिंसादिविषै अध्यवसाय हैं सो समस्त ही छोड़ना, ऐसा जिनदेवनिकरि कह्या है। तातै मैं ऐसे मानूं हूं, जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छुड़ाया है। सन्त पुरुष एक परम निश्चयहीकों भले प्रकार निष्कम्प अंगीकारकरि शुद्ध ज्ञानघनरूप निजमहिमाविषैं स्थिति क्यों न करैं हैं।

भावार्थ—यहाँ व्यवहारका तो त्याग कराया, तातै निश्चयकौं अंगीकारकरि निजमहिमारूप प्रवर्त्तना युक्त है। बहुरि षट्पाहुड़विषै कह्या है—

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जागदे सकज्जम्मि।
जो जागदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे ॥१॥

याका अर्थ—जो व्यवहारविषै सूता है सो जोगी अपने कार्यविषै जागै है। बहुरि जो व्यवहारविषै जागै है सो अपने कार्यविषै सूता है। तातै व्यवहारनयका श्रद्धान छोड़ि निश्चयनयका श्रद्धान करना योग्य है। व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्यको वा तिनके भावनिको वा कारण कार्यादिककौं काहूकौं काहूविषै मिलाय निरूपण करै है। सो ऐसे ही श्रद्धानतै मिथ्यात्व है तातै याका त्याग करना। बहुरि निश्चयनय तिनही कों यथावत् निरूपै है, काहूकों काहूविषै न मिलावै है। सो ऐसेही श्रद्धानतै सम्यक्त्व हो है तातै याका श्रद्धान करना।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसै है तो जिनमार्गविषै दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है सो कैसे ?

ताका समाधान—जिनमार्गविषै कही तो निश्चयनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताकौं तो 'सत्यार्थ ऐसै ही है' ऐसा जानना। बहुरि कही व्यवहारनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताको 'ऐसै है नाही, निमित्तादि अपेक्षा उपचार किया है' ऐसा जानना। इस प्रकार जाननें का नाम ही दोऊ नयनिका ग्रहण है। बहुरि दोऊ नयनिके व्याख्यानकों समान सत्यार्थ जानि ऐसै भी है, ऐसै भी है—ऐसा भ्रमरूप प्रवर्त्तनेकरि तो दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है नाहीं।

बहुरि प्रश्न—जो व्यवहारनय असत्यार्थ है तो ताका उपदेश जिनमार्गविषैं काहेकों दिया ? एक निश्चयनयहीका निरूपण करना था।

ताका समाधान—ऐसा ही तर्क समयसारविषै किया है। तहाँ यह उत्तर दिया है—

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।

तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ।। गाथा ८ ।।

याका अर्थ—जैसें अनार्य जो म्लेक्ष सो ताहिकों म्लेक्षभाषा विना अर्थ ग्रहण करावनेकों समर्थ न हूजे। तैसे व्यवहार बिना परमार्थका उपदेश अशक्य है। तातैं व्यवहारका उपदेश है। बहुरि इसही सूत्रकी व्याख्याविषैं ऐसा कह्या है—'**व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्य**.'। याका अर्थ—यहु निश्चयके अंगीकार करावनेको व्यवहार करि उपदेश दीजिए है। बहुरि व्यवहारनय है सो अंगीकार करने योग्य नाही।

यहाँ प्रश्न—व्यवहारविना निश्चय का उपदेश कैसें न होय। बहुरि व्यवहारनय कैसे अगीकार न करना, सो कहो ?

ताका समाधान—निश्चयनयकरि तो आत्मा परद्रव्यनितै भिन्न स्वभावनितै अभिन्न स्वयंसिद्ध वस्तु है। ताकों जे न पहिचानें, तिनकों ऐसे ही कह्या करिए तो वह समझै नाही। तब उनकों व्यवहारनयकरि शरीरादिक परद्रव्यनिकी सापेक्षकरि नर नारक पृथ्वीकायादिरूप जीवके विशेष किए। तब मनुष्यजीव हैं, नारकी जीव हैं, इत्यादि प्रकार लिए वाकैं जीवकी पहिचान भई। अथवा अभेदवस्तुविषै भेद

उपजाय ज्ञान दर्शनादि गुणपर्यायरूप जीवके विशेष किए, तब जानने-वाला जीव है, देखनेवाला जीव है, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचान भई। बहुरि निश्चयकरि वीतरागभाव मोक्षमार्ग है। ताकों जे न पहिचानें, तिनिको ऐसें ही कह्या करिए, तो वे समझें नाहीं। तब उनकों व्यवहारनयकरि तत्वश्रद्धानज्ञानपूर्वक पर द्रव्यका निमित्त मेटनेका सापेक्षकरि व्रत शील सयमादिकरूप वीतराग भावके विशेष दिखाए, तब वाकं वीतरागभावकी पहिचान भई। याही प्रकार अन्यत्र भी व्यवहारविना निश्चय के उपदेशका न होना जानना। बहुरि यहाँ व्यवहारकरि नर नरकादि पर्यायहीकों जीव कह्या, सो पर्यायहीकों जीव न मानि लेना। पर्याय तो जीव पुद्गलका सयोगरूप है। तहां निश्चयकरि जीवद्रव्य जुदा है, ताहीकों जीव मानना। जीवका संयोगतै शरीरादिककों भी उपचारकरि जीव कह्या, सो कहनें मात्र ही है। परमार्थतै शरीरादिक जीव होते नाहीं, ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि अभेद आत्माविषें ज्ञानदर्शनादि भेद किए, सो तिनकों भेदरूप ही न मानि लेनें। भेद तो समझावने के अर्थ किए हैं। निश्चयकरि आत्मा अभेद ही है, तिसहीकों जीव वस्तु मानना। सज्ञा संख्यादिकरि भेद कहे, सो कहनें मात्र ही हैं, परमार्थतै जुदे जुदे हैं नाही। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि परद्रव्य का निमित्त मिटनेकी अपेक्षा व्रतशीलसंयमादिककों मोक्षमार्ग कह्या, सो इनहीकों मोक्षमार्ग न मानि लेना। जातैं परद्रव्यका ग्रहण त्याग आत्माके होय, तो आत्मा परद्रव्यका कर्त्ता हर्त्ता होय। सो कोई द्रव्य कोई द्रव्यके आधीन है नाहीं। तातैं आत्मा अपने भाव

रागादिक हैं, तिनकों छोडि वीतरागी हो है। सो निश्चयकरि वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। वीतराग भावनिकै अर व्रतादिकानकै कदाचित् कार्य कारणपनो है। तातैं व्रतादिककों मोक्षमार्ग कहे, सो कहनेमात्र ही हैं। परमार्थतै बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नाहीं, ऐसा ही श्रद्धान करना। ऐसे ही अन्यत्र भी व्यवहारनयका अंगीकार न करना जानि लेना।

यहाँ प्रश्न—जो व्यवहारनय परकों उपदेशविषै ही कार्यकारी है कि अपना भी प्रयोजन साधै है?

ताका समाधान—आप भी यावत् निश्चयनयकरि प्ररूपित वस्तुको न पहिचानै, तावत् व्यवहार मार्गकरि वस्तुका निश्चय करै। तातैं नीचली दशाविषै आपकों भी व्यवहारनय कार्यकारी है। परन्तु व्यवहारकों उपचार मात्र मानि वाके द्वारे वस्तुका ठीक (निश्चय) करै, तौ तो कार्यकारी होय। बहुरि जो निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानि वस्तु ऐसे ही है, ऐसा श्रद्धान करै तो उलटा अकार्यकारी होय जाय। सो ही पुरुषार्थसिद्धयुपायविषै कह्या है—

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देषयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति॥६॥
माणवक एव सिंहो यता भवत्यनवगीतसिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य॥७॥

इनका अर्थ—मुनिराज अज्ञानीके समझावनेकों असत्यार्थ जो व्यवहारनय ताकों उपदेशै हैं। जो केवल व्यवहारहीकों जानै है, ताकों उपदेश ही देना योग्य नाहीं है। बहुरि जैसैं जो सांचा सिंहकों न

जानै, ताकै बिलाव ही सिंह है। तैसे जो निश्चयकों न जानै, ताकै व्यवहार ही निश्चयपणाकों प्राप्त हो है।

इहाँ कोई निर्विचार पुरुष ऐसें कहै—तुम व्यवहारकों असत्यार्थ हेय कहो हो तो हम व्रत शील सयमादि व्यवहार कार्य काहेकों करें—सर्व कों छोडि देवेंगे। ताकों कहिए है—किछू व्रत शील संयमादिक का नाम व्यवहार नाही है। इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है सो छोडि दे। बहुरी ऐसा श्रद्धानकरि जो इनकों तो बाह्य सहकारी जानि उपचारतै मोक्षमार्ग कह्या है। ए तो परद्रव्याश्रित हैं। बहुरि सांचा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है सो स्वद्रव्याश्रित है। ऐसै व्यवहारकों असत्यार्थ हेय जानना। व्रतादिककों छोड़नेतै तो व्यवहारका हेयपना होता है नाहीं। बहुरि हम पूछे हैं—व्रतादिककों छोड़ि कहा करेगा? जो हिंसादिरूप प्रवर्त्तेगा तो तहाँ तो मोक्षमार्ग का उपचार भी सम्भवै नाही। तहाँ प्रवर्त्तनेतैं कहा भला होयगा, नरकादिक पावोगे। तातै ऐसें करना तो निर्विचारपना है। बहुरि व्रतादिकरूप परिणति मेटि केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बनै तो भले ही है। सो नीचली दशाविषै होय सकै नाही। तातै व्रतादिसाधन छोड़ि स्वच्छन्द होना योग्य नाहीं। या प्रकार श्रद्धानविषै निश्चयकों, प्रवृत्तिविषै व्यवहारकों उपादेय मानना सो भी मिथ्याभाव ही है।

बहुरि यहु जीव दोऊ नयनिका अंगीकार करनेके अर्थि कदाचित् आपकों शुद्ध सिद्धसमान रागादिरहित केवलज्ञानादिसहित आत्मा अनुभवै है, ध्यानमुद्रा धारि ऐसे विचारविषै लागै है। सो ऐसा आप नाहीं परन्तु भ्रमतैं निश्चय करि मैं ऐसा ही हूँ, ऐसा मानि सन्तुष्ट हो

है। कदाचित् वचनद्वारि निरुपण ऐसे ही करै है। सो निश्चय तो यथावत् वस्तुको प्ररूपै, प्रत्यक्ष आप जैसा नाहीं तैसा आपको मानना, सो निश्चय नाम कैसे पावै। जैसा केवल निश्चयाभासवाला जीवकै पूर्वे अयथार्थपना कह्या था, तैसे ही याकै जानना।

अथवा यह ऐसे मानै है, जो इस नयकरि आत्मा ऐसा है, इस नयकरि ऐसा है। सो आत्मा तो जैसा है तैसा ही है, तिसविषै नयकरि निरूपण करने का जो अभिप्राय है, ताकों न पहिचानै है। जैसे आत्मा निश्चयकरि तो सिद्धसमान केवलज्ञानादिसहित द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्मरहित है, व्यवहारनय करि ससारी मतिज्ञानादिसहित वा द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्मसहित है—ऐसा मानै है। सो एक आत्माके ऐसे दोय वरूप तो होय नाही। जिस भावहीका सहितपना तिस भावहीका रहितपना एकवस्तुविषै कैसे सम्भवै ? तातै ऐसा मानना भ्रम है। तो कैसे है—जैसे राजा रक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं तैसे सिद्ध ससारी जीवत्वपनेकी अपेक्षा समान कहे हैं, केवलज्ञानादि अपेक्षा समानता मानिए सो है नाही। ससारीकै निश्चयकरि मतिज्ञानादिक ही हैं, सिद्धकै केवलज्ञान है। इतना विशेष है–ससारीकै मतिज्ञानादिक कर्म का निमित्ततै हैं तातै स्वभावअपेक्षा ससारीकै केवलज्ञानकी शक्ति कहिए तो दोष नाही। जैसे रक मनुष्यकै राजा होनेकी शक्ति पाईए, तैसे यहु शक्ति जाननी। बहुरि नोकर्म द्रव्यकर्म पुद्गलकरि निपजे हैं, तातै निश्चयकरि ससारीकै भी इनका भिन्नपना है। परन्तु सिद्धवत् इनका कारण कार्य अपेक्षा सम्बन्ध भी न मानै तो भ्रम ही है। बहुरि भावकम आत्माका भाव है, सो निश्चयकरि आत्माहीका है। कर्मके निमित्त-

तै हो है, तातैंव्यवहारकरि कर्म का कहिए है । बहुरि सिद्धवत् ससारीकै भी रागादिक न मानना, कर्महीका मानना—यहु भ्रम है। याही प्रकारकरि नयकरि एक ही वस्तुकों एक भावअपेक्षा वैसा भी मानना, वैसा भी मानना, सो तो मिथ्याबुद्धि है। बहुरि जुदे जुदे भावनिकी अपेक्षा नयनिकी प्ररूपणा है, ऐसै मानि यथासभव वस्तुकों मानना सो साँचा श्रद्धान है। तातैं मिथ्यादृष्टी अनेकान्तरूप वस्तुकों मानै परन्तु यथार्थ भावकों पहिचानि मानि सकै नाहीं, ऐसा जानना ।

बहुरि इस जीवकै व्रत शील संयमादिकका अंगीकार पाईए है, सो व्यवहारकरि 'ए भी मोक्ष के कारण हैं' ऐसा मानि तिनकों उपादेय मानै है। सो जैसे केवल व्यवहारावलम्बी जीवकै पूर्वे अयथार्थपना कह्या था, तैसे ही याकै भी अयथार्थपना जानना । बहुरि यहु ऐसैं भी मानै है—जो यथा योग्य व्रतादि क्रिया तो करनी योग्य है परन्तु इनविषै ममत्व न करना। सो जाका आप कर्त्ता होय, तिसविषैं ममत्व कैसे न करिए। आप कर्त्ता न है, तो मुझकों करनी योग्य है ऐसा भाव कैसे किया। अर जो कर्त्ता है, तो वह अपना कर्म भया, तब कर्त्ताकर्म सम्बन्ध स्वयमेव ही भया। सो ऐसी मान्यता तो भ्रम है। तो कैसे है—बाह्य व्रतादिक हैं सो तो शरीरादि परद्रव्यके आश्रय हैं। परद्रव्यका आप कर्त्ता है नाहीं, तातै तिसविषैकर्तृत्वबुद्धि भी न करनी अर तहाँ ममत्व भी न करना। बहुरि व्रतादिकविषै ग्रहण त्यागरूप अपना शुभोपयोग होय सो अपने आश्रय है। ताका आप कर्त्ता है, तातै तिसविषै कर्तृत्वबुद्धि भी माननी अर तहाँ ममत्व भी करना। बहुरि

इस शुभोपयोगकों बंधकाही कारण जानना, मोक्षका कारण न जानना, जातैं बंध अर मोक्षकै तो प्रतिपक्षीपना है। तातै एक ही भाव पुण्य-बंध को भी कारण होय अर मोक्षकों भी कारण होय, ऐसा मानना भ्रम है। तातै व्रत अव्रत दोऊ विकल्परहित जहाँ परद्रव्य के ग्रहण त्यागका किछू प्रयोजन नाही, ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग सोई मोक्ष-मार्ग है। बहुरि नीचली दशाविषै केई जीवनिकै शुभोपयोग अर शुद्धो-पयोगका युक्तपना पाईए है। तातै उपचारकरि व्रतादिक शुभोपयोगको मोक्षमार्ग कह्या है। वस्तुविचारता शुभोपयोग मोक्षका घातक ही है। जातैं बंधकों कारण सोई मोक्षका घातक है, ऐसा श्रद्धान करना। बहुरि शुद्धोपयोगहीकों उपादेय मानि ताका उपाय करना, शुभोपयोग अशुभपयोग को हेय जानि तिनके त्यागका उपाय करना। जहाँ शुद्धो-पयोग न होय सकै, तहाँ अशुभपयोगकों छोडि शुभही विषै प्रवर्त्तना। जातै शुभोपयोगतै अशुभोपयोगविषै अशुद्धता की अधिकता है। बहुरि शुद्धोपयोग होय, तब तो परद्रव्यका साक्षीभूत ही रहै है। तहाँ तो किछू परद्रव्य का प्रयोजन ही नाही। बहुरि शुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य व्रता-दिककी प्रवृत्ति होय अर अशुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य अव्रतादिककी प्रवृत्ति होय। जातै अशुद्धोपयोगकै अर परद्रव्यकी प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पाईए है। बहुरि पहलै अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग होइ, पीछै शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग होइ। ऐसी क्रमपरिपाटी है।

बहुरि कोई ऐसै मानै कि शुभोपयोग है सो शुद्धोपयोगको कारण है। सो जैसे अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग हो है, तैसैं शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग हो है—ऐसैं ही कार्यकारणपना होय तो

शुभोपयोगका कारण अशुभोपयोग ठहरै। अथवा द्रव्यलिंगीकै शुभोपयोग तो उत्कृष्ट हो है, शुद्धोपयोग होता ही नाही। तातै परमार्थतै इन कै कारण कार्यपना है नाही। जैसे रोगीकै बहुत रोग था, पीछें स्तोक रोग भया, तो वह स्तोक रोग तो निरोग होनेका कारण है नाहीं। इतना है, स्तोक रोग रहें निरोग होने का उपाय करै तो होइ जाय। बहुरि जो स्तोक रोगहीकों भला जानि ताका राखने का यत्न करै तो निरोग कैसे होय। तैसे कषायीकै तीव्रकषायरूप अशुभोपयोग था, पीछें मदकषायरूप शुभोपयोग भया, तो वह शुभोपयोग तो नि.कषाय शुद्धोपयोग होनेको कारण है नाही। इतना है—शुभोपयोग भए शुद्धोपयोग का यत्न करै तो होय जाय। बहुरि जो शुभोपयोगहीकों भला जानि ताका साधन किया करै तो शुद्धोपयोग कैसे होय। तातै मिथ्यादृष्टी का शुभोपयोग तो शुद्धोपयोगको कारण है नाही। सम्यग्दृष्टीकै शुभोपयोग भए निकट शुद्धोपयोग प्राप्त होय, ऐसा मुख्यपनाकरि कही शुभोपयोगकों शुद्धोपयोगका कारण भी कहिए है, ऐसा जानना।

बहुरि यह जीव आपकों निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्गका साधक मानै है। तहाँ पूर्वोक्त प्रकार आत्माकों शुद्ध मान्या सो तो सम्यग्दर्शन भया। तैसैही जान्या सो सम्यग्ज्ञान भया। तैसैही विचारविषै प्रवर्त्या सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसै तो आपकै निश्चय रत्नत्रय भया मानै। सो मैं प्रत्यक्ष अशुद्ध सो शुद्ध कैसे मानू, जानू, विचारु हूँ इत्यादि विवेकरहित भ्रमतै सन्तुष्ट हो है। बहुरि अरहंतादि बिना अन्य देवादिककों न मानै है वा जैन शास्त्र अनुसार जीवादिके भेद सीखि लिए हैं तिनहीकों मानै है, औरकों न मानै सो तो सम्यग्दर्शन

भया। बहुरि जैनशास्त्रनिका अभ्यास विषै बहुत प्रवर्त्तै है सो सम्यग्ज्ञान भया। बहुरि व्रतादिरूप क्रियानिविषै प्रवर्त्तै है सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसे आपकै व्यवहार रत्नत्रय भया मानै। सो व्यवहार तो उपचारका नाम है। सो उपचार भी तो तब बनै जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयका कारणादिक होय। जैसै निश्चय रत्नत्रय सधै तैसे इनको साधै तो व्यवहारपनो भी सम्भवै। सो याकै तो सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयकी पहिचान ही भई नाही। यहु ऐसे कैसै साधि सकै। आज्ञा अनुसारी हुवा देख्याँदेखी साधन करै है। तातै याकै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया। आगै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गका निरूपण करेंगे, ताका साधन भए ही मोक्षमार्ग होगा।

ऐसें यहु जीव निश्चयाभासको मानै जानै है परन्तु व्यवहार साधनको भी भला जानै है, तातै स्वछन्द होय अशुभरूप न प्रवर्त्तै है। व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्त्तै है, तातैं अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त पदको पावै है। बहुरि जो निश्चयाभासकी प्रबलतातै अशुभरूप प्रवृत्ति होय जाय तो कुगतिविषै भी गमन होय, परिणामनिके अनुसारि फल पावै है परन्तु संसारका ही भोक्ता रहै है। साचा मोक्षमार्ग पाए बिना सिद्धपदको न पावै है। ऐसै निश्चयाभास व्यवहाराभास दोऊनिके अवलम्बी मिथ्यादृष्टि तिनिका निरूपण किया।

अब सम्यक्त्वके सन्मुख जे मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण कीजिए है—

सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टि का निरूपण

कोई मदकषायादिकका कारण पाय ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम भया, तातै तत्वविचार करनेकी शक्ति भई अर मोह मद भया, तातै तत्व विचारविषै उद्यम भया। बहुरि बाह्य निमित्त देव, गुरु, शास्त्रादिकका भया तिनकरि साचा उपदेशका लाभ भया। तहाँ अपने प्रयोजनभूत मोक्षमार्गका वा देवगुरुधर्मादिकका वा जीवादि तत्वनिका वा आपा परका वा आपकों अहितकारी हितकारी भावनिका इत्यादिकका उपदेशतै सावधान होय ऐसा विचार किया— अहो मुझकों तो इन बातनिकी खबरि ही नाही, मैं भ्रमते भूलि पाया पर्याय ही विषै तन्मय भया। सो इस पर्यायकी तो थोरे ही कालकी स्थिति है। बहुरि यहाँ मोको सर्व निमित्त मिले हैं तातै मोकों इन बातनिका ठीक करना। जातै इनविषै तो मेरा ही प्रयोजन भासै है। ऐसै विचारि जो उपदेश सुन्या ताका निर्द्धार करनेका उद्यम किया। तहाँ उद्देश, लक्षणनिर्द्देश, परीक्षा द्वारकरि तिनका निर्द्धार होय। तातै पहले तो तिनके नाम सीखै सो उद्देश भया। बहुरि तिनके लक्षण जानै। बहुरि ऐसै सम्भवै है कि नाही, ऐसा विचारलिए परीक्षा करने लगै। तहाँ नाम सीखि लेना अर लक्षण जानि लेना ये दोऊ तो उपदेशके अनुसार हो हैं। जैसै उपदेश दिया तैसै याद करि लेना। बहुरि परीक्षा करनेविषै अपना विवेक चाहिए है। सो विवेककरि एकान्त अपने उपयोगविषै विचारै, जैसै उपदेश दिया तैसै ही है कि अन्यथा है। तहाँ अनुमानादि प्रमाणकरि ठीक करै वा उपदेश तो ऐसैं है अर ऐसै न मानिए तो ऐसै होय। सो इनविषै प्रबल युक्ति कौन है अर निर्बल युक्ति कौन है। जो प्रबल भासै, ताको साच जानै। बहुरि

जो उपदेशतें अन्यथा सांच भासै वा सन्देह रहै, निर्द्धार न होय, तो बहुरि विशेष ज्ञानी होय तिनकों पूछै । बहुरि वह उत्तर दे, ताको विचारै । ऐसे ही यावत् निर्द्धार न होय, तावत् प्रश्न उत्तर करै । अथवा समानबुद्धिके धारक होय, तिनकों अपना विचार जैसा भया होय तैसा कहै । प्रश्न उत्तरकरि परस्पर चर्चा करै । बहुरि जो प्रश्नोत्तरविषै निरूपण भया होय, ताकों एकान्तविषै विचारै । याही प्रकार अपने अन्तरगविषै जैसें उपदेश दिया था, तैसें ही निर्णय होय भाव न भासै, तावत् ऐसें ही उद्यम किया करै। बहुरि अन्यमतीनिकरि कल्पित तत्वनिका उपदेश दिया है, ताकरि जैन उपदेश अन्यथा भासै वा सन्देह होय तो भी पूर्वोक्त प्रकारकरि उद्यम करै। ऐसें उद्यम किए जैसें जिनदेवका उपदेश है तैसें ही साच है, मुझको भी ऐसें ही भासै है, ऐसा निर्णय होय । जातें जिनदेव अन्यथावादी हैं नाहीं ।

यहाँ कोऊ कहै—जिनदेव जो अन्यथावादी नाही हैं तो जैसे उनका उपदेश है तैसें श्रद्धान करि लीजिए, परीक्षा काहेकों कीजिए ?

ताका समाधान—परीक्षा किए बिना यहु तो मानना होय, जो जिनदेव ऐसें कह्या है सो सत्य है परन्तु उनका भाव आपकों भासै नाही । बहुरि भाव भासे बिना निर्मल श्रद्धान न होय । जाकी काहू का वचनही करि प्रतीति करिए, ताकी अन्यका वचनकरि अन्यथा भी प्रतीति होय जाय, तातें शक्तिअपेक्षा वचनकरि कीन्ही प्रतीति अप्रतीतिवत् है । बहुरि जाका भाव भास्या होय, ताको अनेक प्रकारकरि भी अन्यथा न मानै । तातें भाव भासें प्रतीति होय सोई साची प्रतीति है । बहुरि जो कहोगे, पुरुषप्रमाणतें वचनप्रमाण कीजिए है, तो पुरुष-

की भी प्रमाणता स्वयमेव तो न होय। वाके केई वचननिकी परीक्षा पहलें करि लीजिए, तब पुरुषकी प्रमाणता होय।

यहाँ प्रश्न—उपदेश तो अनेक प्रकार, किस-किसकी परीक्षा करिए?

ताका समाधान—उपदेशविषै केई उपादेय केई हेय केई ज्ञेय तत्व निरूपिए हैं। तहाँ उपादेय हेय तत्वनिकी तो परीक्षा करि लेना। जातै इन विषै अन्यथापनो भए अपना बुरा हो है। उपादेयकों हेय मानि लै तो बुरा होय, हेयको उपादेय मानि लै तो बुरा होय।

बहुरि जो कहैगा—आप परीक्षा न करी अर जिनवचनहीतै उपादेयकों उपादय जानै, हेयकों हेय जानै तो यामें कैसै बुरा होय?

ताका समाधान—अर्थका भाव भासे बिना वचनका अभिप्राय न पहिचानै। यहु तो मानि ले, जो मैं जिनवचन अनुसारि मानू हूँ परन्तु भाव भासे बिना अन्यथापनो होय जाय। लोकविषै भी किंकर कों किसी कार्यको भेजिए सो वह उस कार्यका भाव जानै तो कार्यकों सुधारै, जो भाव न भासै तो कही चूकि ही जाय। तातै भाव भासनेके अर्थि हेय उपादेय तत्वनिकी परीक्षा अवश्य करनी।

बहुरि वह कहै है—जो परीक्षा अन्यथा होय जाय तो कहा करिए?

ताका समाधान—जिन वचन अर अपनी परीक्षा इनकी समानता होय, तब तो जानिए सत्य परीक्षा भई। यावत् ऐसें न होय तावत् जैसे कोई लेखा करै है, ताकी विधि न मिलै तावत् अपनी चूककों

ढूंढै। तैसें यह अपनी परीक्षा विषै विचार किया करै। बहुरि जो ज्ञेयतत्व हैं, तिनकी परीक्षा होय सकै तो परीक्षा करै। नाहीं यह अनुमान करै, जो हेय उपादेय तत्व ही अन्यथा न कहै तो ज्ञेयतत्व अन्यथा किस अर्थि कहै। जैसें कोऊ प्रयोजनरूप कार्यनिविषै झूठ न बोलै सो अप्रयोजन झूठ काहेको बोलै। तातैं ज्ञेयतत्वनिका परीक्षाकरि भी वा आज्ञाकरि स्वरूप जानै है। तिनका यथार्थ भाव न भासै तो भी दोष नाही। याहीतैं जैनशास्त्रनिविषै तत्वादिकका निरूपण किया, तहाँतो हेतु युक्ति आदिकरि जैसे याकै अनुमानादिकरि प्रतीति आवै, तैसै कथन किया। बहुरि त्रिलोक, गुणस्थान, मार्गणा, पुराणादिकका कथन आज्ञा अनुसारि किया। तातै हेयोपादेय तत्व-निकी परीक्षा करनी योग्य है। तहाँ जीवादिक द्रव्य वा तत्व तिनकों पहचानना। बहुरि तहाँ आपा पर को पहचानना। बहुरि त्यागने योग्य मिथ्यात्व रागादिक अर ग्रहणे योग्य सम्यग्दर्शनादिक तिनका स्वरूप पहिचानना। बहुरि निमित्त नैमित्तिकादिक जैसे हैं, तैसै पहिचानना। इत्यादि मोक्षमार्गविषै जिनके जाने प्रवृत्ति होय, तिनको अवश्य जानने। सो इनकीतो परीक्षा करनी। सामान्यपने किसी हेतु युक्ति करि इनको जाननें वा प्रमाण नयकरि जानने वा निदश स्वामित्वादि-करि वा सत् सख्यादि करि इनका विशेष जानना। जैसी बुद्धि होय जैसा निमित्त बनै तैसे इनको सामान्य विशेषरूप पहचाननें। बहुरि इस जाननेंका उपकारी गुणस्थान, मार्गणादिक वा पुराणादिक वा व्रता-दिक क्रियादिकका भी जानना योग्य है। यहाँ परीक्षा होय सकै तिनकी परीक्षा करनी, न होय सकै ताका आज्ञा अनुसारि जानपना करना।

ऐसे इस जानने के अर्थ कबहू आपही विचार करै है, कबहू शास्त्र बाँचै है, कबहू सुनै है, कबहू अभ्यास करै है, कबहू प्रश्नोत्तर करै है इत्यादि रूप प्रवर्त्तै है। अपना कार्य करनेका जाकै हर्ष बहुत है, तातैं अतरग प्रीतितैं ताका साधन करै। या प्रकार साधन करतां यावत् साचा तत्वश्रद्धान न होय, 'यहु ऐसै ही है' ऐसी प्रतीति लिए जीवादि तत्वनिका स्वरूप आपको न भासैं, जैसे पर्यायविषै अहंबुद्धि है तैसै केवल आत्मविषै अहंबुद्धि न आवै, हित अहितरूप अपने भावनिको न पहिचानै, तावत् सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टी है। यह जीव थोरे ही कालमे सम्यक्तकों प्राप्त होगा। इस ही भवमें वा अन्य पर्यायविषै सम्यक्तकों पावेगा। इस भव में अभ्यासकरि परलोविषै तिर्यचादि गतिविषै भी जाय तो तहाँ सस्कारके बलतैं देव गुरु शास्त्रका निमित्त विना भी सम्यक्त होय जाय। जातैं ऐसे अभ्यासके बलतैं मिथ्यात्वकर्मका अनुभाग हीन हो है। जहाँ वाका उदय न होय, तहाँ ही सम्यक्त होय जाय। मूलकारण यहु ही है। देवादिकका तो बाह्य निमित्त है सो मुख्यताकरि तो इनके निमित्ताहीतैं सम्यक्त हो है। तारतम्यतैं पूर्व अभ्यास सस्कारतैं वर्तमान इनका निमित्त न होय तो भी सम्यक्त होय सकै है। सिद्धान्तविषैऐसा सूत्र है—**"तन्निसगादधिगमाद्वा"**

(तत्वा० सू० १,३)

याका अर्थ यहु—सो सम्यग्दर्शन निसर्ग वा अधिगमतैं हो है। तहाँ देवादिक बाह्य निमित्त बिना होय, सो निसर्गतैं भया कहिए। देवादिकका निमित्ततैं होय सो अधिगमतैं भया कहिए। देखो तत्वविचारकी महिमा, तत्वविचाररहित देवादिककी प्रतीति करै, बहुत

शास्त्र अभ्यासै, व्रतादिक पालै, तपश्चरणादि करै, ताकै तो सम्यक्त होनेका अधिकार नाही। अर तत्वविचारवाला इन विना भी सम्यक्त का अधिकारी हो है। बहुरि कोई जीवकै तत्वविचारके होने पहले किसी कारण पाय देवादिककी प्रतीति होय वा व्रत तपका अगीकार होय, पीछै तत्वविचार करै। परन्तु सम्यक्तका अधिकारी तत्वविचार भए ही हो है।

बहुरि काहूकै तत्वविचार भए पीछे तत्वप्रतीति न होनेते सम्यक्त तो न भया अर व्यवहार धर्मकी प्रतीति रुचि होय गई, तातै देवादिक की प्रतीति करै है वा व्रत तपकों अंगीकार करै है। काहूकै देवादिककी प्रतीति अर सम्यक्त युगपत होय अर व्रत तप सम्यक्तकी साथ भी होय अर पहले पीछे भी होय, देवादिककी प्रतीतिका तो नियम है। इस विना सम्यक्त न होय। व्रतादिकका नियम है नाही। घने जीव तो पहल सम्यक्त होय पीछे ही व्रतादिकको धारै हैं। काहूकै युगपत भी होय जाय है। ऐसै यहु तत्वविचारवाला जीव सम्यक्तका अधिकारी है परन्तु याकै सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम नाही। जातै शास्त्रविषै सम्यक्त होनेते पहले पंच लब्धिका होना कह्या है—

पंच लब्धियोंका स्वरूप

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण। तहाँ जिसको होते सते तत्वविचार होय सकै, ऐसा ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम होय। उदयकालको प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकनिके निषेकनिका उदयका अभाव सो क्षय अर अनागतकालविषै उदय आवने योग्य तिनही का सत्तारूप रहना सो उपशम, ऐसी देशघाती स्पर्द्धकनिका

उदय सहित कर्मनिकी अवस्था ताका नाम क्षयोपशम है। ताको प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि है। बहुरि मोहका मद उदय आवनेतें मदकषाय रूप भाव होय जहाँ तत्व विचार होय सकै सो विशुद्धलब्धि है। बहुरि जिनदेवका उपदेश्या तत्वका धारण होय, विचार होय सो देशनालब्धि है। जहाँ नरकादिविषै उपदेशका निमित्त न होय, तहाँ पूर्वसंस्कारते होय। बहुरि कर्मनिकी पूर्व सत्ता (घटकरि) अत कोटाकोटी सागरप्रमाण रहि जाय अर नवीन बध अतःकोटाकोटी प्रमाण ताके सख्यातवे भाग मात्र होय, सो भी तिस लब्धि कालते लगाय क्रमतें घटता होय, केतीक पापप्रकृतिनिका बध क्रमते मिटता जाय, इत्यादि योग्य अवस्थाका होना सो प्रायोग्यलब्धि है। सो ए च्यारों लब्धि भव्य या अभव्यकं होय हैं। इन च्यार लब्धि भए पीछें सम्यक्त होय तो होय, न होय तो नाही भी होय। ऐसे 'लब्धिसार' विषै कह्या है[1]। तातें तिस तत्व विचारवालाकै सम्यक्त्व होनेंका नियम नाही। जैसे काहूकों हितकी शिक्षा दई, ताको वह जानि विचार करै, यह सीख दई सो कैसे है ? पीछे विचारना वाकै ऐसें ही है, ऐसी उस सीखि की प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषै लागि तिस सीखका निर्द्धार न करै, तो प्रतीति नाही भी होय। तैसे श्रीगुरु तत्वोपदेश दिया, ताको जानि विचार करै, यहु उपदेश दिया सो कैसे है। पीछे विचार करनेते वाकै 'ऐसें ही है' ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषै लागि तिस उपदेशका निर्द्धार न करै तो प्रतीति नाही भी होय सो मूल कारण मिथ्यात्व कर्म है, याका उदय मिटै तो प्रतीति होई जाय, न मिटै तो नाहीं होय, ऐसा नियम है। याका उद्यम तो तत्वविचार करने मात्र ही है।

1 लब्धि० ३

बहुरि पाँचवीं करणलब्धि भए सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम है। सो जाकै पूर्वे कही थीं च्यारि लब्धि ते तो भई होंय अर अंतर्मुहूर्त्त पीछें जाकै सम्यक्त होना होय, तिसही जीवकै करणलब्धि हो है। सो इस 'करणलब्धिवालाकै बुद्धिपूर्वक तो इतनाही उद्यम हो है—तिस तत्व-विचारविषै उपयोगकों तद्रूप होय लगावै, ताकरि समय समय परिणाम निर्मल होते जाय हैं। जसे काहूकै सीखका विचार ऐसा निर्मल होने लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताकी प्रतीत होय जासी। तैसें तत्वउपदेश का विचार ऐसा निर्मल होने लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताका श्रद्धान होसी। बहुरि इन परिणामनिका तारतम्य केवलज्ञानकरि देख्या, ताका निरूपण करणानुयोगविषै किया है। सो इस करणलब्धिके तीन भेद हैं—अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। इनका विशेष व्याख्यान तो लब्धिसार शास्त्रविषै किया है, तिसतें जानना। यहाँ सक्षेपसों कहिए है—

त्रिकालवर्त्ती सर्व करणलब्धिवाले जीव तिनके परिणामनिकी अपेक्षा ए तीन नाम हैं। तहाँ करण नाम तो परिणामका है। बहुरि जहाँ पहले पिछले समयनिके परिणाम समान होय सो अधःकरण है[1]। जैसे कोई जीवका परिणाम तिस करणके पहिले समय स्तोक विशुद्धता लिए भया, पीछे समय समय अंनतगुणी विशुद्धताकरि बधते भए। बहुरि वाकै जैसे द्वितीय तृतीयादि समयनिविषै परिणाम होय, तैसे केई अन्य जीवनिकै प्रथम समयविषै ही होंय। ताकै तिसतें समय समय अनन्तगुणी विशुद्धताकरि बधते होंय। ऐसे अधःप्रवृत्तिकरण जानना।

1 लब्धि० ३५

बहुरि जिसविषै पहले पिछले समयनिके परिणाम समान न होंय, अपूर्व ही होंय, सो अपूर्वकरण है। जैसे तिस करणके परिणाम जैसे पहले समय होंय तैसे कोई ही जीवकै द्वितीयादि समयनिविषैं न होंय, बधते ही होंय। बहुरि इहाँ अधः करणवत् जिन जीवनिकै करणका पहला समय ही होय, तिनि अनेक जीवनिकै परस्पर परिणाम समान भी होंय अर अधिक हीन विशुद्धता लिए भी होंय। परन्तु यहाँ इतना विशेष भया, जो इसकी उत्कृष्टताते भी द्वितीयादि समयवालेका जघन्य परिणाम भी अनन्तगुणी विशुद्धता लिए ही होय। ऐसें ही जिनकोंकरण माँडे द्वितीयादि समय भया होय, तिनकै तिस समयवालों कै तो परस्पर परिणाम समान वा असमान होंय परन्तु ऊपरले समयवालोंकै तिस समय समान सर्वथा न होंय, अपूर्व ही होंय। ऐसे अपूर्वकरण [1] जानना।

बहुरि जिस विषै समान समयवर्ती जीवनिकै परिणाम समान ही होय, निवृत्ति कहिए परस्पर भेद ताकरि रहित होंय। जैसे तिस करणका पहला समयविषै सर्व जीवनिका परिणाम परस्पर समानही होय, ऐसैंही द्वितीयादि समयनिविषै समानता परस्पर जाननी। बहुरि प्रथमादि समयवालोंतें द्वितीयादि समयवालोंकै अनन्तगुणी विशुद्धता लिए होय। ऐसै अनिवृत्तिकरण [2] जानना।

---

1 समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु।
जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहि णत्थि सरिसत्त ।। लब्धि ३६ ।।
तम्हा विदिय करण अपुव्वकरणेत्ति णिद्दिट्ठं ।।लब्धि० ५१ ।।
करण परिणामो अपुव्वाणि च ताणि करणाणि च अपुव्वकरणाणि, असमाणपरिणामा त्ति जं उत्त होदि। धवला, १-९-८-४

2 एगसमए वट्टंताण जीवाण परिणामेहि ण विज्जदे णियट्टी णिव्वित्ती जत्थ ते अणियट्टीपरिणामा। धवला १-९-८-४। एक्कम्हि काल-समये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति। ण णिवट्टंति तहा विय परिणामेहिं मिहो जेहिं ।। गो० जी० ५६ ।।

ऐसै ए तीन करण जानने। तहाँ पहले अंतर्मुहूर्त्त कालपर्यन्त अध:करण होय। तहाँ च्यारि आवश्यक हो हैं। समय समय अनन्तगुणी विशुद्धता होय, बहुरि एक अंतर्मुहूर्त्त करि नवीन बंधकी स्थिति घटती होय सो स्थितिबंधापसरण होय, बहुरि समय समय प्रशस्त प्रकृतिनिका अनन्तगुणा अनुभाग बंधै, बहुरि समय समय अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागबंध अनन्तवें भाग होय; ऐसे च्यारि आवश्यक होंय—तहाँ पीछें अपूर्वकरण होय। ताका काल अध:करणके कालके संख्यातवें भाग है। ताविषै ए आवश्यक और होंय। एक एक अन्तर्मुहूर्त्तकरि सत्ताभूत पूर्वकर्मकी स्थिति थी, ताको घटावै सो स्थितिकाण्डकघात होय। बहुरि तिसतें स्तोक एक एक अन्तर्मुहूर्त्तकरि पूर्वकर्मका अनुभागकों घटावै सो अनुभाग काडक घात होय। बहुरि गुणश्रेणिका कालविषै क्रमतें असंख्यातगुणा प्रमाण लिए कर्म निर्जरने योग्य करिए सो गुणश्रेणीनिर्जरा होय। बहुरि गुणसंक्रमण यहाँ नाहीं हो है। अन्यत्र अपूर्वकरण हो है, तहाँ हो है। ऐसे अपूर्वकरण भए पीछे अनिवृत्तिकरण होय। ताका काल अपूर्वकरणके भी संख्यातवें भाग है। तिसविषै पूर्वोक्त आवश्यकसहित केता काल गए पीछें अन्तरकरण[1] करै है। अनिवृत्तिकरणके काल पीछे उदय आवने योग्य

[1] किमन्तरकरणं णाम ? विवक्खियकम्माणं हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झे अन्तोमुहुत्तमेत्ताणं ट्ठिदीणं परिणामविसेसेण णिसेगाणमभावीकरणं मन्तरकरणमिदि भण्णदे ॥

जय ध० अ० प० ६५३

अर्थ—अन्तरकरण का क्या स्वरूप है ? उत्तर—विवक्षित कर्मोंकी अधस्तन और उपरिम स्थितियो को छोडकर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितियो के निषेकोंका परिणाम विशेष के द्वारा अभाव करने को अन्तरकरण कहते है ।

ऐसें मिथ्यात्वकर्मके मुहूर्त्तमात्र निषेक तिनिका अभाव करै है, तिन परमाणुनिको अन्य स्थितिरूप परिणमावै है। बहुरि अन्तरकरण किये पीछे उपशमकरण करै है। अन्तरकरणकरि अभावरूप किए निषेकनिके ऊपरि जो मिथ्यात्वके निषेक तिनको उदय आवनेको अयोग्य करै है। इत्यादिक क्रियाकरि अनिवृत्तिकरणका अन्तसमयके अनन्तर जिन निषेकनिका अभाव किया था, तिनका उदयकाल आया तब निषेकनि बिना उदय कौनका आवै। तातै मिथ्यात्वका उदय न होनेतै प्रथमोपशम सम्यक्त की प्राप्ति हो है। अनादि मिथ्यादृष्टीकै सम्यक्तमोहनीय, मिश्रमोहनीय की सत्ता नाही है। तातै एक मिथ्यात्वकर्महीको उपशमाय उपशमसम्यग्दृष्टी होय है। बहुरि कोई जीव सम्यक्त पाय पीछे भ्रष्ट हो है, ताकी भी दशा अनादिमिथ्यादृष्टीकी सी होय जाय है।

यहाँ प्रश्न—जो परीक्षाकरि तत्वश्रद्धान किया था, ताका अभाव कैसे होय ?

ताका समाधान—जैसे किसी पुरुषकों शिक्षा दई, ताकी परीक्षा करि वाकै ऐसे ही है ऐसी प्रतीति भी आई थी, पीछे अन्यथा कोई प्रकारकरि विचार भया, तातैं उस शिक्षाविषै सन्देह भया। ऐसे है कि ऐसें है, अथवा 'न जानों कैसे है', अथवा तिस शिक्षाको झूठ जानि तिसतें विपरीति भई, तब वाकै प्रतीति न भई तब वाकै तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय। अथवा पूर्वै तो अन्यथा प्रतीति थी ही, बीचिमें शिक्षाका विचारतै यथार्थ प्रतीति भई थी बहुरि तिस शिक्षाका विचार किए बहुत काल होय गया तब ताकों भूलि जैसें पूर्वे अन्यथा प्रतीत

थी तैसे ही स्वयमेव होय गई तब तिस शिक्षा की प्रतीतिका अभाव होय जाय। अथवा यथार्थ प्रतीति पहलें तो कीन्हीं, पीछें न तो किछु अन्यथा विचार किया, न बहुत काल भया परन्तु तैसा ही कर्म उदयतें होनहारके अनुसारि स्वयमेव ही तिस प्रतीति का अभाव होय अन्यथापना भया। ऐसै अनेक प्रकार तिस शिक्षा की यथार्थ प्रतीतिका अभाव हो है। तैसे जीवके जिनदेव का तत्वादिरूप उपदेश भया, ताकी परीक्षाकरि वाकै 'ऐसै ही है' ऐसा श्रद्धान भया, पीछे पूर्वे जैसे कहे तैसै अनेक प्रकार तिस पदार्थश्रद्धान का अभाव हो है। सो यहु कथन स्थूलपने दिखाया है। तारतम्यकरि केवलज्ञानविषै भासै है—इस समय श्रद्धान है कि इस समय नाहीं है। जातै यहाँ मूल कारण मिथ्यात्वकर्म है। ताका उदय होय, तब तो अन्य विचारादि कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक्श्रद्धानका अभाव हो है। बहुरि ताका उदय न होय, तब अन्य कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक् श्रद्धान होय जाय है। सो ऐसी अन्तरग समय समय सम्बन्धी सूक्ष्मदशाका जानना छद्मस्थकै होता नाहीं। तातै अपनी मिथ्या सम्यक्श्रद्धानरूप अवस्थाका तारतम्य याकौं निश्चय हो सकै नाहीं, केवलज्ञानविषै भासै है। तिस अपेक्षा गुणस्थाननिकी पलटनि शास्त्रविषै कही है। या प्रकार जो सम्यक्ततै भ्रष्ट होय सो सादि मिथ्यादृष्टी कहिए। ताकै भी बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति विषै पूर्वोक्त पाँच लब्धि हो हैं। विशेष इतना-यहाँ कोई जीवकै दर्शन मोहकी तीन प्रकृतिनिकी सत्ता हो है सो तिनोको उपशमाय प्रथमोपशमसम्यक्ती हो है। अथवा काहूकै सम्यक्तमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है, सो क्षयोपशमसम्यक्ती हो है। याकै गुणश्रेणी आदि क्रिया न हो है वा अनिवृत्तिकरण न हो है। बहुरि काहू कै मिश्रमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय

न हो है, सो मिश्रगुणस्थानकों प्राप्त हो है। याकं करण न हो है। ऐसें सादि मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्व छूटे दशा हो है। क्षायिकसम्यक्तको वेदकसम्यग्दृष्टीही पावै है तातै ताका कथन यहाँ न किया है। ऐसें सादि मिथ्यादृष्टीका जघन्य तो मध्यम अन्तर्मुहूर्तमात्र उत्कृष्ट किंचित-ऊन अर्द्धपुद्‌गलपरिवर्त्तन मात्र काल जानना। देखो परिणामनिकी विचित्रता, कोई जीव तो ग्यारवें गुणस्थान यथाख्यातचारित्र पाय बहुरि मिथ्यादृष्टीहोय किंचित ऊन अर्द्धपुद्‌गल परिवर्त्तन कालपर्यंत ससारमें रुलै अर कोई नित्यनिगोदमेंसों निकसि मनुष्य होय मिथ्यात्व छूटे पीछे अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान पावै। ऐसें जानि अपने परिणाम बिगरनेका भय राखना अर तिनके सुधारनेका उपाय करना।

बहुरि इस सादिमिथ्यादृष्टीकै थोरे काल मिथ्यात्वका उदय रहै तो बाह्य जैनीपना नाही नष्ट हो है वा तत्वनिका अश्रद्धान व्यक्त न हो है वा बिना विचार किए ही वा स्तोक विचारहीतें बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति होय जाय है। बहुरि बहुत काल मिथ्यात्वका उदय रहै तो जैसी अनादि मिथ्यादृष्टीकी दशा तैसी याकी भी दशा हो है। गृहीत मिथ्यात्वकों भी ग्रहै है। निगोदादिविषे भी रुलै है। याका किछू प्रमाण नाही।

बहुरि कोई जीव सम्यक्ततें भ्रष्ट होय सासादन हो है। सो तहाँ जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल रहै है, सो याका परिणामकी दशा वचनकरि कहनेमें आवती नाही। सूक्ष्मकालमात्र कोई जातिके केवलज्ञानगम्य परिणाम हो हैं। तहाँ अनतानुबंधीका तो उदय हो है, मिथ्यात्वका उदय न हो है। सो आगम प्रमाणतें याका स्वरूप जानना।

बहुरि कोई जीव सम्यक्त भ्रष्ट होय, मिश्रगुणस्थानकों प्राप्त हो है। तहाँ मिश्रमोहनीयका उदय हो है। याका काल मध्यम अन्तर्मुहूर्त-

मात्र है। सो याका भी काल थोरा है, सो याकै भी परिणाम केवलज्ञानगम्य हैं। यहाँ इतना भासै है—जैसे काहूकों सीख दई तिसकों वह किछू सत्य किछू असत्य एकै काल मानै तैसें तत्वनिका श्रद्धान अश्रद्धान एकै काल होय सो मिश्रदशा है। केई कहै हैं—हमकों तो जिनदेव वा अन्य देव सर्व ही वदने योग्य हैं इत्यादि मिश्र श्रद्धान को मिश्रगुणस्थान कहै हैं, सो नाही। यहु तो प्रत्यक्ष मिथ्यात्वदशा है। व्यवहाररूप देवादिका श्रद्धान भए भी मिथ्यात्व रहै है, तो याकै तो देव कुदेव का किछू ठीक ही नाही। याकै तो यहु विनयमिथ्यात्व प्रगट है, ऐसें जानना।

ऐसें सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया। प्रसंग पाय अन्य भी कथन किया है। या प्रकार जैनमतवाले मिथ्यादृष्टीनिका स्वरूप निरूपण किया। यहाँ नाना प्रकार मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया है ताका प्रयोजन यह जानना—जो इन प्रकारनिकों पहिचानि आपविषैं ऐसा दोष होय तो ताको दूरिकरि सम्यक्श्रद्धानी होना। औरनिहीके ऐसे दोष देखि देखि कषायी न होना। जातैं अपना भला बुरा तो अपने परिणामनितै है। औरनिको तो रुचिवान देखिए, तो किछू उपदेश देय वाका भी भला कीजिये। तातैं अपने परिणाम सुधारनेका उपाय करना योग्य है। जातैं संसारका मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व समान अन्य पाप नाही है। एक मिथ्यात्व अर ताके साथ अनन्तानुबंधीका अभाव भए इकतालीस प्रकृतिनिका तो बंध ही मिटि जाय। स्थिति अन्त कोटाकोटी सागरकी रहि जाय। अनुभाग थोरा ही रहि जाय। शीघ्र ही मोक्षपदको पावै। बहुरि मिथ्यात्वका सद्भाव रहें अन्य अनेक उपाय किए भी मोक्षमार्ग न होय। तातैं जिस तिस उपायकरि सर्व प्रकार मिथ्यात्वका नाश करना योग्य है।

इति मोक्षमार्गप्रकाशकनाम शास्त्रविषै जैनमतवाले मिथ्यादृष्टीनिका निरूपण जामें भया ऐसा सातवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया ॥७॥

ॐ नमः

आठवाँ अधिकार

उपदेश का स्वरूप

अब मिथ्यादृष्टी जीवनिकों मोक्षमार्गका उपदेश देय तिनका उपकार करना यह ही उत्तम उपकार है। तीर्थंकर गणधरादिक भी ऐसा ही उपकार करें हैं। तातें इस शास्त्रविषै भी तिनहीका उपदेशके अनुसारि उपदेश दीजिए है। तहाँ उपदेशका स्वरूप जाननेके अर्थि किछू व्याख्यान कीजिए है। जातें उपदेशको यथावत् न पहिचानै तो अन्यथा मानि विपरीत प्रवर्ते, तातें उपदेशका स्वरूप कहिए है—

जिनमतविषै उपदेश च्यार अनुयोगका दिया है। सो प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ए च्यार अनुयोग हैं। तहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती आदि महान् पुरुषनिके चरित्र जिसविषै निरूपण किया होय, सो **प्रथमानुयोग** है[1]। बहुरि गुणस्थान मार्गणादिकरूप जीवका वा कर्मनिका वा त्रिलोकादिकका जाविषै निरूपण होय, सो **करणानुयोग** है[2]। बहुरि गृहस्थ मुनिके धर्म आचरण करनेका जाविषै निरूपण होय, सो **चरणानुयोग** है[3]। बहुरि षट् द्रव्य सप्ततत्वादिकका वा स्वपरभेद विज्ञानादिकका जाविषै निरूपण होय, सो **द्रव्यानुयोग** है[4]। अब इनका प्रयोजन कहिये है—

1-रत्नक० २,२। 2-रत्नक० २,३। 3-रत्नक० २,४। 4-रत्नक० २,५।

प्रथमानुयोगका प्रयोजन

प्रथमानुयोगविषै तो ससारकी विचित्रता, पुण्य पापका फल, महतपुरुषनिकी प्रवृत्ति इत्यादि निरूपणकरि जीवनिकों धर्मविषै लगाए हैं। जे जीव तुच्छबुद्धि होंय, ते भी तिसकरि धर्म सन्मुख हो हैं, जाते वे जीव सूक्ष्मनिरूपणको पहिचानै नाही। लौकिक वार्तानिको जानै। तहाँ तिनका उपयोग लागै। बहुरि प्रथमानुयोग विषै लौकिक प्रवृत्तिरूप ही निरूपण होय, ताको ते नीके समझि जांय। बहुरि लोक-विषै तो राजादिककी कथानिविषै पापका पोषण हो है। तहाँ महंत पुरुष राजादिक तिनकी कथा तो हैं परन्तु प्रयोजन जहाँ तहाँ पापको छुडाय धर्मविषै लगावनेका प्रगट करै हैं। ताते ते जीव कथानिके लालचकरि तो तिसकों बाचै सुनै, पीछे पापकों बुरा धर्मकों भला जानि धर्मविषै रुचिवंत हो हैं। ऐसे तुच्छ बुद्धीनिके समझावनेको यहु अनुयोग है। 'प्रथम' कहिए 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टी' तिनके अर्थि जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोमट्टसारकी टीकाविषै[1] किया है। बहुरि जिन जीवनिकै तत्वज्ञान भया होय, पीछे इस प्रथमानुयोगकों बाचै सुनै, तो तिनको यहु तिसका उदाहरणरूप भासै है। जैसे जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक सयोगी पदार्थ हैं, ऐसें यहु जानै था। बहुरि पुराणनिविषै जीवनिके भवातर निरूपण किए, ते तिस जाननेके उदाहरण भए। बहुरि शुभ अशुभ शुद्धोपयोगकों जानै

1 प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकार: प्रथमानुयोग., जी. प्र. टी. गा. ३६१-२।

था वा तिनके फलकों जानें था। बहुरि पुराणनिविषें तिन उपयोगनि-की प्रवृत्ति अर तिनका फल जीवनिकै भया, सो निरूपण किया। सो ही तिस जाननेका उदाहरण भया। ऐसें ही अन्य जानना। यहाँ उदा-हरणका अर्थ यहु जो जैसें जानें था तैसें ही तहाँ कोई जीवकै अवस्था भई तातै यह तिस जाननेकी साखि भई। बहुरि जैसें कोई सुभट है, सो सुभटनिकी प्रशंसा अर कायरनिकी निन्दा जाविषे होय, ऐसी कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेंकरि सुभटपनाविषे अति उत्साहवान् हो है। तैसें धर्मात्मा है, सो धर्मात्मानिकी प्रशसा अर पापीनिकी निन्दा जाविषें होय, ऐसे कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेकरि धर्मविषें अति उत्साहवान् हो है। ऐसें यहु प्रथमानुयोगका प्रयोजन जानना।

करणानुयोगका प्रयोजन

बहुरि करणानुयोगविषै जीवनिकी वा कर्मनिका विशेष वा त्रिलोकादिककी रचना निरूपणकरि जीवनिकों धर्मविषे लगाए हैं। जे जीव धर्मविषै उपयोग लगाया चाहैं, ते जीवनिका गुणस्थान मार्गणा आदि विशेष अर कर्मनिका कारण अवस्था फल कौन कौनकै कैसें कैसें पाइए, इत्यादि विशेष अर त्रिलोकविषै नरक स्वर्गादिकके ठिकानें पहिचानि पापतें विमुख होय धर्मविषे लागै हैं। बहुरि ऐसे विचार-विषै उपयोग रमि जाय, तब पाप प्रवृत्ति छूटि स्वयमेव तत्काल धर्म उपजै है। तिस अभ्यासकरि तत्वज्ञानकी प्राप्ति शीघ्र हो है। बहुरि ऐसा सूक्ष्म यथार्थ कथन जिनमतविषें ही है, अन्यत्र नाही, ऐसें महिमा जानि जिनमतका श्रद्धानी हो है। बहुरि जे जीव तत्वज्ञानी होय इस करणानुयोगकों अभ्यासै हैं, तिनकों यहु तिसका विशेषरूप भासै है।

जो जीवादिक तत्व आप जाने है, तिनहीका विशेष करणानुयोगविषै किए हैं। तहाँ केई विशेषण तो यथावत् निश्चयरूप हैं, केई उपचार लिए व्यवहाररूप हैं। केई द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका स्वरूप प्रमाणादिरूप हैं, केई निमित्त आश्रयादि अपेक्षा लिए हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके विशेषण निरूपण किए हैं, तिनकों जैसाका तैसा मानता तिस करणानुयोगको अभ्यासै है। इस अभ्यासते तत्वज्ञान निर्मल हो है। जैसै कोऊ यहु तो जानै था यहु रत्न है परन्तु उस रत्नके घने विशेष जाने निर्मल रत्नका पारखी होय, तैसे तत्वनिको जानै था ए जीवादिक हैं परन्तु तिन तत्वनिके घने विशेष जानै तो निर्मल तत्वज्ञान होय। तत्वज्ञान निर्मल भए आप ही विशेष धर्मात्मा हो है। बहुरि अन्य ठिकाने उपयोगको लगाईए तो रागादिककी वृद्धि होय अर छद्मस्थका एकाग्र निरन्तर उपयोग रहै नाही। तातै ज्ञानी इस करणानुयोगका अभ्यासविषै उपयोगको लगावै है। तिसकरि केवलज्ञानकरि देखे पदार्थनिका जानपना याकै हो है। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षहीका भेद है, भासनेंविषै विरुद्ध है नाही। ऐसै यहु करणानुयोगका प्रयोजन जानना। 'करण' कहिए गणित कार्यकों कारण सूत्र तिनका जाविषै 'अनुयोग' अधिकार होय, सो करणानुयोग है। इस विषै गणित वर्णनकी मुख्यता है, ऐसा जानना।

चरणानुयोगका प्रयोजन

अब चरणानुयोगका प्रयोजन कहिए है। चरणानुयोगविषै नाना प्रकार धर्मके साधन निरूपणकरि जीवनिकों धर्मविषै लगाईए है। जे जीव हित अहितकों जानै नाही, हिंसादिक पाप कार्यनिविषै तत्पर

होय रहे हैं, तिनकों जैसे पापकार्यनिकों छोड़ि धर्मकार्यनिविषै लागै तैसे उपदेश दिया, ताकों जानि धर्म आचरण करनेको सन्मुख भए, ते जीव गृहस्थधर्म वा मुनिधर्म का विधान सुनि आपते जैसा सधै तैसा धर्म-साधनविषै लागै हैं। ऐसे साधनते कषाय मद हो है। ताके फलते इतना तो हो है, जो कुगतिविषे दुख न पावै अर सुगतिविषे सुख पावै। बहुरि ऐसे सानधते जिनमत का निमित्त बन्या रहै, तहाँ तत्व ज्ञानकी प्राप्ति होनी होय तो होय जावै। बहुरि जे जीव तत्वज्ञानी होयकरि चरणानुयोगकों अभ्यासै हैं, तिनको ए सर्व आचरण अपने वीतरागभावके अनुसारी भासै हैं। एकदेश वा सर्वदेश वीतरागता भए ऐसी श्रावकदशा ऐसी मुनिदशा हो है। जाते इनकै निमित्त नैमित्तिकपनों पाईए है। ऐसे जानि श्रावक मुनिधर्मके विशेष पहिचानि जैसा अपना वीतरागभाव भया होय, तैसा अपने योग्य धर्मकों साधै हैं। तहाँ जेता अंशा वीतरागता हो है, ताकों कार्यकारी जानै हैं, जेता अंशा राग रहै है, ताकों हेय जानै हैं। सम्पूर्ण वीतरागताकों परम-धर्म मानै हैं। ऐसे चरणानुयोगका प्रयोजन है।

द्रव्यानुयोगका प्रयोजन

अब द्रव्यानुयोगका प्रयोजन कहिये है। द्रव्यानुयोगविषै द्रव्यनिका वा तत्वनिका निरूपण करि जीवनिको धर्मविषै लगाईए है। जे जीव जीवादिक द्रव्यनिकों वा तत्वनिकों पहिचानै नाहीं, आपा परकों भिन्न जानै नाहीं, तिनकों हेतु दृष्टांत युक्तिकरि वा प्रमाण-नयादिककरि तिनका स्वरूप ऐसे दिखाया जैसे याकै प्रतीति होय जाय। ताके अभ्यासतें अनादि अज्ञानता दूरि होय, अन्यमत कल्पित तत्वादिक झूठ भासैं,

तब जिनमतकी प्रतीति होय। अर उनके भावकों पहिचाननेका अभ्यास राखै तो शीघ्र ही तत्वज्ञानकी प्राप्ति होय जाय। बहुरि जिनकै तत्व ज्ञान भया होय, ते जीव द्रव्यानुयोगकों अभ्यासै। तिनकों अपने श्रद्धान के अनुसारि सो सर्व कथन प्रतिभासै है। जैसें काहूने किसी विद्याकों सीखि लई परन्तु जो ताका अभ्यास किया करै तो वह यादि रहै, न करै तो भूलि जाय। तैसें याकै तत्वज्ञान भया परन्तु जो ताका प्रतिपादक द्रव्यानुयोगका अभ्यास किया करै तो वह तत्वज्ञान रहै, न करै तो भूलि जाय। अथवा संक्षेपपनें तत्वज्ञान भया था, सो नाना युक्ति हेतु दृष्टांतादिककरि स्पष्ट होय जाय तो तिसविषै शिथिलता न होय सकै। बहुरि इस अभ्यासनें रागादि घटनेतें शीघ्र मोक्ष सधै। ऐसे द्रव्यानुयोग का प्रयोजन जानना।

अब इस अनुयोगनिविषै किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिए है—

प्रथमानुयोग में व्याख्यान का विधान

प्रथमानुयोगनिविषै जे मूलकथा हैं, ते तो जैसी हैं तैसी ही निरूपिये हैं। अर तिनविषैं प्रसंग पाय व्याख्यान हो है सो कोई तो जैसाका तैसा हो है, कोई ग्रंथकर्त्ताका विचारके अनुसारि हो है परन्तु प्रयोजन अन्यथा न हो है।

ताका उदाहरण—जैसे तीर्थंकर देवनिके कल्याणकनिविषै इन्द्र आया, यहु कथा तो सत्य है। बहुरि इन्द्र स्तुति करी, ताका व्याख्यान किया, सो इन्द्र तो और ही प्रकार स्तुति कीनी थी अर यहाँ ग्रन्थ कर्त्ता और ही प्रकार स्तुति कीनी लिखी परन्तु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा न भया। बहुरि परस्पर किनिहूकै वचनालाप भया। तहाँ

उनके तो और प्रकार अक्षर निकसे थे, यहाँ ग्रन्थकर्त्ता अन्य प्रकार कहै परन्तु प्रयोजन एक ही दिखावै हैं। बहुरि नगर वन संग्रामादिकका नामादिक तो यथावत् ही लिखै अर वर्णन हीनाधिक भी प्रयोजन-कों पोषता निरूपै हैं। इत्यादि ऐसे ही जानना। बहुरि प्रसंगरूप कथा भी ग्रन्थकर्त्ता अपना विचार अनुसारि कहै। जैसे **धर्मपरीक्षाविषै** मूर्खनिकी कथा लिखी, सो ए ही कथा मनोवेग कही थी ऐसा नियम नाहीं। परन्तु मूर्खपनाकों पोषती कोई वार्त्ता कही ऐसा अभिप्राय पोषै है। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

यहा कोऊ कहै— अयथार्थ कहना तो जैन शास्त्रनिविषै सम्भवै नाहीं?

ताका उत्तर—अन्यथा तो वाका नाम है, जो प्रयोजन औरका और प्रगट करै। जैसें काहूकों कह्या—तू ऐसैं कहियो, वानै वे ही अक्षर तो न कहे परन्तु तिसही प्रयोजन लिए कह्या तो वाकों मिथ्या-वादी न कहिए, तैसें जानना। जो जैसाका तैसा लिखनेंकी सम्प्रदाय होय तो काहूने बहुत प्रकार वैराग्य चितवन किया था, ताका वर्णन सब लिखे ग्रन्थ बधि जाय, किछू न लिखे तो वाका भाव भासै नाही। तातै वैराग्यके ठिकाने थोरा बहुत अपना विचारके अनुसारि वैराग्य पोषता ही कथन करै, सराग पोषता न करै। तहा प्रयोजन अन्यथा न भया तातै याकों अयथार्थ न कहिए, ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि प्रथमानुयोगविषै जाकी मुख्यता होय, ताकों ही पोषै हैं। जैसै काहूने उपवास किया, ताका तो फल स्तोक था बहुरि वाकै अन्यधर्म परिणतिकी विशेषता भई, तातैं विशेष उच्चपदकी प्राप्ति भई। तहाँ तिसकों उपवासहीका फल निरूपण करै, ऐसें ही अन्य

जाननें। बहुरि जैसे काहूने शीलादिकी प्रतिज्ञा दृढ़ राखी वा नमस्कार मन्त्र स्मरण किया वा अन्य धर्म साधन किया, ताके कष्ट दूरि भए, अतिशय प्रगट भये, तहाँ तिनहीका तैसा फल न भया अर अन्य कोई कर्म के उदयते वैसे कार्य भए तो भी तिनकों तिन शीलादिकका ही फल निरूपण करे। ऐसे ही कोई पापकार्य किया, ताके तिसहीका तो तैसा फल न भया अर अन्य कर्मउदयते नीचगतिकों प्राप्त भया वा कष्टादिक भए, ताको तिसही पाप कार्य का फल निरूपण करे। इत्यादि ऐसे ही जानना।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसा झूठा फल दिखावना तो योग्य नाही, ऐसे कथनकों प्रमाण कैसे कीजिए ?

ताका समाधान—जे अज्ञानी जीव बहुत फल दिखाए बिना धर्म विषै न लागै वा पापते न डरै, तिनका भला करनेके अर्थि ऐसा वर्णन करिए है। बहुरि झूठ तो तब होय, जब धर्मका फलको पापका फल बतावै, पापका फलकों धर्मका फल बतावै। सो तो है नाही। जैसें दश पुरुष मिलि कोई कार्य करै, तहाँ उपचारकरि एक पुरुष का भी किया कहिए तो दोष नाही अथवा जाके पितादिकने कोई कार्य किया होय, ताकों एक जाति अपेक्षा उपचारकरि पुत्रादिकका किया कहिए तो दोष नाहीं। तैसे बहुत शुभ वा अशुभकार्यनिका एक फल भया, ताकों उपचारकरि एक शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तो दोष नाही अथवा और शुभ वा अशुभकार्यका फल जो भया होय, ताकों एक जाति अपेक्षा उपचारकरि कोई और ही शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तो दोष नाही। उपदेशविषें कही व्यवहार वर्णन है, कही

निश्चय वर्णन है। यहाँ उपचाररूप व्यवहार वर्णन किया है, ऐसे याकों प्रमाण कीजिए है । याकों तारतम्य न मानि लेना। तारतम्य करणानुयोगविषै निरूपण किया है, सो जानना।

बहुरि प्रथमानुयोग विषै उपचाररूप कोई धर्मका अंग भए सम्पूर्ण धर्म भया कहिए है। जैसे जिन जीवनिकै शका कांक्षादिक न भए, तिन कै सम्यक्त भया कहिए। सो एक कोई कार्यविषै शका काक्षा न किए ही तो सम्यक्त न होय, सम्यक्त तो तत्वश्रद्धान भए हो है। परन्तु निश्चय सम्यक्तका तो व्यवहार सम्यक्त विषै उपचार किया, बहुरि व्यवहार सम्यक्त के कोई एक अङ्गविषै सम्पूर्ण व्यवहार सम्यक्तका उपचार किया, ऐसै उपचारकरि सम्यक्त भया कहिए है। बहुरि कोई जैनशास्त्रका एक अग जाने सम्यग्ज्ञान भया कहिए है, सो संशयादिरहित तत्वज्ञान भए सम्यग्ज्ञान होय परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि कहिए। बहुरि कोई भला आचरण भए सम्यक्चारित्र भया कहिए है। तहाँ जानै जैनधर्म अगीकार किया होय वा कोई छोटी मोटी प्रतिज्ञा ग्रही होय, ताकों श्रावक कहिए सो श्रावक तो पचमगुणस्थानवर्त्ती भए हो है परन्तु पूर्ववत् उपचार करि याको श्रावक कह्या है। उत्तरपुराणविषै श्रेणिककों श्रावकोत्तम कह्या सो वह तो असयत था परन्तु जैनी था तातै कह्या। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि जो सम्यक्तरहित मुनिलिंग धारै वा कोई द्रव्यों भी अतिचार लगावता होय, ताकों मुनि कहिए। सो मुनि तो षष्टादि गुणस्थानवर्त्ती भए ही हो है परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि मुनि कह्या है। समवसरणसभाविषै मुनिनिकी सख्या कही, तहाँ सर्व ही शुद्ध भावलिंगी मुनि न थे परन्तु मुनिलिंग धारनेतै सबनिको मुनि कहे। ऐसैही अन्यत्र जानना।

बहुरि प्रथमानुयोगविषै कोई धर्मबुद्धितै अनुचित कार्य करै ताकी भी प्रशंसा करिये है। जैसे **विष्णुकुमार** मुनिनका उपसर्ग दूरि किया सो धर्मानुरागतै किया परन्तु मुनिपद छोडि यहु कार्य करना योग्य न था। जातै ऐसा कार्य तो गृहस्थधर्मविषै सम्भव अर गृहस्थ धर्मतै मुनिधर्म ऊँचा है। सो ऊँचा धर्म छोड़ि नीचाधर्म अंगीकार किया सो अयोग्य है परन्तु वात्सल्य अंगकी प्रधानताकरि विष्णुकुमार जीकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिको ऊँचा धर्मछोडि नीचाधर्म अंगीकार करना योग्य नाही। बहुरि जैसै **गुवालिया** मुनिको अग्नि करि तपाया सो करुणातै यहु कार्य किया। परन्तु आया उपसर्गकों तो दूरि करै, सहज अवस्थाविषै जो शीतादिकको परीषह हो है, ताकों दूर किए रति माननेका कारण होय, उनको रति करनी नाही, तब उलटा उपसर्ग होय। याहीत विवेकी उनकै शीतादिकका उपचार करते नाहीं। गुवालिया अविवेकी था, करुणाकरि यहु काय किया, तातै याकी प्रशसा करी। इस छलकरि औरनिको धर्मपद्धति-विषै जो विरुद्ध होय सो कार्य करना योग्य नाही। बहुरि जैसै **वज्रकरण** राजा **सिंहोदर** राजाको नम्या नाही, मुद्रिकाविषै प्रतिमा राखी। सो बडे बडे सम्यग्दृष्टी राजादिककों नमै, याका दोष नाही अर मुद्रिका विषैं प्रतिमा राखनेमें अविनय होय, यथावत् विधितें ऐसी प्रतिमा न होय, तातै इस कार्यविषै दोष है। परन्तु वाकै ऐसा ज्ञान न था, धर्मानुरागतें मैं औरकों नमूँ नाहीं, ऐसी बुद्धि भई, तातै वाकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिकों ऐसे कार्य करने युक्त नाही। बहुरि केई पुरुषों ने पुत्रादिककी प्राप्तिके अर्थि वा रोग कष्टादि दूरि करनेके अर्थि चैत्या-

लय पूजनादि कार्य किए, स्तोत्रादि किए, नमस्कार मन्त्र स्मरण किया। सो ऐसें किए तो निःकांक्षित गुण का अभाव होय, निदानबंधनामा आर्त्तध्यान होय। पापहीका प्रयोजन अंतरगविषै है, तातै पापहीका बध होई। परन्तु मोहित होयकरि भी बहुत पापबधका कारण कुदेवादिकका तो पूजनादि न किया, इतना वाका गुण ग्रहणकरि वाकी प्रशसा करिए है। इस छलकरि औरनिकों लौकिक कार्यनिके अर्थि धर्मसाधन करना युक्त नाहीं। ऐसैं ही अन्यत्र जानने। ऐसैं ही प्रथमानुयोगविषै अन्य कथन भी होंय, ताकों यथासंभव जानि भ्रमरूप न होना।

अब करणानुयोगविषै किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिये है—

करणानुयोग में व्याख्यान का विधान

जैसे केवलज्ञानकरि जान्या तैसे करणानुयोगविषै व्याख्यान है। बहुरि केवलज्ञानकरि तो बहुत जान्या परन्तु जीवकों कार्यकारी जीव कर्मादिकका वा त्रिलोकादिकका ही निरूपण या विषै हो है। बहुरि तिनका भी स्वरूप सर्व निरूपण न होय सकै, तातै जैसे वचनगोचर होय छद्मस्थके ज्ञानविषै उनका किछू भाव भासै तैसे सकोचन करि निरूपण करिए है। यहाँ उदाहरण—जीवके भावनिकी अपेक्षा गुणस्थानक कहे, ते भाव अनन्तस्वरूप लिये वचनगोचर नाहीं। तहाँ बहुत भावनिकी एक जातिकरि चौदह गुणस्थान कहे। बहुरि जीव जाननेके अनेक प्रकार हैं। तहाँ मुख्य चौदह मार्गणाका निरूपण किया। बहुरि कर्मपरमाणू अनन्तप्रकार शक्तियुक्त हैं, तिनविषै बहुतनिकी एक जाति करि आठ वा एकसौ अड़तालीस प्रकृति कही। बहुरि त्रिलोकविषै अनेक रचना हैं, तहाँ मुख्य केतीक रचना निरूपण करिए है। बहुरि

प्रमाण के अनन्त भेद तहाँ संख्यातादि तीन भेद वा इनके इकईस भेद निरूपण किए, ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोगविषै यद्यपि वस्तु के क्षेत्र, काल, भावादिक अखण्डित हैं, तथापि छद्मस्थकों हीनाधिक ज्ञान होनेके अर्थि प्रदेश समय अविभागप्रतिच्छेदादिककी कल्पनाकरि तिनका प्रमाण निरूपिए है। बहुरि एक वस्तुविषै जुदे जुदे गुणनिका वा पर्यायनिका भेदकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि जीव पुद्गलादिक यद्यपि भिन्न भिन्न हैं, तथापि सम्बन्धादिककरि अनेक द्रव्यकरि निपज्या गति जाति आदि भेद तिनकों एक जीवके निरूपै हैं, इत्यादि व्यवहार नयकी प्रधानता लिये व्याख्यान जानना। जातै व्यवहारबिना विशेष जानि सकै नाही। बहुरि कही निश्चयवर्णन भी पाइए है। जैसे जीवादिक द्रव्यनिका प्रमाण निरूपण किया, सो जुदे जुदे इतने ही द्रव्य हैं। सो यथासम्भव जानि लेना।

बहुरि करणानुयोगविषै जे कथन हैं ते केई तो छद्मस्थके प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होंय, बहुरि जे न होंय तिनको आज्ञा प्रमाणकरि मानने। जैसें जीव पुद्गलके स्थूल बहुत कालस्थायी मनुष्यादि पर्याय वा घटादि पर्याय निरूपण किए, तिनका तो प्रत्यक्ष अनुमानादि होय सकै, बहुरि समय समय प्रति सूक्ष्म परिणमन अपेक्षा ज्ञानादिकके वा स्निग्ध रूक्षादिकके अंश निरूपण किए ते आज्ञाहीतै प्रमाण हो हैं। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोगविषै छद्मस्थनिकी प्रवृत्ति के अनुसार वर्णन किया नाहीं, केवलज्ञानगम्य पदार्थनिका निरूपण है। जैसें केई जीव तो द्रव्यादिक का विचार करैं हैं वा व्रतादिक पाले हैं परन्तु तिनकै अन्तरंग सम्यक्त चारित्रशक्ति नाही, तातैं उनकों मिथ्यादृष्टि अव्रती

कहिए है। बहुरि केई जीव द्रव्यादिकका वा व्रतादिकका विचार रहित हैं, अन्य कार्यनिविषै प्रवर्त्तै हैं वा निद्रादिकरि निर्विचार होय रहे हैं परन्तु उनकै सम्यक्तादि शक्तिका सद्भाव है, तातै उनकों सम्यक्त्वी वा व्रती कहिए है। बहुरि कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो घनी है अर वाकै अन्तरग कषायशक्ति थोरी है, तो वाको मदकषायी कहिए है। अर कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो थोरी है अर वाकै अन्तरग कषायशक्ति घनी है, तो वाकों तीव्रकषायी कहिए है। जैसै व्यन्तरादिक देव कषायनितै नगर नाशादि कार्य करै, तो भी तिनकै थोरी कषायशक्तितै पीतलेश्या कही। बहुरि एकेन्द्रियादिक जीव कषायकार्य करते दीख नाही, तिनकै बहुत कषायशक्तितै कृष्णादि लेश्या कही। बहुरि सर्वार्थसिद्धि के देव कषायरूप थोरे प्रवर्त्तै, तिनकै बहुत कषायशक्तित असयम कह्या अर पचमगुणस्थानी व्यापार अब्रह्मादि कषायकार्यरूप बहुत प्रवर्त्तै, तिनकै मन्दकषाय शक्तितै देशसयम कह्या। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कोई जीवकै मन वचन कायकी चेष्टा थोरी होती दीसै, तो भी कर्माकर्षण शक्ति की अपेक्षा बहुत योग कह्या। काहूकै चेष्टा बहुत दीसै तो भी शक्तिकी हीनतातै स्तोक योग कह्या। जैसै केवली गमनादिक्रियारहित भया, तहाँ भी ताकै योग बहुत कह्या। बेंद्रियादिक जीव गमनादि करै हैं, तो भी तिनकै योग स्तोक कहे। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कहीं जाकी व्यक्तता किछू न भासै, तो भी सूक्ष्मशक्तिके सद्भावतै ताका तहाँ अस्तित्व कह्या। जैसै मुनिकै अब्रह्मकार्य किछू नाही, तो भी नवम गुणस्थानपर्यन्त मैथुनसज्ञा कही। अहमिंद्रनिकै

दुःखका कारण व्यक्त नाहीं, तो भी कदाचित् असाताका उदय कह्या। नारकीनिकै सुख का कारण व्यक्त नाही, तो भी कदाचित् साताका उदय कह्या। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिक धर्मका निरूपण कर्मप्रकृतिनिका उपशमादिककी अपेक्षा लिए सूक्ष्मशक्ति जैसै पाइए तैसै गुणस्थानादिविषै निरूपण करै है वा सम्यग्दर्शनादिकके विषयभूत जीवादिक तिनका भी निरूपण सूक्ष्मभेदादि लिये करै है। यहाँ कोई करणानुयोगके अनुसारि आप उद्यम करै तो होय सकै नाही। करणानुयोगविषै तो यथार्थ पदार्थ जनावनेका मुख्यप्रयोजन है, आचरण करावनेकी मुख्यता नाही। तातै यहु तो चरणानुयोगादिकके अनुसार प्रवर्त्तै, तिसतै जो कार्य होना है सो स्वयमेव ही होय है। जैसे आप कर्मनिका उपशमादि किया चाहै तो कैसे होय ? आप तो तत्वादिकका निश्चय करनेका उद्यम करै, तातै स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त होय। ऐसै ही अन्यत्र जानना। एक अंतर्मुहूर्तविषै ग्यारहवां गुणस्थानसो पडि क्रमते मिथ्यादृष्टि होय बहुरि चढिकरि केवलज्ञान उपजावै। सो ऐसै सम्यक्तादिकके सूक्ष्मभाव बुद्धिगोचर आवते नाही, तातै करणानुयोगके अनुसारि जैसाका तैसा जानि तो ले अर प्रवृत्ति बुद्धिगोचर जैसै भला होय तैसै करै।

बहुरि करणानुयोगविषै भी कही उपदेशकी मुख्यता लिए व्याख्यान हो है, ताकों सर्वथा तैसै ही न मानना। जैसै हिंसादिकका उपायकों कुमतिज्ञान कह्या, अन्यमतादिकके शास्त्राभ्यास कों कुश्रुतज्ञान कह्या, बुरा दीसै भला न दीसै ताकों विभंगज्ञान कह्या, सो इनकों छोडनेके

अर्थि उपदेशकरि ऐसै कह्या। तारतम्यतें मिथ्यादृष्टीकै सर्व ही ज्ञान कुज्ञान हैं, सम्यग्दृष्टीकै सर्व ही ज्ञान सुज्ञान हैं। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कही स्थूल कथन किया होय, ताकों तारतम्यरूप न जानना। जैसे व्यासतें तिगुणी परिधि कहिए, सूक्ष्मपने किछू अधिक तिगुणी हो है। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं मुख्यताकी अपेक्षा व्याख्यान होय, ताको सर्व प्रकार न जानना। जैसें मिथ्यादृष्टी सासादन गुणस्थानवालेको पापजीव कहे, असयतादि गुणस्थानवालेकों पुण्यजीव कहे सो मुख्यपने ऐसें कहे, तारतम्यतें दोऊनिकै पाप पुण्य यथासम्भव पाईए है। ऐसें ही अन्यत्र जानना। ऐसे ही और भी नाना प्रकार पाईए है, ते यथासम्भव जानने। ऐसै करणानुयोगविषै व्याख्यानका विधान दिखाया।

अब चरणानुयोगविषै किस प्रकारका व्याख्यान है, सो दिखाईए है—

चरणानुयोग में व्याख्यान का विधान

चरणानुयोगविषै जैसै जीवनिकै अपनी बुद्धिगोचर धर्मका आचरण होय सो उपदेश दिया है। तहाँ धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है सोई है। ताके साधनादिक उपचारतें धर्म है सो व्यवहारनयकी प्रधानताकरि नाना प्रकार उपचार धर्मके भेदादिक याविषै निरूपण करिए है। जातें निश्चय धर्मविषै तो किछू ग्रहण त्यागका विकल्प नाहीं अर याकै नीचली अवस्थाविषै विकल्प छूटता नाही, तातैं इस जीवकों धर्मविरोधी कार्यनिको छुड़ावनेका अर धर्मसाधनादि कार्यनिके ग्रहण करावनेका उपदेश या विषै है। सो उपदेश दोय प्रकार दीजिए है। एक तो व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है, एक निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। तहाँ जिन जीवनिकै निश्चयका

ज्ञान नाहीं है वा उपदेश दिए भी न होता दीसै ऐसे मिथ्यादृष्टी जीव किछू धर्मकों सन्मुख भए तिनकों व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिकै निश्चय-व्यवहारका ज्ञान है वा उपदेश दिए तिनका ज्ञान होता दीसै है, ऐसे सम्यग्दृष्टी जीव वा सम्यक्तकों सन्मुख मिथ्यादृष्टी जीव तिनकों निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। जातै श्रीगुरु सर्व जीवनिके उपकारी हैं। सो असज्ञी जीव तो उपदेश ग्रहणें योग्य नाही, तिनका तो उपकार इतना ही किया— और जीवनिकों तिनकी दयाका उपदेश दिया। बहुरि जे जीव कर्म-प्रबलताते निश्चयमोक्षमार्गको प्राप्त होय सकै नाही, तिनका इतना ही उपकार किया—जो उनकों व्यवहार धर्मका उपदेश देय कुगतिके दुःखनिका कारण पापकार्य छुडाय सुगतिके इन्द्रियसुखनिका कारण पुण्यकार्यनिविषै लगाया। जेता दुःख मिटया, तितना ही उपकार भया। बहुरि पापीकै तो पापवासना ही रहै अर कुगतिविषै जाय तहाँ धर्मका निमित्त नाही। तातै परम्पराय दुःखहीकों पाया करै। अर पुण्यवानकै धर्मवासना रहै अर सुगति विषै जाय, तहाँ धर्म के निमित्त पाईए, तातै परम्पराय सुखकों पावै। अथवा कर्मशक्ति हीन होय जाय तो मोक्षमार्गकों भी प्राप्त होय जाय। तातै व्यवहार उपदेशकरि पापते छुडाय पुण्यकार्यनिविषै लगाईए है। बहुरि जे जीव मोक्षमार्गको प्राप्त भये वा प्राप्त होने योग्य हैं, तिनका ऐसा उपकार किया जो उनकों निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश देय मोक्षमार्गविषै प्रवर्ताए। श्रीगुरु तो सर्वका ऐसा ही उपकार करै। परन्तु जिन जीव-निका ऐसा उपकार न बनै तो श्रीगुरु कहा करैं। जैसा बन्या तैसा ही

उपकार किया। तातै दोय प्रकार उपदेश दीजिए है। तहाँ व्यवहार उपदेशविषै तो बाह्य क्रियानिहीकी प्रधानता है। तिनका उपदेशतै जीव पापक्रिया छोडि पुण्यक्रियानिविषै प्रवर्त्तै। तहाँ क्रियाके अनुसार परिणाम भी तीव्रकषाय छोड़ि किछू मंदकषायी होय जाय। सो मुख्य-पनै तो ऐसै है। बहुरि काहूके न होय तो मति होहु। श्रीगुरु तो परिणाम सुधारनेके अर्थि बाह्यक्रियानिकों उपदेशै हैं। बहुरि निश्चय-सहित व्यवहारका उपदेशविषै परिणामनिहीकी प्रधानता है। ताका उपदेशतैं तत्वज्ञानका अभ्यासकरि वा वैराग्य भावनाकरि परिणाम सुधारै, तहाँ परिणामके अनुसारि बाह्यक्रिया भी सुधरि जाय। परिणाम सुधरे बाह्यक्रिया सुधरै ही सुधरै। तातै श्रीगुरु परिणाम सुधारनेकों मुख्य उपदेशै हैं। ऐसै दोय प्रकार उपदेशविषै जहा व्यव-हारही का उपदेश होय तहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थि अरहत देव, निर्ग्रन्थ गुरु, दया धर्मको ही मानना, औरकों न मानना। बहुरि जीवादिक तत्वनिका व्यवहारस्वरूप कह्या है ताका श्रद्धान करना, शकादि पच्चीस दोष न लगावने, निशकितादिक अग वा सवेगादिक गुण पालने, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि जिनमतके शास्त्रनिका अभ्यास करना, अर्थ व्यजनादि अगनिका साधन करना, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि एकोदेश वा सर्वदेशहिसादि पापनिका त्याग करना, व्रतादि अगनिकों पालने, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि कोई जीवको विशेप धर्मका साधन न होता जानि एक आखड़ी आदिकका ही उपदेश दीजिए है। जैसे भीलकों कागलाका मांस छुड़ाया, गुवालियाकों नमस्कार मन्त्र जपने

का उपदेश दिया, गृहस्थकों चैत्यालय पूजा प्रभावनादि कार्यका उपदेश दीजिये है, इत्यादि जसा जीव होय ताको तेसा उपदेश दीजिए है। बहुरि जहाँ निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश होय, तहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थि यथार्थ तत्वनिका श्रद्धान कराईए है। तिनका जो निश्चय स्वरूप है सो भूतार्थ है। व्यवहार स्वरूप है सो उपचार है। ऐसा श्रद्धान लिए वा स्वपरका भेदविज्ञानकरि परद्रव्यविषै रागादि छोड़नेका प्रयोजन लिए तिन तत्वनिका श्रद्धान करनेका उपदेश दीजिए है। ऐसे श्रद्धानतैं अरहतादि बिना अन्य देवादिक झूठ भासै तब स्वयमेव तिनका मानना छूटै है, ताका भी निरूपण करिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि सशयादिरहित तिनही तत्वनिका तैसै ही जाननेका उपदेश दीजिए है, तिस जाननेको कारण जिनशास्त्रनिका अभ्यास है। तातै तिस प्रयोजनके अर्थि जिनशास्त्रनिका भी अभ्यास स्वयमेव हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि रागादि दूरि करनेका उपदेश दीजिए है। तहा एकदेश वा सर्वदेश तीव्ररागादिकका अभाव भए तिनके निमित्तते होती थी जे एकदेश सर्वदेश पापक्रिया, ते छूटै हैं। बहुरि मदरागतै श्रावकमुनिक व्रतनिकी प्रवृत्ति हो है। बहुरि मदरागादिकनिका भी अभाव भए शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि यथार्थ श्रद्धान लिए सम्यग्दृष्टीनिकै जैसे यथार्थ कोई आखड़ी हो है वा भक्ति हो है वा पूजा प्रभावनादि कार्य हो है वा ध्यानादिक हो है, तिनका उपदेश दीजिए है। जैसा जिनमतविषै साचा परम्पराय मार्ग है, तैसा उपदेश दीजिए है। ऐसैं दोय प्रकार उपदेश चरणानुयोगविषै जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै तीव्रकषायनिका कार्य छुड़ाय मंदकषाय रूप कार्य करनेका उपदेश दीजिए है। यद्यपि कषाय करना बुरा ही है, तथापि सर्वकषाय न छूटते जानि जेते कषाय घटै तितना ही भला होगा, ऐसा प्रयोजन तहाँ जानना। जैसे जिन जीवनिकै आरम्भादि करनेकी वा मंदिरादि बनावनेकी वा विषय सेवनेकी वा क्रोधादि करनेकी इच्छा सर्वथा दूरि न होती जानै, तिनको पूजा प्रभावनादिक करनेका वा चैत्यालयादि बनावनेका वा जिनदेवादिकके आगे शोभादिक नृत्य गानादिकरनेका वा धर्मात्मा पुरुषनिकी सहायादि करनेका उपदेश दीजिए है। जातै इनिविषै परम्परा कषायका पोषण न हो है। पापकार्यनिविषै परम्परा कषायपोषण हो है, तातै पापकार्यनितै छुड़ाय इन कार्यनिविषै लगाईए है। बहुरि थोरा बहुत जेता छूटता जानै, तितना पापकार्य छुड़ाय सम्यक्त्व वा अणुव्रतादि पालनेका तिनकों उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिकै सर्वथा आरम्भादिककी इच्छा दूरि भई, तिनको पूर्वोक्त पूजादिक कार्य वा सर्व पापकार्य छुड़ाय महाव्रतादि क्रियानिका उपदेश दीजिए है। बहुरि किंचित् रागादिक छूटता न जानि, तिनको दया धर्मोपदेश प्रतिक्रमणादि कार्य करने का उपदेश दीजिए है। जहाँ सर्वराग दूरि होय, तहाँ किछू करने का कार्य ही रह्या नाही। तातै तिनकों किछू उपदेश ही नाही। ऐसै क्रम जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै कषायी जीवनिकों कषाय उपजायकरि भी पापकों छुडाईए है अर धर्मविषै लगाईए है। जैसैं पापका फल नरकादिकके दुःख दिखाय तिनिकों भय कषाय उपजाय पापकार्य

छुड़ाईए है। बहुरि पुण्यका फल स्वर्गादिकके सुख दिखाय तिनकों लोभ कषाय उपजाय धर्मकार्यनिविषे लगाईए है। बहुरि यहु जीव इन्द्रिय-विषय शरीर पुत्र धनादिकके अनुरागते पाप करै है, धर्म पराङ् मुख रहै है, तातैं इन्द्रियविषयनिकों मरण कलेशादिकके कारण दिखावनेकरि तिनविषै अरतिकषाय कराईए है। शरीरादिककों अशुचि दिखावनेकरि तहाँ जुगुप्साकषाय कराईए है, पुत्रादिकको धनादिकके ग्राहक दिखाय तहाँ द्वेष कराईए है, बहुरि धनादिककों मरण क्लेशादिकका कारण दिखाय तहाँ अनिष्टबुद्धि कराईए है। इत्यादि उपायनै विषयादिविषै तीव्रराग दूरि होनेकरि तिनकै पापक्रिया छूटि धर्मविषै प्रवृत्ति हो है। बहुरि नाम-स्मरण स्तुति-कारण पूजा दान शीलादिकतैं इस लोकविषे दारिद्र कष्ट दुःख दूरि हो है, पुत्रधनादिककी प्राप्ति हो है, ऐसे निरूपणकरि तिनकै लोभ उपजाय तिन धर्मकार्यनिविषै लगाईए है। ऐसै ही अन्य उदाहरण जानने।

यहाँ प्रश्न—जो कोई कषाय छुड़ाय कोई कषाय करावनेका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—जैसै रोग तो शीताग भी है अर ज्वर भी है परन्तु कोईकै शीतागतैं मरण होता जानै, तहाँ वैद्य है सो वाकै ज्वर होनेका उपाय करै, ज्वर भए पीछे वाकै जीवनेकी आशा होय, तब पीछे ज्वर के भी मेटनेका उपाय करै। तैसै कषाय तो सर्व ही हेय हैं परन्तु केई जीवनिकै कषायनिते पापकार्य होता जानै, तहाँ श्रीगुरु हैं सो उनकै पुण्यकार्यको कारणभूत कषाय होनेका उपाय करै, पीछे वाकै साची धर्मबुद्धि भई जानै, तब पीछें तिस कषाय मेटनेका उपाय करै; ऐसा प्रयोजन जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै जैसे जीव पाप छोड़ि धर्मविषै लागै, तैसे अनेक युक्तिकरि वर्णन करिए है। तहाँ लौकिक दृष्टान्त युक्ति उदाहरण न्यायप्रवृत्तिके द्वारि समझाईए है वा कही अन्य-मतके भी उदाहरणादि कहिए है। जैसे **सूक्तमुक्तावली** विषै लक्ष्मीको कमलावासिनी कही वा समुद्रविषै विष और लक्ष्मी उपजै, तिस अपेक्षा विषकी भगिनी कही। ऐसे ही अन्यत्र कहिए है। तहाँ केई उदाहरणादि झूठे भी हैं परन्तु साँचा प्रयोजनकों पोषै हैं। तातै दोष नाही।

यहाँ काऊ कहै कि झूठका तो दोष लागै। ताका उत्तर—जो झूठ भी है अर साचा प्रयोजनकों पोषै तो वाको झूठ न कहिए। बहुरि सांच भी है अर झूठा प्रयोजनकों पोषै तो वह झूठा ही है। अलंकारयुक्ति नामादिकविषै वचन अपेक्षा झूठ सांच नाही, प्रयोजन अपेक्षा झूठ साच है। जैसे तुच्छशोभासहित नगरीकों इन्द्रपुरीके समान कहिए है सो झूठ है परन्तु शोभाका प्रयोजनकों पोषै है तातै झूठ नाहीं। बहुरि "इस नगरीविषै छत्रहीकै दंड है, अन्यत्र नाही" ऐसा कह्या, सो झूठ है। अन्यत्र भी दड देना पाईए है परन्तु तहाँ अन्यायवान् थोरे हैं, न्यायवानकों दण्ड न दीजिए है, ऐसा प्रयोजनकों पोषै है, तातै झूठ नाही। बहुरि वृहस्पतिका नाम 'सुर-गुरु' लिखै वा मंगलका नाम 'कुज' लिखै, सो ऐसे नाम अन्यमत अपेक्षा हैं। इनका अक्षरार्थ है सो झूठा है। परन्तु वह नाम तिस पदार्थका अर्थ प्रगट करै है, तातै झूठ नाहीं। ऐसे अन्य मतादिकके उदाहरणादि दीजिए है सो झूठे हैं परन्तु उदाहरणादिकका तो

श्रद्धान करावना है नाही, श्रद्धान तो प्रयोजनका करावना है । सो प्रयोजन सांचा है, तातै दोष नाही है ।

बहुरि चरणानुयोगविषै छद्मस्थकी बुद्धिगोचर स्थूलपनाकी अपेक्षा लोकप्रवृत्तिकी मुख्यता लिए उपदेश दीजिए है। बहुरि केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मपनाकी अपेक्षा न दीजिए है, जातै तिसका आचरण न होय सकै । यहाँ आचरण करावनेका प्रयोजन है। जैसै अणुव्रतीकै त्रसहिंसाका त्याग कह्या अर वाकै स्त्रीसेवनादि क्रियानिविषै त्रस हिंसा हो है। यहु भी जानै है —जिनवानी विषै यहाँ त्रस कहे हैं परन्तु याकै त्रस मारनेका अभिप्राय नाही अर लोकविषै जाका नाम त्रसघात है, ताको करै नाही। तातै तिस अपेक्षा वाकै त्रसहिंसाका त्याग है। बहुरि मुनिकै स्थावरहिंसाका भी त्याग कह्या, सो मुनि पृथ्वी जलादिविषै गमनादि करै है, तहाँ सर्वथा त्रसका भी अभाव नाही। जातै त्रसजीवकी भी अवगाहना ऐसी छोटी हो है, जो दृष्टिगोचर न आवै अर तिनकी स्थिति पृथ्वी जलादि विषै ही है। सो मुनि जिनवानीतै जानै हैं वा कदाचित् अवधि ज्ञानादिकरि भी जानै हैं परन्तु याकै प्रमादतै स्थावर त्रसहिंसाका अभिप्राय नाही। बहुरि लोकविषै भूमि खोदना अप्रासुक जलतै क्रिया करनी इत्यादि प्रवृत्तिका नाम स्थावरहिंसा है अर स्थूल त्रसनिकै पीडनेका नाम त्रस हिंसा है, ताकों न करै। तातै मुनिकै सर्वथा हिंसाका त्याग कहिए है। बहुरि ऐसे ही अनृत्य, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रहका त्याग कह्या। अर केवलज्ञानका जाननेकी अपेक्षा असत्यवचनयोग बारवाँ गुणस्थान पर्यन्त कह्या। अदत्तकर्मपरमाणु आदि परद्रव्यका ग्रहण तेरवाँ गुणस्थान पर्यन्त है। वेदका उदय नवमगुणस्थान पर्यन्त है। अंतरंगपरिग्रह

दसवाँ गुणस्थानपर्यन्त है। बाह्य परिग्रह समवसरणादि केवलीकै भी हो है परन्तु प्रमादतैं पापरूप अभिप्राय नाहीं अर लोकप्रवृत्तिविषै जिनक्रियानिकरि यहु झूठ बोलै है, चोरी करै है, कुशील सेवै है, परिग्रह राखै है ऐसा नाम पावै, वे क्रिया इनकै हैं नाहीं। तातैं अनृतादिकका इनिकै त्याग कहिए है। बहुरि जैसे मुनिकै मूलगुणनिविषै पंचइन्द्रियनिके विषयका त्याग कह्या सो जानना तो इन्द्रियनिका मिटै नाहीं अरविषयनिविषै रागद्वेष सर्वथा दूरि भया होय तो यथाख्यात चारित्र होय जाय सो भया नाहीं परन्तु स्थूलपनै विषय इच्छाका अभाव भया अर बाह्य विषय सामग्री मिलावनेकी प्रवृत्ति दूरि भई तातैं याकै इन्द्रियविषयका त्याग कह्या। ऐसे ही अन्यत्र जानना। बहुरि व्रती जीव त्याग वा आचरण करै है, सो चरणानुयोगकी पद्धति अनुसारि वा लोकप्रवृत्तिके अनुसारि त्याग करै है। जैसै काहूनै त्रसहिंसाका त्याग किया, तहाँ चरणानुयोगविषै वा लोकविषै जाको त्रस हिंसा कहिए है, ताका त्याग किया है। केवलज्ञानादिकरि जे त्रस देखिए हैं, तिनिकी हिंसाका त्याग बनै ही नाहीं। तहाँ जिस त्रसहिंसाका त्याग किया, तिसरूप मनका विकल्प न करना सो मनकरि त्याग है, वचन न बोलना सो वचनकरि त्याग है, कायकरि न प्रवर्तना सो कायकरि त्याग है। ऐसे अन्य त्याग वा ग्रहण हो है, सो ऐसी पद्धति लिए ही हो है, ऐसा जानना।

यहाँ प्रश्न—जो करणानुयोगविषै तो केवलज्ञान अपेक्षा तारतम्य कथन है, तहाँ छठे गुणस्थाननिमें सर्वथा बारह अविरतिनिका अभाव कह्या, सो कैसे कह्या?

ताका उत्तर— अविरति भी योगकषायविषै गर्भित थे परन्तु तहाँ भी चरणानुयोग अपेक्षा त्यागका अभाव तिसहीका नाम अविरति कह्या है । तातै तहाँ तिनका अभाव है। मन अविरतिका अभाव कह्या, सो मुनिकै मनके विकल्प हो हैं परन्तु स्वेच्छाचारी मनकी पापरूप प्रवृत्तिके अभावते मनअविरतिका अभाव कह्या है, ऐसा जानना ।

बहुरि चरणानुयोगविषै व्यवहार लोकप्रवृत्ति अपेक्षा ही नामादिक कहिए है। जैसे सम्यक्तवीको पात्र कह्या, मिथ्यात्वीको अपात्र कह्या । सो यहाँ जाकै जिनदेवादिकका श्रद्धान पाईए सो तो सम्यक्त्वी, जाकै तिनका श्रद्धान नाही सो मिथ्यात्वी जानना । जातै दान देना चरणानुयोगविषै कह्या है, सो चरणानुयोगहीके सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहण करने । करणानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहैं वो ही जीव ग्यारवे गुणस्थान था अर वो ही अन्तर्मुहूर्तमें पहिले गुणस्थान आवै, तहाँ दातार पात्र अपात्रका कैसे निर्णय करि सकै ? बहुरि द्रव्यानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहैं मुनि सघविषै द्रव्यलिगी भी हैं, भावलिंगी भी हैं। सो प्रथम तो तिनका ठीक होना कठिन है, जातै बाह्य प्रवृत्ति समान है। अर जो कदाचित् सम्यक्तीको कोई चिन्हकरि ठीक पडै अर वह वाकी भक्ति न करै, तब औरनिकै सशय होय, याकी भक्ति क्यो न करी। ऐसे वाका मिथ्यादृष्टीपना प्रगट होय, तब सघविषै विरोध उपजै । तातै यहाँ व्यवहार सम्यक्त मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन जानना ।

यहाँ कोई प्रश्न करै—सम्यक्ती तो द्रव्यलिगीको आपते हीनगुणयुक्त मानै है, ताकी भक्ति कैसे करै ?

ताका समाधान—व्यवहारधर्मका साधन द्रव्यलिंगीकै बहुत है अर भक्ति करनी सो भी व्यवहार ही है। तातै जैसे कोई धनवान होय परन्तु जो कुलविषै बडा होय ताकों कुल अपेक्षा बड़ा जानि ताका सत्कार करै, तैसै आप सम्यक्तगुणसहित है परन्तु जो व्यवहारधर्मविषै प्रधान होय ताको व्यवहारधर्म अपेक्षा गुणाधिक मानि ताकी भक्ति करै है, ऐसा जानना। बहुरि ऐसै ही जो जीव बहुत उपवासादि करै, ताको तपस्वी कहिए है। यद्यपि कोई ध्यान अध्ययनादि विशेष करै है सो उत्कृष्ट तपस्वी है तथापि इहां चरणानुयोगविषै बाह्यतपहीकी प्रधानता है। तातै तिसहीको तपस्वी कहिए है। याही प्रकार अन्य नामादिक जानने। ऐसै ही अन्य अनेक प्रकार लिए चरणानुयोगविषै व्याख्यानका विधान जानना।

अब द्रव्यानुयोगविषै कहिए है—

द्रव्यानुयोग में व्याख्यान का विधान

जीवनिकै जीवादि द्रव्यनिका यथार्थ श्रद्धान जैसे होय, तैसे विशेष युक्ति हेतु दृष्टान्तादिकका यहाँ निरूपण कीजिए है। जातै या विषै यथार्थ श्रद्धान करावनेका प्रयोजन है। तहां यद्यपि जीवादि वस्तु अभेद है तथापि तिनविषै भेदकल्पनाकरि व्यवहारतैं द्रव्य गुण पर्यायादिकका भेद निरूपण कीजिए है। बहुरि प्रतीति अनावनेके अर्थ अनेक युक्तिकरि उपदेश दीजिए है अथवा प्रमाणनयकरि उपदेश दीजिए सो भी युक्ति है। बहुरि वस्तुका अनुमान प्रत्यभिज्ञानादिक करनेकों हेतु दृष्टांतादिक दीजिए है। ऐसे तहाँ वस्तुकी प्रतीति करावनेकों उपदेश दीजिए है। बहुरि यहाँ मोक्षमार्गका श्रद्धान करावनेके अर्थ जीवादि तत्त्वनिका विशेष युक्ति हेतु दृष्टातादिकरि निरूपण

कीजिए है। तहाँ स्वपरभेदविज्ञानादिक जैसे होय तैसे जीव अजीवका निर्णय कीजिए है। बहुरि वीतरागभाव जैसे होय तैसें आस्रवादिकका स्वरूप दिखाइए है। बहुरि तहाँ मुख्यपन ज्ञान वैराग्यको कारण आत्मानुभवनादिक ताकी महिमा गाइए है। बहुरि द्रव्यानुयोग विषै निश्चय अध्यात्म उपदेशकी प्रधानता होय, तहां व्यवहारधर्मका भी निषध कीजिए है। जे जीव आत्मानुभवनके उपायको न करें हैं अर बाह्य क्रियाकाडविषै मग्न हैं, तिनको तहाँत उदासकरि आत्मानुभवनादिविषै लगावनेको व्रत शील सयमादिकका हीनपना प्रगट कीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो इनको छोडिपापविषै लगना। जातै तिस उपदेशका प्रयोजन अशुभविषै लगावनेका नाही है। शुद्धोपयोगविषै लगावनेको शुभोपयोगका निषध कीजिए है।

यहां कोऊ कहै कि अध्यात्म-शास्त्रनिविषै पुण्य पाप समान कहे हैं, तातै शुद्धोपयोग होय तो भला ही है, न होय तो पुण्यविषै लगो वा पापविषै लगो।

ताका उत्तर—जैसे शूद्रजातिअपेक्षा जाट चांडाल समान कहे परन्तु चाडालतै जाट किछू उत्तम है। वह अस्पृश्य है यह स्पृश्य है। तसै बन्धकारण अपेक्षा पुण्य पाप समान हैं परन्तु पापतै पुण्य किछू भला है। वह तीव्रकषायरूप है, यह मदकषायरूप है। तातै पुण्य छोडि पापविषै लगना युक्त नाही, ऐसा जानना।

बहुरि जे जीव जिनबिम्बभक्त्यादि कार्यनिविषैं ही मग्न हैं, तिनकों आत्मश्रद्धानादि करावनेकों "देहविषै देव है, देहुराविषै नाहीं" इत्यादि उपदेश दीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो भक्ति

छुड़ाय भोजनादिकते आपको सुखी करना। जाते तिस उपदेशका प्रयोजन ऐसा नाही है। ऐसे ही अन्य व्यवहारका निषेध तहाँ किया होय, ताकों जानि प्रमादी न होना। ऐसा जानना—जे केवल व्यवहार साधनविषै ही मग्न हैं, तिनकों निश्चयरुचि करावने के अर्थि व्यवहारको हीन दिखाया है। बहुरि तिन ही शास्त्रनिविषै सम्यग्दृष्टी-के विषय भोगादिकको बधका कारण न कह्या, निर्जराका कारण कह्या। सो यहाँ भोगनिका उपादेयपना न जानि लेना। तहाँ सम्यग्दृष्टी-की महिमा दिखावनेकों जे तीव्रबंधके कारण भोगादिक प्रसिद्ध थे, तिन भोगादिकको होतेसते भी श्रद्धानशक्तिके बलतें मन्दबंध होने लगा, ताकों गिन्या नाही अर तिसही बलते निर्जरा विशेष होने लगी, तातैं उपचारते भोगनिकों भी बंधका कारण न कह्या, निर्जरा का कारण कह्या। विचार किए भोग निर्जराके कारण होंय, तो तिनकों छोडि सम्यग्दष्टी मुनिपदका ग्रहण काहेको करै? यहाँ इस कथनका इतना ही प्रयोजन है—देखो, सम्यक्तकी महिमा जाके बलते भोग भी अपने गणकों न करि सकै हैं। याही प्रकार और भी कथन होंय तो ताका यथार्थपना जानि लेना।

बहुरि द्रव्यानुयोगविषै भी चरणानुयोगवत् ग्रहण त्याग करावनेका प्रयोजन है। तातै छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा ही तहाँ कथन कीजिए है। इतना विशेष है, जो चरणानुयोगविषैं तो बाह्य-क्रियाकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है, द्रव्यानुयोगविषैं आत्मपरिणाम-निकी मुख्यताकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि करणानुयोगवत् सूक्ष्मवर्णन न कीजिए है। ताके उदाहरण कहिए हैं:—

उपयोगके शुभ अशुभ शुद्ध ऐसें तीन भेद कहे। तहां धर्मानुरागरूप

परिणाम सो शुभोपयोग अर पापानुरागरूप वा द्वेषरूप परिणाम सो अशुभोपयोग अर रागद्वेषरहित परिणाम सो शुद्धोपयोग, ऐसें कह्या। सो इस छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा यहु कथन है। करणानुयोगविषै कषायशक्ति अपेक्षा गुणस्थानादिविषै सक्लेश विशुद्ध परिणाम अपेक्षा निरूपण किया है सो विवक्षा यहाँ नाहीं है। करणानुयोगविषै तो रागादिरहित शुद्धोपयोग यथाख्यातचारित्र भए होय, सो मोहका नाशतें स्वयमेव होसी। नीचली अवस्थावाला शुद्धोपयोगका साधन कैसें करै। अर द्रव्यानुयोगविषै शुद्धोपयोग करने-हीका मुख्य उपदेश है, तातैं यहाँ छद्मस्थ जिस कालविषै बुद्धिगोचर भक्ति आदि वा हिंसा आदि कार्यरूप परिणामनिको छुड़ाय आत्मानु-भवनादि कार्यनिविषै प्रवर्त्तै, तिस काल ताकों शुद्धोपयोगी कहिए। यद्यपि यहाँ केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मरागादिक हैं तथापि ताकी विवक्षा यहाँ न करी, अपनी बुद्धिगोचररागादिक छोडै तिस अपेक्षा याकों शुद्धोपयोगी कह्या। ऐसें ही स्वपर श्रद्धानादिक भए सम्यक्तादिक कहे, सो बुद्धिगोचर अपेक्षा निरूपण है। सूक्ष्म भावनिकी अपेक्षा गुण-स्थानादिविषै सम्यक्तादिकका निरूपण करणानुयोगविषै पाईए है। ऐसैं ही अन्यत्र जानने। तातैं द्रव्यानुयोगके कथनकी करणानुयोगतै विधि मिलाया चाहै सो कहीं तो मिलै, कहीं न मिलै। जैसैं यथाख्यातचारित्र भए तो दोऊ अपेक्षा शुद्धोपयोग है, बहुरि नीचली दशाविषै द्रव्यानुयोग अपेक्षा तो कदाचित् शुद्धोपयोग होय अर करणानुयोग अपेक्षा सदा काल कषायअंश के सद्भावतै शुद्धोपयोग नाहीं। ऐसें ही अन्य कथन जानि लेंना।

बहुरि द्रव्यानुयोगविषैं परमतविषै कहे तत्वादिक तिनकों असत्य दिखा-वने के अर्थि तिनका निषेध कीजिए है, तहाँ द्वेषबुद्धि न जाननी। तिनकों असत्य दिखाय सत्य श्रद्धान करावनेका प्रयोजन जानना। ऐसैं ही और भी अनेक प्रकारकरि द्रव्यानुयोगविषै व्याख्यानका विधान है। या प्रकार च्यारों अनुयोगके व्याख्यानका विधान कह्या। सो कोई ग्रन्थविषै एक अनुयोगकी, कोई विषै दोयकी, कोई विषै तीन को, कोई विषै च्यारोंकी प्रधानता लिए व्याख्यान हो है। सो जहाँ जैसा सम्भवै, तहाँ तैसा समझ लेना।

अब इन अनुयोगनिविषैं कैसी पद्धतिकी मुख्यता पाईए है, सो कहिए है—

चारों अनुयोगोंमें व्याख्यान की पद्धति

प्रथमानुयोगविषै तो अलकारशास्त्रनिकी वा काव्यादि शास्त्रनि-की पद्धति मुख्य है जातै अलकारादिकते मन रजायमान होय, सूधी बात कहें ऐसा उपयोग लागै नाही जैसा अलकारादि युक्ति सहित कथनते उपयोग लागै। बहुरि परोक्ष बातकों किछू अधिकता-करि निरूपण करिए तो वाका स्वरूप नीके भासै। बहुरि करणानु-योगविषै गणित आदि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातै तहाँ द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाणादिक निरूपण कीजिए है। सो गणित ग्रन्थनिकी आम्नायते ताका सुगम जानपना हो है। बहुरि चरणानु-योगविषै सुभाषित नीतिशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातै यहाँ आचरण करावना है, सो लोकप्रवृत्तिके अनुसार नीतिमार्ग दिखाए वह

आचरण करें। बहुरि द्रव्यानुयोगविषें न्यायशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातें यहाँ निर्णय करनेका प्रयोजन है अर न्यायशास्त्रनिविषें निर्णय करनेका मार्ग दिखाया है। ऐसें इन अनुयोगनिविषें पद्धति मुख्य है। और भी अनेक पद्धित लिए व्याख्यान इनविषें पाईए है।

यहाँ कोऊ कहै—अलकार गणित नीति न्यायका तो ज्ञान पडितनिकै होय, तुच्छबुद्धि समझै नाही तातें सूधा कथन क्यो न किया ?

ताका उत्तर—शास्त्र हैं सो मुख्यपने पडित अर चतुरनिके अभ्यास करने योग्य हैं। सो अलकारादि आम्नाय लिए कथन होय तो तिनका मन लागे। बहुरि जे तुच्छबुद्धि हैं, तिनकों पडित समझाय दें अर जे न समझि सकें, तो तिनको मुखतें सूधा ही कथन कहैं। परन्तु ग्रन्थनिविषें सूधा कथन लिखे विशेषबुद्धि तिनका अभ्यासविषैं विशेष न प्रवर्त्तै। तातैं अलकारादि आम्नाय लिए कथन कीजिए है। ऐसें इन च्यारि अनुयोगनिका निरूपण किया।

बहुरि जिनमतविषें घने शास्त्र तो इन च्यारों अनुयोगनिविषें गर्भित हैं। बहुरि व्याकरण न्याय छन्द कोषादिक शास्त्र वा वैद्यक ज्योतिष मन्त्रादि शास्त्र भी जिनमतविषें पाईए हैं। तिनका कहा प्रयोजन है सो सुनहु—

व्याकरण न्यायादिकका अभ्यास भए अनुयोगरूप शास्त्रनिका अभ्यास होय सकै है। तातैं व्याकरणादि शास्त्र कहे हैं।

कोऊ कहै—भाषारूप सूधा निरूपण करते तो व्याकरणादिकका कहा प्रयोजन था ?

ताका उत्तर—भाषा तो अपभ्रंशरूप अशुद्ध वाणी है। देश देश

विषै और और है। सो महत पुरुष शास्त्रनिविषे ऐसी रचना कैसे करै। बहुरि व्याकरण न्यायादिकरि जैसा यथार्थ सूक्ष्म अर्थ निरूपण हो है तैसा सूधी भाषाविषै होय सकै नाही। तातै व्याकरणादि आम्नायकरि वर्णन किया है। सो अपनी बुद्धि अनुसारि थोरा बहुत इनिका अभ्यासकरि अनुयोगरूप प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यास करना। बहुरि वैद्यकादि चमत्कारतै जिनमतकी प्रभावना होय वा औषधादिक ते उपकार भी बनै। अथवा जे जीव लौकिक कार्यविषै अनुरक्त हैं ते वद्यकादिक चमत्कारते जैनी होय पीछे साँचा धर्म पाय अपना कल्याण करै। इत्यादि प्रयोजन लिए वैद्यकादि शास्त्र कहे हैं। यहाँ इतना है—ए भी जिनशास्त्र है, ऐसा जानि इनका अभ्यासविषै बहुत लगना नाही। जो बहुत बुद्धिते इनिका सहज जानना होय अर इनिको जाने आपकै रागादिक विकार बधते न जानै, तो इनिका भी जानना होहु। अनुयोग शास्त्रवत् ए शास्त्र बहुत कार्यकारी नाही। तातै इनिका अभ्यासका विशेष उद्यम करना युक्त नाही।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसै है तो गणधरादिक इनकी रचना काहेकौं करी ?

ताका उत्तर—पूर्वोक्त किंचित् प्रयोजन जानि इनकी रचना करी। जैसे बहुत धनवान कदाचित् स्तोक कार्यकारी वस्तुका भी संचय करै। बहुरि थोरा धनवान् उन वस्तुनिका संचय करै तो धन तो तहाँ लगि जाय, बहुत कार्यकारी वस्तुका संग्रह काहेते करै। तैसे बहुत बुद्धिमान् गणधरादिक कथंचित् स्तोककार्यकारी वैद्यकादि शास्त्रनिका भी संचय करै। थोरा बुद्धिमान् उनका अभ्यासविषै लगै तो बुद्धि

तो तहाँ लगि जाय, उत्कृष्ट कार्यकारी शास्त्रनिका अभ्यास कैसे करै ? बहुरि जैसे मंदरागी तो पुराणादिविषै शृङ्गारादि निरूपण करै तो भी विकारी न होय, तीव्ररागी तैसे शृङ्गारादि निरूपै तो पाप ही बाँधै। तैसें मदरागी गणधरादिक हैं ते वैद्यकादि शास्त्र निरूपै तो भी विकारी न होंय, तीव्ररागी तिनका अभ्यासविषै लगि जाय तो रागादिक बधाय पापकर्म्मको बाँधै, ऐसै जानना। या प्रकार जैनमतके उपदेशका स्वरूप जानना।

अब इनविषै दोषकल्पना कोई करै है, ताका निराकरण कीजिए है—

प्रथमानुयोग में दोष-कल्पनाका निराकरण

केई जीव कहै हैं--प्रथमानुयोगविषै शृङ्गारादिकका वा सग्रामादिकका बहुत कथन करै, तिनके निमित्ततै रागादिक बधि जाय, तातै ऐसा कथन न करना था वा ऐसा कथन सुनना नाही। ताको कहिए है--कथा कहनी होय तब तो सर्व ही अवस्थाका कथन किया चाहिए। बहुरि जो अलकारादिककरि बधाय कथन करै हैं सो पडितनिके बचन युक्ति लिए ही निकसै।

अर जो तू कहेगा, सम्बन्ध मिलावनेको सामान्य कथन किया होता, बधायकरि कथन काहेको किया ?

ताका उत्तर यहु है—जो परोक्षकथनको बधाय कहे बिना वाका स्वरूप भासै नाही। बहुरि पहलै तो भोग सग्रामादि ऐसे किए, पीछे सर्वका त्यागकरि मुनि भए, इत्यादि चमत्कार तबही भासै जब बधाय कथन कीजिए। बहुरि तू कहै है, ताके निमित्ततै रागादिक बधि जाय।

सो जैसै कोऊ चैत्यालय बनावै, सो वाका तो प्रयोजन तहाँ धर्मकार्य करावनेका है अर कोई पापी तहाँ पापकार्य करै तो चैत्यालय बनावनेवालेका तो दोष नाहीं। तैसै श्रीगुरु पुराणादिविषै शृङ्गारादि वर्णन किए, तहाँ उनका प्रयोजन रागादिक करावनेका तो है नाही, धर्मविषै लगावनेका प्रयोजन है। अर कोई पापी धर्म न करै अर रागादिक ही बधावै, तो श्रीगुरुका कहा दोष है ?

बहुरि जो तू कहै--जो रागादिकका निमित्त होय सो कथन ही न करना था।

ताका उत्तर यहु है—सरागी जीवनिका मन केवल वैराग्य कथनविषै लागै नाहीं। तातै जैसै बालककों पतासाके आश्रय औषधि दीजिए, तैसै सरागीकों भोगादि कथनके आश्रय धर्मविषै रुचि कराईए है।

बहुरि तू कहेगा—ऐसै है तो विरागी पुरुषनिकों तो ऐसे ग्रथनिका अभ्यास करना युक्त नाही।

ताका उत्तर यहु है—जिनकै अन्तरगविषै रागभाव नाही, तिनकै शृङ्गारादि कथन सुनै रागादि उपजै ही नाही। यहु जानै ऐसै ही यहाँ कथन करनेकी पद्धति है।

बहुरि तू कहेगा—जिनकै शृङ्गारादि कथन सुनै रागादि होय आवै, तिनकों तो वैसा कथन सुनना योग्य नाही।

ताका उत्तर यहु है—जहाँ धर्महीका तो प्रयोजन अर जहाँ तहाँ धर्मकों पोषै ऐसे जैनपुराणादिक तिनविषै प्रसग पाय शृङ्गारादिकका कथन किया, ताकों सुनै भी जो बहुत रागी भया तो वह अन्यत्र कहाँ

विरागी होसी, पुराण सुनना छोडि और कार्य भी ऐसा ही करेगा जहाँ बहुत रागादि होय। तातै वाकै भी पुराण सुने थोरा बहुत धर्मबुद्धि होय तो होय। और कार्यनितै यहु कार्य भला ही है।

बहुरि कोई कहै—प्रथमानुयोगविषे अन्य जीवनिकी कहानी है, तातै अपना कहा प्रयोजन सधै है ?

ताको कहिए है—जैसे कामीपुरुषनिकी कथा सुने आपकै भी काम का प्रेम बधै है, तैसे धर्मात्मा पुरुषनिकी कथा सुने आपकै धर्मकी प्रीति विशेष हो है। तातै प्रथमानुयोगका अभ्यास करना योग्य है।

करणानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण

बहुरि केई जीव कहै हैं—करणानुयोगविषै गुणस्थान मार्गणादिक का वा कर्मप्रकृतिनिका कथन किया वा त्रिलोकादिकका कथन किया, सो तिनको जानि लिया 'यहु ऐसै है' 'यहु ऐसे है', यामे अपना कार्य कहा सिद्ध भया ? कै तो भक्ति करिए, कै व्रत दानादिकरिए, कै आत्मानुभवन करिए, इनतें अपना भला होय।

ताको कहिए है—परमेश्वर तो वीतराग हैं। भक्ति किए प्रसन्न होयकरि किछू करते नाही। भक्ति करते मदकषाय हो है, ताका स्वयमेव उत्तम फल हो है। सो करणानुयोगके अभ्यासविषै तिसतै भी अधिक मन्द कषाय होय सकै है, तातै याका फल अति उत्तम हो है। बहुरि व्रतदानादिक तो कषाय घटावनेके बाह्य निमित्तका साधन हैं अर करणानुयोगका अभ्यास किए तहाँ उपयोग लगि जाय, तब रागादिक दूरि होय, सो यहु अंतरंग निमित्तका साधन है। तातै यहु विशेष कार्यकारी है। व्रतादिक धारि अध्ययनादि कीजिए है। बहुरि आत्मानुभव सर्वोत्तम कार्य है। परन्तु सामान्य अनुभवविषै उपयोग

थम्भै नाही अर न थम्भै तब अन्य विकल्प होय, तहाँ करणानुयोगका अभ्यास होय तो तिस विचारविषै उपयोगको लगावै। यहु विचार वर्तमान भी रागादिक घटावै है अर आगामी रागादिक घटावनेका कारण है तातै यहाँ उपयोग लगावना। जीव कर्मादिकके नाना प्रकार करि भेद जाने, तिनविषै रागादिकरनेका प्रयोजन नाही, तातै रागादि बधै नाही। वीतराग होनेका प्रयोजन जहाँ तहाँ प्रगटै है, तातै रागादि मिटावनेको कारण है।

यहाँ कोऊ कहै—कोई तो कथन ऐसा ही है परन्तु द्वीप समुद्रादिकके योजनादि निरूपे तिनमें कहा सिद्धि है ?

ताका उत्तर—तिनको जाने किछू तिनविषै इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय, तातै पूर्वोक्त सिद्धि हो है।

बहुरि वह कहै है—ऐसै है तो जिसतै किछू प्रयोजन नाही ऐसा पाषाणादिकको भी जानै तहाँ इष्ट अनिष्टपनो न मानिए है, सो भी कार्यकारी भया।

ताका उत्तर—सरागी जीव रागादि प्रयोजनविना काहूकों जानने का उद्यम न करै। जो स्वयमेव उनका जानना होय तो अतरग रागादिकका अभिप्रायके वशकरि तहाँते उपयोगको छुडाया ही चाहै है। यहाँ उद्यमकरि द्वीप समुद्रादिकको जानै है तहाँ उपयोग लगावं है। सो रागादि घटे ऐसा कार्य होय। बहुरि पाषाणादिकविषै इस लोकका कोई प्रयोजन भासि जाय तो रागादिक होय आवै। अर द्वीपादिकविषै इस लोकसम्बन्धी कार्य किछू नाही तातै रागादिकका कारण नाही। जो स्वर्गादिककी रचना सुनि तहाँ राग होय तो

परलोकसम्बन्धी होय। ताका कारण पुण्यकों जानै तब पाप छोड़ि पुण्यविषै प्रवर्त्तै, इतना ही नफ़ा होय। बहुरि दीपादिकके जाने यथावत् रचना भासै, तब अन्यमतादिकका कह्या झूठ भासै, सत्य श्रद्धानी होय। बहुरि यथावत् रचना जानने करि भ्रम मिटे उपयोगकी निर्मलता होय, तातै यह अभ्यास कार्यकारी है।

बहुरि केई कहै हैं—करणानुयोगविषै कठिनता घनी, तातै ताका अभ्यासविषै खेद होय।

ताको कहिए है—जो वस्तु शीघ्र जाननेमें आवै, तहाँ उपयोग उलझै नाही अर जानी वस्तुकों बारम्बार जानने का उत्साह होय नाही, तब पापकार्यनिविषै उपयोग लगि जाय। तातै अपनी बुद्धि अनुसारि कठिनताकरि भी जाका अभ्यास होता जानै ताका अभ्यास करना। अर जाका अभ्यास होय ही सकै नाही, ताका कैसै करै? बहुरि तू कहै है—खेद होय सो प्रमादी रहनेमे तो धर्म है नाही। प्रमादतें सुखिया रहिए, तहां तो पाप ही होय। तातै धर्मके अर्थ उद्यम करना ही युक्त है। या विचारि करणानुयोगका अभ्यास करना।

चरणानुयोग मे दोष कल्पना का निराकरण

बहुरि केई जीव ऐसै कहै हैं—चरणानुयोगविषै बाह्य व्रतादि साधनका उपदेश है, सो इनितै किछु सिद्धि नाही। अपने परिणाम निर्मल चाहिए, बाह्य चाहो जैसै प्रवर्त्तो। तातै इस उपदेशतै पराङ्मुख रहै हैं।

तिनकों कहिए हैं—आतमपरिणामनिकै और बाह्य प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जातै छद्मस्थकै क्रिया परिणामपूर्वक हो हैं। कदाचित् बिना परिणाम कोई क्रिया हो है, सो परवशतै हो है। अपनें वशतै उद्यमकरि कार्य करिए अर कहिए परिणाम इस

रूप नाही है, सो यहु भ्रम है। अथवा बाह्य पदार्थका आश्रय पाय परिणाम होय सकै है। तातैं परिणाम मेटनेके अर्थ बाह्यवस्तुका निषेध करना समयसारादिविषै कह्या है। इसही वास्ते रागादिभाव घटे बाह्य ऐसे अनुक्रमतें श्रावक मुनिधर्म होय। अथवा ऐसें श्रावक मुनिधर्म अंगीकार किए पंचम षष्ठमआदि गुणस्थाननिविषै रागादि घटनेरूप परिणामनिकी प्राप्ति होय। ऐसा निरूपण चरणानुयोग-विषै किया। बहुरि जो बाह्य संयमतें किछू सिद्धि न होय, तो सर्वार्थ-सिद्धिके वासी देव सम्यग्दृष्टी बहुतज्ञानी तिनकै तो चौथा गुणस्थान होय अर गृहस्थ श्रावक मनुष्यकै पंचम गुणस्थान होय, सो कारण कहा? बहुरि तीर्थंकरादिक गृहस्थपद छोडि काहेकों संयम ग्रहैं। तातैं यहु नियम है—बाह्य संयम साधनविना परिणाम निर्मल न होय सकै हैं। तातैं बाह्य साधनका विधान जाननेकों चरणानुयोगका अभ्यास अवश्य किया चाहिए।

द्रव्यानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण

बहुरि केई जीव कहैं हैं—जो द्रव्यानुयोगविषै व्रत संयमादि व्यवहारधर्मका हीनपना प्रगट किया है। सम्यग्दृष्टीके विषय भोगा-दिककों निर्जराका कारण कह्या है। इत्यादि कथन सुनि जीव हैं, सो स्वच्छन्द होय पुण्य छोडि पापविषै प्रवर्त्तै, तातैं इनिका वाचना सुनना युक्त नाही। ताको कहिए है—जैसै गर्दभ मिश्री खाए मरै, तो मनुष्य तो मिश्री खाना न छोड़ै। तैसै विपरीतबुद्धि अध्यात्मग्रन्थ सुनि स्वच्छन्द होय, तो विवेकी तो अध्यात्मग्रन्थनिका अभ्यास न छोड़ै। इतना करै—जाकों स्वच्छन्द होता जानै, ताकों जैसे वह

स्वच्छन्द न होय, तैसे उपदेश दे। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनिविषै भी स्वच्छन्द होनेका जहाँ तहाँ निषेध कीजिए है, तातै जो नीके तिनकों सुनै, सो तो स्वछन्द होता नाही। अर एक बात सुनि अपने अभिप्रायते कोऊ स्वच्छन्द होसी, तो ग्रन्थका तो दोष है नाही, उस जीवहीका दोष है। बहुरि जो झूठा दोषकी कल्पनाकरि अध्यात्म-शास्त्रका बाँचना सुनना निषेधिए तो मोक्षमार्गका मूल उपदेश तो तहाँ ही है। ताका निषेध किए मोक्षमार्गका निषेध होय। जैसे मेघ-वर्षा भए बहुत जीवनिका कल्याण होय अर काहूकै उलटा टोटा पड़, तो तिसकी मुख्यताकरि मेघका तो निषेध न करना। तैसे सभाविषै अध्यात्म उपदेश भए बहुत जीवनिको मोक्षमार्गकी प्राप्ति होय अर काहूकै उलटा पाप प्रवर्त्तै, तो तिसकी मुख्यताकरि अध्यात्मशास्त्रनि-का तो निषेध न करना। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनितै कोऊ स्वच्छन्द होय सो तो पहलै भी मिथ्यादृष्टी था, अब भी मिथ्यादृष्टी ही रह्या। इतना ही टोटा पडै, जो सुगति न होय कुगति होय। अर अध्यात्म उपदेश न भए बहुत जीवनिकै मोक्षमार्गकी प्राप्तिका अभाव होय, सो यामें घनें जीवनिका घना बुरा होय। तातै अध्यात्म उपदेशका निषेध न करना।

बहुरि केई जीव कहै हैं—जो द्रव्यानुयोगरूप अध्यात्म उपदेश है, सो उत्कृष्ट है। सो ऊँची दशाको प्राप्त होय, तिनको कार्यकारी है। नीचली दशावालोंको तो व्रत संयमादिकका ही उपदेश देना योग्य है।

ताकों कहिए है—जिनमतविषै तो यहु परिपाटी है, जो पहलै सम्यक्त होय पीछे व्रत होय। सो सम्यक्त स्वपरका श्रद्धान भए होय अर सो

श्रद्धान द्रव्यानुयोगका अभ्यास किए होय। तातैं पहलै द्रव्यानुयोगके अनुसार श्रद्धानकरि सम्यग्दृष्टि होय, पीछै चरणानुयोगके अनुसार व्रतादिक धारि वृती होय। ऐसैं मुख्यपने तो नीचली दशाविषैं ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है, गौणपने जाकौं मोक्षमार्गकी प्राप्ति होती न जानिए, ताकौं पहलै कोई व्रतादिकका उपदेश दीजिए है। तातैं ऊँची दशावालोंको अध्यात्म अभ्यास योग्य है, ऐसा जानि नीचलीदशावालो को तहाँतैं पराङ्मुख होना योग्य नाहीं।

बहुरि जो कहोगे—ऊँचा उपदेशका स्वरूप नीचली दशावालोको भासै नाहीं।

ताका उत्तर यहु है—और तो अनेक प्रकार चतुराई जानै अर यहाँ मूर्खपना प्रगट कीजिए, सो युक्त नाहीं। अभ्यास किए स्वरूप नीके भासै है। अपनी बुद्धि अनुसार थोरा वहुत भासै परन्तु सर्वथा निरुद्यमी होनेको पोषिए, सो तो जिनमार्गका द्वेषी होना है।

बहुरि जो कहोगे, अबार काल निकृष्ट है, तातैं उत्कृष्ट अध्यात्म उपदेशकी मुख्यता न करनी।

ताकों कहिए है—अबार काल साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिककरि सम्यक्तादिक होना अबार मन नाहीं। तातैं आत्मानुभवनादिकके अर्थि द्रव्यानुयोगका अवश्य अभ्यास करना। सोई षट्पाहुडविषैं (मोक्षपाहुडमें) कह्या है—

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पाझाऊण जंति सुरलोए।
लोयंते देवत्तं यत्थ चुया णिव्वुदिं जंति ॥७७॥

याका अर्थ—अबहू त्रिकरणकरि शुद्ध जीव आत्माकों ध्यायकरि

सुरलोकविषै प्राप्त हो हैं वा लौकान्तिकविषै देवपणो पावै हैं। तहाँ तें च्युत होय मोक्ष जाय हैं। बहुरि[1] तातैं इस कालविषै भी द्रव्यानुयोगका उपदेश मुख्य कहिए।

बहुरि कोई कहै है—द्रव्यानुयोगविषै अध्यात्मशास्त्र हैं, तहाँ स्वपरभेद विज्ञानादिकका उपदेश दिया सो तो कार्यकारी भी घना अर समझिमें भी शीघ्र आवै परन्तु द्रव्यगुणपर्यायादिकका वा प्रमाण नय आदिक का वा अन्यमतके कहे तत्वादिकके निराकरणका कथन किया, सो तिनिका अभ्यासतें विकल्प विशेष होय। बहुत प्रयास किए जाननेमें आवै। तातैं इनिका अभ्यास न करना। तिनिको कहिए है—

सामान्य जाननेतें विशेष जानना बलवान् है। ज्यों-ज्यों विशेष जानै त्यों-त्यों वस्तुस्वभाव निर्मल भासै, श्रद्धान दृढ होय, रागादि घटै तातैं तिस अभ्यासविषै प्रवर्त्तना योग्य है। ऐसैं च्यारों अनुयोगनिविषै दोषकल्पनाकरि अभ्यासतैं पराङ्मुख होना योग्य नाही।

बहुरि व्याकरण न्यायादिक शास्त्र हैं, तिनका भी थोरा बहुत अभ्यास करना। जातैं इनिका ज्ञान बिना बड़े शास्त्रनिका अर्थ भासै नाहीं। बहुरि वस्तुका भी स्वरूप इनकी पद्धति जानें जैसा भासै, तैसा भाषादिककरि भासै नाहीं। तातैं परम्परा कार्यकारी जानि इन का भी अभ्यास करना परन्तु इनहीविषै फंसि न जाना। किछू इनका अभ्यासकरि प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यासविषै प्रवर्त्तना। बहुरि

1. यहाँ 'बहुरि' के आगे ३—४ लाइन का स्थान खरडाप्रति में छोड़ा गया है जिससे ज्ञात होता है कि मल्लजी वहाँ कुछ और भी लिखना चाहते थे किन्तु लिख नहीं सके।

वैद्यकादि शास्त्र हैं, तिनतै मोक्षमार्गविषै किछू प्रयोजन ही नाहीं। तातै कोई व्यवहारधर्मका अभिप्रायतै बिनाखेद इनका अभ्यास होय जाय तो उपकारादि करना, पापरूप न प्रवर्त्तना। अर इनका अभ्यास न होय तो मत होहु, किछू बिगार नाहीं। ऐसै जिनमतके शास्त्र निर्दोष जानि तिनका उपदेश मानना।

अपेक्षा ज्ञान के अभाव से आगम में दिखाई देने वाले परस्पर विरोध का निराकरण।

अब शास्त्रनिविषै अपेक्षादिकको न जानै परस्पर विरोध भासै, ताका निराकरण कीजिए है। प्रथमादि अनुयोगनिकी आम्नायके अनुसारि जहाँ जैसै कथन किया होय, तहाँ तैसै जानि लेना। और अनुयोग का कथनको और अनुयोगका कथनतै अन्यथा जानि सन्देह न करना। जैसै कह्यो तो निर्मल सम्यग्दृष्टीहोकै शंका कांक्षा विचिकित्साका अभाव कह्या, कही भय का आठवाँ गुणस्थान पर्यन्त, लोभ का दशमा पर्यन्त, जुगुप्साका आठवाँ पर्यन्त उदय कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। श्रद्धानपूर्वक तीव्र शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव भया अथवा मुख्यपनै सम्यग्दृष्टी शंकादि न करै, तिस अपेक्षा चरणानुयोगविषै शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मशक्ति अपेक्षा भयादिकका उदय अष्टमादि गुणस्थान पर्यन्त पाईए है। तातैं करणानुयोगविषै तहाँ पर्यन्त तिनका सद्भाव कह्या, ऐसै ही अन्यत्र जानना। पूर्वै अनुयोगनिका उपदेशविधानविषै कई उदाहरण कहे हैं, ते जानने अथवा अपनी बुद्धितै समझि लेने।

बहुरि एक ही अनुयोगविषै विविक्षाके वशतै अनेकरूप कथन करिए है। जैसे करणानुयोगविषै प्रमादनिका सप्तम गुणस्थानविषै

अभाव कह्या, तहाँ कषायादिक प्रमाद के भेद कहे। बहुरि तहाँ ही कषायादिकका सद्भाव दशमादि गुणस्थान पर्यन्त कह्या। तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै यहाँ प्रमादनिविषै तो जे शुभ अशुभ भावनि का अभिप्राय लिए कषायादिक होय तिनका ग्रहण है। सो सप्तम गुणस्थानविषै ऐसा अभिप्राय दूर भया, तातै तिनिका तहाँ अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मादिभावनिकी अपेक्षा तिनहीका दशमादि गुणस्थान पर्यन्त सद्भाव कह्या है।

बहुरि चरणानुयोगविषै चोरी परस्त्री आदि सप्त व्यसनका त्याग प्रथम प्रतिमाविषै कह्या, बहुरि तहाँ ही तिनका त्याग द्वितीय प्रतिमा-विषै कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै सप्तव्यसनविषै तो चोरी आदि कार्य ऐसे ग्रहे हैं, जिनकरि दंडादिक पावै, लोकविषै अतिनिन्दा होय। बहुरि व्रतनिविषै चोरी आदि का त्याग करनेयोग्य ऐसे कहे हैं, जे गृहस्थ धर्मविषै विरुद्ध होय वा किंचित् लोकनिद्य होय, ऐसा अर्थ जानना। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि नाना भावनिकी सापेक्षतै एकही भावकों अन्य अन्य प्रकार निरूपण कीजिए है। जैसै कही तो महाव्रतादिक चारित्र-के भेद कहे, कही महाव्रतादि होते भी द्रव्यलिगीको असयमी कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै सम्यग्ज्ञानसहित महाव्रता-दिक तो चारित्र हैं अर अज्ञानपूर्वक व्रतादिक भए भी असयमी ही है।

बहुरि जैसै पंच मिथ्यात्वनिविषै भी विनय कह्या अर बारह प्रकार तपनिविषै भी विनय कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातैं विनय करने योग्य नाहीं तिनका भी विनय करि धर्म मानना सो तो विनय मिथ्यात्व है अर धर्म पद्धतिकरि जे विनय करने

योग्य हैं, तिनका यथायोग्य विनय करना, सो विनय तप है। बहुरि जैसे कही तो अभिमानकी निन्दा करी, कहीं प्रशसा करी, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै मानकषायते आपकों ऊँचा मनावनेके अर्थि विनयादि न करै, सो अभिमान तो निंद्य ही है अर निर्लोभपनातं दीनता आदि न करै, सो अभिमान प्रशसा योग्य है।

बहुरि जैसै कही चतुराई की निन्दा करी, कही प्रशसा करी, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै मायाकषायतें काहूका ठिगनेके अर्थ चतुराई कीजिए, सो तो निंद्य ही है अर विवेक लिए यथासम्भव कार्य करनेविषे जो चतुराई होय सो श्लाघ्य ही है, ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि एक ही भावकी कही तो तिसते उत्कृष्ट भावकी अपेक्षाकरि निन्दा करी होय अर कही तिसतै हीनभावकी अपेक्षकरि प्रशंसा करी होय, तहाँ विरुद्ध न जानना। जैसे किसी शुभक्रियाकी जहाँ निन्दा करी होय, तहाँ तो तिसतै ऊँची शुभक्रिया वा शुद्धभाव तिनकी अपेक्षा जाननी अर जहाँ प्रशमा करी होय, तहाँ तिसतै नीची क्रिया वा अशुभक्रिया तिनकी अपेक्षा जाननी, ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि ऐसै ही काहू जीवकी ऊंचे जीवकी अपेक्षा निन्दा करी होय, तहाँ सर्वथा निन्दा न जाननी। काहूकी नीचे जीवकी अपेक्षा प्रशसा करी होय, तो सर्वथा प्रशसा न जाननी। यथासम्भव वाका गुण दोष जानि लेना, ऐसै ही अन्य व्याख्यान जिस अपेक्षा लिए किया होय, तिस अपेक्षा वाका अर्थ समझना।

बहुरि शास्त्रविषै एक ही शब्दका कही तो कोई अर्थ हो है, कहीं कोई अर्थ हो है, तहाँ प्रकरण पहचानि वाका सम्भवता अर्थ जानना।

जैसें मोक्षमार्गविषै सम्यग्दर्शन कह्या तहाँ दर्शन शब्दका अर्थ श्रद्धान है अर उपयोग वर्णनविषै दर्शन शब्दका अर्थ वस्तु का सामान्य स्वरूप ग्रहण मात्र है अर इन्द्रियवर्णनविषै दर्शन शब्दका अर्थ नेत्रकरि देखनें मात्र है। बहुरि जैसे सूक्ष्म बादरका अर्थ वस्तुनिका प्रमाणादिक कथनविषै छोटा प्रमाण लिए होय, ताका नाम सूक्ष्म अर बडा प्रमाण लिए होय ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ होय। अर पुद्गल स्कंधादिका कथनविषै इन्द्रियगम्य न होय सो सूक्ष्म, इन्द्रियगम्य होय सो बादर, ऐसा अर्थ है। जीवादिकका कथनविषै ऋद्धि आदिका निमित्त विना स्वयमेव रुकै नाही ताका नाम सूक्ष्म, रुकै ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। वस्त्रादिकका कथनविषै महीन का नाम सूक्ष्म, मोटाका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। [करणानुयोगके कथनविषै पुद्गल-स्कंधके निमित्तते रुकै नाही ताका नाम सूक्ष्म है अर रुक जाय ताका नाम बादर है]। बहुरि प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ लोकव्यवहारविषै तो इन्द्रियकरि जाननेका नाम प्रत्यक्ष है, प्रमाणभेदनिविषै स्पष्ट प्रति-भासका नाम प्रत्यक्ष है, आत्मानुभवनादिविषै आपविषै अवस्था होय ताका नाम प्रत्यक्ष है। बहुरि जैसे मिथ्यादृष्टीकै अज्ञान कह्या तहाँ सर्वथा ज्ञानका अभावतें न जानना, सम्यग्ज्ञानके अभावतें अज्ञान कह्या है। बहुरि जैसे उदीरणा शब्दका अर्थ जहाँ देवादिककै उदीरणा न कही, तहाँ तो अन्य निमित्ततें मरण होय ताका नाम उदीरणा है अर दश करणनिका कथनविषै उदीरणा करण देवायुकै भी कह्या, तहाँ ऊपरिके निषेकनिका द्रव्य उदयावलीविषै दीजिए ताका नाम उदी-

रणा है। ऐसें ही अन्यत्र यथासम्भव अथ जानना। बहुरि एक ही शब्दका पूर्व शब्द जोड़ें अनेक प्रकार अर्थ हो है वा उस ही शब्दके अनेक अर्थ हैं। तहाँ जैसा सम्भवै तैसा अर्थ जानना। जैसें 'जीतै' ताका नाम 'जिन' है परन्तु धर्मपद्धतिविषै कर्मशत्रुकों जीतै, ताका नाम 'जिन' जानना। यहाँ कर्मशत्रु शब्दकों पूर्वें जोड़े जो अर्थ होय सो ग्रहण किया, अन्य न किया। बहुरि जैसें 'प्राण धारै' ताका नाम 'जीव' है। जहाँ जीवनमरणका व्यवहार अपेक्षा कथन होय, तहां तौ इन्द्रियादि प्राणधारै सो जीव है। बहुरि द्रव्यादिकका निश्चय अपेक्षा निरूपण होय तहाँ चैतन्यप्राणको धारै सो जीव है। बहुरि जैसें समय शब्दके अनेक अर्थ हैं तहां आत्माका नाम समय है, सर्व पदार्थका नाम समय है, कालका नाम समय है, समयमात्र काल का नाम समय है, शास्त्रका नाम समय है, मतका नाम समय है। ऐसें अनेक अर्थनिविषै जैसा जहां सम्भवै तैसा तहाँ अर्थ जानि लेना। बहुरि कहीं तो अर्थ अपेक्षा नामादिक कहिए है, कही रूढि अपेक्षा नामादिक कहिए है। जहाँ रूढि अपेक्षा नामादिक लिख्या होय, तहाँ वाका शब्दार्थ न ग्रहण करना। वाका रूढिवाद अर्थ होय सो ही ग्रहण करना। जैसे सम्यक्तादिककों धर्म कह्या तहाँ तो यहु जीवकों उत्तमस्थानविषै धारै है, तातैं याका नाम सार्थक है। बहुरि धर्मद्रव्य-का नाम धर्म कह्या तहाँ रूढि नाम है, याका अक्षरार्थ न ग्रहण करना। इस नाम धारक एक वस्तु है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि कही जो शब्दका अर्थ होता होई सो तो न ग्रहण करना अर तहाँ जो प्रयोजनभूत अर्थ होय सो ग्रहण करना।

जैसें कहीं किसीका अभाव कह्या होय अर तहाँ किंचित् सद्भाव पाईए, तो तहाँ सर्वथा अभाव ग्रहण करना। किंचित् सद्भावकों न गिणि अभाव कह्या है, ऐसा अर्थ जानना। सम्यग्दृष्टीके रागादिकका अभाव कह्या, तहाँ ऐसे अर्थ जानना। बहुरि नोकषायका अर्थ तो यहु—'कषायका निषेध' सो तो अर्थ न ग्रहण करना अर यहाँ क्रोधादि सारिखे ए कषाय नाहीं, किंचित् कषाय हैं तातै नोकषाय हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसे कही कोई युक्तिकरि किया होय, तहाँ प्रयोजन ग्रहण करना। **समयसारका कलशाविषै**[1] यहु कहा—"धोबीका दृष्टान्तवत् परभावका त्यागकी दृष्टि यावत् प्रवृत्तिकों न प्राप्त भई तावत् यहु अनुभूति प्रगट भई"। सो यहाँ यहु प्रयोजन है—परभावका त्याग होते ही अनुभूति प्रगट हो है। लोकविषै काहूके आवते ही कोई कार्य भया होय, तहाँ ऐसे कहिए—"जो यहु आया ही नाही अर यहु कार्य होय गया।" ऐसा ही यहाँ प्रयोजन ग्रहण करना। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसे कही प्रमाणादिक किछू कह्या होय, सोई तहाँ न मानि लेना, तहाँ प्रयोजन होय सो जानना। **ज्ञानार्णवविषै** ऐसा कह्या है-"अवार दोय तीन सत्पुरुष हैं[2]।" सो नियमते इतने ही नाहीं। यहाँ

1. अवतरति न यावद्वृत्ति मत्यन्तवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टि: ।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता, स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ।।
(जीवाजीव अ० कलशा २९)

2 दु:प्रज्ञाबललुप्तवस्तुनिचया विज्ञानशून्यामया: ।
विद्यन्ते प्रतिमन्दिर निजनिजस्वार्थोद्यता देहिन. ।।

'थोरे हैं' ऐसा प्रयोजन जानना। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। इसही रीति लिए और भी अनेक प्रकार शब्दनिके अर्थ हो हैं, तिनकों यथासम्भव जाननें। विपरीत अर्थ न जानना।

बहुरि जो उपदेश होय, ताको यथार्थ पहचानि जो अपने योग्य उपदेश होय ताका अंगीकार करना। जैसे वैद्यकशास्त्रनिविषै अनेक औषधि कही हैं, तिनकों जानै अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना रोग दूरि होय। आपकै शीतका रोग होय तो उष्ण औषधिका ही ग्रहण करै, शीतल औषधिका ग्रहण न करै, यहु औषधि औरनिकों कार्यकारी है, ऐसा जानै। तैसै जैनशास्त्रविषै अनेक उपदेश हैं, तिनकों जानै अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना विकार दूरि होय। आपकै जो विकार होय ताका निषेध करनहारा उपदेशकों ग्रहै, तिसका पोषक उपदेशको न ग्रहै। यहु उपदेश औरनिको कार्यकारी है, ऐसा जानै। यहाँ उदाहरण कहिए है— जैसे शास्त्रविषै कहीं निश्चयपोषक उपदेश है, कही व्यवहार पोषक उपदेश है। तहाँ आपकै व्यवहार का आधिक्य होय तो निश्चय पोषक उपदेशका ग्रहण करि यथावत् प्रवर्त्ते अर आपकै निश्चयका आधिक्य होय तो व्यवहारपोषक उपदेशका ग्रहणकरि यथावत् प्रवर्त्ते। बहुरि पूर्वै तो व्यवहार श्रद्धानतें आत्मज्ञानतें भ्रष्ट होय रह्या था, पीछे व्यवहार उपदेशही-की मुख्यताकरि आत्मज्ञानका उद्यम न करै अथवा पूर्वै तो निश्चय-श्रद्धानतै वैराग्यतै भ्रष्ट होय स्वच्छन्द होय रह्या था, पीछे निश्चय

आनन्दामृतसिन्धुशीकरचयैर्निर्वाप्य जन्मज्वरं

ये मुक्तेर्वदनेन्दुवीक्षण परास्ते सन्ति द्वित्रा यदि ।।२४।।

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ ८८

उपदेशहीकी मुख्यताकरि विषयकषाय पोषै। ऐसे विपरीत उपदेश ग्रहे बुरा ही होय। बहुरि जैसे आत्मानुशासनविषै ऐसा कह्या—"जो तू गुणवान् होय दोष क्यों लगावै है। दोषवान् होना था तो दोषमय ही क्यों न भया[1]।" सो जो जीव आप तो गुणवान् होय अर कोई दोष लगता होय तहाँ तिस दोष दूर करनेके अर्थि तिस उपदेशकों अंगीकार करना। बहुरि आप तो दोषवान् है अर इस उपदेशका ग्रहनकरि गुणवान् पुरुषनिको नीचा दिखावै तो बुरा ही होय। सर्वदोषमय होनेतें तो किंचित् दोषरूप होना बुरा नाहीं है तातैं तुझतें तो वह भला है। बहुरि यहाँ यहु कह्या। "तू दोषमय ही क्यों न भया" सो यहु तर्क करी है। किछू सर्व दोषमय होनेके अर्थि यहु उपदेश नाहीं है। बहुरि जो गुणवानकैं किंचित् दोष भए भी निन्दा है तो सर्वदोषरहित तो सिद्ध हैं, नीचली दशाविषै तो कोई गुण कोई दोष होय ही होय।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसै है, तो "मुनिलिंग धारि किंचित् परिग्रह राखै तो भी निगोद जाय[2]" ऐसा षट्पाहुड विषै कैसैं कह्या है?

---

1. हे चन्द्रमः किमिति लाञ्छनवानभूस्त्व
   तद्वान् भवेः किमिति तन्मय एव नाभूः।
   किं ज्योत्स्नया मलमलं तव घोषयन्त्या
   स्वर्भानुवन्ननु तथा सति नाऽसि लक्ष्यः ॥ १४१ ॥
2. जह जायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि हत्तेसु।
   जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोय ॥ १८ ॥

(सूत्रपाहुड)

ताका उत्तर—ऊँची पदवी धारि तिस पदविषै न सम्भवता नीचा कार्य करै तो प्रतिज्ञा भंगादि होनेतै महादोष लागै है अर नीची पदवीविषै तहाँ सम्भवता गुणदोष होय तो होय, तहाँ वाका दोष ग्रहण करना योग्य नाहीं ऐसा जानना।

बहुरि **उपदेशसिद्धान्तरत्नमालाविषै** कह्या—"आज्ञा अनुसार उपदेश देनेवालेका क्रोध भी क्षमाका भंडार है [1]।" सो यहु उपदेश वक्ताका ग्रहवा योग्य नाहीं। इस उपदेशतै वक्ता क्रोध किया करै तो वाका बुरा ही होय। यहु उपदेश श्रोतानिका ग्रहवा योग्य है। कदाचित् वक्ता क्रोधकरिकै भी सांचा उपदेश दे तो श्रोता गुण ही मानै। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसे काहूकै अतिशीताग रोग होय, ताके अर्थ अति उष्ण रसादिक औषधि कही हैं, तिस औषधि को जाकै दाह होय वा तुच्छ शीत होय सो ग्रहण करै तो दुःख ही पावै। तैसैं काहूकै कोई कार्यकी अतिमुख्यता होय, ताके अर्थ तिसके निषेधका अति खीचकरि उपदेश दिया होय, ताको जाके तिस कार्यकी मुख्यता न होय वा थोरी मुख्यता होय सो ग्रहण करै तो बुरा ही होय। यहां उदाहरण—जैसैं काहूकै शास्त्राभ्यासकी अतिमुख्यता अर आत्मानुभवका उद्यम ही नाहीं, ताके अर्थि बहुत शास्त्राभ्यास निषेध किया। बहुरि जाकै शास्त्राभ्यास नाहीं वा थोरा शास्त्राभ्यास है सो जीव तिस उपदेशतैं शास्त्राभ्यास छोडै अर आत्मानुभवविषै उपयोग रहै नाहीं, तब वाका तो बुरा ही होय। बहुरि जैसे काहूकै यज्ञ स्नानादिककरि हिंसातै धर्म माननेकी मुख्यता है, ताके अर्थ "जो पृथ्वी उलटै तो भी हिंसा

1 रोसोवि खमाकोसो सुत्तं भासत जस्सणधणस्य।
उस्सुत्तेण खमाविय दोस महामोहआवासो ॥१४॥

किए पुण्यफल न होय", ऐसा उपदेश दिया। बहुरि जो जीव पूजनादि कार्यनिकरि किंचित् हिंसा लगावें अर बहुत पुण्य उपजावें, सो जीव इस उपदेशतें पूजनादि कार्य छोडे अर हिंसारहित सामायिकादि धर्मविषै उपयोग लागै नाहीं, तब वाका तो बुरा ही होय। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसें कोई औषधि गुणकारी है परन्तु आपकै यावत् तिस औषधितें हित होय, तावत् तिसका ग्रहण करै। जो शीत मिटे भी उष्ण औषधिका सेवन किया ही करै तो उल्टा रोग होय। तैसे कोई धर्म कार्य है परन्तु आपकै यावत् तिस धर्मकार्यतें हित होय तावत् तिसका ग्रहण करै। जो ऊँची दशा होतें नीची दशा सम्बन्धी धर्मका सेवनविषै लागै तो उल्टा विकार ही होय। यहाँ उदाहरण—जैसें पाप मेटनेके अर्थि प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य कहे, बहुरि आत्मानुभव होतें प्रतिक्रमणादिकका विकल्प करै तो उल्टा विकार बधै, याहीतें **समयसार** विषै प्रतिक्रमणादिककों विष कह्या है। बहुरि जैसें अव्रती-के करने योग्य प्रभावनादि धर्मकार्य कहे, तिनकों व्रती होयकरि करै तो पाप ही बाँधै। व्यापारादि आरम्भ छोडि चैत्यालयादि कार्यनिका अधिकारी होय सो कैसें बनै ? ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसें पाकादिक औषधि पुष्टकारी हैं परन्तु ज्वरवान् ग्रहण करै तो महादोष उपजै। तैसें ऊँचा धर्म बहुत भला है परन्तु अपने विकारभाव दूरि न होय अर ऊँचा धर्म ग्रहै तो महादोष उपजै। यहाँ उदाहरण—जैसें अपना अशुभविकार भी न छूट्या अर निर्विकल्प दशाकों अंगीकार करै तो उल्टा विकार बधै। बहुरि

जैसें भोजनादि विषयनिविषैं आसक्त होय अर आरम्भ त्यागादि धर्मकों अंगीकार करै तो दोष ही उपजै। बहुरि जैसें व्यापारादि करनेका विकार तो न छूटै अर त्यागका भेषरूप धर्म अगीकार करै तो महादोष उपजै। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

याही प्रकार और भी साँचा विचारतें उपेदेशकों यथार्थ जानि अंगीकार करना। बहुत विस्तार कहाँ ताईं कहिए। अपने सम्यग्ज्ञान भए आपहीकों यथार्थ भासै। उपदेश तो वचनात्मक है। बहुरि वचनकरि अनेक अर्थ युगपत् कहे जाते नाही। तातैं उपदेश तो एक ही अर्थकी मुख्यता लिए हो है। बहुरि जिस अर्थका जहाँ वर्णन है, तहाँ तिसहीकी मुख्यता है। दूसरे अर्थकी तहाँ ही मुख्यता करै तो दोऊ उपदेश दृढ न होंय। तातैं उपदेशविषै एक अर्थकों दृढ करै। परन्तु सर्व जिनमतका चिन्ह स्याद्वाद है सो 'स्यात्' पदका अर्थ 'कथचित्' है। तातैं जो उपदेश होय ताको सर्वथा न जानि लेना। उपदेशका अर्थकों जानि तहाँ इतना विचार करना, यहु उपदेश किस प्रकार है, किस प्रयोजन लिए है, किस जीवकों कार्यकारी है ? इत्यादि विचारकरि तिसका यथार्थ अर्थ ग्रहण करै, पीछें अपनी दशा देखै, जो उपदेश जैसें आपकों कार्यकारी होय तिसकों तैसे आप अगीकार करै अर जो उपदेश जानने योग्य ही होय तो ताकों यथार्थ जानि ले। ऐसें उपदेश के फलकों पावै।

यहाँ कोई कहै—जो तुच्छ बुद्धि इतना विचार न करि सकै सो कहा करै ?

ताका उत्तर—जैसे व्यापारी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमें

समझै सो थोरा वा बहुत व्यापार करै परन्तु नफ़ा टोटाका ज्ञान ता अवश्य चाहिए। तैसे विवेकी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमें समझै सो थोरा वा बहुत उपदेशकों ग्रहै परन्तु मुझकों यहु कार्यकारी है, यहु कार्यकारी नाही—इतना तो ज्ञान अवश्य चाहिए। सो कार्य तो इतना है—यथार्थ श्रद्धानज्ञानकरि रागादि घटावना। सो यहु कार्य अपने सधै, सोई उपदेशका प्रयोजन ग्रहै। विशेष ज्ञान न होय तो प्रयोजनकों तो भूलै नाही, यहु तो सावधानी अवश्य चाहिए। जिसमें अपना हितकी हानि होय, तैसे उपदेशका अर्थ समझना योग्य नाही। या प्रकार स्याद्वाददृष्टि लिए जैनशास्त्रनिका अभ्यास किए अपना कल्याण हो है।

यहाँ कोई प्रश्न करै—जहाँ अन्य अन्य प्रकार सम्भवै, तहाँ तो स्याद्वाद सम्भवै। बहुरि एक ही प्रकारकरि शास्त्रनिविषै परस्पर विरुद्ध भासै तहाँ कहा करिए? जैसें प्रथमानुयोगविषै एक तीर्थंकरकी साथि हजारों मुक्ति गए बताए। करणनुयोगविषै छह महीना आठ समयविषैं छहसै आठ जीव मुक्ति जांय—ऐसा नियम किया। प्रथमानुयोगविषै ऐसा कथन किया—देव दवाँगना उपजि पीछे मरि साथ ही मनुष्यादि पर्यायविषै उपजै। करणानुयोगविषै देवका सागरों प्रमाण देवांगनाका पल्यो प्रमाण आयु कह्या। इत्यादि विधि कैसें मिलै?

ताका उत्तर—करणानुयोगविषै कथन है, सो तो तारतम्य लिएं है। अन्य अनुयोगविषैंकथन प्रयोजन अनुसार है। तातैं करणानुयोगका कथन तो जंसे किया है तैसे ही है। औरनिका कथनकी जैसे विधि मिलै, तैसे मिलाय लेनी। हजारो मुनि तीर्थंकरकी साथि मुक्ति गए

बताए, तहाँ यहु जानना—एक ही काल इतने मुक्ति गए नाही। जहाँ तीर्थंकर गमनादि क्रिया मेटि स्थिर भए, तहाँ तिनको साथ इतने मुनि तिष्ठे, बहुरि मुक्ति आगे पीछें गए। ऐसैं प्रथमानुयोग करणानुयोगका विरोध दूरि हो है। बहुरि देव देवांगना साथि उपजे, पीछे देवांगना चयकरि बीचमें अन्य पर्याय धरें, तिनका प्रयोजन न जानि कथन न किया। पीछे वह साथि मनुष्य पर्यायविषै उपजे, ऐसैं विधि मिलाए विरोध दूरि हो है। ऐसैं ही अन्यत्र विधि मिलाय लेनी।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसैं कथननिविषै भी कोई प्रकार विधि मिलै परन्तु कही नेमिनाथ स्वामीका गौरीपुरविषै कहीं द्वारावतीविषै जन्म कह्या, रामचन्द्रादिकको कथा अन्य अन्य प्रकार लिखी इत्यादि। एकेन्द्रियादिक को कही सासादन गुणस्थान लिख्या, कही न लिख्या इत्यादि इन कथननिकी विधि कैसें मिलै ?

ताका उत्तर—ऐसें विरोध लिए कथन कालदोषतै भए हैं। इस कालविषै प्रत्यक्ष ज्ञानी वा बहुश्रुतनिका तो अभाव भया अर स्तोकबुद्धि ग्रन्थ करनेके अधिकारी भए। तिनकै भ्रमतै कोई अर्थ अन्यथा भासै ताकों तैसें लिखै अथवा इस कालविषै केई जैनमतविषैं भी कषायी भए हैं सो तिननें कोई कारण पाय अन्यथा कथन लिख्या है। ऐसैं अन्यथा कथन भया, तातैं जैनशास्त्रनिविषै विरोध भासने लागा। जहाँ विरोध भासै तहाँ इतना करना कि इस कथन करनेवाले बहुत प्रमाणीक हैं कि इस कथन करनेवाले बहुत प्रमाणीक हैं। ऐसा विचारकरि बड़े आचार्यादिकनिका कह्या कथन प्रमाण करना। बहुरि जिनमतके बहुत शास्त्र हैं तिनकी आम्नाय मिलावनी। जो परम्परा-

आम्नायतें मिलै, सो कथन प्रमाण करना। ऐसें विचार किए भी सत्य असत्यका निर्णय न होय सकै, तो जैसे केवलीकों भास्या है तैसे प्रमाण है, ऐसैं मानि लेना। जातै देवादिकका वा तत्वनिका निर्द्धार भए विना तो मोक्षमार्ग होय नाही। तिनिका तो निर्द्धार भी होय सकै है, सो कोई इनका स्वरूप विरुद्ध कहै तो आपहीको भासि जाय। बहुरि अन्य कथनका निर्द्धार न होय वा सशयादि रहै वा अन्यथा भी जानपना होय जाय अर केवलीका कह्या प्रमाण है ऐसा श्रद्धान रहै तो मोक्षमार्गविषै विघ्न नाही, ऐसा जानना।

यहाँ कोई तर्क करै—जैसें नाना प्रकार कथन जिनमतविषै कह्या, तैसे अन्यमतविषै भी कथन पाइए है। सो तुम्हारे मतके कथनका तो तुम जिस तिस प्रकार स्थापन किया, अन्यमतविषै ऐसे कथनको तुम दोष लगावो हो, सो यहु तुम्हारे रागद्वेष है।

ताका समाधान—कथन तो नाना प्रकार होय अर प्रयोजन एकहीको पोषै तो कोई दोष है नाही। अर कही कोई प्रयोजन पोषै, कही कोई प्रयोजन पोषै तो दोष ही है। सो जिनमतविषै तो एक प्रयोजन रागादि मेटनेका है, सो कही बहुत रागादि छुड़ाय थोडा रागादि करावनेका प्रयोजन पोष्या है, कही सर्व रागादि मिटावनेंका प्रयोजन पोष्या है परन्तु रागादि बधावने का प्रयोजन कही भी नाही तातै जिनमतका कथन सर्व निर्दोष है। अर अन्यमतविषै कही रागादि मिटावनेका प्रयोजन लिए कथन करै, कही रागादि बधावनेका प्रयोजन लिए कथन करै, ऐसैंही और भी प्रयोजनकी विरुद्धता लिए कथन करें हैं तातै अन्यमतका कथन सदोष है। लोकविषै भी एक प्रयोजन

को पोषते नाना वचन कहै, ताकों प्रमाणीक कहिए है अर प्रयोजन और और पोषती बातैं करै, ताकों बावला कहिए है। बहुरि जिनमतविषैं नाना प्रकार कथन है सो जुदी जुदी अपेक्षा लिए है, तहाँ दोष नाहीं। अन्यमतविषै एक ही अपेक्षा लिए अन्य अन्य कथन करै तहाँ दोष है। जैसें जिनदेवकै वीतरागभाव है अर समवसरणादि विभूति भी पाइए है, तहाँ विरोध नाही। समवसरणादि विभूति की रचना इन्द्रादिक करै हैं, इनकै तिसविषै रागादिक नाही, तातै दोऊ बात सम्भवै हैं। अर अन्यमतविषै ईश्वरकों साक्षीभूत वीतराग भी कहैं अर तिसहीकरि किए काम क्रोधादि भाव निरूपण करै, सो एक आत्मा ही कै वीतरागपनों अर काम क्रोधादि भाव कैसे सम्भवै ? ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कालदोषते जिनमतविषैं एकही प्रकारकरि कोई कथन विरुद्ध लिख्या है, सो यहु तुच्छ बुद्धीनिकी भूलि है, किछू मतविषै दोष नाही। सो भी जिनमतका अतिशय इतना है कि प्रमाण विरुद्ध कथन कोई कर सकै नाहीं। कहीं सौरीपुरविषैं कही द्वारावतीविषैं नेमिनाथस्वामीका जन्म लिख्या है, सो काठै ही होहु परन्तु नगरविषैं जन्म होना प्रमाणविरुद्ध नाहीं। अब भी होता दीसै है।

बहुरि अन्यमतविषैं सर्वज्ञादिक यथार्थ ज्ञानीके किए ग्रन्थ बतावै, बहुरि तिनिविषै परस्पर विरुद्ध भासै। कही तो बालब्रह्मचारीकी प्रशंसा करैं, कहीं कहैं **"पुत्र बिना गति हो होय नाहीं"** सो दोऊ साँचा कैसें होय। सो ऐसे कथन तहाँ बहुत पाइए हैं। बहुरि प्रमाणविरुद्ध

कथन तिनविषै पाइए हैं। जैसै वीर्य मुखविषै पडनेते मछलीकै पुत्र हूवो, सो ऐसैं अबार काहूकै होता दीसै नाही, अनुमानतें मिलै नाही। सो ऐसे भी कथन बहुत पाइए हैं। सो यहाँ सर्वज्ञादिककी भूलि मानिए सो तो वे कैसै भूलैं अर विरुद्ध कथन माननेमें आवै नाही, तातै तिनके मतविषै दोष ठहराइए है। ऐसा जानि एक जिनमत ही का उपदेश ग्रहन करने योग्य है।

तहाँ प्रथमानुयोगादिकका अभ्यास करना। तहाँ पहिलै याका अभ्यास करना, पीछे याका करना, ऐसा नियम नाही। अपने परिणाम-निकी अवस्था देखि जिसके अभ्यासतें अपने धर्मविषै प्रवृत्ति होय, तिसहीका अभ्यास करना। अथवा कदाचित् किसी शास्त्र का अभ्यास करै, कदाचित् किसी शास्त्रका अभ्यास करै। बहुरि जसे रोजनामाविषै तो अनेक रकम जहाँ तहाँ लिखी हैं, तिनिको खाते मे ठीक खतावं तो लेना देनाका निश्चय होय तैसै शास्त्रनिविषै तो अनेक प्रकार उपदेश जहाँ तहाँ दिया है, ताको सम्यग्ज्ञानविषै यथार्थ प्रयोजन लिए पहिचानै तो हित अहितका निश्चय होय। तातै स्यात्पदकी सापेक्ष लिए सम्यग्ज्ञानकरि जे जीव जिनवचननिविषै रमै है, ते जीव शीघ्र ही शुद्ध आत्मस्वरूपकों प्राप्त हो हैं। मोक्षमार्गविषै पहिला उपाय आगमज्ञान कह्या है। आगमज्ञान बिना और धर्मका साधन होय सकै नाही। तातै तुमकों भी यथार्थ बुद्धिकरि आगम अभ्यास करना। तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै उपदेशस्वरूप-प्रतिपादक नामा आठवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया।

ॐ नमः

नवमा अधिकार

मोक्षमार्गका स्वरूप

दोहा

शिवउपाय करतें प्रथम, कारन मंगलरूप।
विघनविनाशक सुखकरन, नमौंशुद्ध शिवभूप ।। १ ।।

अथ मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है—पहिलै मोक्षमार्गके प्रतिपक्षी मिथ्यादर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाया। तिनिको तो दुखःरूप दुःख का कारन जानि हेय मानि तिनिका त्याग करना। बहुरि बीचमें उपदेश का स्वरूप दिखाया। ताकों जानि उपदेशको यथार्थ समझना। अब मोक्षके मार्ग सम्यग्दर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाइए है। इनिकों सुखरूप सुखका कारण जानि उपादेय मानि अंगीकार करना। जातैं आत्माका हित मोक्ष ही है। तिसहीका उपाय आत्माको कर्तव्य है। तातैं इसहीका उपदेश यहाँ दीजिए है। तहाँ आत्माका हित मोक्ष ही है, और नाही—ऐसा निश्चय कैसें होय सो कहिए है—

आत्माका हित एक मोक्ष ही है

आत्माकै नाना प्रकार गुणपर्यायरूप अवस्था पाइए है। तिनविषै और तो कोई अवस्था होहू, किछू आत्माका बिगाड़ सुधार नाही।

एक दुःखसुख अवस्थातैं विगाड सुधार है। सो इहाँ किछू हेतु दृष्टांत चाहिए नाही। प्रत्यक्ष ऐसैं ही प्रतिभासै है। लोकविषैं जेते आत्मा हैं, तिनिकै एक उपाय यहु पाईए है—दुःख न होय, सुख ही होय। बहुरि अन्य उपाय भी जेते करै हैं, तेते एक इस ही प्रयोजन लिये करै हैं, दूसरा प्रयोजन नाही। जिनके 'निमित्ततैं' दुःख होता जानै, तिनिकों दूर करनेका उपाय करै हैं अर जिनके निमित्ततैं सुख होता जानै, तिनिके होने का उपाय करै हैं। बहुरि सकोच विस्तार आदि अवस्था भी आत्माहीकै हो है वा अनेक परद्रव्यनिका भी सयोग मिलै है परन्तु जिनकरि सुख दुःख होना न जानै, तिनके दूर करनेका वा होनेका कुछ भी उपाय कोऊ करै नाहीं। सो इहाँ आत्मद्रव्यका ऐसा ही स्वभाव जानना। और तो सर्व अवस्थाको सहि सकै, एक दुःखको सह सकता नाही। परवश दुःख होय तो यहु कहा करै, ताको भोगवै परन्तु स्ववशपने तो किंचित् भी दुःखको न सहै। अर सकोच विस्तारादि अवस्था जैसी होय तैसी होहु, तिनिको स्ववशपने भी भोगवै, सो स्वभावविषै तर्क नाही। आत्माका ऐसा ही स्वभाव जानना। देखो, दुःखी होय तब सूता चाहै, सो सोवने मे ज्ञानादिक मन्द हो जाय है परन्तु जड सरिखा भी होय दुःखकों दूरि किया चाहै है वा मूआ चाहै। सो मरनेमें अपना नाश मानै है परन्तु अपना अस्तित्व भी खोय दुःख दूर किया चाहै है। तातै एक दुःखरूप पर्यायका अभाव करना ही याका कर्तव्य है। बहुरि दुःख न होय सो ही सुख है। जातैं आकुलतालक्षण लिए दुःख तिसका अभाव सोई निराकुल लक्षण सुख है। सो यहु भी प्रत्यक्ष भासै है। बाह्य कोई सामग्रीका संयोग मिलो,

जाकै अतरगविषे आकुलता है सो दु खी ही है, जाके आकुलता नाही सो सुखी है। बहुरि आकुलता हो है, सो रागादिक कषायभाव भये हो है। जातै रागादिभावनिकरि यहु तो द्रव्यनिको और भाँति परिणमाया चाहै अर वे द्रव्य और भाँति परिणमैं, तब याकै आकुलता होय। तहाँ कै तो आपकै रागादिक दूरि होंय, कै आप चाहै तैसे ही सर्वद्रव्य परिणमैं तो आकुलता मिटै। सो सर्वद्रव्य तो याके आधीन नाही। कदाचित् कोई द्रव्य जैसी याकी इच्छा होय तैसे ही परिणमैं, तो भी याकी सर्वथा आकुलता दूरि न होय। सर्व कार्य याका चाह्या ही होय, अन्यथा न होय, तब यहु निराकुल रहै। सो यहु तो होय ही सकै नाही। जातै कोई द्रव्यका परिणमन कोई द्रव्यके आधीन नाही। तातैं अपने रागादि भाव दूरि भए निराकुलता होय सो यहु कार्य बनि सकै है। जातै रागादिक भाव आत्माका स्वभाव भाव तो है नाही, उपाधिकभाव हैं, परनिमित्ततें भए हैं, सो निमित्त मोहकर्मका उदय है। ताका अभाव भए सर्व रागादिक विलय होय जांय, तब आकुलता नाश भए दुःख दूरि होय सुखकी प्राप्ति होय। तातै मोहकर्मका नाश हितकारी है।

बहुरि तिस आकुलताको सहकारी कारण ज्ञानावर्णादिकका उदय है। ज्ञानावर्ण दर्शनावर्णके उदयते ज्ञानदर्शन सम्पूर्ण न प्रगटै, तातै याकै देखनें जाननेकी आकुलता होय अथवा यथार्थ सम्पूर्ण वस्तुका स्वभाव न जाने, तब रागादिरूप होय प्रवर्त्तै, तहाँ आकुलता होय।

बहुरि अतरायके उदयतें इच्छानुसार दानादि कार्य न बनें, तब आकुलता होय। इनिका उदय है, सो मोहका उदय होतें आकुलताकों सहकारी कारण है। मोहके उदयका नाश भए इनिका बल नाही।

अतर्मुहूर्त्तकालकरि आपै आप नाशकों प्राप्त होय। परन्तु सहकारी कारण भी दूरि होय जाय, तब प्रगट रूप निराकुल दशा भासै। तहाँ केवलज्ञानी भगवान् अनन्तसुखरूप दशाकों प्राप्त कहिए।

बहुरि अघाति कर्मनिका उदयके निमित्तते शरीरादिकका संयोग हो है, सो मोहकर्मका उदय होतें शरीरादिकका सयोग आकुलताकों बाह्य सहकारी कारण है। अंतरंग मोहका उदयतै रागादिक होय अर बाह्य अघाति कर्मनिके उदयतै रागादिककों कारण शरीरादिकका सयोग होय, तब आकुलता उपजै है। बहुरि मोहका उदय नाश भए भी अघातिकर्मका उदय रहै है, सो किछू भी आकुलता उपजाय सकै नाही। परन्तु पूर्वे आकुलताका सहकारी कारण था, तातै अघाति कर्मनिका भी नाश आत्माकों इष्ट ही है। सो केवलीकै इनिके होतें किछु दुःख नाही तातै इनिके नाशका उद्यम भी नाही। परन्तु मोहका नाश भए ए कर्म आपै आप थोरे ही कालमें सर्व नाशकों प्राप्त होय जाय हैं। ऐसै सर्व कर्मका नाश होना आत्माका हित है। बहुरि सर्व कर्मके नाशहीका नाम मोक्ष है। तातै आत्माका हित एक मोक्ष ही है—और किछू नाही, ऐसा निश्चय करना।

इहाँ कोऊ कहै—ससार दशाविषै पुण्यकर्मका उदय होते भी जीव सुखी हो है, तातै केवल मोक्ष ही हित है, ऐसा काहेकों कहिए ?

सांसारिक सुख दुःख ही है

ताका समाधान—ससारदशाविषै सुख तो सर्वथा है ही नाहीं, दुःख ही है। परन्तु काहूकै कबहूँ बहुत दुःख हो है, काहूकै कबहूँ थोरा

दुःख हो है। सो पूर्वं बहुत दुःख था वा अन्य जीवनिकै बहुत दुःख पाइए है, तिस अपेक्षातें थोरे दुःखवालेको सुखी कहिए। बहुरि तिस ही अभिप्रायतें थोरे दुःखवाला आपकों सुखी मानै है। परमार्थतें सुख है नाही। बहुरि जो थोरा भी दुःख सदाकाल रहै है, तो वाका भी हित ठहराइए, सो भी नाही। थोरे काल ही पुण्यका उदय रहै, तहाँ थोरा दुःख होय, पीछे बहुत दुःख होइ जाय। तातै ससार अवस्था हितरूप नाही। जैसै काहूकै विषम ज्वर है, ताकै कबहू असाता वहुत हो है, कबहू थोरी हो है। थोरी असाता होय, तब वह आपको नीका मानै। लोक भी कहैं—नीका है। परन्तु परमार्थतें यावत् ज्वरका सद्भाव है, तावत् नीका नाही है। तैसें संसारीकै मोहका उदय है। ताकै कबहू आकुलता बहुत हो है, कबहू थोरी हो है। थोरी आकुलता होय, तब वह आपकों सुखी मानै। लोक भी कहैं—सुखी है। परन्तु परमार्थतें यावत् मोहका सद्भाव है, तावत् सुख नाही। बहुरि सुनि, संसार दशाविषै भी आकुलता घटे सुख नाम पावै है। आकुलता बधे दुःख नाम पावै है। किछू बाह्य सामग्रीतें सुख दुःख नाहीं। जैसें काहू दरिद्रीकै किंचित् धनकी प्राप्ति भई, तहाँ किछू आकुलता घटनेतें वाकों सुखी कहिए अर वह भी आपको सुखी मानै। बहुरि काहू बहुत धनवान्कै किंचित् धनकी हानि भई, तहाँ किछू आकुलता बधनेतें वाको दुःखी कहिए अर वह भी आपको दुःखी मानै है। ऐसैही सर्वत्र जानना।

बहुरि आकुलता घटना बधना भी बाह्य सामग्री के अनुसार नाही। कषाय भावनिके घटने बधनेके अनुसार है। जैसें काहूक थोरा धन है अर वाकै संतोष है, तो वाकै आकुलता थोरी है। बहुरि

काहूकै बहुत धन है अर वाकै तृष्णा है, तो वाकै आकुलता घनी है। बहुरि काहूकों काहूनें बहुत बुरा कह्या अर वाकै क्रोध न भया, तो वाकै आकुलता न हो है अर थोरी बातें कहे ही क्रोध होय आवै, तो वाकै आकुलता घनी हो है। बहुरि जैसैं गऊकै बछडेतें किछू भी प्रयोजन नाहीं परन्तु मोह बहुत, तातैं वाकी रक्षा करनेकी बहुत आकुलता हो है। बहुरि सुभटके शरीरादिकतें घनें कार्य सधैं हैं परन्तु रणविषै मानादिककरि शरीरादिकतें मोह घटि जाय, तब मरनेंकी भी थोरी आकुलता हो है। तातैं ऐसा जानना--ससार अवस्थाविषै भी आकुलता घटनें बधनेहीतें सुख दुःख मानिए हैं। बहुरि आकुलताका घटना बधना रागादिक कषाय घटने बधनेके अनुसार है। बहुरि परद्रव्यरूप बाह्य सामग्रीके अनुसारि सुख दुःख नाहीं। कषायतें याकै इच्छा उपजै अर याकी इच्छा अनुसारि बाह्य सामग्री मिलै, तब याका किछू कषाय उपशमनेतें आकुलता घटै, तब सुख मानै अर इच्छानुसारि सामग्री न मिलै, तब कषाय बधनेतें आकुलता बधै, तब दुःख मानै। सो है तो ऐसैं अर यह जानै--मोकू परद्रव्यके निमित्ततें सुख दुःख हो है। सो ऐसा जानना भ्रम ही है। तातैं इहां ऐसा विचार करना, जो ससार अवस्थाविषै किंचित् कषाय घटे सुख मानिए, ताको हित जानिए, तो जहाँ सर्वथा कषाय दूर भए वा कषायके कारण दूरि भए परम निराकुलता होनेकरि अनन्तसुख पाइए ऐसी मोक्षअवस्थाकों कैसै हित न मानिए? बहुरि संसार अवस्थाविषै उच्च पदकों पावै, तौ भी कै तो विषयसामग्रीमिलावनेकी आकुलता होय, कै विषय सेवनकी आकुलता होय, कै अपने और कोई क्रोधादि

कषायतें इच्छा उपजै, ताकों पूरण करनेकी आकुलता होय, कदाचित् सर्वथा निराकुल होय सकं नाहीं, अभिप्रायविषै तो अनेक प्रकार आकुलता बनी ही रहै। अर बाह्य कोई आकुलता मेटनेके उपाय करै, सो प्रथम तो कार्य सिद्ध होय नाही अर जो भवितव्य योगते वह कार्य सिद्ध होय जाय, तो तत्काल और आकुलता मेटनेका उपायविषै लागै। ऐसें आकुलता मेटनेकी आकुलता निरन्तर रह्या करै। जो ऐसी आकुलता न रहै तो नये नये विषयसेवनादि कार्यनिविषें काहेको प्रवर्त्ते है? तातै संसार अवस्थाविषै पुण्यका उदयते इन्द्र अहमिन्द्रादि पद पावै तो भी निराकुलता न होय, दुखी ही रहै। तातै ससार अवस्था हितकारी नाही।

बहुरि मोक्षअवस्थाविषै कोई ही प्रकारकी आकुलता रही नाहीं तातै आकुलता मेटनेका उपाय करनेका भी प्रयोजन नाही। सदा काल शातरसकरि सुखी रहै। तातै मोक्ष अवस्थाही हितकारी है। पूर्वं भी ससार अवस्थाका दुखका अर मोक्ष अवस्थाका सुखका विशेष वर्णन किया है, सो इसही प्रयोजनके अर्थि किया है। ताकों भी विचारि मोक्षको हितरूप जानि मोक्षका उपाय करना, सर्व उपदेशका तात्पर्य इतना है।

इहां प्रश्न—जो मोक्षका उपाय काललब्धि आए भवितव्यानुसारि बनै है कि मोहादिका उपशमादि भए बनै है कि अपने पुरुषार्थतें उद्यम किए बनै है, सो कहो। जो पहिले दोय कारण मिले बनै है, तो हमको उपदेश काहेको दीजिए है अर पुरुषार्थते बनै है, तो उपदेश सर्व सुनै, तिनविषै कोई उपाय कर सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा ?

मोक्ष साधन में पुरुषार्थ की मुख्यता

ताका समाधान—एक कार्य होनेविषै अनेक कारण मिलै हैं। सो

मोक्षका उपाय बनें है तहाँ तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिले हैं अर न बनें है, तहाँ तीनों ही कारण न मिलै हैं। पूर्वोक्त तीन कारण कहे, तिनविषें काललब्धि वा होनहार तो किछू वस्तु नाही। जिस कालविषें कार्य बनें सोई काललब्धि और जो कार्य भया सोई होनहार। बहुरि जो कर्मका उपशमादिक है, सो पुद्गलकी शक्ति है, ताका आत्मा कर्त्ता हर्त्ता नाही। बहुरि पुरुषार्थतें उद्यम करिए है, सो यहु आत्माका कार्य है। तातैं आत्माको पुरुषार्थकरि उद्यम करनेका उपदेश दीजिए है। तहाँ यहु आत्मा जिस कारणतें कार्य सिद्धि अवश्य होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ तो अन्य कारण मिले ही मिलै अर कार्यकी भी सिद्धि होय ही होय। बहुरि जिस कारणतें कार्य की सिद्धि होय अथवा नाही भी होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ अन्य कारण मिलै तो कार्यसिद्धिहोय, न मिले तो न सिद्धि होय। सो जिनमतविषें जो मोक्षका उपाय कह्या है, सो इसतें मोक्ष होय ही होय। तातैं जो जीव पुरुषार्थकरि जिनेश्वरका उपदेश अनुसार मोक्ष का उपाय करै है, ताकै काललब्धि वा होनहार भी भया अर कर्मका उपशमादि भया है तो यहु ऐसा उपाय करै है। तातैं जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय करै है, ताकै सर्वकारण मिलें हैं, ऐसा निश्चय करना अर वाकै अवश्य मोक्षकी प्राप्ति हो है। बहुरि जो जीव पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै, ताकै काललब्धि वा होनहार भी नाही अर कर्मका उपशमादि न भया है तो यहु उपाय न करै है। तातैं जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै है, ताकै कोई कारण मिलैं नाहीं, ऐसा निश्चय करना अर वाकै मोक्षकी प्राप्ति न हो है। बहुरि तू

कहै है— उपदेश तो सर्व सुनै हैं, कोई मोक्षका उपाय करि सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा ? सो कारण यहु ही है—जो उपदेश सुनि पुरुषार्थ करै है, सो मोक्षका उपाय करि सकै है अर पुरुषार्थ न करै है सो मोक्षका उपाय न करि सकै है। उपदेश तो शिक्षा मात्र है, फल जैसा पुरुषार्थ करै तैसा लागै।

द्रव्यलिंगीकै मोक्षोपयोगी पुरुषार्थका अभाव

बहुरि प्रश्न—जो द्रव्यलिगी मुनि मोक्षके अर्थि गृहस्थपनों छोड़ि तपश्चरणादि करै हैं, तहाँ पुरुषार्थ तो किया, कार्य सिद्ध न भया, तातैं पुरुषार्थ किए तो किछू सिद्धि नाहीं।

ताका समाधान—अन्यथा पुरुषार्थकरि फल चाहै, तो कैसें सिद्धि होय ? तपश्चरणादि व्यवहार साधनविषै अनुरागी होय प्रवर्त्तै, ताका फल शास्त्रविषैं तो शुभबंध कह्या अर यहु तिसतें मोक्ष चाहै है, तो कैसे होय। यहु तो भ्रम है।

बहुरि प्रश्न—जो भ्रमका भी तो कारण कर्म ही है, पुरुषार्थ कहा करै ?

ताका उत्तर—सांचा उपदेशते निर्णय किए भ्रम दूरि हो है। सो ऐसा पुरुषार्थ न करै है, तिसहीतें भ्रम रहै है। निर्णय करनेका पुरुषार्थ करै, तो भ्रमका कारण मोहकर्म ताका भी उपशमादि होय, तब भ्रम दूरि होय जाय। जातैं निर्णय करता परिणामनिकी विशुद्धता होय, तिसते मोहका स्थिति अनुभाग घटै है।

बहुरि प्रश्न—जो निर्णय करनेविषै उपयोग न लगावै है, ताका भी तो कारण कर्म है।

ताका समाधान—एकेन्द्रियादिककै विचार करनेकी शक्ति नाही, तिनकै तो कर्महीका कारण है। याकै तो ज्ञानावरणादिकका क्षयो-पशमतें निर्णय करनेकी शक्ति भई। जहाँ उपयोग लगावै, तिसहीका निर्णय होय सकै। परन्तु यह अन्य निर्णय करनेविषै उपयोग लगावै, यहाँ उपयोग न लगावै। सो यह तो याहीका दोष है, कर्मका तो किछू प्रयोजन नाही।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यक्त्व चारित्रका तो घातक मोह है, ताका अभाव भए विना मोक्षका उपाय कैसै बनै ?

ताका उत्तर—तत्वनिर्णय करनेविषै उपयोग न लगावै, सो तो याहीका दोष है। बहुरि पुरुषार्थकरि तत्वनिर्णयविषै उपयोग लगावै, तब स्वयमेव ही मोहका अभाव भए सम्यक्त्वादिरूप मोक्षके उपायका पुरुषार्थ बनै है। सो मुख्यपने तो तत्वनिर्णयविषै उपयोग लगावनेका पुरुषार्थ करना, बहुरि उपदेश भी दीजिए है सो इन ही पुरुषार्थ करावनेके अर्थि दीजिए है। बहुरि इस पुरुषार्थतें मोक्षके उपायका पुरुषार्थ आपहीतै सिद्ध होयगा। अर तत्व निर्णय न करनेविषै कोई कर्मका दोष है नाही, तेरा ही दोष है। अर तू आप तो महन्त रह्या चाहै अर अपना दोष कर्मादिककै लगावै, सो जिन आज्ञा मानै तो ऐसी अनीति सम्भवै नाही। तोकों विषय कषायरूपही रहना है, तातै झूठ बोलै है। मोक्षकी सांची अभिलाषा होय, तो ऐसी युक्ति काहेकों बनावै। संसारीक कार्यनिविषै अपना पुरुषार्थतै सिद्धि न होती जानै तौ भी पुरुषार्थकरि उद्यम किया करै, यहाँ पुरुषार्थ खोय बैठै। सो जानिए है, मोक्षकों देखादेखी उत्कृष्ट कहै है। वाका स्वरूप पहचानि

ताकों हितरूप न जानै है। हित जानि जाका उद्यम बनै सो न करै, यह असम्भव है।

इहाँ प्रश्न—जो तुम कह्या सो सत्य, परन्तु द्रव्यकर्मके उदयते भावकर्म होय, भावकर्मते द्रव्यकर्मका बध होय, बहुरि ताके उदयते भावकर्म होय, एसै ही अनादिते परम्परा है, तब मोक्षका उपाय कैसे होय सकै ?

ताका समाधान—कर्मका बध वा उदय सदाकाल समान ही हुवा करै तौ तो ऐसै ही है; परन्तु परिणामनिके निमित्ततें पूर्वबद्ध कर्मका भी उत्कर्षण अपकर्षण सक्रमणादि होतें तिनकी शक्ति हीन अधिक होय है तातै तिनका उदय भी मन्द तीव्र हो है। तिनके निमित्ततें नवीन बध भी मन्द तीव्र हो है। तातै ससारी जीवनिकै कर्मउदयके निमित्त-करि कबहू ज्ञानादिक घने प्रगट हो हैं, कबहू थोरे प्रगट हो हैं। कबहू रागादिक मन्द हो हैं, कबहू तीव्र हो हैं। ऐसै पलटनि हुवा करै है। तहाँ कदाचित् सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त पर्याय पाया, तब मनकरि विचार करनेकी शक्ति भई। बहुरि याकै कबहू तीव्र रागादिक होय, कबहू मन्द होय। तहाँ रागादिकका तीव्र उदय होते तो विषयकषायादिकके कार्यनिविषै ही प्रवृत्ति होय। बहुरि रागादिकका मन्द उदय होतें बाह्य उपदेशादिकका निमित्त बनै अर आप पुरुषार्थकरि तिन उपदेशादिक विषै उपयोगकों लगावै, तो धर्मकार्यनिविषै प्रवृत्ति होय। अर निमित्त न बनै वा आप पुरुषार्थ न करै, तो अन्य कार्यनिविषै ही प्रवर्त्तै परन्तु मन्द रागादि लिए प्रवर्त्तै, ऐसे अवसरविषै उपदेश कार्यकारी है। विचार-शक्तिरहित एकेन्द्रियादिक हैं, तिनिकै तो उपदेश समझनेका ज्ञान ही

नाहीं। अर तीव्ररागादिसहित जीवनिका उपदेशविषै उपयोग लागै नाहीं। तातै जो जीव विचारशक्तिसहित होंय अर जिनकै रागादि मंद होंय, तिनकों उपदेशका निमित्ततें धर्मकी प्राप्ति होय जाय, तो ताका भला होय। बहुरि इस ही अवसरविषै पुरुषार्थ कार्यकारी है। एकेन्द्रियादिक तो धर्मकार्य करनेकों समर्थ ही नाही, कैसे पुरुषार्थ करै अर तीव्रकषायी पुरुषार्थ करै सो पापहीका करै, धर्मकार्यका पुरुषार्थ होय सकै नाही। तातै विचारशक्तिसहित होय अर जिसकै रागादिक मन्द होंय, सो जीव पुरुषार्थकरि उपदेशादिकके निमित्ततें तत्वनिर्णयादिविषै उपयोग लगावै, तो याका उपयोग तहाँ लगै, तब याका भला होय। बहुरि इस अवसरविषै भी तत्वनिर्णय करनेका पुरुषार्थ न करै, प्रमादते काल गमावै। कै तो मन्दरागादि लिए विषयकषायनिके कार्यनिहीविषै प्रवर्त्तै, कै व्यवहार धर्मकार्यनिविषै प्रवर्त्तै, तब अवसर तो जाता रहै, समारहीविषै भ्रमण होय।

बहुरि इस अवसरविषै जे जीव पुरुषार्थकरि तत्वनिर्णयकरनेविषै उपयोग लगावनेका अभ्यास राखै, तिनिकै विशुद्धता बधै, ताकरि कर्मनिकी शक्ति हीन होय। कितेक कालविषै आपै आप दर्शनमोहका उपशम होय तब याकै तत्वनिकी यथावत् प्रतीति आवै। सो याका तो कर्त्तव्य तत्वनिर्णयका अभ्यास ही है। इसहीते दर्शनमोहका उपशम तो स्वयमेव होय। यामें जीवका कर्त्तव्य किछू नाही। बहुरि ताकों होते जीवक स्वयमेव सम्यग्दर्शन होय। बहुरि सम्यग्दर्शन होते श्रद्धान तो यहु भया—मैं आत्मा हूँ, मुझको रागादिक न करने परन्तु चारित्रमोहके उदयतें रागादिक हो हैं। तहाँ तीव्र उदय होय,

तब तो विषयादिविषै प्रवर्त्तै है अर मन्द उदय होय, तब अपनें पुरुषार्थतें धर्मकार्यनिविषै वा वैराग्यादिभावनाविषै उपयोगकों लगावै है। ताके निमित्ततें चारित्रमोह मन्द होता जाय, ऐसें होतें देशचारित्र वा सकलचारित्र अगीकार करनेंका पुरुषार्थ प्रगट होय। बहुरि चारित्रकों धारि अपना पुरुषार्थकरि धर्मविषैं परणतिकों बधावै, तहाँ विशुद्धता करि कर्मकी हीन शक्ति होय, तातै विशुद्धता बधै, ताकरि अधिक कर्मकी शक्ति हीन होय। ऐसै क्रमतें मोहका नाश करै तब सर्वथा परिणाम विशुद्ध होंय, तिनकरि ज्ञानावर्णादिका नाश होय तब केवलज्ञान प्रगट होय। तहाँ पीछे बिना उपाय अघाति कर्मका नाशकरि शुद्धसिद्धपदकों पावै। ऐसें उपदेशका तो निमित्त बनै अर अपना पुरुषार्थ करै, तो कर्मका नाश होय।

बहुरि जब कर्मका उदय तीव्र होय, तब पुरुषार्थ न होय सकै है। ऊपरले गुणस्थाननितें भी गिर जाय है। तहाँ तो जैसा होनहार होय तैसा ही होय। परन्तु जहाँ मन्द उदय होय अर पुरुषार्थ होय सकै, तहाँ तो प्रमादी न होना—सावधान होय अपना कार्य करना। जैसें कोऊ पुरुष नदीका प्रवाहविषै पड़या बहै है, तहाँ पानीका जोर होय तब तो वाका पुरुषार्थ किछू नाही, उपदेश भी कार्यकारी नाही। और पानीका जोर थोरा होय, तब जो पुरुषार्थकरि निकसै तो निकसि आवै, तिसहीकों निकसनेकी शिक्षा दीजिए है। अर न निकसै तो होलें २ बहै, पीछे पानीका जोर भए बह्या चल्या जाय। तैसें जीव ससारविषै भ्रमै है तहाँ कर्मनिका तीव्र उदय होय तब तो वाका पुरुषार्थ किछू नाही, उपदेश भी कार्यकारी नाही। अर कर्मका मन्द उदय होय, तब पुरुषार्थ-

करि मोक्षमार्गविषैं प्रवर्त्तै तो मोक्षपावै; तिसहीकौं मोक्षमार्गका उपदेश दीजिए है। अर मोक्षमार्गविषै न प्रवर्त्तै तो किंचित् विशुद्धता पाय पीछे तीव्र उदय आए निगोदादि पर्यायको पावै। तातै अवसर चूकना योग्य नाही। अब सर्व प्रकार अवसर आया है, ऐसा अवसर पावना कठिन है। तातै श्रीगुरु दयाल होय मोक्षमार्गको उपदेशै, तिस-विषै भव्य जीवनिकों प्रवृत्ति करनी। अब मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है।

मोक्षमार्गका स्वरूप

जिनके निमित्ततै आत्मा अशुद्ध दशाकौं धारि दुःखी भया, ऐसे जो मोहादिक कर्म तिनिका सर्वथा नाश होते केवल आत्माकी जो सर्व प्रकार शुद्ध अवस्थाका होना, सो मोक्ष है। ताका जो उपाय—कारण, सो मोक्षमार्ग जानना। सो कारण तो अनेक प्रकार हो हैं। कोई कारण तो ऐसे हो हैं, जाके भए विना तो कार्य न होय अर जाके भए कार्य होय वा न भी होय। जैसै मुनि लिंग धारे विना तो मोक्ष न होय अर मुनिलिंग धारे मोक्ष होय भी अर नाही भी होय। बहुरि केई कारण ऐसे हैं, जो मुख्यपने तो जाके भए कार्य होय अर काहूके विना भए भी कार्य सिद्धि होय। जैसै अनशनादि बाह्य तपका साधन किए मुख्यपने मोक्ष पाइए है, भरतादिककै बाह्य तप किए विना ही मोक्षकी प्राप्ति भई। बहुरि केई कारण ऐसे हैं, जाके भए कार्य सिद्धि ही होय और जाके न भए सर्वथा कार्य सिद्धि न होय। जैसैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए तो मोक्ष होय ही होय अर ताकौं न भए सर्वथा मोक्ष न होय। ऐसे ए कारण कहे, तिनविषै अतिशयकरि

नियमतै मोक्षका साधक जो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका एकीभाव, सो मोक्षमार्ग जानना। इन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रनिविषै एक भी न होय तो मोक्षमार्ग न होय। सोई **तत्वार्थसूत्रविषै** कह्या है—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

इस सूत्रकी टीकाविषै कह्या है—जो यहाँ "**मोक्षमार्गः**" ऐसा एक वचन कह्या ताका अर्थ यहु है—जो तीनो मिले एक मोक्षमार्ग है। जुदे जुदे तीन मार्ग नाही हैं।

यहाँ प्रश्न—जो असयतसम्यग्दृष्टीकै तो चारित्र नाही, वाकै मोक्ष मार्ग भया है कि न भया है।

ताका समाधान—मोक्षमार्ग याकै होसी, यहु तो नियम भया। तातै उपचारतै याकै मोक्षमार्ग भया भी कहिए। परमार्थतै सम्यक्चारित्र भए ही मोक्षमार्ग हो है। जैसै कोई पुरुषकै किसी नगर चालने का निश्चय भया तातै वाको व्यवहारतै ऐसा भी कहिए "यहु तिस नगरको चल्या है", परमार्थतै मार्गविषै गमन किए ही चलना होसी। तैसै असयतसम्यग्दृष्टीकै वीतरागभावरूप मोक्षमार्गका श्रद्धान भया, तातै वाकों उपचारतै मोक्षमार्गी कहिए, परमार्थतै वीतरागभावरूप परिणमे ही मोक्षमार्ग होसी। बहुरि "**प्रवचनसार**" विषै भी तीनोंकी एकाग्रता भए ही मोक्षमार्ग कह्या है तातै यहु जानना—तत्वश्रद्धान ज्ञान विना तो रागादि घटाए मोक्षमार्ग नाहीं अर रागादि घटाए विना तत्वश्रद्धानज्ञानतै भी मोक्षमार्ग नाही। तीनों मिले साक्षात् मोक्षमार्ग हो है।

लक्षण और उसके दोष

अब इनका निर्देश कर लक्षण निर्देश अर परीक्षाद्वारकरि निरूपण कीजिए है। तहाँ 'सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग है', ऐसा नाम मात्र कथन सो तो 'निर्देश' जानना। बहुरि अतिव्याप्ति अव्याप्ति असम्भवपनाकरि रहित होय अर जाकरि इनको पहिचानिए, सो 'लक्षण' जानना। ताका जो निर्देश कहिए, निरूपण सो 'लक्षण निर्देश' जानना। तहाँ जाको पहिचानना होय, ताका नाम लक्ष्य है। उस बिना औरका नाम अलक्ष्य है। सो लक्ष्य वा अलक्ष्य दोऊविषै पाइए, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए तहाँ अतिव्याप्तिपनो जानना। जैसे आत्माका लक्षण 'अमूर्त्तत्व' कहा। सो 'अमूर्त्तत्व' लक्षणं है, सो लक्ष्य जो है आत्मा तिसविषै भी पाइए अर अलक्ष्य जो हैं आकाशादिक तिनविषै भी पाइए है। तातै यह 'अतिव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचाने आकाशादिक भी आत्मा होय जांय, यहु दोष लागै।

बहुरि जो कोई लक्ष्यविषै तो होय अर कोई विषै न होय, ऐसा लक्ष्यका एकदेशविषै पाइए, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए, तहाँ अव्याप्तिपनों जानना। जैसै आत्माका लक्षण केवलज्ञानादिक कहिए, सो केवल ज्ञान कोई आत्माविषै तो पाइए, कोईविषै न पाइए, तातै यहु 'अव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचानें स्तोकज्ञानी आत्मा न होय, यहु दोष लागै।

बहुरि जो लक्ष्यविषै पाइए ही नाही, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए तहाँ असम्भवपना जानना। जैसैं आत्माका लक्षण जडपना कहिए सो प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि यहु विरुद्ध है जातै यहु 'असम्भव' लक्षण है। याकरि आत्मा मानें पुद्गलादिक भी आत्मा होय जांय।

अर आत्मा है सो अनात्मा हो जाय, यहु दोष लागै।

ऐसैं अतिव्याप्त अव्याप्त असम्भव लक्षण होय सो लक्षणाभास है। बहुरि लक्ष्यविषैं तो सर्वत्र पाइए अर अलक्ष्यविषैं कहीं न पाइए सो सांचा लक्षण है। जैसें आत्माका स्वरूप चैतन्य है सो यहु लक्षण सर्व ही आत्माविषै तो पाइए है, अनात्माविषै कहीं न पाइए। तातैं यहु साचा लक्षण है। याकरि आत्मा मानै आत्मा अनात्माका यथार्थ ज्ञान होय, किछू दोष लागै नाहीं। ऐसें लक्षणका स्वरूप उदाहरण मात्र कह्या। अब सम्यग्दर्शनादिकका साचा लक्षण कहिए है—

सम्यग्दर्शनका सच्चा लक्षण

विपरीताभिनिवेश रहित जीवादिक तत्वार्थश्रद्धान सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ए सात तत्वार्थ हैं। इनका जो श्रद्धान-ऐसे ही है, अन्यथा नाहीं; ऐसा प्रतीति भाव सो तत्वार्थश्रद्धान है। बहुरि विपरीताभिनिवेश जो अन्यथा अभिप्राय ताकरि रहित सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ विपरीताभिनिवेशका निराकरणके अर्थि 'सम्यक्' पद कह्या है, जातैं 'सम्यक्' ऐसा शब्द प्रशंसा वाचक है। सो श्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेशका अभाव भए ही प्रशंसा सम्भवै है, ऐसा जानना।

यहाँ प्रश्न—जो 'तत्व' अर 'अर्थ' ए दोय पद कहे, तिनिका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—'तत्' शब्द है सो 'यत्' शब्दकी अपेक्षा लिये है। तातैं जाका प्रकरण होय सो तत् कहिए अर जाका जो भाव कहिए स्वरूप सो तत्व जानना। जातैं 'तस्य भावस्तत्वं' ऐसा तत्व शब्दका समास होय है। बहुरि जो जाननेमें आवै ऐसा 'द्रव्य' वा 'गुण पर्याय'

ताका नाम अर्थ है। बहुरि 'तत्वेन अर्थस्तत्वार्थः' तत्व कहिए अपना स्वरूप, ताकरि सहित पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ जो 'तत्वश्रद्धान' ही कहते तो जाका यह भाव (तत्व) है, ताका श्रद्धान विना केवल भावहीका श्रद्धान कार्यकारी नाही। बहुरि जो 'अर्थश्रद्धान ही कहते तो भाव का श्रद्धान विना पदार्थका श्रद्धान भी कार्यकारी नाही। जैसे कोईकं ज्ञान-दर्शनादिक वा वर्णादिकका तो श्रद्धान होय—यह जानपना है, यह श्वेतवर्ण है, इत्यादि प्रतीति हो है परन्तु ज्ञान दर्शन आत्माका स्वभाव है सो मैं आत्मा हूँ बहुरि वर्णादि पुद्गलका स्वभाव है, पुद्गल मोते भिन्न जुदा पदार्थ है-ऐसा पदार्थका श्रद्धान न होय तो भावका श्रद्धान कार्यकारी नाही। बहुरि जैसें 'मैं आत्मा हूँ' ऐसें श्रद्धान किया परन्तु आत्मा का स्वरूप जैसा है तैसा श्रद्धान न किया तो भावका श्रद्धान विना पदार्थका भी श्रद्धान कार्यकारी नाही। तातै तत्वकरि अर्थका श्रद्धान हो है सो कार्यकारी है। अथवा जीवादिककों तत्व सज्ञा भी है अर अर्थ संज्ञा भी है तातें 'तत्वमेवार्थस्तत्वार्थः' जो तत्व सो ही अर्थ, तिनका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। इस अर्थकरि कहीं तत्वश्रद्धानकों सम्यग्दर्शन कहैं वा कही पदार्थ श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहैं, तहाँ विरोध न जानना। ऐसें 'तत्व' और 'अर्थ' दोय पद कहने का प्रयोजन है।

बहुरि प्रश्न—जो तत्वार्थ तो अनन्ते हैं। ते सामान्य अपेक्षाकरि

जीव अजीवविषै सर्व गर्भित भए, तातैं दोय ही कहने थे, कै अनंते कहने थे। आस्रवादिक तो जीव अजीवहीके विशेष हैं, इनकों जुदा कहनेका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—जो यहाँ पदार्थ श्रद्धान करने का ही प्रयोजन होता तो सामान्यकरि वा विशेषकरि जैसें सर्व पदार्थनिका जानना होय तैसें ही कथन करते। सो तो यहाँ प्रयोजन है नाहीं। यहाँ तो मोक्षका प्रयोजन है। सो जिन सामान्य वा विशेष भावनिका श्रद्धान किए मोक्ष होय अर जिनका श्रद्धान किए विना मोक्ष न होय, तिन-हीका यहाँ निरूपण किया। सो जीव अजीव ए दोय तो बहुत द्रव्य-निकी एक जाति अपेक्षा सामान्यरूप तत्व कहे। सो ए दोय जाति जानें जीवके आपापरका श्रद्धान होय। तब परतें भिन्न आपाकों जानैं, अपना हितके अर्थि मोक्षका उपाय करै अर आपतें भिन्न परकों जानै, तब परद्रव्यतें उदासीन होय रागादिक त्यागि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै। तातैं ए दोय जातिका श्रद्धान भए ही मोक्ष होय अर दोय जाति जाने बिना आपा परका श्रद्धान न होय, तब पर्यायबुद्धितें संसारीक प्रयोजन हीका उपाय करै। परद्रव्यविषै रागद्वेषरूप होय प्रवर्त्तै, तब मोक्षमार्ग-विषैं कैसें प्रवर्त्तै। तातें इन दोय जातिनिका श्रद्धान न भए मोक्ष न होय। ऐसै ए दोय तो सामान्य तत्व अवश्य श्रद्धान करने योग्य कहे। बहुरि आस्रवादिक पाँच कहे, ते जीव पुद्गलकी पर्याय हैं। तातै ए विशेषरूप तत्व हैं। सो इन पांच पर्यायनिको जाने मोक्षका उपाय करनेका श्रद्धान होय। तहाँ मोक्षकों पहिचानै, तो ताकों हित मानि ताका उपाय करैं। तातें मोक्षका श्रद्धान करना। बहुरि मोक्षका

उपाय संवर निर्जरा है सो इनको पहिचानै तो जैसें सवर निर्जरा होय तैसें प्रवर्त्तै। तातें संवर निर्जराका श्रद्धान करना। बहुरि संवर निर्जरा तो अभाव लक्षण लिए हैं; सो जिनका अभाव किया चाहिए, तिनकों पहिचानने चाहिए। जैसें क्रोधका अभाव भए क्षमा होय सो क्रोधकों पहिचानै तो ताका अभाव करि क्षमारूप प्रवर्त्तै। तैसें ही आस्रवका अभाव भए संवर होय अर बंधका एक देश अभाव भए निर्जरा होय सो आस्रव बंधकों पहिचानै तो तिनिका नाशकरि संवर निर्जरारूप प्रवर्त्तै। तातैं आस्रव बंधका श्रद्धान करना। ऐसै इन पांच पर्यायनिका श्रद्धान भए ही मोक्षमार्ग होय। इनको न पहिचानै तो मोक्षकी पहिचान बिना ताका उपाय काहेकों करै। सवर निर्जरा की पहिचान बिना तिनविषै कैसें प्रवर्त्तै। आस्रव बंधकी पहिचान बिना तिनिका नाश कैसें करै ? ऐसें इन पाँच पर्यायनिका श्रद्धान न भए मोक्षमार्ग न होय। या प्रकार यद्यपि तत्वार्थ अनन्ते हैं, तिनिका सामान्य विशेषकरि अनेक प्रकार प्ररूपण होय। परन्तु यहाँ एक मोक्षका प्रयोजन है तातै दोय तो जाति अपेक्षा सामान्य तत्व अर पाच पर्यायरूप विशेष तत्व मिलाय सात ही तत्व कहे। इनका यथार्थ श्रद्धानके आधीन मोक्षमार्ग है। इनि बिना औरनिका श्रद्धान होहु वा मति होहु वा अन्यथा श्रद्धान होहु, किसीके आधीन मोक्षमार्ग नाही, ऐसा जानना। बहुरि कहीं पुण्य पाप सहित नव पदार्थ कहे हैं सो पुण्य पाप आस्रवादिकके ही विशेष हैं, तातै सात तत्वनिविषै गर्भित भए। अथवा पुण्यपापका श्रद्धान भए पुण्यकों मोक्षमार्ग न मानै वा स्वच्छन्द होय पापरूप न प्रवर्त्तै, तातें मोक्षमार्गविषें इनका श्रद्धान भी

उपकारी जानि दोय तत्व विशेष के विशेष मिलाय नव पदार्थ कहे वा समयसारादिविषैं इनकों नव तत्व भी कहे हैं।

बहुरि प्रश्न—इनिका श्रद्धान सम्यग्दर्शन कह्या, सो दर्शन तो सामान्य अवलोकनमात्र अर श्रद्धान प्रतीतिमात्र, इनिकै एकार्थपना कैसे सम्भवै ?

ताका उत्तर—प्रकरणके वशतें धातुका अर्थ अन्यथा होय है। सो यहाँ प्रकरण मोक्षमार्गका है, तिसविषै 'दर्शन' शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकनमात्र न ग्रहण करना। जातै चक्षु अचक्षु दर्शनकरि सामान्य अवलोकन तो सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिकै समान होय है, किछु याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति अप्रवृत्ति होती नाही। बहुरि श्रद्धान हो है सो सम्यग्दृष्टीहीकै हो है, याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति हो है। तातैं 'दर्शन' शब्दका अर्थ भी यहाँ श्रद्धानमात्र ही ग्रहण करना।

बहुरि प्रश्न—यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान करना कह्या, सो प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—अभिनिवेशनाम अभिप्रायका है। सो जैसा तत्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है तैसा न होय, अन्यथा अभिप्राय होय, ताका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो तत्वार्थश्रद्धान करनेंका अभिप्राय केवल तिनिका निश्चय करना मात्र ही नाही है। तहाँ अभिप्राय ऐसा है—जीव अजीवकों पहचानि आपको वा परकों जैसाका तैसा मानै। बहुरि आस्रवकों पहचानि ताकों हेय मानैं। बहुरि बंधकों पहचानि ताकों अहित मानै। बहुरि संवरकों पहचानि ताकों उपादेय मानैं। बहुरि निर्जराकों पहचानि ताकों हितका कारण मानैं। बहुरि

मोक्षकों पहचानि ताकों अपना परम हित मानै। ऐसें तत्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है। तिसतें उलटा अभिप्रायका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो सांचा तत्वार्थश्रद्धान भए याका अभाव होय। तातें तत्वार्थश्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशरहित है, ऐसा यहाँ कहा है।

अथवा काहूकै अभास मात्र तत्वार्थश्रद्धान होय है परन्तु अभिप्रायविषैं विपरीतपनों नाही छूटै है। कोई प्रकारकरि पूर्वोक्त अभिप्रायतें अन्यथा अभिप्राय अन्तरंगविषै पाइए है तो वाकै सम्यग्दर्शन न होय। जैसें द्रव्यलिंगी मुनि जिनवचननितें तत्वनिकी प्रतीति करै परन्तु शरीराश्रित क्रियानिविषैं अहंकार वा पुण्यास्रवविषै उपादेयपनों इत्यादि विपरीत अभिप्रायतें मिथ्यादृष्टी ही रहै है। तातै जो तत्वार्थश्रद्धान विपरीताभिनिवेश रहित है सोई सम्यग्दर्शन है। ऐसें विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थनिका श्रद्धानपना सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। सम्यग्दर्शन लक्ष्य है। सोइ तत्वार्थसूत्रविषै कह्या है— "**तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्** ॥१-२॥" तत्वार्थनिका श्रद्धान सोई सम्यग्दर्शन है। बहुरि सर्वार्थसिद्धि नाम सूत्रनिकी टीका है, तिसविषैं तत्वादिक पदनिका अर्थ प्रगट लिख्या है वा सात ही तत्व कैसे कहे सो प्रयोजन लिख्या है, ताका अनुसारतें यहाँ किछू कथन किया है ऐसा जानना।

बहुरि पुरुषार्थसिद्ध्युपाय विषै भी ऐसें ही कह्या है—

जीवाजीवादीनां तत्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।

श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत् ॥२२॥

याका अर्थ—विपरीताभिनिवेशकरि रहित जीव अजीव आदि

तत्वार्थनिका श्रद्धान सदाकाल करना योग्य है। सो यहु श्रद्धान आत्माका स्वरूप है। दर्शनमोह उपाधि दूर भए प्रगट हो है, तातैं आत्माका स्वभाव है। चतुर्थादि गुणस्थानविषैं प्रगट हो है। पीछैं सिद्ध अवस्थाविषैं भी सदाकाल याका सद्भाव रहै है, ऐसा जानना।

तत्वार्थ श्रद्धान लक्षण में अव्याप्ति–अतिव्याप्ति–असंभव दोष का परिहार

यहाँ प्रश्न उपजै है—जो तिर्यंचादि तुच्छज्ञानी केई जीव सात तत्वनिका नाम भी न जानि सकैं, तिनिकैं भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति शास्त्रविषै कही है। तातैं तत्वार्थश्रद्धानपना तुम सम्यक्त्वका लक्षण कह्या, तिसविषै अव्याप्तिदूषण लागै है।

ताका समाधान—जीव अजीवादिकका नामादिक जानौं वा मति जानौं वा अन्यथा जानौं, उनका स्वरूप यथार्थ पहिचानि श्रद्धान किए सम्यक्त्व हो है। तहाँ कोई सामान्यपने स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै, कोई विशेषपने स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै। तातैं तुच्छज्ञानी तिर्यंचादिक सम्यग्दृष्टी हैं सो जीवादिकका नाम भी न जानैं हैं, तथापि उनका सामान्यपनैं स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करैं हैं। तातैं उनकै सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो है। जैसैं कोई तिर्यंच अपना वा औरनिका नामादिक तो नाही जानैं परन्तु आपही विषै आपो मानैं है, औरनिकौं पर मानैं है। तैसैं तुच्छज्ञानी जीव अजीवका नाम न जानैं परन्तु जो ज्ञानादिस्वरूप आत्मा है तिसविषै तो आपो मानैं है अर जो शरीरादि है तिनकौं पर मानै है—ऐसा श्रद्धान वाकै हो है, सो ही जीव अजीवका श्रद्धान है। बहुरि जैसैं सोई तिर्यंच सुखादिकका नामादिक

न जानें है, तथापि सुख अवस्थाकों पहिचानि ताके अर्थि आगामी दुःख का कारणकों पहिचानि ताका त्यागकों किया चाहै है। बहुरि जो दुःख का कारण बनि रह्या है, ताके अभावका उपाय करै है। तैसें तुच्छज्ञानी मोक्षादिकका नाम न जानें, तथापि सर्वथा सुखरूप मोक्षअवस्थाकों श्रद्धान करता ताके अर्थि आगामी बंधका कारण रागादिक आस्रव ताका त्यागरूप संवरको किया चाहै है। बहुरि जो संसार दुःखका कारण है, ताकी शुद्धभावकरि निर्जरा किया चाहै है। ऐसें आस्रवादिकका वाकै श्रद्धान है। या प्रकार वाकै भी सप्ततत्वका श्रद्धान पाइए है। जो ऐसा श्रद्धान न होय, तो रागादि त्यागि शुद्ध भाव करनेकी चाह न होय। सोइ कहिए है :—

जो जीव अजीवकी जाति न जानि आपापरको न पहिचानैं तो परविषै रागादिक कैसे न करै? रागादिकको न पहिचानैं तो तिनिका त्याग कैसैं किया चाहै। सो रागादिक ही आस्रव है। रागादिकका फल बुरा न जानै तो काहे कों रागादिक छोड्या चाहै। सो रागादिकका फल सोई बंध है। बहुरि रागादि रहित परिणामकों पहिचानै है तो तिसरूप हुवा चाहै है। सो रागादिरहित परिणामका ही नाम संवर है। बहुरि पूर्व संसार अवस्थाका कारण की हानिकों पहिचानै है तो ताके अर्थि तपश्चरणादिकरि शुद्धभाव किया चाहै है। सो पूर्व संसार अवस्थाका कारण कर्म है, ताकी हानि सोई निर्जरा है। बहुरि संसार अवस्था का अभावकों न पहिचानै तो संवर निर्जरारूप काहेको प्रवर्त्तै। सो संसार अवस्थाका अभाव सो ही मोक्ष है। तातैं साता तत्वनिका श्रद्धान भए ही रागादिक छोड़ शुद्ध भाव होनेकी

इच्छा उपजै है। जो इनविषैं एक भी तत्वका श्रद्धान न होय तो ऐसी चाह न उपजै। बहुरि ऐसी चाह तुच्छज्ञानी तिर्यंचादि सम्यग्दृष्टीकै होय ही है। तातैं वाकै सप्त तत्वनिका श्रद्धान पाइए है, ऐसा निश्चय करना। ज्ञानावरणका क्षयोपशम थोरा होते विशेषपनें तत्वनिका ज्ञान न होवै, तथापि दर्शनमोहका उपशमादिकतें सामान्यपनें तत्व-श्रद्धानकी शक्ति प्रगट हो है। ऐसें इस लक्षणविषै अव्याप्ति दूषण नाहीं है।

बहुरि प्रश्न—जिसकालविषैं सम्यग्दृष्टी विषयकषायनिके कार्यविषैं प्रवर्त्तै है तिसकालविषैं सप्त तत्वनिका विचार ही नाही, तहाँ श्रद्धान कैसें सम्भवै? अर सम्यक्त्व रहै ही है, तातैं तिस लक्षणविषै अव्याप्ति दूषण आवै है।

ताका समाधान—विचार है, सो तो उपयोग के आधीन है। जहाँ उपयोग लागै, तिसहीका विचार हो है। बहुरि श्रद्धान है, सो प्रतीतिरूप है। तातैं अन्य ज्ञेयका विचार होतें वा सोवना आदि क्रिया होत तत्वनिका विचार नाही, तथापि तिनकी प्रतीति बनी रहै है, नष्ट न हो है। तातैं वाकै सम्यक्त्वका सद्भाव है। जैसें कोई रोगी मनुष्यकै ऐसी प्रतीति है—मैं मनुष्य हूँ, तिर्यंचादि नाही हूं। मेरै इस कारणतें रोग भया है सो अब कारण मेटि रोगकों घटाय निरोग होना। बहुरि वो ही मनुष्य अन्य विचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है। तैसें इस आत्माकै ऐसी प्रतीति है—मैं आत्मा हूँ, पुद्गलादि नाहीं हूँ, मेरै

आस्रवतें बन्ध भया है, सो अब सवरकरि निर्जराकरि मोक्षरूप होना। बहुरि सोई आत्मा अन्यविचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान एसा ही रह्या करै है।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसा श्रद्धान रहै है, तो बंध होनेके कारणनिविषै कैसें प्रवर्त्तै है ?

ताका उत्तर—जैसें सोई मनुष्य कोई कारणके वशतें रोग बधने के कारणनिविषै भी प्रवर्त्तै है, व्यापारादिक कार्य वा क्रोधादिक कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। तैसें सोई आत्मा कर्म उदय निमित्तके वशतें बन्ध होनेके कारणनिविषै भी प्रवर्त्तै है, विषयसेवनादि कार्य वा क्रोधादि कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। इसका विशेष निर्णय आगें करेंगे। ऐसें सप्ततत्व का विचार न होतें भी श्रद्धानका सद्भाव पाइए है तातें तहाँ अव्याप्तिपना नाहीं है।

बहुरि प्रश्न—ऊँची दशाविषैं जहाँ निर्विकल्प आत्मानुभव हो है, तहाँ तो सप्त तत्वादिकका विकल्प भी निषेध किया है। सो सम्यक्त्व के लक्षणका निषेध करना कैसे सम्भवै ? अर तहाँ निषेध सम्भवै है तो अव्याप्ति दूषण आया।

ताका उत्तर—नीचली दशाविषैं सप्ततत्वनिके विकल्पनिविषै उपयोग लगाया, ताकरि प्रतीतिको दृढ़ कीन्ही अर विषयादिकतें उपयोग छुडाय रागादि घटाया। बहुरि कार्य सिद्ध भए कारणनिका भी निषेध कीजिए है। तातें जहाँ प्रतीति भी दृढ भई अर रागादिक दूर भए

तहाँ उपयोग भ्रमावनेंका खेद काहेकों करिए। तातैं तहाँ तिन विकल्पनिका निषेध किया है। बहुरि सम्यक्त्वका लक्षण तो प्रतीति ही है। सो प्रतीतिका तो निषेध न किया। जो प्रतीति छुड़ाई होय, तो इस लक्षणका निषेध किया कहिए। सो तो है नाहीं। सातों तत्वनिकी प्रतीति तहाँ भी बनी रहै है। तातैं यहाँ अव्याप्तिपना नाहीं है।

बहुरि प्रश्न—जो छद्मस्थकै तो प्रतीति अप्रतीति कहना सम्भवै, तातै तहां सप्ततत्वनिकी प्रतीति सम्यक्त्वका लक्षण कह्या सो हम मान्या परन्तु केवली सिद्ध भगवानकै तो सर्वका जानपना समानरूप है, तहाँ सप्ततत्वनिकी प्रतीति कहना सम्भवै नाही अर तिनकै सम्यक्त्व गुण पाइए ही है, तातैं तहाँ तिस लक्षणविषैं अव्याप्तिपना आया।

ताका समाधान—जैसें छद्मस्थकै श्रुतज्ञानके अनुसार प्रतीति पाइए है, तैसें केवली सिद्धभगवान्कै केवलज्ञानके अनुसार प्रतीति पाइए है। जो सप्त तत्वनिका स्वरूप पहलें ठीक किया था, सो ही केवलज्ञानकरि जान्या। तहाँ प्रतीतिको परम अवगाढ़पनो भयो। याहीतें परमअवगाढ सम्यक्त्व कह्या। जो पूर्वै श्रद्धान किया था, ताको झूठ जान्या होता तो तहाँ अप्रतीति होती। सो तो जैसा सप्त तत्वनिका श्रद्धान छद्मस्थकै भया था, तैसा ही केवली सिद्धभगवान्कै पाइए है तातैं ज्ञानादिककी हीनता अधिकता होतें भी तिर्यंचादिक वा केवली सिद्ध भगवान् तिनकै सम्यक्त्व गुण समान ही कह्या। बहुरि पूर्वअवस्थाविषै यहु मानैं थे—सवर निर्जराकरि मोक्षका उपाय करना। पीछें मुक्त अवस्था भए ऐसें मानने लगे, जो संवर निर्जराकरि हमारै मोक्ष भई। बहुरि पूर्वै ज्ञानकी हीनताकरि जीवादिकके थोड़े विशेष

जानें था, पीछें केवलज्ञान भए तिनके सर्वविशेष जानें परन्तु मूलभूत जीवादिकके स्वरूपका श्रद्धान जैसा छद्मस्थकै पाइए हैं तैसा ही केवली कै पाइए है। बहुरि यद्यपि केवली सिद्ध भगवान् अन्यपदार्थनिकों भी प्रतीति लिए जानै है तथापि ते पदार्थ प्रयोजनभूत नाही। तातैं सम्यक्त्वगुणविषै सप्त तत्वनिहीका श्रद्धान ग्रहण किया है। केवली सिद्ध भगवान् रागादिरूप न परिणमैं हैं, ससार अवस्थाको न चाहैं हैं। सो यह इस श्रद्धानका बल जानना।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यग्दर्शन को तो मोक्ष मार्ग कह्या था, मोक्ष विषै याका सद्भाव कैसे कहिए है ?

ताका उत्तर—कोई कारण ऐसा भी हो है, जो कार्य सिद्ध भए भी नष्ट न होय। जैसें काहू वृक्षकै कोई एक शाखाकरि अनेक शाखायुक्त अवस्था भई, तिसकों होतें वह शाखा नष्ट न हो है तैसे काहू आत्माकै सम्यक्त्व गुणकरि अनेकगुणयुक्त मुक्त अवस्था भई, ताकों होते सम्यक्त्व गुण नष्ट न हो है। ऐसे केवली सिद्धभगवानकै भी तत्वार्थश्रद्धान लक्षण ही पाइए है तातै यहाँ अव्याप्तिपनो नाही है।

बहुरि प्रश्न—मिथ्यादृष्टीकै भी तत्वश्रद्धान हो है, ऐसा शास्त्रविषैं निरूपण है। प्रवचनसारविषै आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान अकार्यकारी कह्या है। तातै सम्यक्त्वका लक्षण तत्वार्थश्रद्धान कह्या है, तिस विषै अतिव्याप्ति दूषण लागै है।

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टीकै जो तत्वश्रद्धान कह्या है, सो

नामनिक्षेपकरि कह्या है। जामें तत्वश्रद्धानका गुण नाहीं अर व्यवहारविषैं जाका नाम तत्वश्रद्धान कहिए सो मिथ्यादृष्टीकै हो है अथवा आगमद्रव्य निक्षेपकरि हो है। तत्वार्थश्रद्धानके प्रतिपादक शास्त्रनिको अभ्यासै है, तिनिका स्वरूप निश्चय करनेंविषैं उपयोग नाहीं लगावै है, ऐसा जानना। बहुरि यहाँ सम्यक्त्वका लक्षण तत्वार्थ श्रद्धान कह्या है सो भाव निक्षेपकरि कह्या है। सो गुणसहित सांचा तत्वार्थश्रद्धान मिथ्यादृष्टीकै कदाचित् न होय। बहुरि आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान कह्या है, तहाँ भी सोई अर्थ जानना। सांचा जीव अजीवादिकका जाकै श्रद्धान होय, ताकै आत्मज्ञान कैसें न होय ? होय ही होय। ऐसें कोई ही मिथ्यादृष्टीकै साँचा तत्वार्थश्रद्धान सर्वथा न पाईए है, तातैं तिस लक्षणविषैं अतिव्याप्ति दूषण न लागै है।

बहुरि जो यहु तत्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या, सो असम्भवी भी नाही है। जातैं सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व—यहु नाही है, वाका लक्षण इसतैं विपरीतता लिए है।

ऐसें अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भविपनाकरि रहित सर्व सम्यग्दृष्टीनिविषै तो पाइए अर कोई मिथ्यादृष्टिविषै न पाईए ऐसा सम्यग्दर्शनका साचा लक्षण तत्वार्थश्रद्धान है।

बहुरि प्रश्न उपजै है— जो यहाँ सातों तत्वनिके श्रद्धानका नियम कहो हो सो बनै नाही, जातैं कहीं परतैं भिन्न आपका श्रद्धानहीको सम्यक्त्व कहैं हैं। समयसारविषैं[1] **'एकत्वे नियतस्य'** इत्यादि कलशा

---

1 एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः।
पूर्णज्ञानघनस्यदर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्॥

(लिखा) है, तिसविषैं ऐसा कह्या है—जो इस आत्माका परद्रव्यतें भिन्न अवलोकन सो ही नियमतें सम्यग्दर्शन है। तातें नव तत्वकी सतति को छोड़ि हमारैं यहु एक आत्मा ही होहु। बहुरि कहीं एक आत्माके निश्चयहीको सम्यक्त्व कहै हैं। पुरुषार्थसिद्धयुपायविषैं[1] 'दर्शनमात्मविनिश्चतिः' ऐसा पद है। सो याका यहु ही अर्थ है। तातें जीव अजीव हीका वा केवल जीवहीका श्रद्धान भए सम्यक्त्व हो है। सातोंका श्रद्धानका नियम होता तो ऐसा काहेकों लिखते।

ताका समाधान—परतें भिन्न आपका श्रद्धान हो है, सो आस्रवादिकका श्रद्धान करि रहित हो है कि सहित हो है। जो रहित हो है, तो मोक्षका श्रद्धान बिना किस प्रयोजनके अर्थि ऐसा उपाय करै है। संवर निर्जराका श्रद्धान बिना रागादिकरहित होय स्वरूपविषैं उपयोग लगावनेका काहेकों उद्यम राखै है। आस्रव बंधका श्रद्धान बिना पूर्व अवस्थाको काहेकों छांड़ै है। तातैं आस्रवादिकका श्रद्धानरहित आपापरका श्रद्धान करना सम्भवै नाहीं। बहुरि जो आस्रवादिकका श्रद्धान सहित हो है, तो स्वयमेव ही सातों तत्वनिके श्रद्धानका नियम भया। बहुरि केवल आत्माका निश्चय है, सो परका पररूप श्रद्धान भए बिना आत्माका श्रद्धान न होय, तातैं अजीवका श्रद्धान भए ही जीवका श्रद्धान होय। बहुरि ताकै पूर्ववत् आस्रवादिकका भी श्रद्धान

सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम्।
तन्मुक्तवानवतत्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः॥ जीवाजीव०
अ० कलशा ६॥

[1] दर्शनमात्मविनिश्चतिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बन्धः॥ पु० सि० २१६॥

होय ही होय। तातैं यहाँ भी सातों तत्वनिके ही श्रद्धानका नियम जानना। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान विना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान साँचा होता नाहीं। जातैं आत्मा द्रव्य है, सो तो शुद्ध अशुद्ध पर्याय लिए है। जैसे तन्तु अवलोकन बिना पटका अवलोकन न होय, तैसें शुद्ध अशुद्ध पर्याय पहिचानें बिना आत्मद्रव्य का श्रद्धान न होय। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्थाकी पहिचानि आस्रवादिक की पहिचानतें हो है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान बिना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान कार्यकारी भी नाहीं। जातै श्रद्धान करो वा मति करो, आप है सो आप है ही, पर है सो पर है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान होय, तो आस्रवबधका अभावकरिसंवर निर्जरारूप उपायतें मोक्षपदको पावै। बहुरि जो आपापरका भी श्रद्धान कराइए है, सो तिस ही प्रयोजनके अर्थि कराइए है। तातै आस्रवादिकका श्रद्धानसहित आपापरका जानना वा आपका जानना कार्यकारी है।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसें है, तो शास्त्रनिविषैं आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धानहीकों सम्यक्त्व कह्या वा कार्यकारी कह्या। बहुरि नव तत्वकी सन्तति छोड़ि हमारे एक आत्मा ही होहु, ऐसा कह्या। सो कैसें कह्या ?

ताका समाधान—जाकै सांचा आपापरका श्रद्धान वा आत्मा का श्रद्धान होय, ताकै सातों तत्वनिका श्रद्धान होय ही होय। बहुरि जाकै सांचा सात तत्वनिका श्रद्धान होय, ताकै आपापर का वा आत्मा का श्रद्धान होय ही होय। ऐसा परस्पर अविनाभावीपना जानि

आपापरका श्रद्धानकों या आत्मश्रद्धान हो कों सम्यक्त्व कह्या। बहुरि इस छलकरि कोई सामान्यपनें आपापरको जानि वा आत्माकों जानि कृतकृत्यपनों मानै, तो वाकै भ्रम है। जातैं ऐसा कह्या है— **'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत्'**। याका अर्थ यहु— जो विशेषरहित सामान्य है सो गधेके सींग समान है। तातैं प्रयोजन-भूत आस्रवादिक विशेषनिसहित आपापरका वा आत्माका श्रद्धान करना योग्य है। अथवा सातों तत्त्वार्थनिका श्रद्धानकरि रागादिक मेटनेके अर्थि परद्रव्यनिकों भिन्न भावै है वा अपने आत्माहीकों भावै है, ताकै प्रयोजन की सिद्धि हो है। तातैं मुख्यताकरि भेदविज्ञानकों वा आत्मज्ञानकों कार्यकारी कह्या है। बहुरि तत्त्वार्थश्रद्धान किए बिना सर्व जानना कार्यकारी नाहीं। जातै प्रयोजनतो रागादिक मेटनेका है, सो आस्रवादिकका श्रद्धानविना यह प्रयोजन भासै नाहीं। तब केवल जाननेहीतैं मानकों बधावै, रागादिक छांडै नाहीं, तब वाका कार्य कैसे सिद्धि होय। बहुरि नव तत्त्वसततिका छोड़ना कह्या है। सो पूर्वै नवतत्त्वके विचार करि सम्यग्दर्शन भया, पीछैं निर्विकल्पदशा होने के अर्थि नवतत्त्वनिका भी विकल्प छोड़नेकी चाह करी। बहुरि जाकै पहिलै ही नवतत्त्वनिका विचार नाही, ताकै तिस विकल्प छोड़नेका कहा प्रयोजन है। अन्य अनेक विकल्प आपकै पाइए है, तिनहीका त्याग करो। ऐसें आपापरका श्रद्धानविषै वा आत्मश्रद्धानविषै सप्त-तत्त्वका श्रद्धानकी सापेक्षा पाइए है, तातै तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण है।

बहुरि प्रश्न—जो कहीं शास्त्रनिविषै अरहन्तदेव निर्ग्रन्थ गुरु हिंसा-

रहित धर्मका श्रद्धानको सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसें है ?

ताका समाधान—अरहत देवादिकका श्रद्धानतें कुदेवादिकका श्रद्धान दूरि होनेकरि गृहीत मिथ्यात्वका अभाव हो है। तिस अपेक्षा याकों सम्यक्त्व कह्या है। सर्वथा सम्यक्त्वका लक्षण यहु नाहीं। जातैं द्रव्यलिंगी मुनि आदि व्यवहार धर्मके धारक मिथ्यादृष्टी तिनिकै भी ऐसा श्रद्धान हो है। अथवा जैसें अणुव्रत महाव्रत होतें तो देशचारित्र सकलचारित्र होय वा न होय परन्तु अणुव्रत महाव्रत भए विना देशचारित्र सकलचारित्र कदाचित् न होय। तातैं इनि व्रतनिकों अन्वयरूप कारण जानि कारणविषै कार्यका उपचारकरि इनकों चारित्र कह्या। तैसें अरहन्त देवादिकका श्रद्धान होते तो सम्यक्त्व होय वा न होय परन्तु अरहन्तादिकका श्रद्धान भए विना तत्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व कदाचित् न होय। तातैं अरहन्तादिककै श्रद्धानकों अन्वयरूप कारण जानि कारणविषै कार्यका उपचारकरि इस श्रद्धानकों सम्यक्त्व कह्या है। याहीतैं याका नाम व्यवहारसम्यक्त्व है। अथवा जाकै तत्वार्थश्रद्धान होय, ताकै सांचा अरहन्तादिककै स्वरूपका श्रद्धान होय ही होय। तत्वार्थश्रद्धान विना पक्षकरि अरहन्तादिकका श्रद्धान करै परन्तु यथावत् स्वरूपकी पहिचानलिए श्रद्धान होय नाहीं। बहुरि जाकै सांचा अरहन्तादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय। जातैं अरहन्तादिकका स्वरूप पहिचानें जीव अजीव आस्रवादिकको पहिचान हो है। ऐसें इनकों परस्पर अविनाभावी जानि कहीं अरहन्तादिकके श्रद्धानको सम्यक्त्व कह्या है।

यहाँ प्रश्न—जो नारकादिक जीवनिकै देवकुदेवादिकका व्यवहार नाही अर तिनिके सम्यक्त्व पाइए है, तातै सम्यक्त्व होतें अरहंतादिकका श्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाही ?

ताका समाधान—सप्त तत्वनिका श्रद्धानविषें अरहतादिकका श्रद्धान गर्भित है। जातै तत्वश्रद्धानविषै मोक्षतत्वकों सर्वोत्कृष्ट मानैं है। सो मोक्षतत्व तो अरहत सिद्धका लक्षण है। जो लक्षणकों उत्कृष्ट मानै, सो ताके लक्ष्यको उत्कृष्ट मानै ही मानै। तातै उनकों भी सर्वोत्कृष्ट मान्या, औरकों न मान्या, सो ही देवका श्रद्धान भया। बहुरि मोक्षके कारण सवर निर्जरा हैं, तातै इनकों भी उत्कृष्ट मानै है। सो संवर निर्जराके धारक मुख्यपनें मुनि हैं। तातैं मुनिकों उत्तम मान्या, औरकों न मान्या, सो ही गुरुका श्रद्धान भया। बहुरि रागादिकरहित भावका नाम अहिंसा है, ताहीकों उपादेय मानै है, औरकों न मानै है, सोई धर्मका श्रद्धान भया। ऐसै तत्वश्रद्धानविषैं गर्भित अरहतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। अथवा जिस निमित्ततें याकै तत्वार्थ श्रद्धान हो है, तिस निमित्ततै अरहंतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। तातैं सम्यक्त्वविषै देवादिकके श्रद्धानका नियम है।

बहुरि प्रश्न—जो केई जीव अरहतादिकका श्रद्धान करै है, तिनिके गुण पहिचानै है अर उनकै तत्वश्रद्धानरूप सम्यक्त्व न हो है। तातैं जाकै सांचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाही ?

ताका समाधान—तत्वश्रद्धान विना अरहंतादिकके छियालीस आदि गुण जानै है, सो पर्यायाश्रित गुण जानै है परन्तु जुदा जुदा जीव

पुद्गलविषें जैसें सम्भवै तैसें यथार्थ नाही पहिचानै है। तातैं सांचा श्रद्धान भी न होय। जातै जीव अजीवकी जाति पहिचानें विना अरहंतादिकके आत्माश्रित गुणनिकों वा शरीराश्रित गुणनिकों भिन्न-भिन्न न जानें। जो जानें तो अपनें आत्माकों परद्रव्यतें भिन्न कैसें न मानें ? तातैं प्रवचनसारविषै ऐसा कह्या है :—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥

याका अर्थ यहु—जो अरहंतकों द्रव्यत्व गुणत्व पर्यायत्वकरि जानैं है, सो आत्माकों जानें है। ताका मोह विलयकों प्राप्त हो है। तातैं जाकै जीवादिक तत्वनिका श्रद्धान नाहीं, ताकै अरहंतादिकका भी सांचा श्रद्धान नाहीं। बहुरि मोक्षादिक तत्वका श्रद्धानविना अरहंतादिकका माहात्म्य यथार्थ न जानें। लौकिक अतिशयादिककरि अरहंत का, तपश्चरणादिकरि गुरुका अर परजीवनिकी अहिंसादिकरि धर्मकी महिमा जानै, सो ए पराश्रित भाव हैं। बहुरि आत्माश्रित भावनिकरि अरहंतादिकका स्वरूप तत्वश्रद्धान भए ही जानिए है। तातैं जाकै सांचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम जानना। या प्रकार सम्यक्त्वका लक्षणनिर्देश किया।

यहाँ प्रश्न—जो सांचा तत्वार्थश्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्म श्रद्धान वा देवगुरुधर्मका श्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण कह्या। बहुरि इन सर्व लक्षणनिकी परस्पर एकता भी दिखाई सो जानी। परन्तु अन्य अन्य प्रकार लक्षण कहनेका प्रयोजन कहा ?

ताका उत्तर—ए चारि लक्षण कहे, तिनिविषें सांची दृष्टिकरि एक लक्षण ग्रहण किए चारयों लक्षणका ग्रहण हो है। तथापि मुख्य प्रयोजन जुदा जुदा विचारि अन्य अन्य प्रकार लक्षण कहे हैं। जहाँ तत्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तो यहु प्रयोजन है जो इन तत्वनिकों पहिचानै तो यथार्थ वस्तुके स्वरूपका वा अपने हित अहितका श्रद्धान करै तब मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै। बहुरि जहाँ आपापरका भिन्न श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तत्वार्थ श्रद्धानका प्रयोजन जाकरि सिद्ध होय, तिम श्रद्धानकों मुख्य लक्षण कह्या है। जीव अजीवके श्रद्धानका प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धान करना है। बहुरि आस्रवादिकके श्रद्धानका प्रयोजन रागादिक छोड़ना है सो आपापरका भिन्न श्रद्धान भए परद्रव्यविषै रागादि न करनेका श्रद्धान हो है। ऐसैं तत्वार्थ श्रद्धान का प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धानतै सिद्ध होता जानि इस लक्षणकों कहा है। बहुरि जहाँ आत्मश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ आपापरका भिन्नश्रद्धानका प्रयोजन इतना ही है—आपको आप जानना। आपकों आप जानें परका भी विकल्प कार्यकारी नाहीं। ऐसा मूलभूत प्रयोजनकी प्रधानता जानि आत्मश्रद्धानकों मुख्य लक्षण कह्या है। बहुरि जहाँ देवगुरुधर्मका श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ बाह्य साधनकी प्रधानता करी है। जातै अरहन्तदेवादिकका श्रद्धान साचा तत्वार्थश्रद्धानकों कारण है अर कुदेवादिकका श्रद्धान कल्पित तत्वश्रद्धानकों कारण है। सो बाह्य कारणकी प्रधानताकरि कुदेवादिकका श्रद्धान छुडाय सुदेवादिकका श्रद्धान करावनेके अर्थि देवगुरुधर्मका श्रद्धानकों मुख्यलक्षण कह्या है। ऐसैं जुदे २ प्रयोजननिकी मुख्यता

करि जुदे जुदे लक्षण कहे हैं।

इहाँ प्रश्न—जो ए चारि लक्षण कहे, तिनविषैं यहु जीव किस लक्षणकों अंगीकार करै ?

ताका समाधान—मिथ्यात्वकर्मका उपशमादि होतें विपरीताभिनिवेशका अभाव हो है। तहाँ च्यारों लक्षण युगपत् पाइए हैं। बहुरि विचार अपेक्षा मुख्यपने तत्त्वार्थनिकों विचारै है। कै आपापरका भेद विज्ञान करै है। कै आत्मस्वरूपहीकों सम्भारै है। कै देवादिकका स्वरूप विचारै है। ऐसें ज्ञानविषै तो नाना प्रकार विचार होय परन्तु श्रद्धानविषै सर्वत्र परस्पर सापेक्षपनों पाइए है। तत्वविचार करै है तो भेदविज्ञानादिकका अभिप्राय लिए करै है अर भेदविज्ञान करै है तो तत्वविचार आदिकका अभिप्राय लिए करै है। ऐसें ही अन्यत्र भी परस्पर सापेक्षपणों है। तातै सम्यग्दृष्टीके श्रद्धानविषै च्यारों ही लक्षणनिका अंगीकार है। बहुरि जाकै मिथ्यात्व का उदय है ताकै विपरीताभिनिवेश पाइए है। ताकै ए लक्षण आभास मात्र होय, साँचे न होय। जिनमतके जीवादिकतत्वनिकों मानै, और को न मानै, तिनके नाम भेदादिककों सीखै है, ऐसे तत्वार्थश्रद्धान होय परन्तु तिनिका यथार्थ भावका श्रद्धान न होय। बहुरि आपापरका भिन्नपनाकी बातें करै अर वस्त्रादिकविषै परबुद्धिकों चितवन करै परन्तु जैसें पर्यायविषैं अहबुद्धि है अर वस्त्रादिकविषै परबुद्धि है, तैसे आत्माविषै अहंबुद्धि अर शरीरादि विषै परबुद्धि न हो है। बहुरि आत्माकों जिनवचनानुसार चिन्तवै परन्तु प्रतीतिरूप आपकों आप श्रद्धान न करै है। बहुरि अरहन्तदेवादिक बिना और कुदेवादिकको न मानै परन्तु तिनके स्वरूपकों यथार्थ पहचानि श्रद्धान न करै, ऐसे ए लक्षणाभास मिथ्यादृष्टीकै हो हैं।

इनविषैं कोई होय, कोई न होय। तहाँ इनकै भिन्नपनों भी सम्भवै है। बहुरि इन लक्षणाभासनिविषै इतना विशेष है जो पहिलैं तो देवादिकका श्रद्धान होय, पीछैं तत्वनिका विचार होय, पीछैं आपापरका चिंतवन करै, पीछैं केवल आत्माकों चिन्तवै। इस अनुक्रमतें साधन करै तो परम्परा सांचा मोक्षमार्गकों पाय कोई जीव सिद्धपदकों भी पावै। बहुरि इस अनुक्रमका उलघन करि जाकै देवादिक माननेका तो किछू ठीक नाही अर बुद्धिकी तीव्रतातें तत्वविचारादिकविषै प्रवर्त्तै है तातैं आपकों ज्ञानी जानै है। अथवा तत्वविचारविषै भी उपयोग न लगावै है, आपापरका भेदविज्ञानी हुवा रहै है। अथवा आपापरका भी ठीक न करै है अर आपकों आत्मज्ञानी मानै है। सो ए सर्व चतुराईकी बातै हैं। मानादिक कषायके साधन हैं। किछू भी कार्यकारी नाहीं। तातैं जो जीव अपना भला किया चाहै, तिसकों यावत् सांचा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति न होय, तावत् इनिकों भी अनुक्रमहीतै अंगीकार करना। सोई कहिए है —

पहलें तो आज्ञादिकरि वा कोई परीक्षाकरि कुदेवादिकका मानना छोडि अरहंतदेवादिकका श्रद्धान करना। जातै इस श्रद्धान भए गृहीत-मिथ्यात्वका तो अभाव हो है। बहुरि मोक्षमार्गके विघ्न करनहारे कुदेवादिकका निमित्त दूरि हो है। मोक्षमार्गका सहाई अरहंतदेवादि-कका निमित्त मिलै है। सो पहिलै देवादिकका श्रद्धान करना। बहुरि पीछैं जिनमतविषै कहे जीवादिक तत्वतिनिका विचार करना। नाम लक्षणादि सीखनें। जातैं इस अभ्यासतें तत्वार्थ श्रद्धानकी प्राप्ति होय। बहुरि पीछैं आपापरका भिन्नपन्ना जैसे भासै तैसे विचार किया

करै। जातै इस अभ्यासतै भेदविज्ञान होय। बहुरि पीछैं आपविषैं आपो माननेके अर्थि स्वरूपका विचार किया करै। जातै इस अभ्यास तैं आत्मानुभवकी प्राप्ति हो है। बहुरि ऐसे अनुक्रमतैं इनको अंगीकार करि पीछे इनहीविषै कबहू देवादिकका विचारविषैं, कबहू तत्वविचार विषैं, कबहू आपापरका विचारविषै, कबहू आत्मविचारविषै उपयोग लगावै। ऐसै अभ्यासतै दर्शनमोह मन्द होता जाय तब कदाचित् साँचा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय, बहुरि ऐसा नियम तो है नाहीं। कोई जीवकै कोई विपरीत कारण प्रबल बीचमें होय जाय, तो सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नाही भी होय परन्तु मुख्यपने घने जीवनिकै तो इस अनुक्रमतैं कार्यसिद्धि हो है। तातैं इनिकों ऐसै अंगीकार करनें। जैसे पुत्रका अर्थी विवाहादि कारणनिकों मिलावै, पीछे घनें पुरुषनिकै तो पुत्रकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय तो न होय। याकों तो उपाय करना। तैसै सम्यक्त्वका अर्थी इनि कारणनिकों मिलावै, पीछैं घने जीवनिकै तो सम्यक्त्वकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय तो नाहीं भी होय। परन्तु याकों तो आपतै बनै सो उपाय करना। ऐसें सम्यक्त्वका लक्षण निर्देश किया।

यहाँ प्रश्न—जो सम्यक्त्वके लक्षण तो अनेक प्रकार कहे, तिन विषै तुम तत्वार्थश्रद्धान लक्षणकों मुख्य किया, सो कारण कहा ?

ताका समाधान—तुच्छबुद्धीनिकों अन्य लक्षणविषै प्रयोजन प्रगट भासै नाहीं वा भ्रम उपजै। अर इस तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषै प्रगट प्रयोजन भासै, किछू भ्रम उपजै नाहीं। तातैं इस लक्षणकों मुख्य किया है। सोई दिखाइए है :—

देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनिकों यहु भासै —ग्ररहंतदेवादिककों मानना, औरकों न मानना, इतना ही सम्यक्त्व है। तहाँ जीव अजीवका वा बधमोक्षके कारणकार्यका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा जीवादिकका श्रद्धान भए विना इस ही श्रद्धानविषैं सन्तुष्ट होय आपकों सम्यक्त्वी मानै। एक कुदेवादिकतें द्वेष तो राखै, अन्य रागादि छोड़ने का उद्यम न करै, ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आपापरका श्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनिकों यहु भासै कि आपापरका ही जानना कार्यकारी है। इसतें ही सम्यक्त्व हो है। तहाँ आस्रवादिकका स्वरूप न भासै। तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा आस्रवादिकका श्रद्धान भए विना इतना ही जाननेविषै सन्तुष्ट होय आपकों सम्यक्त्वी मान स्वच्छन्द होय रागादि छोड़नेंका उद्यम न करै, ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आत्मश्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनिको यहु भासै कि आत्माहीका विचार कार्यकारी है। इसहीतें सम्यक्त्व हो है। तहाँ जीव अजीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा जीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूपका श्रद्धान भए विना इतना ही विचारतें आपकों सम्यक्त्वी मानें स्वच्छन्द होय रागादि छोडनेका उद्यम न करै। याकें भी ऐसा भ्रम उपजै है। ऐसा जानि इन लक्षणनिकों मुख्य न किए। बहुरि तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषै जीव अजीवादिकका वा आस्रवादिकका श्रद्धान होय। तहाँ सर्वका स्वरूप नीके भासै, तब मोक्षमार्ग के प्रयोजनकी सिद्धि होय। बहुरि इस श्रद्धान भए सम्यक्त्व होय परन्तु यह सन्तुष्ट न हो है। आस्रवादिकका श्रद्धान होनेतें रागादि

छोड़ि मोक्षका उद्यम राखै है। याकै भ्रम न उ-जं है। तातैं तत्वार्थ श्रद्धान लक्षणकों मुख्य किया है। अथवा तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषैं तो देवादिकका श्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान गर्भित हो है सो तो तुच्छबुद्धीनिकों भी भासै। बहुरि अन्य लक्षणविषै तत्वार्थश्रद्धानका गर्भितपनों विशेष बुद्धिमान होय, तिनहीकों भासै, तुच्छबुद्धीनिकों न भासै तातै तत्वार्थश्रद्धान लक्षणकौं मुख्य किया है। अथवा मिथ्यादृष्टीकै आभास मात्र ए होंय। तहाँ तत्वार्थनिका विचार तो शीघ्रपने विपरीताभिनिवेश दूर करनेकों कारण हो है, अन्य लक्षण शीघ्र कारण नाहीं होय वा विपरीताभिनिवेशका भी कारण होय जाय। तातैं यहाँ सर्वप्रकार प्रसिद्ध जानि **विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थनिका श्रद्धान सोही सम्यक्त्वका लक्षण है,** ऐसा निर्देश किया। ऐसे लक्षण निर्देशका निरूपण किया। ऐसा लक्षण जिस आत्माका स्वभावविषै पाइए है, सो ही सम्यक्त्वी जानना।

सम्यक्त्वके भेद और उनका स्वरूप

अब इस सम्यक्त्वके भेद दिखाईए है, तहाँ प्रथम निश्चय व्यवहार का भेद दिखाईए है—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप आत्माका परिणाम सो तो निश्चय सम्यक्त्व है, जातै यहु सत्यार्थ सम्यक्त्वका स्वरूप है। सत्यार्थहीका नाम निश्चय है। बहुरि विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धानकों कारणभूत श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है, जातै कारणविषैं कार्यका उपचार किया है। सो उपचारही का नाम व्यव-

हार है। तहाँ सम्यग्दृष्टी जीवकै देवगुरुधर्मादिकका सांचा श्रद्धान है तिसही निमित्ततें याकै श्रद्धानविषें विपरीताभिनिवेशका अभाव है। सो यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान सो तो निश्चय सम्यक्त्व है अर देवगुरु धर्मादिकका श्रद्धान है सो यहु व्यवहार सम्यक्त्व है। ऐसे एक ही कालविषें दोऊ सम्यक्त्व पाइए है। बहुरि मिथ्यादृष्टी जीवकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान आभास मात्र हो है अर याके श्रद्धानविषें विपरीताभिनिवेशका अभाव न हो है। तातै यहाँ निश्चयसम्यक्त्व तो है नाहीं अर व्यवहार सम्यक्त्व भी आभासमात्र है। जातै याकं देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशके अभावको साक्षात् कारण भया नाही। कारण भए विना उपचार सम्भवै नाहीं। तातै साक्षात् कारण अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त्व भी याकै न सम्भवै है। अथवा याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान नियमरूप हो है सो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानकों परम्परा कारणभूत है। यद्यपि नियमरूप कारण नाहीं, तथापि मुख्यपनै कारण है। बहुरि कारणविषै कार्यका उपचार सम्भवै है। तातै मुख्यरूप परम्परा कारण अपेक्षा मिथ्यादृष्टीकै भी व्यवहार सम्यक्त्व कहिए है।

यहाँ प्रश्न—जो केई शास्त्रनिविषें देवगुरुधर्मका श्रद्धानकों वा तत्वश्रद्धानकों तो व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है अर आपापरका श्रद्धान कों वा केवल आत्माके श्रद्धानकों निश्चय सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसें है ?

ताका समाधान—देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषें तो प्रवृत्तिकी मुख्यता है। जो प्रवृत्तिविषें अरहंतादिककों देवादिक मानें, औरकों न मानें,

सो देवादिकका श्रद्धानी कहिए है अर तत्वश्रद्धानविषैं तिनके विचारकी मुख्यता है। जो ज्ञानविषैं जीवादिकतत्वनिकौं विचारै, ताकौं तत्वश्रद्धानी कहिए है। ऐसैं मुख्यता पाइए है। सो ए दोऊ काहू जीवकै सम्यक्त्वकौं कारण तो होंय परन्तु इनिका सद्भाव मिथ्यादृष्टीकै भी सम्भवै है। तातैं इनिकौं व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि आपापर का श्रद्धानविषै वा आत्मश्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेश रहितपना की मुख्यता है। जो आपापरका भेदविज्ञान करै वा अपनें आत्माकौं अनुभवै, ताकै मुख्यपनें विपरीताभिनिवेश न होय। तातै भेदविज्ञानीको वा आत्मज्ञानीकों सम्यग्दृष्टी कहिए है। ऐसै मुख्यताकरि आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान सम्यग्दृष्टीहीकै पाइए है। तातै इनिकौं निश्चय सम्यक्त्व कह्या, सो ऐसा कथन मुख्यताकी अपेक्षा है। तारतम्यपने ए च्यारों आभासमात्र मिथ्यादृष्टीकै होंय, साँचे सम्यग्दृष्टीकै होय। तहाँ आभासमात्र हैं सो तो नियम बिना परम्परा कारण हैं अर सांचे हैं सो नियम रूप साक्षात् कारण हैं। तातै इनिको व्यवहाररूप कहिये। इनिके निमित्ततैं जो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया सो निश्चय सम्यक्त्व है, ऐसा जानना।

बहुरि प्रश्न—केई शास्त्रनिविषैं लिखैं हैं—आत्मा है सो ही निश्चय सम्यक्त्व है, और सर्व व्यवहार है सो कैसे है?

ताका समाधान—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया सो आत्माहीका स्वरूप है, तहाँ अभेदबुद्धि करि आत्मा अर सम्यक्त्वविषै भिन्नता नाहीं, तातै निश्चयकरि आत्माहीकौं सम्यक्त्व कह्या।

और सर्व सम्यक्त्वकों निमित्तमात्र हैं वा भेदकल्पना किए आत्मा अर सम्यक्त्वके भिन्नता कहिए है तातैं और सर्व व्यवहार कह्या है, ऐसैं जानना। या प्रकार निश्चयसम्यक्त्व अर व्यवहार सम्यक्त्वकरि सम्यक्त्वके दोय भेद हो हैं अर अन्य निमित्तादि अपेक्षा आज्ञा-सम्यक्त्वादि सम्यक्त्वके दश भेद कहे हैं, सो **आत्मानुशासनविषें** कह्या है :—

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्।
विस्तारार्थाभ्यांभवमवगाढपरमावगाढं च ॥११॥

याका अर्थ—जिनआज्ञातै तत्वश्रद्धान भया होय सो आज्ञा सम्यक्त्व है। यहाँ इतना जानना—"मोकों जिनआज्ञा प्रमाण है", इतना ही श्रद्धान सम्यक्त्व नाहीं है। आज्ञा मानना तो कारणभूत है। याहीतैं यहाँ आज्ञातैं उपज्या कह्या है। तातै पूर्वे जिनआज्ञा माननेतें पीछे जो तत्वश्रद्धान भया सो **आज्ञासम्यक्त्व** है। ऐसे ही निर्ग्रन्थ-मार्गके अवलोकनेतें तत्वश्रद्धान भया सो **मार्गसम्यक्त्व**[1] है।

[बहुरि उत्कृष्ट पुरुष तीर्थंकरादिक तिनके पुराणनिका उपदेशतें जो उपज्या सम्यग्ज्ञान ताकरि उत्पन्न आगमसमुद्रविषैं प्रवीणपुरुषनिकरि उपदेश आदितें भई जो उपदेशदृष्टि सो **उपदेशसम्यक्त्व है।** मुनिके आचरणका विधानकों प्रतिपादन करता जो आचारसूत्र ताहि

1 मार्ग सम्यक्त्वके बाद मल्लजीकी स्वहस्त लिखित प्रति में ३ लाइनका स्थान अन्य सम्यक्त्वोंके लक्षण लिखनेके लिये छोड़ा गया है और ये लक्षण मुद्रित तथा हस्तलिखित अन्य प्रतियोंके अनुसार दिये गये है।

सुनकरि श्रद्धान करना जो होय सो सूत्रदृष्टि भलेप्रकार कही है। यहु **सूत्रसम्यक्त्व** है। बहुरि बीज जे गणितज्ञानकों कारण तिनकरि दर्शनमोहका अनुपम उपशमके बलतें, दुष्कर है जाननेकी गति जाकी ऐसा पदार्थनिका समूह, ताकी भई है उपलब्धि अर्थात् श्रद्धानरूप परणति जाकै, ऐसा करणानुयोगका ज्ञानी भया, ताकै बीजदृष्टि हो है। यहु **बीजसम्यक्त्व** जानना। बहुरि पदार्थनिकों संक्षेपपनेतें जानकरि जो श्रद्धान भया सो भली सक्षेपदृष्टि है। यह **संक्षेपसम्यक्त्व** जानना। जो द्वादशागवानीकों सुन कीन्ही जो रुचि श्रद्धान, ताहि विस्तारदृष्टि हे भव्य तू जानि। यह **विस्तारसम्यक्त्व** है। बहुरि जैनशास्त्रके वचनविना कोई अर्थका निमित्ततें भई सो अर्थदृष्टि है। यह **अर्थसम्यक्त्व** जानना।] ऐसैं आठ भेद तो कारण अपेक्षा किए। बहुरि अंग अर अगबाह्यसहित जैनशास्त्र ताकों अवगाह करि जो निपजो सो अवगाढ़दृष्टि है। यह **अवगाढ़सम्यक्त्व जानना।** बहुरि श्रुतकेवलीकै जो तत्वश्रद्धान है ताकों **अवगाढ़सम्यक्त्व कहिए।** केवलज्ञानीकै जो तत्वश्रद्धान है, ताकों **परमावगाढ़सम्यक्त्व** कहिए। ऐसैं दोय भेद ज्ञानका सहकारीपनाकी अपेक्षा किए। या प्रकार दशभेद सम्यक्त्वके किए। तहाँ सर्वत्र सम्यक्त्वका स्वरूप तत्वार्थ श्रद्धान ही जानना।

बहुरि सम्यक्त्वके तीन भेद किए हैं। १ औपशमिक २ क्षायोपशमिक, ३ क्षायिक। सो ए तीन भेद दर्शनमोहकी अपेक्षा किए हैं। तहाँ औपशमिकसम्यक्त्वके दोय भेद हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। तहाँ मिथ्यात्वगुणस्थानविषैं करणकरि दर्शनमोहकों

उपशमाय सम्यक्त्व उपजै, ताकों प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिए है। तहाँ इतना विशेष है—अनादि मिथ्यादृष्टिकै तो एक मिथ्यात्वप्रकृतिहीका उपशम होय है, जातै याकै मिश्रमोहनी अर सम्यक्त्वमोहनीकी सत्ता है नाहीं। जब जीव उपशमसम्यक्त्वकों प्राप्त होय, तहाँ तिस सम्यक्त्वके कालविषें मिथ्यात्वके परमाणूनिकों मिश्रमोहनीरूप वा सम्यक्त्वमोहनी-रूप परिणमावै है, तब तीन प्रकृतीनिकी सत्ता हो है। तातै अनादि मिथ्यादृष्टीकै एक मिथ्यात्वप्रकृतिकी ही सत्ता है। तिसहीका उपशम हो है। बहुरि सादिमिथ्यादृष्टिकै काहूकै तीन प्रकृतीनिकी सत्ता है, काहूकै एकही की सत्ता है। जाकै सम्यक्त्वकालविषै तीनकी सत्ता भई थी, सो सत्ता पाईए, ताकै तीनकी सत्ता है अर जाकै मिश्रमोहनी सम्यक्त्वमोहनी की उद्वेलना होय गई होय, उनके परमाणु मिथ्यात्व-रूप परिणमि गए होंय, ताकै एक मिथ्यात्वकी सत्ता है। तातै सादि मिथ्यादृष्टीकै तीन प्रकृतीनिका वा एक प्रकृतिका उपशम हो है।

उपशम कहा ? सो कहिए है :—

अनिवृत्तिकरणविषै किया अतरकरणविधानतैं जे सम्यक्त्वकाकाल विषै उदय आवनें योग्य निषेक थे, तिनिका तो अभाव किया, तिनिके परमाणु अन्यकालविषै उदय आवने योग्य निषेकरूप किए। बहुरि अनिवृत्तिकरणही विषै किया उपशमविधानतै जे तिसकाल के पीछे उदय आवने योग्य निषेक थे ते उदीरणारूप होय इस कालविषै उदय न आय सकैं, ऐसे किए। ऐसैं जहाँ सत्ता तो पाइए अर उदय न पाइए, ताका नाम उपशम है। सो यहु मिथ्यात्वतै भया प्रथमोपशम सम्यक्त्व, सो चतुर्थादि सप्तमगुणस्थानपर्यन्त पाइए है। बहुरि

उपशमश्रेणीको सन्मुख होतें सप्तम गुणस्थानविषैं क्षयोपशमसम्यक्त्वतें जो उपशम सम्यक्त्व होय, ताका नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है। यहाँ करणकरि तीन ही प्रकृतीनिका उपशम हो है, जातै याकै तीनहीकी सत्ता पाइए। यहाँ भी अंतरकरणविधानतें वा उपशमविधानतें तिनिके उदयका अभाव करै है सोही उपशम है। सो यहु द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सप्तमादि गयारवाँ गुणस्थानपर्यन्त हो है। पड़ना कोईकं छठे पाँचवें (**चौथे गुणस्थान**) [1] भी रहै है, ऐसा जानना। ऐसें उपशम सम्यक्त्व दोय प्रकार है। सो यहु सम्यक्त्व वर्तमानकाल विषै क्षायिकवत् निर्मल है। याका प्रतिपक्षी कर्मकी सत्ता पाईए है, तातें अन्तर्मुहूर्त कालमात्र यहु सम्यक्त्व रहै है। पीछें दर्शनमोहका उदय आवै है, ऐसा जानना। ऐसें उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या।

बहुरि जहाँ दर्शन मोहकी तीन प्रकृतीनिविषै सम्यक्त्वमोहनीका उदय होय (पाइए है, ऐसी दशा जहाँ होय सो क्षयोपशम है। जातैं समलतत्वार्थ श्रद्धान होय, सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है।) अन्य दोयका उदय न होय, तहाँ क्षयोपशम सम्यक्त्व हो है। सो उपशम सम्यक्त्वका काल पूर्ण भए यहु सम्यक्त्व हो है वा सादि मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्व-गुणस्थानतें वा मिश्रगुणस्थानतें भी याकी प्राप्ति हो है।

क्षयोपशम कहा ? सो कहिए है —
दर्शनमोहकी तीन प्रकृतीनिविषै जो मिथ्यात्वका अनुभाग है ताके अनन्तवें भाग मिश्रमोहनीका है। ताके अनन्तवें भाग सम्यक्त्व-मोहनीका है। सो इनिविषैं सम्यक्त्वमोहनी प्रकृति देशघाती है। याका उदय होतें भी सम्यक्त्वका घात न होय। किंचित् मलीनता

1 "चौथे गुणस्थान" यह अन्य प्रतियों में अधिक है।

करैं, मूलघात न करि सकै; ताहीका नाम देशघाति है। सो जहाँ मिथ्यात्व वा मिश्रमिथ्यात्वका वर्तमानकालविषैं उदय आवनेंयोग्य निषेक तिनका उदय हुए विना ही निर्जरा हो है सो तो क्षय जानना और इनिहीका आगामीकालविषैं उदय आवनें योग्य निषेकनिकी सत्ता पाइए सो ही उपशम है और सम्यक्त्वमोहनीका उदय पाइए है, ऐसी दशा जहाँ होय सो क्षयोपशम है, तातैं समलतत्वार्थ श्रद्धान होय सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है। यहाँ मल लागै है, ताका तारतम्य स्वरूप तो केवली जानै हैं, उदाहरण दिखावनेके अर्थि चलमलिन अगाढ़पना कह्या है। तहाँ व्यवहार मात्र देवादिककीप्रतीति तो होय परन्तु अरहन्तदेवादिविषैं यहु मेरा है, यहु अन्यका है, इत्यादि भाव सो चलपना है। शकादि मल लागै सो मलिनपना है। यहु शांतिनाथ शांतिका कर्त्ता है इत्यादि भाव सो अगाढ़पना है। सो ऐसे उदाहरण व्यवहारमात्र दिखाए परन्तु नियमरूप नाही। क्षयोपशम सम्यक्त्व विषैं जो नियमरूप कोई मल लागै है सो केवली जानै हैं। इतना जानना—याकै तत्वार्थश्रद्धानविषैं कोई प्रकार करि समलपनो हो है तातै यहु सम्यक्त्व निर्मल नाही है। इस क्षयोपशम सम्यक्त्वका-एक ही प्रकार है। याविषैं किछू भेद नाही है। इतना विशेष है—जो क्षायिक सम्यक्त्वकों सन्मुख होते अन्तर्मुहूर्त्तकाल मात्र जहाँ मिथ्यात्व-की प्रकृतिका क्षय करै है, तहाँ दोय ही प्रकृतीनिकी सत्ता रहै है। बहुरि पीछें मिश्रमोहनीका भी क्षय करै है। तहाँ सम्यक्त्वमोहनीकी ही सत्ता रहै है। पीछें सम्यक्त्वमोहनीकी कांडकघातादि क्रिया न करै है। तहाँ कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टी नाम पावै है, ऐसा जानना। बहुरि इस

क्षयोपशमसम्यक्त्वहीका नाम वेदकसम्यक्त्व है। जहाँ मिथ्यात्वमिश्र-मोहनीकी मुख्यता करि कहिए, तहाँ क्षयोपशम नाम पावै है। सम्यक्त्व मोहनीकी मुख्यताकरि कहिए, तहाँ वेदक नाम पावै है। सो कहने मात्र दोय नाम हैं, स्वरूपविषै भेद है नाहीं। बहुरि यहु क्षयोपशम सम्यक्त्व चतुर्थादि सप्तमगुणस्थान पर्यन्त पाइए है, ऐसैं क्षयोपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या।

बहुरि तीनों प्रकृतीनिके सर्वथा सर्व निषेकनिका नाश भए अत्यन्त निर्मल तत्वार्थश्रद्धान होय सो क्षायिक सम्यक्त्व है। सो चतुर्थादि चार गुणस्थाननिविषैं कहीं क्षयोपशम सम्यग्दृष्टिकैं याकी प्राप्ति हो है। कैसें हो है ? सो कहिए है—प्रथम तीन करणकरि तहाँ मिथ्यात्वके परमाणूनिकों मिश्रमोहनी वा सम्यक्त्व मोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसें मिथ्यात्वकी सत्ता नाश करै। बहुरि मिश्र मोहनी के परमाणूनिकों सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसें मिश्रमोहनीका नाश करै। बहुरि सम्यक्त्वमोहनीके निषेक उदय आय खिरै, वाकी बहुत स्थिति आदि होय तो ताकों स्थिति-कांडादिकरि घटावै। जहाँ अन्तर्मुहूर्त्तस्थिति रहै, तब कृतकृत्य वेदक-सम्यग्दृष्टी होय। बहुरि अनुक्रमतें इन निषेकनिका नाश करि क्षायिक सम्यग्दृष्टी हो है। सो यहु प्रतिपक्षी कर्मके अभावतें निर्मल है वा मिथ्यात्वरूप रंजनाके अभावतें वीतराग है। याका नाश न होय। जहाँतें उपजै तहाँतें सिद्ध अवस्था पर्यन्त याका सद्भाव है। ऐसैं क्षायिक सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या। ऐसें तीन भेद सम्यक्त्वके हैं।

बहुरि अनन्तानुबंधी कषायकी सम्यक्त्व होतें दोय अवस्था हो हैं। कै तो अप्रशस्त उपशम हो है, कै विसंयोजन हो है। तहाँ जो करणकरि उपशम विधानतें उपशम होय ताका नाम प्रशस्त उपशम है। उदयका

अभाव ताका नाम अप्रशस्त उपशम है। सो अनन्तानुबंधीका प्रशस्त उपशम तो होय ही नाहीं, अन्य मोहकी प्रकृतीनिका हो है। बहुरि इसका अप्रशस्त उपशम हो है। बहुरि जो तीन करणकरि अनन्तानुबंधीनिके परमाणूनिकों अन्य चारित्रमोहकी प्रकृति रूप परिणमाय तिसकी सत्ता नाश करिए, ताका नाम विसयोजन है। सो इनविषें प्रथमोपशम सम्यक्त्वविषै तो अनन्तानुबधीका अप्रशस्त उपशम ही है। बहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति पहिलै अनन्तानुबंधीका विसयोजन भए ही होय; ऐसा नियम कोई आचार्य लिखे हैं, कोई नियम नाही लिखै हैं। बहुरि क्षयोपशम सम्यक्त्वविषें कोई जीवकै अप्रशस्त उपशम हो है वा कोईकै विसंयोजन हो है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व है सो पहलें अनन्तानुबधीका विसयोजन भए ही हो है, ऐसा जानना। यहाँ यह विशेष है—जो उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्वीकै अनन्तानुबधीका विसंयोजनतें सत्ता नाश भया था, बहुरि वह मिथ्यात्वविषै आवै तो अनन्तानुबंधीका बंध करै, तहाँ बहुरि वाकी सत्ताका सद्भाव हो है। अर क्षायिकसम्यग्दृष्टी मिथ्यात्वविषै आवै नाही, तातै वाकै अनंतानुबंधीकी सत्ता कदाचित् न होय।

यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबंधी तो चारित्रमोहकी प्रकृति है सो चारित्रकों घातै, याकरि सम्यक्त्वका घात कैसे सम्भवे ?

ताका समाधान—अनन्तानुबधीके उदयतें क्रोधादिरूप परिणाम हो हैं, किछु अतत्व श्रद्धान होता नाही। तातैं अनन्तानुबंधी चारित्रहीकों घातै है, सम्यक्त्वकों नाहीं घातै है। सो परमार्थतें है तो ऐसें ही परन्तु अनन्तानुबधीके उदयतें जैसें क्रोधादिक हो हैं, तैसें क्रोधादिक सम्यक्त्व होत न होंय। ऐसा निमित्त नैमित्तिकपना पाईए है। जैसें त्रसपनाकी

घातक तो स्थावरप्रकृति ही है परन्तु त्रसपना होतें एकेन्द्रिय जाति प्रकृतिका भी उदय न होय, तातैं उपचारकरि एकेन्द्रिय प्रकृतिकौं भी त्रसपनाका घातक पना कहिए तो दोष नाहीं। तैसें सम्यक्त्वका घातक तो दर्शनमोह है परन्तु सम्यक्त्व होतें अनन्तानुबंधी कषायनिका भी उदय न होय, तातैं उपचारकरि अनन्तानुबंधीकै भी सम्यक्त्वका घातक पना कहिए तो दोष नाही।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबंधी चारित्रहीकों घात है तो-याके गए किछू चारित्र भया कहो। असंयत गुणस्थानविषै असंयम काहेको कहो हो?

ताका समाधान—अनन्तानुबंधी आदि भेद हैं, ते तीव्र मंदकषाय की अपेक्षा नाही हैं। जातै मिथ्यादृष्टीकै तीव्र कषाय होतें वा मदकषाय होते अनन्तानुबंधी आदि च्यारोंका उदय युगपत् हो है। तहाँ च्यारोंके उत्कृष्ट स्पर्द्धक समान कहे हैं। इतना विशेष है—जो अनन्तानुबंधीके साथ जैसा तीव्र उदय अप्रत्याख्यानादिकका होय, तैसा ताको गए न होय। ऐसें ही अप्रत्याख्यानकी साथि जैसा प्रत्याख्यान संज्वलनका उदय होय, तैसा ताकों गए न होय। बहुरि जैसा प्रत्याख्यानकी साथि सज्वलनका उदय होय, तैसा केवल सज्वलनका उदय न होय। तातैं अनन्तानुबंधीके गए किछू कषायनिकी मदता तो हो है परन्तु ऐसी मन्दता न हो है, जाकरि कोई चारित्र नाम पावै। जातै कषायनिके असख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं। तिनविषैं सर्वत्र पूर्वस्थानतं उत्तरस्थानविषे मदता पाईए है परन्तु व्यवहारकरि तिन स्थाननिविषैं तीन मर्यादा करी। आदिके बहुत स्थान तो असयमरूप कहे, पीछें केतेक देशसंयमरूप कहे, पीछें केतेक सकलसंयमरूप कहे। तिनविषैं प्रथम

गुणस्थानतें लगाय चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त जे कषायके स्थान हो हैं ते सर्व असंयमहीके हो हैं। तातै कषायनिकी मंदता होतें भी चारित्र नाम न पावै है। यद्यपि परमार्थतें कषायका घटना चारित्रका अंश है, तथापि व्यवहारतें जहाँ ऐसा कषायनिका घटना होय, जाकरि श्रावकधर्म वा मुनिधर्मका अंगीकार होय, तहाँ ही चारित्र नाम पावै है। सो असंयमविषै ऐसे कषाय घटै नाहीं, तातैं यहाँ असंयम कहा है। कषायनिका अधिक हीनपना होते भी जैसैं प्रमत्तादिगुणस्थाननिविषै सर्वत्र सकलसंयम ही नाम पावै, तैसे मिथ्यात्वादि असंयतपर्यंत गुणस्थाननिविषै असंयम नाम पावै है। सर्वत्र असंयमकी समानता न जाननी।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबंधी सम्यक्त्वकों न घातै है तो याके उदय होतें सम्यक्त्वतें भ्रष्ट होय सासादन गुणस्थानकों कैसे पावै है ?

ताका समाधान—जैसे कोई मनुष्यकै मनुष्यपर्याय नाशका कारण तीव्ररोग प्रगट भया होय, ताकों मनुष्यपर्यायका छोड़नहारा कहिए। बहुरि मनुष्यपना दूर भए देवादिपर्याय होय, सो तो रोग अवस्थाविषै न भया। इहाँ मनुष्यहीकी आयु है। तैसैं सम्यक्त्वीकै सम्यक्त्वके नाशका कारण अनन्तानुबंधीका उदय प्रगट भया, ताकों सम्यक्त्वका विरोधक सासादन कह्या। बहुरि सम्यक्त्वका अभाव भए मिथ्यात्व होय सो तो सासादनविषैं न भया। यहाँ उपशमसम्यक्त्वही का काल है, ऐसा जानना। ऐसैं अनन्तानुबंधी चतुष्ककी सम्यक्त्व होतें अवस्था हो है, तातें सात प्रकृतीनिके उपशमादिकतें भी सम्यक्त्वकी प्राप्ति कहिए है।

बहुरि प्रश्न—सम्यक्त्वमार्गणाके छह भेद किए हैं, सो कैसैं है ?

ताका समाधान—सम्यक्त्वके तो भेद तीन ही हैं। बहुरि सम्यक्त्व का अभावरूप मिथ्यात्व है। दोऊनिका मिश्रभाव सो मिश्र है। सम्यक्त्वका घातकभाव सो सासादन है। ऐसैं सम्यक्त्व मार्गणाकरि

जीवका विचार किए छह भेद कहे हैं। यहाँ कोई कहै कि सम्यक्त्वतें भ्रष्ट होय मिथ्यात्वविषैं आया होय, ताकों मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहिए। सो यहु असत्य है, जातें अभव्यकै भी तिसका सद्भाव पाइए है। बहुरि मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहना ही अशुद्ध है। जैसें संयममार्गणाविषें असंयम कह्या, भव्यमार्गणाविषें अभव्य कह्या, तैसे ही सम्यक्त्वमार्गणा विषें मिथ्यात्व कह्या है। मिथ्यात्वकों सम्यक्त्वका भेद न जानना। सम्यक्त्व अपेक्षा विचार करते केई जीवनिकै सम्यक्त्वका अभाव भासै तहाँ मिथ्यात्व पाइए है, ऐसा अर्थ प्रगट करनेके अर्थि सम्यक्त्वमार्गणाविषै मिथ्यात्व कह्या है। ऐसें ही सासादन मिश्र भी सम्यक्त्वके भेद नाही हैं। सम्यक्त्वके भेद तीन ही हैं ऐसा जानना। यहाँ कर्मके उपशमादिकतें उपशमादिक सम्यक्त्व कहे, सो कर्मका उपशमादिक याका किया होता नाहीं। यहु तो तत्वश्रद्धान करनेका उद्यम करै, तिसके निमित्ततें स्वयमेव कर्मका उपशमादिक हो है। तब याकै तत्वश्रद्धान की प्राप्ति हो है, ऐसा जानना। या प्रकार सम्यक्त्वके भेद जाननें। ऐसें सम्यग्दर्शनका स्वरूप कह्या।

सम्यक्दर्शन के आठ अंग

बहुरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे हैं। निःशांकितत्व, निःकांक्षितत्व, निर्विचिकित्सत्व, अमूढदृष्टित्व, उपवृहण, स्थितिकरण, प्रभावना, वात्सल्य। तहां भयका अभाव अथवा तत्वनिविषै संशयका अभाव, सो निःशाकितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषें रागरूप वांछाका अभाव, सो नि कांक्षितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषै द्वेषरूप ग्लानिका अभाव, सो निर्विचिकित्सव है। बहुरि तत्वनिविषें वा देवादिकविषें अन्यथा प्रतीतिरूप मोहका अभाव, सो अमूढदृष्टित्व है। बहुरि आत्मधर्मका वा जिनधर्मका बधावना, ताका नाम उपवृंहण है। इसही अंगका

नाम उपगूहन भी कहिए है। तहाँ धर्मात्मा जीवनिका दोष ढांकना ऐसा ताका अर्थ जानना। बहुरि अपनें स्वभावविषें वा जिनधर्मविषें आपकों वा परकों स्थापन करना, सो स्थितिकरण है। बहुरि अपनें स्वरूपकी वा जिनधर्मकी महिमा प्रगट करना, सो प्रभावना है। बहुरि स्वरूपविषै वा जिनधर्मविषें वा धर्मात्मा जीवनिविषै अतिप्रीति भाव, सो वात्सल्य है। ऐसें ए आठ अग जानने। जैसे मनुष्यशरीरके हस्तपादादिक अग हैं, तैसें ए सम्यक्त्वके अग हैं।

यहाँ प्रश्न—जो केई सम्यक्त्वी जीवनिकै भी भय इच्छा ग्लानि आदि पाइए है अर केई मिथ्यादृष्टीकै न पाइए है, तातै निःशंकितादिक अग सम्यक्त्वके कैसें कहो हो?

ताका समाधान—जैसें मनुष्य शरीरके हस्तपादादि अग कहिए है, तहाँ कोई मनुष्य ऐसा भी होय, जाकै हस्तपादादिविषै कोई अंग न होय। तहाँ वाकै मनुष्यशरीर तो कहिए परन्तु तिनि अगनि बिना वह शोभायमान सकल कार्यकारी न होय। तैसे सम्यक्त्वके निःशाकितादि अग कहिए है, तहाँ कोई सम्यक्त्वी ऐसा भी होय, जाकै निःशाकितत्वादिविषै कोई अग न होय। तहाँ वाकै सम्यक्त्व तो कहिए परन्तु तिनि अंगनिबिना वह निर्मल सकल कार्यकारी न होय। बहुरि जैसें बांदरेकै भी हस्तपादादि अग हो हैं परन्तु जैसें मनुष्यके होंय, तैसें न हो हैं। तैसे मिथ्यादृष्टीनिकै भी व्यवहाररूप नि.शकितादिक अग हो हैं परन्तु जैसें निश्चयकी सापेक्ष लिए सम्यक्त्वीकै होंय तैसें न हो हैं। बहुरि सम्यक्त्वविषै पच्चीस मल कहे हैं—आठ शंकादिक, आठ मद, तीन मूढ़ता, षट् अनायतन, सो ए सम्यंक्त्वीकै न होंय। कदाचित् काहूकै कोई लागे सम्यक्त्वका सर्वथा नाश न हो है, तहाँ सम्यक्त्व मलिन ही हो है, ऐसा जानना। बहु..................

ॐ

पंडित प्रवर टोडरमलजी की रहस्य पूर्ण चिट्ठी

॥ श्री ॥

सिद्ध श्री मुलतान नगर महा शुभ स्थान विषे साधर्मी भाई अनेक उपमा योग्य अध्यात्म रस रोचक भाई श्री खानचन्दजी, गंगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथदासजी, अन्य सर्व साधर्मी योग्य लिखतं टोडरमल के श्री प्रमुख विनय शब्द अवधारना। यहाँ यथा सम्भव आनन्द है, तुम्हारे चिदानन्द घन के अनुभव से सहजानन्दकी वृद्धि चाहिए।

अपरच तुम्हारो एक पत्र भाई जी श्रीरामसिघजी भुवानीदासजी को आया था। तिसके समाचार जहानाबादतें और साधर्मि लिखे थे। सो भाई जी ऐसे प्रश्न तुम सारिखे ही लिखें। अवार वर्तमान काल मे अध्यात्म के रसिक बहुत थोडे हैं। धन्य हैं जे स्वात्मानुभव की वार्ता भी करे हैं, सो ही कहा है—

श्लोक—तत्प्रति प्रीत चित्तेन, येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं सः भवेद्भव्यो, भाव निर्वाण भाजनम्॥

पद्मनन्दि पच विशतिका। (एकत्व शीतिः २३)

अर्थ—जिहि जीव प्रसन्न चित्त करि इस चेतन स्वरूप आत्मा की बात ही सुनी है, सो निश्चय कर भव्य है। अल्पकालविषैं मोक्ष का पात्र है। सो भाई जी तुम प्रश्न लिखे तिसके उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार कुछ लिखिए है सो जानना और अध्यात्म आगम की चर्चा गर्भित पत्र तो शीघ्र शीघ्र देवो करो, मिलाप कभी होगा तब होगा। अर निरन्तर स्वरूपानुभव मे रहना, श्रीरस्तु।

अथ स्वानुभव दशाविषै प्रत्यक्ष परोक्षादिक प्रश्ननिके उत्तर बुद्धि अनुसार लिखिये हैं।

तहाँ प्रथम ही स्वानुभव का स्वरूप जानने निमित्त लिखै है।

जीव पदार्थ अनादिते मिथ्यादृष्टी है। सो आपापरके यथार्थ रूपसे विपरीत श्रद्धान का नाम मिथ्यात्व है। बहुरि जिस काल किसी जीव के दर्शन मोह के उपशम, क्षयोपशम या क्षयतें आपापर का यथार्थ श्रद्धान रूप तत्वार्थ श्रद्धान होय, तब जीव सम्यक्ती होय है। यातैं आपापरका श्रद्धानविषै शुद्धात्म श्रद्धान रूप निश्चय सम्यक्त गर्भित है। बहुरि जो आपापर का यथार्थ श्रद्धान नाहीं है अर जिनमतविषैं कहे जे देव, गुरु, धर्म तिन ही कूं मानैं है, अन्य मत विषैं कहे देवादि वा तत्वादि तिनको नाही मानै है, तो ऐसे केवल व्यवहार सम्यक्त करि सम्यक्ती नाम पावै नाहीं। तातैं स्वपर भेद विज्ञान को लिए जो तत्वार्थ श्रद्धान होय सो सम्यक्त जानना।

बहुरि ऐसा सम्यक्ती होते सन्ते जो ज्ञान पचेन्द्री व छटा मन के द्वारा क्षयोपशम रूप मिथ्यात्व दशा में कुमति कुश्रुतिरूप होय रहा था सोई ज्ञान अब मतिश्रति रूप सम्यग्ज्ञान भया। सम्यक्ती जेता कछु जानै सो जानना सर्व सम्यग्ज्ञान रूप है।

जो कदाचित् घट पटादिक पदार्थनिकू अयथार्थ भी जानै तो वह आवरण जनित उदय को अज्ञान भाव है। जो क्षयोपशम रूप प्रगट ज्ञान है सो तो सर्व सम्यग्ज्ञान ही है, जातें जाननेविषै विपरीत रूप पदार्थनिकों न साधै है। सो यह सम्यग्ज्ञान केवलज्ञानका अंश है। जैसे थोड़ा सा मेघ पटलविलय भये कुछ प्रकाश प्रगटै है सो सर्व प्रकाश का अश है।

जो ज्ञान मतिश्रुति रूप प्रवर्त्तै है सो ही ज्ञान बधता बधता केवलज्ञान रूप होय है। तातैं सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा तो जाति एक है। बहुरि इस सम्यक्ती के परिणामविषै सविकल्प तथा निर्विकल्परूप होय दो प्रकार प्रवर्त्तै। तहाँ जो विषय कषायादिरूप वा पूजा, दान, शास्त्राभ्यासादिक रूप प्रवर्त्तै सो सविकल्परूप जानना।

यहाँ प्रश्न—जो शुभाशुभ रूप परिणमते हुए सम्यक्तका अस्तित्व कैसें पाइए ?

ताका समाधान—जैसे कोई गुमास्ता साहू के कार्यविषें प्रवर्त्तै है, उस कार्य को अपना भी कहै है, हर्ष विषाद को भी पावै है, तिसकार्यं विषै प्रवर्त्तते अपनी और साहू की जुदाई कों नाहीं विचारै है परन्तु अन्तरंग श्रद्धान ऐसा है कि यह मेरा कारज नाही। ऐसा कार्यकर्ता गुमास्ता साहूकार है परन्तु वह साहू के धन कूं चुराय अपना मानै तो गुमास्ता चोर ही कहिए। तैसे कर्मोदय जनित शुभाशुभ रूप कार्यको करता हुआ तदरूप परिणमै, तथापि अन्तरग ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नाहीं। जो शरीराश्रित व्रत सयम को भी अपना मानै तो मिथ्यादृष्टि होय। सो ऐसे सविकल्प परिणाम होय हैं। अब सविकल्प ही के द्वारकरि निर्विकल्प परिणाम होने का विधान कहिए है :—

वह सम्यक्ती कदाचित् स्वरूप ध्यान करने को उद्यमी होय है तहाँ प्रथम स्वपर स्वरूप भेद विज्ञान करै; नो कर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म रहित चैतन्य चित्त चमत्कारमात्र अपना स्वरूप जानै; पीछें परका भी विचार छूट जाय, केवल स्वात्म विचार ही रहै है; तहाँ अनेक प्रकार निज-स्वरूपविषै अहबुद्धि धारै है। मैं चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ, इत्यादिक विचार होते सते सहज ही आनन्द तरंग उठै है, रोमांच होय है, ता पीछे ऐसा विचार तो छूट जाय, केवल चिन्मात्र स्वरूप भासने लागै; तहाँ सर्व परिणाम उस रूपविषै एकाग्र होय प्रवर्त्तै। दर्शन ज्ञानादिक का वा नय प्रमाणादिकका भी विचार विलय जाय।

चैतन्य स्वरूप जो सविकल्प ताकरि निश्चय किया था, तिस ही विषै व्याप्य व्यापक रूप होय ऐसे प्रवर्त्तै जहाँ ध्याता ध्यायपनो दूर भयो। सो ऐसी दशा का नाम निर्विकल्प अनुभव है। सो बड़े नय चक्र ग्रन्थविषै ऐसे ही कहा है—

गाथा—तच्चाणे सण काले समयं बुज्झेहि जुत्ति मग्गेण।
णो आराहण समये पच्चक्खो अणुहवो जह्मा ॥२६६॥

अर्थ—तत्व का अवलोकन का जो काल ता विषै समय जो है शुद्धात्मा ताको जुत्ता जो नय प्रमाण ताकरि पहिले जानैं। पीछें आराधन समय जो अनुभव काल, तिहि विषैं नय प्रमाण नाही है, जातैं प्रत्यक्ष अनुभव है। जैसे रत्न की खरीद विषैं अनेक विकल्प करै हैं, प्रत्यक्ष वाको पहरिये तब विकल्प नाहीं, पहरने का सुख ही है। ऐसे सविकल्प के द्वारे निर्विकल्प अनुभव होय है।

बहुरि जो ज्ञान पंच इन्द्री व छठा मन के द्वारे प्रवर्त्तै था सो ज्ञान सब तरफ सों सिमट कर निर्विकल्प अनुभव विषैं केवल स्वरूप सन्मुख भयौ। जातैं वह ज्ञान क्षयोपशमरूप है सो एक काल विषै एक ज्ञेय ही को जानै, सो ज्ञान स्वरूप जानने को प्रवर्त्या तब अन्य का जानना सहज ही रह गया। तहाँ ऐसी दशा भई जो बाह्य विकार होंय तो भी स्वरूप ध्यानी को कुछ खबर नाहीं, ऐसे मतिज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। बहुरि नयादिक के विचार मिटते श्रुतज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। ऐसा वर्णन समयसार की टीका आत्मख्यातिविषै किया है तथा आत्म अवलोकनादिविषै है। इस ही वास्ते निर्विकल्प अनुभवकों अतेन्द्रिय कहिए है जातैं इन्द्रीनका धर्म तो यह है जो स्पर्श, रस, गंध और वर्ण कों जानै सो यहाँ नाहीं अर मन का धर्म यह है जो अनेक विकल्प करै सो भी यहाँ नाहीं। तातैं जब जो ज्ञान इन्द्री मन के द्वारे प्रवर्त्तै था सो ही ज्ञान अब अनुभवविषैं प्रवर्त्तै है तथापि इस ज्ञान को अतेन्द्रिय कहिये है। बहुरि इस स्वानुभवकों मन द्वारे भी भया कहिए जातैं इस अनुभवविषै मतिज्ञान श्रुतज्ञान ही है, और कोई ज्ञान नाहीं।

मतिश्रुतज्ञान इन्द्री मनके अवलम्बन बिना होय नाहीं, सो इन्द्री मन का तो अभाव ही है जातैं इन्द्रियका विषय मूर्तीक पदार्थ ही है। बहुरि

यहाँ मतिज्ञान है जातैं मन का विषय मूर्तिक अमूर्तीक पदार्थ है, सो यहाँ मन सम्बन्धी परिणाम स्वरूपविषै एकाग्र होय अन्य चिन्ता का निरोध करै हैं तातैं याको मन द्वारै कहिये है।

"एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानम्" ऐसा ध्यान का भी लक्षण है, ऐसा अनुभव दशाविषै सम्भवै है। तथा नाटक के कवित्तविषै कहा है—

दोहाः—वस्तु विचारत भाव सें, मन पावै विश्राम।
रस स्वादित सुख ऊपजै, अनुभव याकौ नाम॥

ऐसे मन बिना जुदा परिणाम स्वरूपविषै प्रवर्त्ता नाही तातैं स्वानुभवकों मन जनित भी कहिए है, सो अतेन्द्रिय कहने मैं अरु मन जनित कहने में कुछ विरोध नाही; विवक्षा भेद है।

बहुरि तुम लिखा "जो आत्मा अतेन्द्रिय है सो अतेन्द्रिय ही करि ग्रहा जाय" सो भाई जी, मन अमूर्तीक का भी ग्रहण करै है जातैं मतिश्रुतज्ञान का विषय सर्व द्रव्य कहे हैं। उक्त च तत्वार्थ सूत्रे—

"मति श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्व सर्व पर्यायेषु।" (१-२६)

बहुरि तुमने "प्रत्यक्ष परोक्ष संबंधी प्रश्न लिखे" सो भाईजी प्रत्यक्ष परोक्ष के तो भेद हैं नाही। चौथे गुणस्थान में सिद्ध समान क्षायक सम्यक्त हो जाय है, तातैं सम्यक्त तो केवल यथार्थ श्रद्धान रूप ही है। वह जीव शुभाशुभ कार्य करता भी रहै, तातैं तुमने जो लिख्या था कि "निश्चय सम्यक्त प्रत्यक्ष है और व्यवहार सम्यक्त परोक्ष है" सो ऐसा नाही है। सम्यक्त के तीन भेद हैं तहाँ उपशम सम्यक्त अरु क्षायक सम्यक्त तो निर्मल हैं, जातैं वे मिथ्यात्व के उदय करि रहित हैं अर क्षयोपशम सम्यक्त समल है। बहुरि इस सम्यक्तविषैं प्रत्यक्ष परोक्ष भेद तो नाही हैं।

क्षायक सम्यक्तीकै शुभाशुभ रूप प्रवर्त्तता वा स्वाणुभवरूप प्रवर्त्तता

सम्यक्त गुण तो सामान्य ही है तातैं सम्यक्तके तो प्रत्यक्ष परोक्ष भेद न मानना। बहुरि प्रमाण के प्रत्यक्ष परोक्ष भेद हैं सो प्रमाण सम्यग्ज्ञान है; तातैं मतिज्ञान श्रुतज्ञान तो परोक्ष प्रमाण हैं और अवधि मनःपर्यय केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

यथा:—"**आद्ये परोक्षं। प्रत्यक्षमन्यत्**"। (तत्वार्थ सूत्र १-११, १२)

ऐसा सूत्र कहा है तथा तर्क शास्त्रविषै प्रत्यक्ष परोक्ष का ऐसा लक्षण कहा है—

"स्पष्टप्रतिभासात्मकंप्रत्यक्षमस्पष्टं परोक्षं।"

जो ज्ञान अपने विषयकों निर्मलतारूप नीके जानै सो प्रत्यक्ष अर स्पष्ट नीके न जानै सो परोक्ष; सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान का विषय तो घना परन्तु एक ही ज्ञेय कों सम्पूर्ण न जान सकै तातैं परोक्ष है और अवधि मनःपर्यय ज्ञान के विषय थोरे हैं तथापि अपने विषयकों स्पष्ट नीके जानै तातैं एक देश प्रत्यक्ष है अर केवलज्ञान सर्व ज्ञेयकों आप स्पष्ट जानै तातैं सर्व प्रत्यक्ष है।

बहुरि प्रत्यक्षके दोय भेद हैं। एक परमार्थ प्रत्यक्ष दूसरा व्यवहार प्रत्यक्ष। अवधि मनःपर्यय और केवलज्ञान तो स्पष्ट प्रतिभासरूप हैं ही, तातै पारमार्थिक प्रत्यक्ष हैं। बहुरि नेत्र आदिकतें वरणादिककों जानिए है, तातै इनकों सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए, जातै जो एक वस्तु में मिश्र अनेक वर्ण हैं ते नेत्रकर नीके ग्रहे जाय हैं।

बहुरि परोक्ष प्रमाण के पांच भेद हैं—१ स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, ३ तर्क, ४ अनुमान, ५ आगम।

तहाँ जो पूर्व वस्तु जानी को याद करि जानना सो स्मृति कहिए।
दृष्टांत कर वस्तु निश्चय कीजिय सो प्रत्यभिज्ञान कहिए।
हेतु के विचारतें लिया जो ज्ञान सो तर्क कहिए।
हेतुतें साध्य वस्तुका जो ज्ञान सो अनुमान कहिए।

आगम तें जो ज्ञान होय सो आगम कहिए।

ऐसे प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण के भेद किये हैं, सोई स्वानुभव दशा में जो आत्मा को जानिए सो श्रुतज्ञान कर जानिए है। श्रुतज्ञान है सो मतिज्ञान पूर्वक ही है सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष कहे तातें यहाँ आत्मा का जानना प्रत्यक्ष नाहीं। बहुरि अवधि मन.पर्यय का विषय रूपी पदार्थ ही है, केवलज्ञान छद्मस्थकै है नाही, तातें अनुभवविषै अवधि मनःपर्यय केवल करि आत्मा का जानना नाही। बहुरि यहाँ आत्माकूं स्पष्ट नीके जानै है, ताते पारमार्थिक प्रत्यक्षपना तो सम्भवै नाही। बहुरि जैसे नेत्रादिकसे जानिए है तैसे एक देश निर्मलता लिये भी आत्मा के असख्यात प्रदेशादिक न जानिए है तातै सांव्यवहारिक प्रत्यक्षपणे भी सम्भवै नाही।

यहाँ पर तो आगम अनुमानादिक परोक्ष ज्ञान करि आत्मा का अनुभव होय है। जैनागमविषै जैसा आत्मा का स्वरूप कहा है ताकूं तैसा जान उस विषै परिणामोंको मग्न करै है ताते आगम परोक्ष प्रमाण कहिए। अथवा मैं आत्मा ही हूँ ताते मुझविषै ज्ञान है, जहाँ जहाँ ज्ञान है तहाँ तहाँ आत्मा है जैसे सिद्धादिक हैं। बहुरि जहाँ आत्मा नाही तहाँ ज्ञान भी नाही जैसे मृतक कलेवरादिक हैं। ऐसे अनुमान करि वस्तुका निश्चय कर उस विषै परिणाम मग्न करै है, ताते अनु- मान परोक्ष प्रमाण कहिए। अथवा आगम अनुमानादिक कर जो वस्तु जानने में आया तिसहीकों याद रखके उस विषै परिणाम मग्न करै है तातें स्मृति कहिए, ऐसे इत्यादिक प्रकार से स्वानुभवविषै परोक्ष प्रमाण कर ही आत्मा का जानना होय है। पीछे जो स्वरूप जाना तिस ही विषै परिणाम मग्न हो हैं, ताका कछु विशेष जानपना होता नाहीं।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो सविकल्प निर्विकल्पविषैं जानने का विशेष नाहीं तो अधिक आनन्द कैसे होय है ?

ताका समाधान—सविकल्प दशाविषें जो ज्ञान अनेक ज्ञेयको जानने रूप प्रवर्ते था, वह निर्विकल्प दशाविषें केवल आत्मा को ही जानने में प्रवर्त्या, एक तो यह विशेषता है। दूसरी यह विशेषता है जो परिणाम नाना विकल्पविषे परिणमें था सो केवल स्वरूप ही सो तादात्मरूप होय प्रवर्त्या। तीजी यह विशेषता है कि इन दोनों विशेषताओं से कोई वचनातीत अपूर्व आनन्द होय है जो विषय सेवनविषें उसके अंश की भी जात नाही ताते उस आनन्द को अतेंद्रिय कहिये।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनुभवविषें भी आत्मा तो परोक्ष ही है तो ग्रयनविषें अनुभवकू प्रत्यक्ष कैसे कहिये? कारण कि ऊपरकी गाथा विषें ही "**पच्चक्खो अणुहवो जम्हा**" ऐसा कहा है।

ताका समाधान—अनुभव विषें आत्मा तो परोक्ष ही है, कछु आत्मा के प्रदेश आकार तो भासते नाही। परन्तु जो स्वरूपविषें परिणाम मग्न होते स्वानुभव भया, सो वह स्वानुभव प्रत्यक्ष है। स्वानुभवका स्वाद कछु आगम अनुमानादिक परोक्ष प्रमाणादिक कर न जानै है। आप ही अनुभवके रस स्वादको वेदै है। जैसे कोई आधा पुरुष मिश्री को आस्वादै है तहाँ मिश्रीके आकारादिक तो परोक्ष हैं और जिह्वा करि जो स्वाद लिया है वह स्वाद प्रत्यक्ष है ऐसा जानना।

अथवा जो प्रत्यक्ष की सी नाई होय तिसको भी प्रत्यक्ष कहिए। जैसे लोकविषें कहिए है 'हमने स्वप्नविषें वा ध्यान विषें फलाने पुरुष को प्रत्यक्ष देखा" सो प्रत्यक्ष देखा नाही परन्तु प्रत्यक्षकी सी नाई प्रत्यक्षवत् यथार्थ देखा ताते तिसको प्रत्यक्ष कहिए, तैसे अनुभवविषे आत्मा प्रत्यक्ष की नाई यथार्थ प्रतिभासै है, ताते इस न्यायकरि आत्मा का भी प्रत्यक्ष जानना होय है, ऐसे कहिये तो दोष नाही। कथन तो अनेक प्रकार होय परन्तु वह सर्व आगम अध्यात्म शास्त्रनसो विरोध न होय तैसे विवक्षा भेदकरि जानना।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसे अनुभव कौन गुणस्थान में कहे हैं ?

ताका समाधान— चौथे ही से होय हैं परन्तु चौथे तो बहुत काल के अन्तराल में होय हैं और ऊपर के गुणठाने शीघ्र शीघ्र होय हैं।

बहुरि प्रश्न—जो अनुभव तो निर्विकल्प है, तहाँ ऊपर के और नीचे के गुणस्थाननि में भेद कहा ?

ताका उत्तर—परिणामन की मग्नता विषैं विशेष है। जैसे दोय पुरुष नाम ले हैं अर दो ही का परिणाम नाम विखै है, तहाँ एक कै तो मग्नता विशेष है अर एक कै स्तोक है तैसे जानना।

बहुरि प्रश्न—जो निर्विकल्प अनुभवविषै कोई विकल्प नाही तो शुक्लध्यान का प्रथम भेद प्रथक्त्ववितर्कवीचार कहा, तहाँ प्रथक्त्ववितर्कवीचार—नाना प्रकारका श्रुत अर वीचार—अर्थ, व्यजन, योग, संक्रमन रूप ऐसे क्यों कहा ?

तिसका उत्तर—कथन दोय प्रकार है। एक स्थूल रूप है, एक सूक्ष्म रूप है। जैसे स्थूलता करि तो छठे ही गुणस्थाने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत कहा अर सूक्ष्मता कर नवमें गुणस्थान ताईं मैथुन संज्ञा कही तैसे यहाँ स्वानुभवविषैं निर्विकल्पता स्थूलरूप कहिये है। बहुरि सूक्ष्मताकरि प्रथक्त्ववितर्क वीचारादिक भेद वा कषायादि दशमा गुणस्थान ताईं कहे हैं। सो अब आपके जानने में वा अन्य के जानने में आवै ऐसा भाव का कथन स्थूल जानना अर जो आप भी न जानें अर केवली भगवान् ही जानै सो ऐसे भाव का कथन सूक्ष्म जानना। चरणानुयोगादिकविषै स्थूल कथन की मुख्यता है अर करणानुयोगादिक विषै सूक्ष्म कथन की मुख्यता है, ऐसा भेद और भी ठिकाने जानना। ऐसे निर्विकल्प अनुभव का स्वरूप जानना।

बहुरि भाई जी, तुम तीन दृष्टांत लिखे वा दृष्टांत विषैं प्रश्न लिखा सो दृष्टांत सर्वाङ्ग मिलता नाही। दृष्टांत है सो एक प्रयोजनकों दिखावै है सो यहाँ द्वितीया का विधु (चन्द्रमा), जलविन्दु, अग्निकण ए तो एक देश हैं अर पूर्णमाशी का चन्द्र, महासागर तथा अग्नि-

कुण्ड ये सर्वदेश हैं। तैसे ही चौथे गुणस्थानवर्ती आत्माके ज्ञानादि गुण एक देश प्रगट भये हैं तिनकी अर तेरहवे गुणस्थानवर्ती आत्मा के ज्ञानादिक गुण सर्व प्रगट होय हैं तिनकी एक जाति है।

तहाँ प्रश्न—जो एक जाति है तो जैसे केवली सर्व ज्ञेयकों प्रत्यक्ष जानै हैं तैसे चौथे गुणस्थान वाला भी आत्माको प्रत्यक्ष जानता होगा ?

ताका उत्तर—सो भाईजी, प्रत्यक्षता की अपेक्षा एक जाति नाही, सम्यग्ज्ञानकी अपेक्षा एक जाति है। चौथे गुणस्थान वाले कै मतिश्रुत रूप सम्यग्ज्ञान है और तेरहवे गुणस्थान वाले कै केवलरूप सम्यग्ज्ञान है। बहुरि एक देश सर्व देश का तो अन्तर इतना ही है जो मतिश्रुत-ज्ञान वाला अमूर्तिक वस्तु को अप्रत्यक्ष और मूर्तिक वस्तु को भी प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किंचित् अनुक्रमसों जानै है अर केवलज्ञानी सर्व वस्तुको सर्वथा युगपत् जानै है। वह परोक्ष जानै यह प्रत्यक्ष जानै, इतना ही विशेष है अर सर्व प्रकार एकही जाति कहिए तो जसे केवली युगपत् अप्रत्यक्ष अप्रयोजन रूप ज्ञेयकों निर्विकल्परूप जानै तैसे ए भी जानै सो तो है नाही, तातैं प्रत्यक्ष परोक्ष मे विशेष जानना कह्या है।

श्लोक—स्याद्वाद केवल ज्ञाने सर्व तत्व प्रकाशने।

भेद साक्षाद साक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतम् भवेत् ॥

अष्टसहस्री दशमः परिच्छेदः १०५।

याका अर्थ—स्याद्वाद जो श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान—ये दोय सर्व तत्वों के प्रकाशन हारे हैं। विशेष इतना—केवलज्ञान प्रत्यक्ष है, श्रुत-ज्ञान परोक्ष है। वस्तुरूप से यह दोनो एक दूसरे से भिन्न नाहीं हैं।

बहुरि तुम निश्चय अर व्यवहार सम्यक्त का स्वरूप लिखा है सो सत्य है परन्तु इतना जानना, सम्यक्तीकै व्यवहार सम्यक्तविषै निश्चय सम्यक्त गर्भित है, सदैव गमन (परिणमन) रूप है।

बहुरि तुम लिख्या—कोई साधर्मी कहै है "आत्माको प्रत्यक्ष जानैं तो कर्मवर्गणाको प्रत्यक्ष क्यों न जानै ?"

सो कहिए है—आत्माको प्रत्यक्ष तो केवली ही जानै, कर्मवर्गणा को अवधिज्ञानी भी जानै है।

बहुरि तुम लिख्या—द्वितीयाके चन्द्रमाकी ज्यों आत्माके प्रदेश थोरे खुले कहो ?

ताका उत्तर—यह दृष्टात प्रदेशन की अपेक्षा नाही, यह दृष्टांत गुण की अपेक्षा है। जो सम्यक्त्व, स्वानुभव और प्रत्यक्षादिक सम्बन्धी प्रश्न तुमने लिखे थे, तिनका उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार लिखा है। तुम हू जिनवाणीतें तथा अपनी परणति से मिलाय लेना। विशेष कहाँ ताईं लिखिये, जो बात जानिए सो लिखने मे आवै नाही। मिले कछु कहिये भी सो मिलना कर्माधीन, तातै भला यह है कि चैतन्य स्वरूप की प्राप्तिके उद्यममें रहना व अनुभव में वतना। वर्तमान-कालविषै अध्यात्म तत्व तो आत्मा ही है।

तिस समयसार ग्रन्थकी अमृतचन्द्र आचार्यकृत टीका संस्कृतविषैं है अर आगमकी चर्चा गोम्मटसारविषै है तथा और भी अन्यग्रन्थविषैं है। जो जानी है सो सर्व लिखनेमें आवै नाहीं। तातै तुम अध्यात्म तथा आगम ग्रन्थका अभ्यास रखना अर अपने स्वरूपविषैं मग्न रहना। अर तुम कोई विशेष ग्रन्थ जानें हो तो मुझको लिख भेजना। साधर्मी कै तो परस्पर चर्चा ही चाहिए अर मेरी तो इतनी बुद्धि है नाहीं परन्तु तुम सारिखे भाइनसों परस्पर विचार है सो अब कहाँ तक लिखिये ? जेते मिलना नाही तेतें पत्र तो शीघ्र ही लिखा करो।

मिती फागुन बदी ५ सं० १८११

—**टोडरमल**

अथ परमार्थवचनिका लिख्यते।

एक जीवद्रव्य, ताके अनन्त गुण, अनन्त पर्याय, एक एक गुणके असख्यात प्रदेश, एक एक प्रदेशविषै अनन्त कर्म-वर्गणा, एक एक कर्मवर्गणाविषै अनन्त अनन्त पुद्गल परमाणु, एक एक पुद्गल परमाणु अनन्त गुण अनन्त पर्यायसहित विराज-मान है। या प्रमाण यह एक संसारावस्थित जीव पिंडकी अवस्था है। याहीभांति अनन्त जीवद्रव्य सपिडरूप जानने। एकजीव द्रव्य अनन्त अनन्त पुद्गलद्रव्यकरि सयोगित (सयुक्त) मानने। ताको व्यौरो—

अन्य अन्यरूप जीवद्रव्यकी परणति, अन्य अन्यरूप पुद्गलद्रव्य-की परणति ताको व्यौरो—

एक जीवद्रव्य जा भाँतिकी अवस्थालिये नाना आकाररूप परिणमै सो भांति अन्य जीवसों मिलै नाही। बाका यासे और भातिरूप परिणमण होय। याहीभाति अनंतानत स्वरूप जीव द्रव्य अनतानत स्वरूप अवस्थालिये वर्त रह्या है वर्त काहु जीवद्रव्यके परिणाम काहु और जीवद्रव्य स्यों मिलै नाही। याही भांति एक पुद्गल परमाणु एक समयमाँहि जा भांतिकी अवस्था धरै, सो अवस्था अन्य पुद्गल परमाणु द्रव्यमों मिलै नाही। तातै पुदगल (परमाणु) द्रव्यकी भी अन्य अन्यता जाननी।

अथ जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक क्षेत्रावगाही अनादिकालके, तामें विशेष इतनो जु जीवद्रव्य एक; पुद्गल परमाणु द्रव्य अनतानंत,

चलाचलरूप, आगमनगमनरूप, अनंताकार परिणमनरूप बंधमुक्ति-शक्ति लिये वर्ते है।

अथ जीवद्रव्यकी अनन्ती अवस्था तामें तीन अवस्था मुख्य थापी। एक अशुद्ध अवस्था, एक शुद्धाशुद्धरूप मिश्र अवस्था, एक शुद्ध अवस्था, ए तीन अवस्था ससारी जीवद्रव्यकी जानना। संसारातीत सिद्ध अनवस्थितरूप कहिये।

अब तीनहूं अवस्थाको विचार—एक अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य, एक शुद्धनिश्चयात्मक द्रव्य, एक मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य। अशुद्धनिश्चय द्रव्यकों सहकारी अशुद्ध व्यवहार, मिश्रद्रव्यको सहकारी मिश्र व्यवहार, शुद्ध द्रव्यकों सहकारी शुद्ध व्यवहार।

अब निश्चय व्यवहार को विवरण लिख्यते :—

निश्चय तो अभेदरूप द्रव्य, व्यवहार द्रव्यके यथास्थित भाव। परन्तु विशेष इतनो जु यावत्काल ससारावस्था तावत्काल व्यवहार कहिए, सिद्ध व्यवहारातीत कहिये, यातै जु ससार व्यवहार एक रूप दिखायो। ससारी सो व्यवहारी, व्यवहारी सो ससारी।

अब तीनहूं अवस्था को विवरण लिख्यते :—

यावत्काल मिथ्यात्व अवस्था, तावत्काल अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य अशुद्धव्यवहारी। सम्यग्दृष्टी होत मात्र चतुर्थ गुणस्थानकस्यों द्वादश गुणस्थानकपर्यन्त मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य मिश्रव्यवहारी। केवलज्ञानी शुद्धनिश्चयात्मक शुद्धव्यवहारी।

अब निश्चय तो द्रव्यको स्वरूप, व्यवहार ससारावस्थित भाव, ताको विवरण कहै है :—

मिथ्यादृष्टी जीव अपनो स्वरूप नाही जानतो तातै परस्वरूप-विषै मगन होय करि कार्य मानतु है, ता कार्य करतो छतो अशुद्ध-व्यवहारी कहिए। सम्यग्दृष्टी अपनो स्वरूप परोक्ष प्रमाणकरि अनुभवतु है। परसत्ता परस्वरूपसों अपनों कार्य नाही मानतो संतो योगद्वारकरि अपने स्वरूपको ध्यान विचाररूप किया करतु है, ता कार्य करतो मिश्र व्यवहारी कहिए, केवलज्ञानी यथाख्यात-चारित्रके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमणशील है तातै शुद्धव्यवहारी कहिए, योगारूढ अवस्था विद्यमान है तातै व्यवहारी नाम कहिए। शुद्धव्यवहारकी सरहद्द त्रयोदशम गुनस्थाकसों लेइकरि चतुर्दशम गुनस्थानकपर्यंन्त जाननी। असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यवहार।

अथ तीनहू व्यवहारको स्वरूप कहै है।—

अशुद्ध व्यवहार शुभाशुभाचाररूप, शुद्धाशुद्धव्यवहार शुभोप-योगमिश्रित स्वरूपाचरणरूप, शुद्धव्यवहार शुद्धस्वरूपाचरणरूप। परन्तु विशेष इनको इतनो जु कोऊ कहै कि—शुद्धस्वरूपाचरणात्म तो सिद्धहूविषै छतो है, वहा भी व्यवहार संज्ञा कहिए—सो यों नाही—जातै संसारी अवस्थापर्यन्त व्यवहार कहिए। ससारावस्था के मिटत व्यवहार भी मिटी कहिए। इहां यह थापना कीनी है, तातैं सिद्धव्यवहारातीत कहिए। इति व्यवहारविचार समाप्त:।

अथ आगम अध्यात्मको स्वरूप कथ्यते :—

आगम-वस्तुको जु स्वभाव सो आगम कहिए। आत्माको जु अधिकार सो अध्यात्म कहिए। आगम तथा अध्यात्म स्वरूप भाव आत्मद्रव्यके जानने। ते दोऊभाव संसार अवस्थाविषै त्रिकालवर्ती मानने। ताको व्यौरो—आगमरूप कर्मपद्धति, अध्या-

त्मरूप शुद्धचेतनापद्धति। ताको व्यौरो कर्मपद्धति पौदग्लीकद्रव्यरूप अथवा भावरूप, द्रव्यरूप पुदग्लपरिणाम भावरूप पुदग्लाकारआत्मा की अशुद्धपरिणतिरूप परिणाम—ते दोऊपरिणाम आगमरूप थापे। अब शुद्धचेतनापद्धति शुद्धात्मपरिणाम सो भी द्रव्यरूप अथवा भावरूप। द्रव्यरूप तो जीवत्वपरिणाम, भावरूप ज्ञानदर्शन सुख-वीर्य आदि अनन्तगुणपरिणाम, ते दोऊ परिणाम अध्यात्मरूप जानने। आगम अध्यात्म दुहुं पद्धतिविषै अनन्तता माननी।

अनन्तता कहा ताको विचार :—

अनतताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखाइयतु है जैसे—वटवृक्षको बीज एक हाथविषै लीजे ताको विचार दीर्घ दृष्टिसों कीजे तो वा वटके बीजविषै एक वटको वृक्ष है, सो वृक्ष जैसो कछु भाविकाल होनहार है तैसो विस्तारलिये विद्यमान वार्मे वास्तवरूप छतो है, अनेक शाखा प्रशाखा पत्र पुष्पफलसयुक्त है, फल फलविषै अनेक बीज होंहि। या भांतिकी अवस्था एक वटके बीजविषै विचारिए। और भी सूक्ष्मदृष्टि दीजे तो जे जे वा वट वृक्षविषै बीज हैं ते ते अंतर्गभित वटवृक्षसंयुक्त होंहिं। याही भांति एकवटविषै अनेक अनेक बीज, एक एक बीज विषै एक एक वट, ताको विचार कीजे तो भाविनयप्रवानकरि न वटवृक्षनिकी मर्यादा पाइए न बीजनिकी मर्यादा पाइए। याही भाति अनतताको स्वरूप जाननो। ता अनतताके स्वरूपको केवलज्ञानी पुरुष भी अनन्तही देखै जाणै कहै-अनन्तको ओर अत है ही नाही जो ज्ञानविषै भाषै। तातै अनन्तता अनन्तहीरूप प्रसिभासै, या भांति आगम

अध्यात्मकी अनन्तता जाननी । तामें विशेष इतनो जु अध्यातमको स्वरूप अनन्त, आगमको स्वरूप अनन्तानतरूप, यथापना प्रवानकरि अध्यात्म एक द्रव्याश्रित, आगम अनन्तानन्त पुद्गलद्रव्याश्रित । इन दुहूंको स्वरूप सर्वथा प्रकार तो केवलज्ञानगोचर, अंशमात्र मति श्रुतज्ञानग्राह्य तातै सर्वथाप्रकार आगमी अध्यात्मी तो केवली, अंशमात्र मतिश्रुतज्ञानी, ज्ञातादेशमात्र अवधिज्ञानी मन पर्यय ज्ञानी, ए तीनों यथावस्थित ज्ञानप्रमाण न्यूनाधिकरूप जानने । मिथ्यादृष्टी जीव न आगमी न अध्यात्मी है । काहेते यातें जु कथन मात्र तो ग्रथपाठके बलकरि आगम अध्यात्मको स्वरूप उपदेशमात्र कहै परन्तु आगम अध्यात्मको स्वरूप सम्यक् प्रकार जानैं नही । तातै मूढ जीव न आगमी न अध्यात्मी, निर्वेदकत्वात् ।

अब मूढ तथा ज्ञानी जीवको विशेषपणो और भी सुनो :—

ज्ञाता तो मोक्षमार्ग साधि जानै, मूढ मोक्षमार्ग न साधि जानै, काहे—यातें सुनो—मूढ जीव आगमपद्धतिको व्यवहार कहै, अध्यात्मपद्धतिको निश्चय कहै तातै आगम अग को एकान्तपनो साधिकै मोक्षमार्ग दिखावै, अध्यात्म अगको व्यवहारे न जानै—यह मूढदृष्टीको स्वभाव, वाहि याही भांति सूझै, काहेते ?—यातै—जू आगम अंग बाह्यक्रिया रूप प्रत्यक्ष प्रमाण है ताको स्वरूप साधिवो सुगम । ता बाह्यक्रिया करतो संतो आपकूं मूढ जीव मोक्षको अधिकारी मानै, अन्तरगर्भित को अध्यात्मरूप क्रिया सो अतरदृष्टि ग्राह्य है सो क्रिया मूढजीव न जानै । अन्तरदृष्टि के अभावसों अन्तर क्रिया दृष्टिगोचर आवै नाही, तातै मिथ्यादृष्टि जीव मोक्षमार्ग साधिवेको असमर्थ ।

अथ सम्यक्दृष्टीको विचार सुनो :—

सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो—संशय विमोह विभ्रम ए तीन भाव जामें नाही सो सम्यग्दृष्टी। सशय विमोह विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखायतु है सो सुनो--जैसे च्यार पुरुष काहु एक स्थानक विषै ठाढे। तिन्ह चारिहूं के आगे एक सीपको खड किनही और पुरुषने आनि दिखायो। प्रत्येक प्रत्येकतें प्रश्न कीनी कि यह कहा है—सीप है कि रूपो है। प्रथमही एक पुरुष संशैवालो बोल्यो-कछु सुध नाही न परत, किधो सीप है किधो रूपो है, मोरी दृष्टिविषै याको निरधार होत नांहिनै। दूजो पुरुष भी विमोहवालो बोल्यो कि-कछू मोहि यह सुधि नाही कि तुम सीप कौनसों कहतु है, रूपो कोनसों कहतु है, मेरी दृष्टिविषै कछु आवतु नाही, तातैं हम नाहिनै जानत कि तू कहा कहतु है अथवा चुप ह्वै रहै बोलै नाहीं गहलरूपसों। तीसरो पुरुष भी विभ्रमवालो बोल्यो कि—यह तो प्रत्यक्षप्रमाणरूपो है, याको सीप कौन कहै, मेरी दृष्टिविषै तो रूपो सूझतु है तातैं सर्वथाप्रकार यह रूपो है सो तीनो पुरुष तो वा सीपको स्वरूप जान्यो नाही। तातैं तीनो मिथ्यावादी। अब चौथो पुरुष बोल्यो कि यह तो प्रत्यक्ष प्रमाण सीपको खड है, यामें कहा धोखो, सीप सीप सीप, निरधार सीप, याको जु कोई और वस्तु कहै सो प्रत्यक्षप्रमाण भ्रामक अथवा अध, तैसै सम्यग्दृष्टीको स्वपरस्वरूपविषै न ससै न विमोह न विभ्रम, यथार्थदृष्टि है तातै सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरदृष्टि करि मोक्षपद्धति साधि जानै। बाह्यभाव बाह्यनिमित्तरूप मानै, सो निमित्त नानारूप, एक रूप नाही, अन्तरदृष्टिके प्रमाण मोक्षमार्ग साधै, सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरणकी कनिका जागे मोक्षमार्ग सांचो। मोक्षमार्गको साधिवोय है व्यवहार, शुद्धद्रव्य अक्रियारूप सो निश्चै। ऐसें निश्चय

व्यवहारको स्वरूप सम्यग्दृष्टी जानै, मूढजीव न जानै न मानै। मूढ जीव बंधपद्धतिको साधिकरि मोक्ष कहै, सो बात ज्ञाता मानै नाहीं। काहेतें ? यातै जु बधके साधते बध सधै, मोक्ष सधै नाही। ज्ञाता जब कदाचित् बंधपद्धति विचारै तब जानै कि या पद्धतिसों मेरो द्रव्य अनादिको बन्धरूप चल्यो आयो है--अब या पद्धतिसों मोह तोरि वहै तो या पद्धतिको राग पूर्वकी ज्यों हे नर काहे करौ ? छिन मात्र भी बधपद्धतिविषै मगन होय नाही सो ज्ञाता अपनो स्वरूप विचारै अनुभवै ध्यावै गावै श्रवन करै नवधाभक्ति तप क्रिया अपने शुद्धस्वरूपके सन्मुख होइकरि करै। यह ज्ञाताको आचार, याहीको नाम मिश्रव्यवहार।

अब हेयज्ञेयउपादेयरूप ज्ञाताकी चाल ताको विचारलिख्यते :—

हेय--त्यागरूप तो अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ज्ञेय—विचाररूप अन्यषट्द्रव्यको स्वरूप, उपादेय—आचरण रूप अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ताको ब्यौरो—गुणस्थानक प्रमाण हेयज्ञेयउपादेयरूप शक्ति ज्ञाताकी होइ। ज्यो ज्यों ज्ञाताकी हेय ज्ञेयउपादेयरूप शक्ति वर्द्धमान होय त्यो त्यों गुणस्थानककी बढवारी कही है, गुणस्थानकप्रवान ज्ञान गुणस्थानक प्रमाण क्रिया। तामें विशेष इतनो जु एक गुणस्थानकवर्ती अनेक जीव होंहि तो अनेक रूपको ज्ञान कहिए, अनेक रूपकी क्रिया कहिए। भिन्न भिन्नसत्ताके प्रवानकरि एकता मिलै नाही। एक एक जीव द्रव्यविषै अन्य अन्य रूप उदीक भाव होहि, तिन उदीकभावानुसारि ज्ञानकी अन्य अन्यता जाननी। परन्तु विशेष इतनो जु कोऊ जातिको ज्ञान ऐसो न होइ जु परसत्तावलंबनशीली होइकरि मोक्षमार्ग साक्षात् कहै, काहेतै ? अवस्थाप्रवान परसत्तावलंबक है। ज्ञानको परसत्तावलबी

परमार्थता न कहै । जो ज्ञान होय सो स्वसत्तावलंबनशीली होइ ताको नाउ ज्ञान। ता ज्ञानकी सहकारभूत निमित्तरूप नाना प्रकार के उदीकभाव होहि। तिन्ह उदीकभावनको ज्ञाता तमासगीर। न कर्त्ता न भोक्ता न अवलबी तातै कोऊ यों कहै कि या भांतिके उदीक भाव होंहि, सर्वथा तो फलानो गुणस्थानक कहिये सो भूठो। तिनि द्रव्यको स्वरूप सर्वथा प्रकार जान्यो नाही। काहेतै ? यातै जु और गुणस्थानकनिकी कौन बात चलावै, केवलीके भी उदीक-भावनिकी नानात्वता जाननी। केवलीके भी उदीकभाव एकसे होय नाही। काहू केवलीकों दड कपाटरूप क्रिया उदै होय, काहू केवली को नाही। तो केवलीविषै भी उदैकी नानात्वता है तो और गुणस्थानककी कौन बात चलावै। तातै उदीक भावनिके भरोसे ज्ञान नाही, ज्ञान स्वशक्तिप्रवान है। स्वपरप्रकाशक ज्ञानकी शक्ति, ज्ञायक प्रमाण ज्ञान, स्वरूपाचरणरूप चारित्र यथा अनुभव प्रमाण —यह ज्ञाताको सामर्थ्यपनो। इन बातनको व्यौरो कहांताई लिखिये, कहाताई कहिए। वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत, तातै यह विचार वहुत कहा लिखहि। जो ज्ञाता होयगो सो थोरी ही लिख्यो बहुतकरि समुझेगा, जो अज्ञानी होयगो सो यह चिट्ठी सुनेगो सही परन्तु समुझेगा नही। यह वचनिका यथा का यथा सुमति-प्रवान के वलिवचनानुसारी है। जो याहि सुनेगो, समुझेगो, सरदहेगो, ताहि कल्याणकारी है भाग्यप्रमाण।

इति परमार्थ वचनिका समाप्त।

अथ उपादान निमित्तकी चिट्ठी लिख्यते

प्रथम हि कोई पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा ताको ब्यौरो—निमित्त तो सयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहज शक्ति। ताको ब्यौरो—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्तउपादान, ताको ब्यौरो—द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुणभेदकल्पना। पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोगकल्पना, ताकी चौभंगी। प्रथम ही गुणभेद कल्पनाकी चौभगीको विस्तार कहूं सो कैसे ?—ऐसे—सुनो—जीवद्रव्य ताके अनन्त गुण, सब गुण असहाय स्वाधीन सदाकाल। तामैं दोय गुण प्रधान मुख्य थापे, तापर चौभगीको विचार एक तो जीवको ज्ञानगुण दूसरो जीवको चारित्रगुण।

ए दोनों गुण शुद्धरूप भाव जानने, अशुद्धरूप भी जानने, यथा-योग्य स्थानक मानने ताको व्योरो-इन दुहूँकी गति न्यारी२, शक्ति न्यारी न्यारी, जाति न्यारी न्यारी, सत्ता न्यारी न्यारी ताको ब्यौरो—ज्ञानगुणकी तो ज्ञान अज्ञानरूप गति, स्वपरप्रकाशक शक्ति, ज्ञानरूप तथा मिथ्यात्वरूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता परन्तु एक विशेष इतनो जु ज्ञानरूप जातिको नाश नाही, मिथ्यात्वरूप जातिको नाश, सम्यग्दर्शन उत्पत्ति पर्यत, यह तो ज्ञान गुणको निर्णय भयो। अब चारित्र गुणको ब्यौरो कहै हैं,—सक्लेश विशुद्धरूप गति, थिरता अथिरता शक्ति, मंदी तीव्ररूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता। परन्तु एक विशेष जु मंदताकी स्थिति चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त। तीव्रताकी स्थिति पचम गुणस्थानक पर्यन्त। यह तो दुहुको गुण भेद न्यारो

न्यारो कियो। अब इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्र के आधीन न चारित्र ज्ञानके आधीन। दोऊ असहाय रूप यह तो मर्यादा बध।

अथ चौभंगीको विचार—ज्ञानगुण निमित्त

चारित्रगुण उपादान रूप ताको व्यौरो—

एक तो अशुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान दूसरो अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। तीसरो शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, चौथो शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, ताको व्यौरो—सूक्ष्मदृष्टि देइकरि एक समयकी अवस्था द्रव्यकी लेनी, समुच्चयरूप मिथ्यात्वकी बात नाही चलावनी। काहू समै जीवकी अवस्था या भांति होतु है जु जानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै जानरूप ज्ञान सक्लेश रूप चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान सक्लेश चारित्र, जा समै अजानरूप गति ज्ञानकी, संक्लेश-रूप गति चारित्रकी तासमें निमित्त उपादान दोऊ अशुद्ध। काहू-समै अजानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमें अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। काहू समै जानरूप ज्ञान सकलेशरूप चारित्र तासमें शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान। काहू समै जानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमें शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, या भाति अन्य २ दशा जीवकी सदाकाल अनादिरूप, ताको व्यौरो—जान रूप ज्ञानकी शुद्धता कहिए विशुद्धरूप चारित्र की शुद्धता कहिये। अज्ञान रूप ज्ञानकी अशुद्धता कहिए सक्लेश रूप चारित्रकी अशुद्धता कहिये। अब ताको विचार सुनौ—मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समै जीवको ज्ञान गुण जाण रूप है तब कहा जानतु है? ऐसो जानतु है—

कि लक्ष्मी पुत्र कलत्र इत्यादिक मोसों न्यारे हैं प्रत्यक्ष प्रमाण मैं मरूगा ए यहां ही रहेंगे सो जानतु है। अथवा ए जांयगे मैं रहूंगा, कोई काल इनस्यों मोहि एक दिन वियोग है ऐसो जानपनो मिथ्यादृष्टीको होतु है सो तो शुद्धता कहिए परन्तु सम्यक् शुद्धता नाही गर्भितशुद्धता, जब वस्तुको स्वरूप जानै तब सम्यक् शुद्धता सो ग्रथिभेद विना होई नाही परन्तु गर्भित शुद्धता सो भी अकाम निर्जरा है, वाही जीवको काहू समै ज्ञान गुण अजान रूप है गहलरूप, ताकरि केवल बध है, याही भाति मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समैं चारित्र गुण विशुद्धरूप है तातै चारित्रा-वर्ण कर्म मद है। ता मदताकरि निर्जरा है। काहूसमै चारित्रगुण सक्लेशरूप है तातै केवल तीव्रबध है। या भांति करि मिथ्या अवस्थाविषै जा समै जानरूप ज्ञान है और विशुद्धतारूप चारित्र है ता समै निर्जरा है। जा समै अजानरूप ज्ञान है संक्लेश रूप चारित्र है ता समै बध है, तामें विशेष इतनो जु अल्प निर्जरा बहु बंध, तातै मिथ्यात अवस्थाविषैकेवल बन्ध कह्यो। अल्पकी अपेक्षा जैसे- काहू पुरुषको नफो थोडो टोटो बहुत सो पुरुष टोटाउ ही कहिए। परन्तु बन्ध निर्जरा विना जीव काहू अवस्थाविषै नाही। दृष्टान्त ऐसो—जु विशुद्धताकरि निर्जरा न होती तो एकेन्द्री जीव निगोद अवस्थास्यों व्यवहारराशि कौनके बल आवतो ? वहां तो ज्ञान गुण अजानरूप गहलरूप है अबुद्धरूप है तातै ज्ञानगुणको तो बल नाही। विशुद्धरूप चारित्र के बलकरि जीव व्यवहार राशि चढ़तु है, जीवद्रव्यविषै कषायकी मंदता होतु है ताकरि निर्जरा होतु है। वाही मदता प्रमाण शुद्धता जाननी। अब और भी विस्तार सुनो :—

जानपनो ज्ञानको अरु विशुद्धता चारित्रकी दोऊ मोक्षमार्गानुसारी हैं ताते दोऊविषै विशुद्धता माननी। परन्तु विशेष इतनों जु गर्भित शुद्धता प्रगट शुद्धता नाही। इन दुहू गुणकी गर्भित शुद्धता जब ताई ग्रथिभेद होय नाही तब ताँई मोक्षमार्ग न सधै। परन्तु ऊरधताको करहि अवश्य करि ही। ए दोऊ गुणकी गर्भित शुद्धता जब ग्रथिभेद होइ तब इन दुहूंकी शिखा फूटै तब दोऊ गुण धाराप्रवाहरूप मोक्षमार्गकों चलहि, ज्ञानगुणकी शुद्धताकरि ज्ञान गुण निर्मल होहि, चारित्र गुणकी शुद्धता करि चारित्र गुण निर्मल होइ। वह केवलज्ञानको अंकूर, वह यथाख्यातचारित्रको अकूर।

इहा कोऊ उटकना करतु है—कि तुम कह्यो जु ज्ञानको जाणपनो अरु चारित्रकी विशुद्धता दुहंस्यों निर्जरा है सु ज्ञानके जाणपनो सो निर्जरा यह हम मानी। चारित्रकी विशुद्धतासों निर्जरा कैसे ? यह हम नाही समुझी—ताको समाधानः—

मुनि भैया ! विशुद्धता थिरतारूप परिणामसों कहिये सो थिरता यथाख्यातको अंश है तातै विशुद्धता में शुद्धता आई। वह उटंकनावारो बोल्यो—तुम विशुद्धतासो निर्जरा कही, हम कहतु हैं कि विशुद्धतासो निर्जरा नाही, शुभबन्ध है-ताको सामाधान—'कि सुन भैया यह तो तू सांचो विशुद्धतासों शुभबन्ध, सक्लेशतासो अशुभबन्ध, यह तो हम भी मानी परन्तु और भेद यामें है सो सुनि—अशुभपद्धति अधोगतिको परणमन है, शुभपद्धति उर्द्ध गतिको परणमण है तातै अधोरूपसंसार उर्द्धरूप मोक्षस्थान पकरि, शुद्धता वामें आई मानि मानि, यामें धोखो नाही है, विशुता सदा काल मोक्षको मार्ग है परन्तु ग्रन्थभेद बिना शुद्धताको

जोर चलत नाहीने ? जैसे कोऊ पुरुष नदी में डुबकी मारै फिर जब उछलै तब दैवयोगसों ऊपर ता पुरुषकै नौका आय जाय तो यद्यपि ताकू पुरुष है तथापि कौन भाँति निकलै ? वाको जोर चलै नाहि, बहुतेरा कलबल करै पै कछु बसाइ नाँही, तैसें विशुद्धताकी भी ऊर्द्धता जाननी। ता वास्तै गर्भित शुद्धता कही। वह गर्भित शुद्धता ग्रंथिभेद भए मोक्षमार्गको चली । अपने स्वभाव करि वर्द्धमानरूप भई तब पूर्ण यथाख्यात प्रगट कहायो । विशुद्धताका जु ऊर्द्धता वहै वाकी शुद्धता।

और सुनि जहाँ मोक्षमार्ग साध्यो तहाँ कह्यो कि "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग." और यो भी कह्यो कि "ज्ञानक्रिया-भ्यां मोक्ष." ताको विचार-चतुर्थ गुणस्थानकस्यु लेकरि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त मोक्षमार्ग कह्यो ताको व्यौरो, सम्यकरूप ज्ञान-धारा विशुद्धरूप चारित्रधारा—दोऊधारा मोक्षमार्गको चली सु ज्ञानसों ज्ञानकी शुद्धता क्रियासों क्रियाकी शुद्धता । जो विशुद्धतामें शुद्धता है तो यथाख्यात रूप होत है। जो विशुद्धतामें शुद्धता का अंश न होत तो ज्ञान गुण शुद्ध होतो, क्रिया अशुद्ध रहती केवली विषै, सो यों तो नहीं, वामें शुद्धता हती ताकरि विशुद्धता भई । इहा कोई कहेगो कि ज्ञानकी शुद्धताकरि क्रिया शुद्ध भई सो यो नाही। कोऊ गुण काहू गुणके सारै नही, सब असहाय रूप हैं। और भी सुनि जो क्रियापद्धति सर्वथा अशुद्ध होती तो अशुद्धताकी एती शक्ति नाहीं जु मोक्षमार्गको चलै तातें विशुद्धतामें यथाख्यातको अंश है तातें वह अंश क्रम क्रम पूरण भयो । ए भइया उटकनावारे—तैं विशुद्धतामें शुद्धता मानी कि नाहीं । तै जो तो तै मानी तो कछु और

कहिवेको कार्य नाही। जो तैं नाहीं मानी तो तेरो द्रव्य याही भाँति को परणयो है हम कहा करि हैं जो मानी तो स्याबासि। यह तो द्रव्यार्थिककी चौभगी पूरण भई।

निमित्त उपादान का शुद्ध अशुद्धरूप विचार—

अब पर्यायार्थिककी चौभगी सुनो—एक तो वक्ता अज्ञानी श्रोता भी अज्ञानी सो तो निमित्त भी अशुद्ध उपादान भी अशुद्ध। दूसरो वक्ता अज्ञानी श्रोता ज्ञानी सो निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध। तीसरो वक्ता ज्ञानी श्रोता अज्ञानी सो निमित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध। चौथो वक्ता ज्ञानी श्रोता भी ज्ञानी सो तो निमित्त भी शुद्ध उपादान भी शुद्ध। यह पर्यायार्थिककी चौभगी साधी।

इति निमित्त उपादान शुद्धाशुद्धरूपविचार वचनिका।

सस्ती ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

१. पदम पुराण ७)
२. रत्नकरण्ड श्रावकाचार ५)
३. मोक्षमार्ग प्रकाशक ३)
४. कल्याण गुटका १)५०पैसे
५. मानव धर्म)७५ ,,
६. सरल जैनधर्म)६२ ,,
७. प्रश्नोत्तर ज्ञान सागर प्रथम भाग)६२ ,,
८. प्रश्नोत्तर ज्ञान सागर द्वितीय भाग)६२ ,,
९. स्वास्थ विधान)५० ,,
१०. वृहत् समाधि-मरण)३७ पैसे
११. छहढ़ाला सार्थ)३२ ,,
१२. भजन सग्रह)२५ ,,
१३. वैराग्य प्रकाश)२५ ,,
१४. दशधर्म लावनी)२५ ,,
१५. ब्रह्मचर्य रहस्य)२५ ,,
१६. जैन शतक)१६ ,,
१७. रहस्य पूर्ण चिट्ठी व छहढाला (मूल))२० ,,
१८. मेरी भावना)५ ,,